नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अर्थात्

प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका

[नवीन संस्करण]

भाग ३—अंक १

संपादक

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए०

—:*:—

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

[वैशाख संवत १९७९]

[मूल्य प्रति संख्या—एक रुपया

लेख-सूची

पृष्ठांक

प्रकाशित होने के लिये स्वीकृत लेख

[१] अशोक की धर्मलिपियाँ।

[२] बोर्नियो के संस्कृत शिलालेख।

[३] कच्छवंश महाकाव्य।

[४] बृहस्पति के सूत्र।

[५] इब्न बतूता के समय का भारतवर्ष।

[६] एक ऐतिहासिक काव्य।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

अर्थात्

प्राचीन शोधसंबंधी त्रैमासिक पत्रिका।

[नवीन संस्करण]

भाग ३—संवत् १९७९
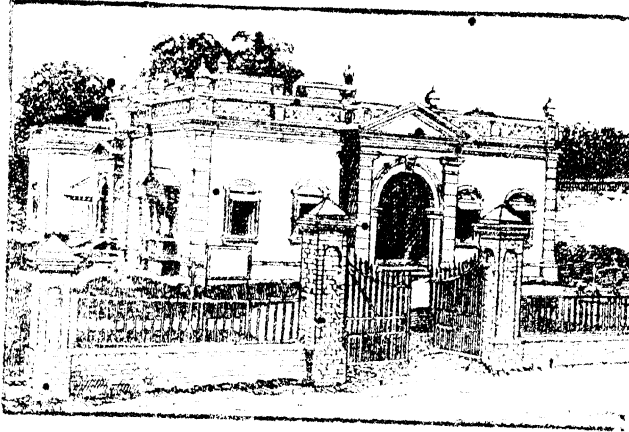
संपादक

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

—:*:—

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

लेख-सूची ।

पृष्ठांक

पृष्ठांक

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

[नवीन संस्करण]

तीसरा भाग—संवत् १९७९

१—परमार राजा भोज का उपनाम 'त्रिभुवन नारायण'।

[लेखक—राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

प्राचीन काल के हिंदू राजा कभी कभी एक या अधिक उपनाम (विरुद) धारण किया करते थे। जैसे मालवा के परमार राजा वैरिसिंह (दूसरे) का 'वज्रट', हर्ष का 'सीयक', मुंज का 'वाक्पतिराज' और 'अमोघवर्ष' और भोज के पिता सिंधुराज का 'नवसाहसांक' उपनाम मिलता है वैसे ही भोज का 'त्रिभुवन नारायण' उपनाम होना पाया जाता है।

उदयपुर (मेवाड़) राज्य के चीरवा नामक गाँव (एकलिंगजी के मंदिर से ३ मील उत्तर में) के नये बने हुए विष्णु के मंदिर की दीवार में वहीं के किसी पुराने मंदिर का एक शिलालेख[1] लगाया गया है जो वि० सं० १३३० कार्तिक शुदि १ का और मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का है। मूल में जिस मंदिर का वह शिलालेख था वह मेवाड़ के राजाओं के नियत कि

(१) यह शिलालेख मेरी भेजी हुई छाप पर से विएना ओरिएँटल जर्नल में छप चुका है। (जि० २१, पृ० १४३ आदि)

हुए नागहृद (नागदा—मेवाड़ की पुरानी राजधानी जो एकलिंगजी के निकट है) के तलारक्षों के एक पूर्वज ने बनवाया था। उसमें तलारक्ष[1] उद्धरण के वंश का पूरा परिचय देने के अतिरिक्त उसके जिस

(१) तलारक्ष, और तलार दोनों नाम किसी राज-कर्मचारी के सूचक हैं। संस्कृत के कोषों में ये नाम नहीं मिलते परंतु कभी कभी प्राचीन शिलालेखों या संस्कृत पुस्तकों में मिलते हैं। चीरवा के शिलालेख में तलारक्ष उद्धरण के वंश का विस्तृत वर्णन मिलता है। उद्धरण को दुष्टों को सज़ा देने और शिष्टों का रक्षण करने में समर्थ होने के कारण राजा मथनसिंह ने नागदे का तलारक्ष बनाया था (श्लो० ६-१०)। राजा पद्मसिंह ने उस (उद्धरण) के पुत्र योगराज को उसके पिता का स्थान दिया था (श्लो० ११-१२)। योगराज का ज्येष्ठ पुत्र पमराज जब सुरत्राण (सुलतान शमसुद्दीन अल्तिमश) की सेना ने नागदा का भंग किया उस समय भूताले के पास लड़ाई में लड़ता हुआ मारा गया (श्लो० १२-१६)। योगराज के दूसरे बेटे महेंद्र का ज्येष्ठ पुत्र बाला या बालाक राजा जैत्रसिंह के समय कोटड़ा लेने में राणक (राणा) त्रिभुवन (त्रिभुवनपाल—गुजरात का राजा) के साथ की लड़ाई में मारा गया (श्लो० १७ और १८)। राजा जैत्रसिंह ने योगराज के चौथे पुत्र क्षेम को चित्रकूट (चित्तौड़) की तलारता (तलार का पद) दी (श्लो० १९ और २२)। क्षेम का ज्येष्ठ पुत्र रत्न चित्रकूट की तलहट्टिका (तलहटी = किले या पहाड़ी स्थान के नीचेवाली समान भूमि पर की आबादी) में शत्रु से लड़ने में मारा गया (श्लो० २३ और २६)। रत्न का छोटा भाई मदन श्रीजयसल्ल (जैत्रसिंह) के लिये उत्थूणक (अर्थूणा, बांसवाड़ा राज्य में) की लड़ाई में जैत्रमल्ल से लड़ा (श्लो० २७ और २८)। राजा समरसिंह ने मदन को चित्रकूट की तलारता दी (श्लो० ३०)। इन सब बातों को देखते हुए यही प्रतीत होता है कि उद्धरण के वंशज मेवाड़ के राजाओं की सैनिक सेवा करनेवाले थे। 'उद्धरण को दुष्टों को सज़ा देने और शिष्टों का रक्षण करने में समर्थ होने के कारण मथनसिंह ने नागदे का तलारक्ष बनाया' यह कथन यही सूचित करता है कि 'तलारक्ष' या 'तलार' नाम नगर की रक्षा करनेवाले अधिकारी (कोतवाल) का सूचक होना चाहिए। सोड्ढल-रचित 'उदयसुंदरी कथा' में एक राक्षस का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'उसकी घृणा उत्पन्न करानेवाली आकृति के कारण वह नरक रूपी नगर के तलार के सदृश था (घृणावद्दूरतया तलारमिव नरकनगरस्य—पृ० ७९)। यह कथन भी उक्त नाम के नगर की रक्षा करनेवाले अधिकारी (कोतवाल) का ही सूचक होना बतलाता है। अंचलगच्छ के

त्रि वंशज ने जो जो लड़ाइयाँ लड़ीं या जो राजकीय सेवाएँ कीं उनका भी उल्लेख है। उसमें चित्तौड़ के तलारक्ष मदन के विषय में लिखा है कि 'रत्न का छोटा भाई निष्पापी मदन, राजा समरसिंह की कृपा से चित्तौड़ में वंशपरंपरागत तलारता पाकर, श्रीभोजराज (राजा भोज) के बनवाए हुए 'त्रिभुवननारायण' नामक देव मंदिर में अपने कल्याण की इच्छा से सदाशिव की पूजा किया करता था।'[१]

चित्तौड़ के किले के रामपोल दरवाजे के बाहर नीम के वृक्षवाले चबूतरे पर पड़ा हुआ मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय का वि० सं० १३५८ माघ शुदि १० का एक शिलालेख गत वर्ष मुझे मिला। उसकी दाहिनी ओर का कुछ अंश नष्ट हो जाने से प्रत्येक पंक्ति के अंत के कहीं एक, कहीं दो अक्षर जाते रहे हैं और बीच के कुछ अक्षर भी कहीं कहीं बिगड़ गए हैं। तिस पर भी उसका संवत् बच गया है और उससे पाया जाता है कि 'महाराजाधिराज श्री समरसिंहदेव के राज्य समय प्रतिहार (पडिहार) वंशी महारावत राज श्री... राज० पाता के बेटे राज० (राजपुत्र) धारसिंह ने श्री

माणिक्यसुंदर सूरि ने वि० सं० १४७८ में 'पृथ्वीचंद्र चरित्र' रचा जिसमें एक जगह बहुत से राजकीय अधिकारियों की नामावली दी है जिसमें 'तलवर' और 'तलवर्ग' नाम भी हैं (प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह-बड़ौदा सीरीज़, पृ० ६७)। कहीं शिलालेखों में 'तलवर्गिक' भी आता है। संभव है कि ये नाम भी तलारक्ष के ही सूचक हों। गुजराती भाषा में अब तक 'तलाटी' शब्द प्रचलित है जो 'तलारक्ष' या 'तलार' का ही अपभ्रंश होना चाहिए। अब 'तलाटी' शब्द 'पटवारी' का सूचक है परंतु प्राचीन काल में तलारक्ष या तलार सैनिक अधिकारी का सूचक था। उस समय पुलिस भी सेना का ही अंग समझी जाती थी।

[१] (१) रत्नानुजोऽस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः।
मदनः प्रसन्नवदनः सततं कृतदुष्टजनकदनः ॥२७...॥
श्रीचित्रकूटदुर्गे तलारतां यः पितृक्रमायातां।
श्रीसमरसिंहराजप्रसादतः प्राप निःपापः ॥३०॥
श्रीभोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे।
यो विरचयति स्म सदाशिवपरिचर्यां स्वशिवलिप्सुः ॥३१॥
(चीरवा का शिलालेख)

भोजस्वामिदेवजगती[1] ('भोजस्वामी' नामक या राजा भोज के बनाए हुए देव मंदिर) में प्रशस्ति पट्टिका सहित...बनवाया।'[2]

ऊपर के दोनों शिलालेखों से पाया जाता है कि चित्तौड़ के किले पर भोज नाम के किसी राजा ने एक देवमंदिर बनवाया था जिसको पहले शिलालेख में 'त्रिभुवननारायण' का और दूसरे में 'भोजस्वामी' का मंदिर कहा है, और वह मंदिर मेवाड़ के राजा समरसिंह के समय विद्यमान था।

अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि चित्तौड़ के किले पर उक्त मंदिर को बनवानेवाला श्री भोजदेव (राजा भोज) कौन था। मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा बापा (कालभोज) ने चित्तौड़ का किला मोरियों (मौर्यवंशियों) से लिया। उसके पीछे उस वंश में तो भोज नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। पिछले समय में मेवाड़वालों के पड़ोसी राजा सांभर, अजमेर और नाडोल के चौहान आबू और मालवा के परमार तथा गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) थे, जिनके पूर्व गुर्जर देश[3] तथा कन्नौज के प्रतिहार (पड़िहार) थे। इन पड़ोसी राजवंशों में से मालवा के परमार और प्रतिहारों में ही भोज या भोजदेव नामक राजा का होना पाया जाता है। प्रतिहार वंशी किसी राजा के चित्तौड़ पर रहने या मेवाड़ पर चढ़ाई करने का अब तक कोई उल्लेख नहीं मिला; परंतु बीजापुर (जोधपुर राज्य में) से मिले हुए हस्तिकुंडी (हथूंडी) के राष्ट्रकूट (राठौड़) राजा धवल और उसके पुत्र बालप्रसाद के समय के वि० सं० १०५३ माघ शुदि १३ के शिलालेख से पाया जाता है कि 'मुंजराज (मालवे के परमार राजा मुंज) ने मेदपाट (मेवाड़) के मद रूपी आघाट (आहाड़,

(१) जगती = मंदिर, देवालय; या देवालय का हाता (विख्यातो विदधे देवं पितुर्नाम्ना महेश्वरं। श्रीसोहनाथदेवस्य जगत्यां पुण्यवृद्धये ॥—मांगरोल का वि० सं० १२०२ का शिलालेख, भावनगर इंस्क्रिपशँस, पृ० १५८)।

(२) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भा० ५, पृ० ४१३ और टिप्पण २७।

(३) नाग० पत्रि० भाग २, पृ० ३४१ प्रभृति।

मेवाड़ की पुरानी राजधानी) को तोड़ा उस समय धवल ने मेवाड़ की सेना की रक्षा की थी।' इससे संभव है कि मुंज ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर आहाड़ को तोड़ने पर चित्तौड़ का किला और उसके आसपास का मालवे से मिला हुआ प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया हो।

पोरवाड़ महाजन विमलशाह के बनवाए हुए आबू पर के देलवाड़ा गाँव के प्रसिद्ध जैन मंदिर (आदिनाथ) विमलवसही के जीर्णोद्धार के वि० सं० १३७८ ज्येष्ठ शुदि ९ के शिलालेख में उक्त मंदिर के बनने के विषय में लिखा है कि 'चंद्रावती पुरी का राजा धंधु (धंधुक) वीरों का अग्रणी था। जब उसने राजा भीमदेव की सेवा स्वीकार न की तब राजा (भीमदेव) उसपर क्रुद्ध हुआ जिससे वह मनस्वी (धंधुक) धारा के राजा भोज के पास चला गया। फिर राजा भीम ने प्राग्वाट (पोरवाड़) वंशी मंत्री विमल को अर्बुद (आबू) का दंडपति (सेनापति, हाकिम) बनाया। उसने वि० सं० १०८८ में आबू के शिखर पर आदिनाथ का मंदिर बनवाया'।

(१) भंक्त्वाघाटं घटाभिः प्रकटमिव मदं मेदपाटे भटानां
जन्ये राजन्यजन्ये जनयति जनताजं (?) रणं मुंजराजे ॥
श्री''' माणे प्रणष्टे हरिण इव भिया गूर्जरेशे विनष्टे
तत्सैन्यानां स(श)रण्यो हरिरिव शरणे यः सुराणां व(ब)भूव॥१०॥

(एपि० इंडि० जि० १०, पृ० १२-२१) मुंज की मेवाड़ पर चढ़ाई का वहाँ के राजा शक्तिकुमार के समय में होना अनुमान किया जा सकता है। यदि मूल श्लोक में त्रुटित अक्षर 'खुं' हो तो खुंमाण पद से 'खुंमाणो' अर्थात् खुंमाण के वंशज से अभिप्राय है। यह प्रचलित रीति है, चारण लोग मेवाड़ के महाराणाओं को 'खुंमाण' अर्थात् 'खुंमाण के गोत्रज' कह कर संबोधन करते हैं।

(२) तत्कुलकमलमरालः कालः प्रत्यर्थिमंडलीकानां।
चंद्रावतीपुरीशः समजनि वीराग्रणीर्धंधुः ॥ ५ ॥
श्रीभीमदेवस्य नृपस्य सेवाममन्यमा(!)नः किल धंधुराजः।
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी धाराधिपं भोजनृपं प्रपेदे ॥ ६ ॥
प्राग्वाटवंशाभरणं बभूव
रत्नप्रधानं विमलाभिधानः।...॥ ७ ॥

उसी मंदिर के बनाए जाने के संबंध में जिनप्रभसूरि, जो मेवाड़ के राजा समरसिंह का समकालीन था, अपने 'तीर्थकल्प' में लिखता है कि 'जब गूर्जरेश्वर (भीमदेव) राजानक धांधुक (राजा धंधुक) पर क्रुद्ध हुआ तब उस (विमलशाह) ने भक्ति से उस (भीमदेव) को प्रसन्न करके उस (धंधुक) को चित्रकूट (चित्तौड़) से लाकर वि० सं० १०८८ में उसकी (धंधुक) की आज्ञा लेकर बड़े खर्च से विमलवसती नामक उत्तम मंदिर बनवाया।'[1]

इन दोनों कथनों को साथ लेने से यही पाया जाता है कि गुजरात के सोलंकी (चौलुक्य) राजा भीमदेव से बिगाड़ हो जाने पर आबू का परमार राजा धंधुक मालवा के परमार राजा भोज के पास चला गया जो चित्तौड़ में रहता था। विमलशाह ने धंधुक को समझा और चित्तौड़ से लाकर उसे भीमदेव की सेवा स्वीकार कराई। उसके बाद उसने आबू पर आदिनाथ का मंदिर बनवाया। इससे स्पष्ट है कि चित्तौड़ में रहने और वहाँ पर मंदिर बनवानेवाला भोज मालवे का राजा ही था।[2]

ततश्च भीमेन नराधिपेन
प्रतापवह्निर्विमलो महामतिः।
कृतोर्बुदे दंडपतिः सतां प्रियः
प्रियंवदो नंदतु जैनशासने ॥ ८ ॥
श्रीविक्रमादित्यनृपाद्व्यतीते
ऽष्टाशीतियाते शरदां सहस्रे।
श्री आदिदेवं शिखरेर्बुदस्य
निवेसि(शि)तं श्रीविमलेन वंदे ॥ ११ ॥

(आबू का शिलालेख—अप्रकाशित)।

(१) राजानकश्रीधांधुके क्रुद्धं श्रीगुर्जरेश्वरं।
प्रसाद्य भक्त्या तं चित्रकूटादानीय तद्गिरा ॥३९॥
वैक्रमे वसुवस्वाशा १०८८ मितेऽब्दे भूरिरैव्ययात्।
सत्प्रासादं सविमलवसत्याह्वं व्याधापयत् ॥ ४० ॥

(तीर्थकल्प का अर्बुदकल्प)।

(२) भोज के पीछे चित्तौड़ पर मालवा के परमारों का अधिकार कब तक

यह कहा जा चुका है कि भोजस्वामिजगती का अर्थ भोज स्वामी नामक देवमंदिर वा उसके हाते की भूमि है। यह भी आ गया है कि 'भोजदेवकारितदेवगृह' का नाम 'त्रिभुवननारायणाख्य' था। स्थापित देवता का नाम 'भोजस्वामी' क्यों पड़ा? आराधक जिस देवता की प्रतिष्ठा करता है उसका नाम अपने नाम पर रखने की चाल है। महाराणा कुंभा के बनवाए हुए चित्तौड़, कुंभलगढ़ और आबू पर के देवालयों के नाम 'कुंभस्वामी' हैं। आमेर के कुंवर जगत्सिंह का बनाया मंदिर 'जगत्शिरोमणि' का, महाराज प्रतापसिंह का स्थापित शिवलिंग 'प्रतापेश्वर', गुलेर की रानी कल्याण देई की प्रतिष्ठापित विष्णुमूर्ति 'कल्याणराय' कहलाते हैं। ऐसे

रहा और कैसे उठा इस विषय में कुछ भी लिखा हुआ नहीं मिलता। परंतु गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल के दो शिलालेख चित्तौड़ से मिले हैं जिनमें एक वि० सं० १२०७ का (एपि० इंडि० जि० २, पृष्ठ ४२२-२४) और दूसरा, जो बड़ा है, बिना संवत् का (अप्रकाशित) है। गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह के किसी पूर्वज ने या उसने अथवा कुमारपाल ने मेवाड़ पर चढ़ाई की हो या लड़कर चित्तौड़ लिया हो ऐसा भी कहीं उल्लेख नहीं मिलता। अतएव अनुमान होता है कि सिद्धराज जयसिंह ने १२ वर्ष तक मालवे के राजा नरवर्मा और उसके पुत्र यशोवर्मा से लड़कर मालवा अपने राज्य में मिलाया। उस समय मालवे के अधीन का चित्तौड़ का किला भी गुजरात के राजाओं के अधीन हुआ होगा। यही कारण कुमारपाल के शिलालेखों के चित्तौड़ में मिलने का भी होना चाहिए। वि० सं० १२३० में कुमारपाल के मरने पर उसके बड़े भाई महीपाल का पुत्र अजयपाल गुजरात का स्वामी हुआ। उस अत्याचारी और निर्बुद्धि राजा के समय में या उसके मारे जाने पर मालवा के परमारों ने मालवे पर फिर अधिकार कर लिया। मेवाड़ के राजा सामंतसिंह ने अजयपाल को लड़ाई में घायल कर भगाया और वि० सं० १२३३ में अजयपाल अपने एक द्वारपाल के हाथ से मारा गया। इन घटनाओं से पाया जाता है कि चित्तौड़ का किला मुंज के समय से लगाकर यशोवर्मा के सिद्धराज जयसिंह के हाथ कैद होने तक अर्थात् लगभग १५० वर्ष मालवा के परमारों के अधिकार में रहा। इसके पीछे वह गुजरात के सोलंकी सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के अधिकार में आया। संभव है कि मेवाड़ के राजा सामंतसिंह के अजयपाल को हराने पर वह किला फिर गुहिलवंशियों के अधीन हुआ हो।

उदाहरण कई मिलते हैं । इस लिये भोजस्वामी = भोज की प्रतिष्ठापित देवमूर्ति । उसी भोजस्वामी का नाम त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह क्यों हुआ ? आगे बतलाया जायगा कि भोज परममाहेश्वर था और वह मंदिर नारायण का नहीं, शिव का है । तलारक्ष मदन के विषय में यह कहना कि त्रिभुवननारायणाख्य देवगृह में वह शिवपूजा करता था इसी बात को स्पष्ट करता है । 'भोजस्वामी' के मंदिर की 'आख्या' 'त्रिभुवननारायण' तभी हो सकती है जब कि भोज का बिरुद त्रिभुवननारायण किसी और स्वतंत्र प्रमाण से सिद्ध हो ।

वैसा स्वतंत्र प्रमाण है । गोविंदसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने गणरत्नमहोदधि नामक ग्रंथ बनाया है । इस ग्रंथ की रचना वि० सं० ११९७ (= ई० स० ११४०) में हुई ।[1] वर्द्धमान सिद्धराज जयसिंह के आश्रित रहा हो ।[2]

(१) सप्तनवत्यधिकेष्वेकादशसु शतेष्वतीतेषु ।
वर्षाणां विक्रमतो गणरत्नमहोदधिर्विहितः ॥ (एगलिंग का संस्करण, पृ० ४८०)

(२) ग्रंथ के आरंभ में कहा है कि अपने शिष्यों की प्रार्थना से हम गणरत्नमहोदधि की रचना करते हैं (स्वशिष्यप्रार्थिताः कुर्मो गणरत्नमहोदधिम्) और इसकी व्याख्या में 'स्वशिष्य' को यों खोला है कि 'कुमारपाल-हरिपाल-मुनिचंद्र-प्रभृति' । संभव है कि यह कुमारपाल ही आगे चलकर 'परमार्हत कुमारपाल' सिद्धराज जयसिंह का उत्तराधिकारी हो ।

गणरत्नमहोदधि में कई श्लोक या श्लोकखंड सिद्धराज की प्रशंसा के हैं, जिनसे जान पड़ता है कि वर्धमान ने 'सिद्धराजवर्णन' भी लिखा था । इनमें कई जगह 'मम' कई जगह 'मम सिद्धराजवर्णने', कहीं 'सिद्धराजवर्णने' तथा कहीं कुछ भी उल्लेख नहीं है । वे यहां उद्धृत किए जाते हैं—

(१) मेघो नकिर्वर्षति सिद्धराजे । (पृ० १६)

(२) निःसीमाश्चर्यधाम त्रिभुवनविदितं पत्तनं यत् त्वदीयं
तन्मध्ये वृद्धिमीयुः फलभरनमिताः शाखिनश्चूतमुख्याः ।
नैतच्चित्रं विचित्रांह्रिहितकृतयुग त्वत्प्रभावात् क्षितीश
प्रादुःषन्ति प्रभू ता यदि सुरतरवश्चित्रमेतद्बुधानाम् ॥ (ममैव, पृ० १३९)

आश्चर्य है कि न हेमचंद्र उसका उल्लेख करता है, न वह हेमचंद्र का[1]।

(३) मतिमतां मधुरं कवितामृतं वदति मन्त्रिललामबलाहके।
विदधती निखिलार्थविवेचनं जयति कल्पलता चिरदीधितिः॥ (ममैव, पृ० १८२)

(४) दूरादपि रिपुलक्ष्म्यो मनीषितं यन्त्रयन्ति सावेगाः।
अब्धिमिवेतरभूभृन्निरुद्धगतयोऽपि कूलिन्यः॥ (ममैव, पृ० १८१)

(५) उत्पत्तीव्रानङ्गनाराचविद्धा स्वप्राणेभ्यो वल्लभं त्वामदृष्ट्वा।
वेगादेषा चक्रवाकी वराकी तीरात्तीरे प्रातरेव प्रयाति॥
(ममैव क्रियागुप्तके पृ० ११०)

(६) प्रत्युप्तमुक्ताफलपद्मरागप्रस्पर्धिभिस्तोषितविश्वलोकैः।
यशोनुरागैस्तव सिद्धनाथ चक्रे जगत्काकिंकलौहितीकम्॥
(ममैव सिद्धराजवर्णने पृ० २३५

(७) जाते यस्य प्रयाणे तुरगखुरपुटोत्खातरेणुप्रपञ्चे
तीव्रं ध्वान्तायमाने प्रसरति बहले सर्वतोदिक्कमस्मिन्।
भास्वच्चन्द्रार्कबिम्बग्रहगणरहितं व्योम वीक्ष्य प्रमुग्धाः
सान्ध्यं कर्मारभन्ते शिशुमुनिवटवो जातसन्ध्याभिशङ्काः॥
(ममैव सिद्धराजवर्णने, पृ० ३७२)

(८) नवे यौवनिकोद्भेदे यस्य न स्खलितं मनः।
वृहितं नापि सिद्धेशप्रसादेन मनीषिणः॥ (ममैव, पृ० ४३५)

वर्धमान ने अपने समसामयिक पंडित **सागरचंद्र** के भी कुछ श्लोक नाम से उद्धृत किए हैं। उसने भी सिद्धराजजयसिंह के वर्णन में कोई काव्य लिखा था ऐसा पाया जाता है—

(१) मुष्णान् कलमपमलानि मनोऽपकूल
खेलन्मरालमिथुनात्तपनात्मजेव॥ (सागरचन्द्रस्य पृ० १०६)

(२) कटकः कंटकान्यस्य दलयामास निर्दयम्।
स हि न चमते किंचिद्विन्दुनाप्यात्मनोऽधिकम्॥
(सागरचन्द्रस्य, पृ० ११५)

(३) द्व्याश्रयाः श्रीजयसिंहदेव गुणाः कणादेन महर्षिणोक्ताः।
त्वया पुनः पण्डितदानशौण्ड गुणाश्रयं द्रव्यमपि व्यधायि॥
(पण्डितश्रीसागरचन्द्रस्य, पृ० १४४)

(४) अकल्पितप्राणसमासमागमा मलीमसाङ्गा घनभेदवृत्तयः।
निर्ग्रन्थतां त्वत्परिपन्थिनो गता जगत्पते किं त्वजिनावलम्बिनः॥
(श्रीसागरचन्द्रस्य, पृ. ३०४)

(१) यों परस्पर उल्लेख न करने का कारण सांप्रदायिक मतभेद के कारण उपेक्षा हो सकती है, या अपने समय के ग्रंथकारों को प्राचीनों की तरह प्रामाणिक न मानना हो सकता है।

गणरत्नमहोदधि में व्याकरण के गण श्लोकबद्ध किए गए हैं और फिर गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण हैं। वर्द्धमान ने कई वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया है, उदाहरणों में कई कवियों की रचना नाम से और कितनों की बिना नाम के उद्धृत की है, इससे यह ग्रंथ बड़े ही महत्व का है।

तद्धित प्रकरण के गणों का विवेचन वर्द्धमान ने बहुत अच्छी तरह किया है। उसकी यह प्रौढ़ोक्ति कि जिन तद्धितसिंहों से वैयाकरण रूपी हाथी भागते फिरते थे उनके गणों के सिर पर मैंने पैर रख दिया, यद्यपि मैं गव्य (=गोवंशी) हूँ, चमत्कारयुक्त भी है, सच्ची भी[1]। अपत्यवाचक तद्धित रूपों के उदाहरण में गणरत्नमहोदधि में कई कई श्लोकों के लंबे अवतरण स्थान स्थान पर दिए गए हैं। उनकी रचना से जान पड़ता है कि वे किसी भट्टिकाव्य के सदृश व्याकरण के उदाहरणमय काव्य के एक ही सर्ग में से हैं क्योंकि छंद एक ही है। यह भी जान पड़ता है कि वह काव्य व्याकरण के उदाहरणों के अतिरिक्त द्व्याश्रय काव्य की तरह मालवा के परमार राजा भोज के यश का वर्णन करता है। संभव है कि भोजराज रचित प्रसिद्ध व्याकरण के उदाहरण दिखाने के साथ साथ परमारवंश और भोज के गौरव का वर्णन करने के लिये भोज के किसी सभापंडित ने उसकी रचना की हो। यों तो कई फुटकर श्लोक गणरत्नमहोदधि में और भी जगह जगह मिलते हैं जिन्हें इस काव्य का मान ले सकते हैं, किंतु यह विचार उन एक छंद के अवतरणों का ही करते हैं जो एक ही सर्ग के माने जाने चाहिएँ। इस सर्ग का कथाप्रसंग ऐसा

---

(१) येभ्यस्तद्धितसिंहेभ्यः शाब्दिकेभैः पलायितम्।
गव्येनापि मया दत्तं पदं तद्गणमूर्धसु ॥ (पृ० ४६१)

यहाँ अपने को 'गव्य' कहकर अपने गुरु गोविन्द सूरि की ओर संकेत किया है।

जान पड़ता है कि भोज सिप्रा नदी के तट पर[1] महाकाल वन में[2] किसी ऋषि के आश्रम में गया[3]। वहाँ अनेक ऋषियों ने उसका स्वागत किया[4] और भोज ने ऋषियों का आदर और उनसे संभाषण। किसी[5] [ऋषि] ने यह भी कहा कि [आपके पूर्वज] वैरिसिंह आदि में शिवभक्ति थी किंतु आपकी तरह शिव का प्रत्यक्ष दर्शन किसी ने नहीं पाया[6]। जहाँ पर राजा की सवारी आश्रम की ओर जा रही है वहाँ कई ऋषिपत्नियों के उत्सुकता के साथ दौड़ कर आने, दर्शन करने आदि का वर्णन भी है। कवि ने ऋषि और क्षत्रियों के स्त्रीलिंग और पुल्लिंग अपत्यवाचक तद्धित प्रयोगों की माला गूँथने के लिये यह सब प्रसंग बहुत अच्छा कल्पित किया

(१) स कौकिलश्यामवनेन कूजत्क्रौञ्चेन सिप्रोपतटेन गच्छन्। (पृ० २१७)
अथैष वातण्ड्यवतण्ड्यभीक्ष्यातण्डवातण्ड्यभिकप्रियाणि।
आश्वायनाश्मायनसेवितानि शुचीनि सिप्रापुलिनान्यगच्छत्॥ (पृ० २८५

(२) राजन्महाकालवनेऽत्र गार्ग्यो वात्स्यात्मजावत्सलबालवत्सम्।
वाज्याजयसौवाजिबदुप्रियेणं विलोक्यतामाश्रममण्डनं वः॥ (पृ० २९६)

(३) तथेति गौरीपतये प्रणम्य सांकृत्यपत्नीकृतपादपूर्व सः।
आसंकृतीनर्तितमत्तबर्हिं मुनेः पदं राजमुनिर्जगाम॥ (पृ० २९७)

(४) वैयाघ्रपद्योपहितार्घपाद्यः प्राचीनयोग्योदितमङ्गलाशीः।
स तत्र रैभ्यायणपृष्टवार्तः पौलस्त्यहाऽत्रेरिव धाम्न्यभासीत्॥ (पृ० २९७)

(५) स काण्ठ्यगौकक्ष्यसमचर्मास्मिन्नगास्त्यकौण्डिन्यकृतातिथेयः।
सुभाषितान्यादित पार्णवल्क्यो यजूंषि सूर्यादिव याज्ञवल्क्यः॥
सवार्हदग्न्यायनजानदग्न्यः स्थौर्योकथ्यतैतिश्यजिवृत्तिनाभिः।
कौटिल्यशास्त्रार्णवपारदृश्वा ननन्द गौतम्यमुनीन्द्रवाग्भिः॥
काश्यपैकलव्यायनपैप्पलव्यदाल्भ्यैन्द्रहव्यायनदैवहव्यान्।
राराक्ष्यचाणक्यवद्वाररक्यमौलुक्यचौलुक्यजुषं सिषेवे॥ (पृ० २९८)

(६) दृष्टोऽतुलोमेषु मयोऽतुलोमे श्रीवैरिसिंहादिषु रुद्रभक्तिः।
अपार्थिवा सा त्वयि पार्थिवी यां नौत्सौदपान्योऽपि न वर्णयन्ति॥
कस्तारुणस्तालुनबाष्कयौ वा सौवर्णगर्वा हृदये करोति।
विलासिनीर्वीपतिना कलौ यद्दृष्टलोकि लोकेऽत्र मृगाङ्कमौलिः॥
न भारतेनापि न कौरवेण नैन्द्रावसेन न सात्वतेन।
पांचालमाहानदवैनदैनौशीनरेणाथ यथा त्वयेशः॥ (पृ० ३०३)

है । अस्तु । ऋषिपत्नियों के प्रसंग में जिस **राजा को वे उत्सुकता से देखने आई और देखती हैं उसको मालवराज, त्रिलोक नारायण भूमिपाल और भोज इन तीनों नामों से बतलाया**[1] **है** अर्थात् भोज और त्रिलोकनारायण दोनों एक ही राजा के नाम हैं जो मालवे का राजा था । 'लोक' और 'भुवन' पर्याय शब्द हैं इसलिये 'त्रिभुवननारायण' और 'त्रिलोकनारायण' दोनों एकही राजा के सूचक हैं, अतएव ऊपर कहे हुए 'भोजस्वामी' और 'त्रिभुवननारायण' नाम एक ही मंदिर के सूचक हैं ।

जैसे पद्मगुप्त (परिमल) कवि ने भोज के पिता सिंधुराज के चरित्र ग्रंथ का नाम उक्त राजा के मुख्य नाम पर 'सिंधुराजचरित' न रक्खा किंतु उसके उपनाम (बिरुद, खिताब) 'नवसाहसांक' पद से उक्त पुस्तक का नाम 'नवसाहसांकचरित' दिया वैसे ही भोज उपनाम 'त्रिभुवननारायण' पर से उक्त मंदिर का नाम रक्खा गया होगा । ऊपर चीरवा के शिलालेख से यह बतलाया जा चुका है कि चित्तौड़ का तलारक्ष (तलार) मदन त्रिभुवननारायण नामक देवालय में शिव का पूजन किया करता था । अतएव निश्चित है कि भोज का बनाया हुआ वह मंदिर शिव का मंदिर था । भोज परम शैव था इसका उल्लेख ऊपर गणरत्नमहोदधि के अवतरणों में किया जा चुका है । नारायण नाम विष्णु का सूचक होने से यह भ्रम होना संभव है कि वह मंदिर विष्णु का हो परंतु उक्त नाम में नारायण शब्द विष्णु का सूचक नहीं किंतु भोज के उपनाम का

(१) नाडायनि व्रीडजडेह मा भूश्चारायणि स्फारय चारुचक्षुः ।
विलोक (?) वाकायनि मुञ्जकुञ्जान्मौञ्जायनी (?) **मालवराज** एति ॥
वीक्षस्व तैकायनि शंसकोऽयं शाखायनि कायुधवाणशाखः ।
आणायनि प्राणसमस्त्रिलोक्या **स्त्रिलोकनारायणभूमिपालः** ॥ (पृ० २७७)
द्वैगायनीतो भव सायकायन्युपेहि दौर्गायणि देहि मार्गम् ।
त्वरस्व चैत्रायणि चाटकायन्यौदुम्बरायण्ययमेति **भोजः** ॥ (पृ० २७८)
मा हांसकायन्यनुधाव हंसान् मा शाङ्खपायन्युपशिंशपे स्थाः ।
मा पैङ्गरायण्यनु पैङ्गलायन्युपेहि दृष्टो **नृपतिर्** जामः ॥ (पृ० २७९)

अंश होने से उसको चीरवा के शिलालेख के अनुसार शिव का मंदिर मानने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

मेरे इस लेख को पढ़ने के बाद कोई इतिहासप्रेमी अथवा प्राचीन शोधक चित्तौड़ के किले की सैर करने को जावे तो उसको यह जिज्ञासा अवश्य होगी कि प्रसिद्ध विद्यानुरागी राजा भोज का बनवाया हुआ 'त्रिभुवननारायण' या 'भोजस्वामी' नामक शिवालय अब विद्यमान है वा नहीं; यदि है तो कौनसा और कहाँ है। इसी लिये उक्त मंदिर का पता लगाने का यत्न किया जाता है।

अब तो चित्तौड़ के किले या तलैटी के रहनेवालों में से कोई भी यह नहीं जानता कि राजा भोज वहाँ रहा था और उसने वहाँ एक शिवालय भी बनवाया था। ऐसे ही न वे 'त्रिभुवननारायण' या 'भोजस्वामी' का नाम जानते हैं। इन बातों का पता अब प्राचीन शोध से ही लगा है। राजपूताने में सब से प्राचीन और प्रसिद्ध किला चित्तौड़ ही है जिस पर हिंदुओं तथा मुसलमानों की अनेक चढ़ाइयाँ हुईं। वि० सं० १३६० में देहली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर छः मास से कुछ अधिक समय तक लड़ने के बाद वह किला लिया। उसने वहीं अपने सब से बड़े बेटे खिज़रखाँ को वलीअहद (युवराज) बनाया और चित्तौड़ के राज्य का शासक भी उसीको नियत किया। वह सात आठ बरस तक वहाँ रहा जिसके पीछे सुलतान ने वह किला जालोर के सोनगरों (चौहानों) के वंशज मालदेव को सौंपा। अलाउद्दीन के विजय तथा खिज़रखाँ के अधिकार के समय वहाँ के बौद्ध जैन तथा हिंदू मंदिरों को मुसलमानों ने नष्ट कर दिया। भोज ने वह मंदिर वि० सं० १०८८ से कुछ पहले बनाया होगा क्योंकि उसी समय उसका चित्तौड़ में रहना ऊपर बतलाया गया है। भोज के समय अथवा उससे पहले के प्राचीन चिह्नों में चित्तौड़ पर अब ठोस पत्थर के बने हुए बौद्धों के ८ स्तूप[1], तथा हिंदुओं के दो मंदिर, जिनका जीर्णो-

(1) इन सब स्तूपों के ऊपर के शंकु की आकृति का अंश नष्ट कर दिया

द्धार हुआ है, हैं। इन दो प्राचीन सुंदर, विशाल और दृढ़ मंदिरों में से एक तो सूर्य का है[1], जो पीछे से उसमें देवी की मूर्ति स्थापित किए जाने के कारण अब कालिकाजी का मंदिर कहलाता है, और दूसरा शिवालय है जिसको अदबदजी (अद्भुतजी) का मंदिर और मोकलजी का मंदिर भी कहते हैं। वह शिवालय गोमुख नामक प्रसिद्ध तीर्थ (जलाशय) के ऊपर के ऊँचे हिस्से में है और महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के बनवाए हुए कीर्तिस्तंभ के दक्षिण में उससे थोड़ी ही दूरी पर है। यही चित्तौड़ पर के शिवालयों में सब से पुराना और सब से अधिक प्रसिद्ध है। उसमें नीचे (६ सीढ़ी नीचे) तो शिवलिंग और अनुमान छः सात फुट की ऊँचाई पर पीछे की

गया है। उसके नीचे का मोटा गोलाकृतिवाला अंश तथा उसके नीचे का चौरस भाग जिसपर वज्र के चिह्नसहित बुद्ध की मूर्तियां बनी हुई हैं विद्यमान हैं। ये स्तूप पहले राठौड़ जयमल की हवेली से पद्मिनी के महलों की ओर जानेवाली सड़क की दाहिनी ओर के तालाब में एक चट्टान पर थे जहां से उठा कर अनुमान १२ वर्ष पहले रियासत ने उनको तोपखाने के मकान की एक ओवरी में रखवा दियां है। ऐसा करने में दो के तो टुकड़े भी हो गए हैं।

(१) उस मंदिर को प्रारंभ में सूर्य का मंदिर मानने का कारण यह है कि उसके सुंदर और विशाल द्वार पर सूर्य्य की मूर्ति बनी हुई है और भीतरी परिक्रमा में तीनों ओर के ताकों में भी सात घोड़ों सहित सूर्य (सप्ताश्व) की प्राचीन मूर्तियां विद्यमान हैं। मुसलमानों के समय में यहां की मूर्ति तोड़ दी गई और मंदिर अरसे तक बिना मूर्ति के पड़ा रहा। पीछे से उसमें कालिका की मूर्ति स्थापित की गई जिसको अनुमान १८० वर्ष हुए हैं। जब से वह नवीन मूर्ति स्थापित की गई तब से उसके पुजारी 'गिरि' नामांतवाले बाबा (साधु) हैं। वर्तमान पुजारी भैरुगिरि मूल पुजारी का नवां वंशधर है। उक्त मंदिर का जीर्णोद्धार (मरम्मत) वि० सं० १८६३ में नागेंद्र गिरि के चेले दौलत गिरि तथा कुशालगिरि ने करवाया ऐसा उस मंदिर के छज्जे के नीचे खुदे हुए लेख से पाया जाता है। उस मंदिर के बड़े चौक में उन पुजारियों की समाधियां बनती रहने से उसका कितना एक अंश तो उन्हीं से भर गया है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो समय पाकर वहां पर एक खासा कबरस्तान बन जायगा और उस अपूर्व प्राचीन मंदिर और चौक की शोभा बिलकुल नष्ट हो जायगी।

दीवार से सटी हुई शिव की विशाल त्रिमूर्ति[1] प्राचीन बनी है, जिसकी अद्‌भुत आकृति के कारण ही लोग उसको अद्‌बदजी (अद्‌भुतजी) का मंदिर कहते हैं। वि० सं० १४८५ में महाराणा मोकल ने उसका जीर्णोद्धार करा कर अपने नाम की एक बड़ी प्रशस्ति उसमें लगाई[2] जिससे लोग उसको मोकलजी का मंदिर भी कहते हैं। वह इस समय ही चित्तौड़ के शिवालयों में सब से अधिक प्रसिद्ध है ऐसा ही नहीं किंतु देहली पर मुसलमानों का अधिकार होने से पहले भी वैसा ही प्रसिद्ध था क्योंकि गुजरात के राजा कुमारपाल ने वि० सं० १२०७ में अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज, आनल्ल देव, आनाक) पर चढ़ाई कर उसको हराया। वहाँ से वह चित्तौड़ की शोभा देखने को चला और शालिपुर (सालेरा गाँव, चित्तौड़ से थोड़े ही मील पर) में अपना शिविर (सेना का पड़ाव) रख कर चित्तौड़ गया। वहां पर उसने उक्त (त्रिमूर्तिवाले) मंदिर में शिव की आराधना कर एक गाँव भेट किया और उसके स्मरणार्थ उक्त मंदिर में एक शिलालेख लगाया जो अब तक विद्यमान है[3]। इन सब बातों का विचार करते हुए यही अनुमान होता है कि जिस शिवालय में तलारक्ष मदन शिव की पूजा किया करता था वह उपर्युक्त त्रिमूर्तिवाला मंदिर ही होना चाहिए। उक्त मंदिर का सभामंडप तथा मुख्य अंश जहाँ शिवलिंग तथा त्रिमूर्ति बनी हुई है, पहले के ही हैं, जिनके शिल्प की ओर दृष्टि देते हुए उनका भोज के समय का होना मानना पड़ता है[4]। उसके

---

(१) शिव की त्रिमूर्ति के वर्णन के लिये देखो मेरा लिखा हुआ 'सिरोही राज्य का इतिहास', पृ० ३६–३७ टिप्पण। कर्नल टॉड ने त्रिमूर्ति के तीन मुख पर से उस मंदिर को ब्रह्मा का और महाराणा कुंभा का बनाया हुआ माना है जो भ्रम ही है। (टॉड राजस्थान, जि० ३, पृ० १८०२-१७ आक्सफर्ड का संस्करण।)

(२) एपि० इंडि०, जि० २, पृ० ४१०–२१।

(३) एपि० इंडि०, जि० २, पृ० ४२२–२४।

(४) कर्नल टाड के 'राजस्थान' के आक्सफर्ड संस्करण, जि० ३, पृ० १८ पर उसके संपादक विलिअम् क्रुक का टिप्पण २।

बनने के बाद उसके निकट ही शिव और विष्णु आदि के भी मंदिर बने जो ऐसे दृढ़ और विशाल न होने से अब टूटी हुई दशा में हैं। कुमारपाल की मृत्यु के पीछे जब चित्तौड़ पर गुहिल-वंशियों का अधिकार फिर हुआ और वहीं मेवाड़ की राजधानी स्थिर हुई तब से चित्तौड़ के राजाओं की महासती[1] (दाहस्थान) का स्थान भी उसी मंदिर के निकट नियत हुआ। वि० सं० १३३१ में रावल समरसिंह ने उन सब मंदिरों तथा महासतियों के इर्द गिर्द एक विशाल द्वार सहित हाता[2] बनवाया और उसके संबंध की प्रशस्ति[3] दो बड़ी बड़ी शिलाओं पर खुदवाकर द्वार के भीतर दोनों ओर की दीवारों में लगाई जिनमें से पहली शिला संवत् (१३३१) सहित अबतक विद्यमान है। उक्त प्रशस्ति की रचना वेदशर्मा कवि ने की थी। वि० सं० १३४२ में उसी कवि ने उसी राजा की आबू पर के अचलेश्वर के मठ की प्रशस्ति बनाई जिसमें वह अपनी बनाई हुई पहली प्रशस्ति (चित्तौड़ वाली) का भी उल्लेख करता हुआ उसके स्थान का परिचय इस तरह देता है कि 'चित्रकूट के रहनेवाले नागर जाति के ब्राह्मण उसी वेदशर्मा ने इस (अचलेश्वर के मठ की) प्रशस्ति की रचना की जिसने कि एकलिंग, त्रिभुवन इस नाम से प्रसिद्ध समाधीश (= शिव) और चक्रस्वामी (= विष्णु) के मंदिरों के समूह की प्रशस्ति बनाई थी।'[4] वेदशर्मा आबू की प्रशस्ति की

(१) ना० प्र० पत्रिका, भाग १ पृ० १०४।

(२) बड़ी बड़ी दो शिलाओं पर खुदी हुई उस प्रशस्ति पर से यह संभव नहीं प्रतीत होता कि मंदिरों का हाता, जो अब नष्ट सा हो गया है, बनवाने की यादगार में ऐसी बड़ी प्रशस्ति लगाई गई हो। संभव है कि उक्त हाते के बनवाने के साथ वहां कोई मंदिर भी समरसिंह ने बनवाया हो, परंतु दूसरी शिला के न मिलने से इसका कुछ भी निश्चय नहीं हो सकता।

(३) भावनगर इंस्क्रिपशंस, पृ० ७४—७७।

(४) योऽकार्षीदेकलिङ्गत्रिभुवनविदितश्रीसमाधीशचक्र-
स्वामिप्रासादवृंदे प्रियपटुतनयो वेदशर्म्मा प्रशस्तिम्।
तेनैषापि व्यधायि स्फुटगुणविशदा नागरज्ञातिभाजा
विप्रेणाशेषविद्वज्जनहृदयहरा चित्रकूटस्थितेन ॥ ६० ॥
(आबू पर के अचलेश्वर के मठ की प्रशस्ति-इंडि० एंटि० जि० १६ पृ० ३५

रचना के पूर्व अपनी बनाई हुई एक ही और प्रशस्ति का उल्लेख करता है। वह चित्तौड़ की वि० सं० १३३१ की प्रशस्ति ही है। चित्तौड़ के उक्त हाते के भीतर दो शिवालय टूटी हुई दशा में मौजूद हैं परंतु उनमें शिलालेख न होने से यह जाना नहीं जा सकता कि उनमें से कौन सा मंदिर एकलिंग का था। मेवाड़ के राजाओं के इष्टदेव एकलिंगजी होने के कारण उनके नाम का मंदिर चित्तौड़ में भी बनाया गया हो यह संभव है। त्रिभुवन नाम से प्रख्यात समाधीश (त्रिभुवनविदित श्रीसमाधीश) का मंदिर ऊपर बतलाया हुआ त्रिमूर्तिवाला[1] शिव मंदिर ही है, क्योंकि उसी मंदिर में लगी हुई उसीके जीर्णोद्धार की महाराणा मोकल की वि० सं० १४८५ की प्रशस्ति में उक्त मंदिर के नाम का परिचय 'समाधीश'[2] और 'समिद्धेश'[3] दोनों नामों से दिया है और उसी मंदिर में लगे हुए कुमारपाल के वि० सं० १२०७ के शिलालेख में उसका नाम समिद्धेश्वर[4] मिलता है। आबू की प्रशस्ति का 'त्रिभुवनविदितश्रीसमाधीश' समासवाला पद यद्यपि दो अर्थों (त्रिभुवन नाम से प्रसिद्ध समाधीश (शिव) और त्रिभुवन में प्रसिद्ध समाधीश[5]) का सूचक हो सकता है तो भी उसका 'त्रिभुवनविदित' (त्रिभुवन नामक) अंश 'त्रिभुवननारायण' नामक भोज के शिवालय की स्मृति दिलाता है इसलिये उसे "त्रिभुवन इति विदितः" इसी व्यास (विग्रह) का मध्यमपद

---

(१) चित्तौड़ के किले पर त्रिमूर्ति तथा शिवलिंग वाला एक और भी मंदिर है जिसको भी लोग अद्बदजी (अद्भुतजी) का मंदिर कहते हैं। वह सूरजपोल दरवाजे के निकट है और वि० सं० १५४? में बना था ऐसा वहाँ के शिलालेख से पाया जाता है।

(२) श्रीमत्समाधीशमहेश्वरस्य प्रसादतो(पंक्ति २२)।

(३) समिद्धेशः श्रीमानिह वसति गौरीसहचरः।

(४) श्रीसमिद्धेश्वरं देवं प्रसिद्धं जगती-। (पंक्ति २२-२३)।

(५) समाधीश, समिद्धेश और समिद्धेश्वर ये तीनों नाम उपर्युक्त शिलालेखों में शिव के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

4090

लोपी समास मानना अधिक उचित जान पड़ता है। चक्रस्वामी (विष्णु) का मंदिर वहाँ पर कौन सा था इस विषय का निर्णय नहीं हो सका क्योंकि वहाँ कई पुराने मंदिर टूटे हुए पड़े हैं, परंतु यह निश्चित है कि वहाँ चक्रस्वामी (विष्णु) का कोई मंदिर अवश्य था, क्योंकि उपर्युक्त महाराणा मोकल की वि० सं० १४८५ की प्रशस्ति के प्रारंभ में शिव को नमस्कार करने के बाद गजास्य (गणपति), एकलिंग (शिव या उक्त नाम के शिव), गिरिजा (पार्वती) और अच्युत (विष्णु) की आशीर्वादात्मक प्रार्थना की है[1]। महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) की वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में उसके पिता मोकल के वर्णन में लिखा है कि 'उसने चित्तौड़ में समाधीश्वर के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया, दुर्गा के मंदिर के आँगन में सर्वधातु का सिंह स्थापित किया और चक्रपाणि (चक्रस्वामी, विष्णु) के मंदिर में सोने का गरुड़ बनाया[2]।

ऊपर के सारे कथन का सार यही है कि जिस त्रिमूर्तिवाले शिवालय का जीर्णोद्धार महाराणा मोकल ने कराया वही राजा भोज का बनवाया हुआ 'त्रिभुवननारायण' नाम का शिवालय होना चाहिए जो पीछे से 'भोजस्वामी', समिद्धेश्वर, समाधीश, समाधीश्वर अद्बदजी और मोकलजी का मंदिर कहलाया।

---

(१) श्लोक १—४ (एपि० इंडि०, जि० २, पृ० ४१०—११।)

(२) नृपः समाधीश्वरसिद्धतेजाः
समाधिभाजा परमं रहस्यं
आराध्य तस्यालयमुद्दधार
श्रीचित्रकूटे मणितोरणांकं ॥ २२३ ॥
यः सुधांशुमुकुटप्रियांगणे
वाहनं मृगपतिं मनोरमं ।
निर्मितं सकलधातुभक्तिभिः
पीठरक्षणविधाविव व्यधात् ॥ २२४ ॥
पक्षिराजमपि चक्रपाणये
हेमनिर्मितमसौ दधौ नृपः ।
येन नीलजलदच्छविर्विभु-
श्चंचलायुत इवाधिकं बभौ ॥ २२५ ॥

(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति—अप्रकाशित)।

२—मेवाड़ के शिलालेख और अमीशाह।

[लेखक—राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के पहले से लगाकर औरंगज़ेब के समय तक मेवाड़ के राजा अपने वंश के गौरव या देश की रक्षा के लिये अथवा अपना राज्य बढ़ाने के लिये मुसलमान सुलतानों तथा बादशाहों के साथ बहुधा लड़ते ही रहे। सुलतान अलाउद्दीन ने वि० सं० १३६० में चित्तौड़ का किला रावल रत्नसिंह से लड़कर लिया और वहाँ का राज्य अपने सब से बड़े बेटे खिज़रखाँ को दिया।[1] चित्तौड़ का राज्य कम से कम आठ बरस तक उसके अधिकार में रहा[2]। फिर सुलतान ने वह राज्य जालौर के सोनगरों (चौहानों)

(१) इलियट; हिस्टरी आफ इंडिआ, जि० ३, पृ० ७६-७७; वही, जि० ३, पृ० १८९। ब्रिग; फिरिश्ता, जि० १, पृ० ३५३-५४।

(२) फिरिश्ता लिखता है कि हिजरी सन् ७०३ (वि० सं० १३६०) में अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का किला फतह कर खिजरखाँ को दिया और हि० स० ७०४ (वि० सं० १३६१) में उसको हुक्म दिया किला राजा (रत्नसिंह) के भानजे (सोनगरा मालदेव) के सुपुर्द कर देवे (ब्रिग; फिरिश्ता, जि० १, पृ० ३५४), परंतु फिरिश्ता का दिया हुआ मालदेव को किला सौंपने का हि० स० ७०४ (वि० सं० १३६१) विश्वासयोग्य नहीं है क्योंकि ऐसा होता तो खिज़रखाँ चित्तौड़ की हुकूमत एक वर्ष से अधिक करने न पाता और किला एक वर्ष में ही फिर हिंदुओं के हाथ में जाना चाहिए था। नीचे लिखे हुए प्रमाणों से पाया जाता है कि खिज़रखाँ हि० स० ७१२ (वि० सं० १३७०) के आस पास तक चित्तौड़ की हुकूमत पर रहा था—

(क) खिज़रखाँ ने चित्तौड़ में रहते समय किले के नीचे बहनेवाली गंभीरी नदी पर सुंदर और सुदृढ़ पुल बनवाया जिसके बनने में कम से कम दो वर्ष लगे होंगे।

(ख) चित्तौड़ की तलेटी के बाहर के एक मकबरे में हि० स० ७०९

के वंशज मालदेव को दिया । मालदेव ने सात बरस तक वहाँ

ता० १० ज़िल्हिज्ज (वि० सं० १३६७) का फ़ारसी का एक शिलालेख लगा हुआ है जिसमें 'अबुलमुज़फ़्फ़र मुहम्मदशाह सिकंदर सानी' अर्थात् अलाउद्दीन खिलजी को दुनिया का बादशाह कहकर आशीर्वाद दिया है। इससे अनुमान होता है कि उस समय तक चित्तौड़ मुसलमानों के ही हाथ में था और मालदेव को नहीं मिला था।

(ग) फ़िरिश्ता हि० स० ७११ (वि० सं० १३६८-६९) के हाल में स्वयं लिखता है कि 'इस समय सुलतान का प्रताप अवनति को पहुँच गया था। उसने राज्य की लगाम मलिक काफ़ूर के हाथ में दे रक्खी थी जिससे दूसरे उमरा उससे अप्रसन्न हो रहे थे। खिज़रखाँ को छोटी उम्र से ही चित्तौड़ का शासक बना दिया था परंतु उसको सलाह देने या उसका चाल चलन दुरुस्त रखने के लिये किसी बुद्धिमान पुरुष को उसके पास नहीं रक्खा था। इसी समय तिलंगाने के राजा ने कुछ भेंट और २० हाथी भेज कर लिखा कि मलिक काफ़ूर के द्वारा जो खिराज़ नियत हुआ है वह तैयार है। इस पर मलिक काफ़ूर ने देवगढ़ (दौलताबाद) आदि के दक्षिण के राजाओं को अधीन करने तथा तिलंगाने का खिराज़ लाने की बात कह कर उधर जाना चाहा। खिज़रखाँ के अधीन के इलाके (चित्तौड़) से दक्षिण की इस चढ़ाई के लिये सुभीता होने पर भी मलिक काफ़ूर ने वहाँ खुद जाना चाहा जिसका कारण खिज़रखाँ से उसका द्वेष ही था। सुलतान से आज्ञा पाकर मलिक हि० स० ७१२ (वि० सं० १३६९-७०) में दक्षिण को गया, परंतु सुलतान के बीमार हो जाने से वह बुला लिया गया। बीमारी की दशा में सुलतान ने खिज़रखाँ को बुला लिया और मलिक काफ़ूर के उस (खिज़रखाँ) की शिकायत करने पर उसको कुछ समय तक अल्मोड़ा में रहने की आज्ञा दी' (ब्रिग; फ़िरिश्ता, जि० १, पृ० ३७८-८१)।

(घ) मुंहणोत नैणसी के कथनानुसार वि० सं० १३६८ वैशाख सुदि ५ (नैणसी की ख्यात, पत्र ४१, पृ० २) को और फ़िरिश्ता के अनुसार हि० स० ७०९ (वि० सं० १३६६) में (जि० १, पृ० ३७२) सुलतान अलाउद्दीन की सेना ने जालौर का किला चौहानों से छीन कर वहाँ के हिंदू राज्य की समाप्ति की। इस लड़ाई में वहाँ का राजा कान्हड़देव और उसका कुँवर वीरमदेव दोनों मारे गए। कान्हड़देव का भाई मालदेव बचा जो सुलतान के मुल्क में बिगाड़ किया करता और सुलतान की फौज उसका पीछा किया करती थी। अंत में सुलतान ने चित्तौड़ का इलाका देकर उसको अपना मातहत बनाया

राज्य किया और उसका देहांत चित्तौड़ में ही हुआ[1], जिसके पीछे मेवाड़ के गुहिलवंश की सीसोदे की छोटी शाखा के वंशधर राणा हंमीर ने छल या बल से चित्तौड़ का किला लेकर राणा शाखावाले गुहिलवंशियों अर्थात सीसोदियों का राज्य फिर से वहां स्थापित किया। हंमीर, देहली के सुलतान (मुहम्मद तुगलक) से लड़ा[2]। हंमीर का पुत्र और उत्तराधिकारी खेत्रसिंह हुआ जो लोगों में खेता, खेतसी या खेतल नाम से प्रसिद्ध है। उसकी गद्दीनशीनी वि० सं० १४२१ में और देहांत १४३९ में हुआ।[3] उसके पौत्र, प्रपौत्र आदि के समय के मेवाड़ के कई शिलालेखों या प्रशस्तियों में खेत्रसिंह का अमीशाह को परास्त करना लिखा है परंतु यह नहीं लिखा कि अमीशाह कौन और कहां का था। मेवाड़ का इतिहास लिखनेवाले भिन्न भिन्न पुरुषों ने अमीशाह का पता लगाने का यत्न किया परंतु उसमें कोई सफल न हुआ। अतएव उसका निश्चय करना आवश्यक है।

भिन्न भिन्न शिलालेखों में अमीशाह के संबंध में जो कुछ लिखा मिलता है वह यह है—

(१) महाराणा खेत्रसिंह के पौत्र महाराणा मोकल के समय के

(मुंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र ४४, पृ० २)। इस लिये मालदेव को चित्तौड़ का इलाका वि० सं० १३६८ से कुछ वर्ष बाद ही मिला होगा।

इन सब बातों पर विचार करते हुए यही संभव प्रतीत होता है कि खिजरखां का अधिकार चित्तौड़ पर कम से कम आठ वर्ष रहने के बाद वह किला मालदेव को मिला होगा, न कि वि० सं० १३६१ में जैसा कि फिरिश्ता ने हि० सन् ७०४ के हाल में लिखा है।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात, पत्र ४४, पृ० २।

(२) वंशे तत्र पवित्रचित्रचरितस्तेजस्विनामग्रणीः
श्रीहंमीरमहीपतिः स्म तपति क्ष्मापालवास्तोष्पतिः।
तीरुष्कामितमुण्डमण्डलमिथःसंघट्टवाचालिता
यस्याद्यापि वदन्ति कीर्तिमभितः संग्रामसीमाभुवः॥ ६॥

चित्तौड़ पर के जैन कीर्तिस्तंभ के पास के महावीर स्वामी के मंदिर की प्रशस्ति (बंब० ए० सो० का जर्नल, जि० २३ पृ० ५०)

(३) वीरविनोद, पृ० ३०२, ३०५।

शृंगी ऋषि नामक स्थान (एकलिंग जी के मंदिर से ५ मील पर) में लगे हुए वि० सं० १४८५ के शिलालेख में लिखा है कि उस (खेत्रसिंह) ने अपनी तलवार के बल से युद्ध में अमीसाह (अमीशाह) को जीता, उसके अशेष यवनों को नष्ट किया और वह उसके सारे खज़ाने तथा असंख्य घोड़ों को अपनी राजधानी में लाया।[1]

(२) महाराणा मोकल के पुत्र महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के समय की वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति से पाया जाता है कि जैसे फदकते हुए मेंढक को साँप पकड़ ले वैसे वीरव्रतवाले राणा खेत ने अमीसाहि (अमीशाह) को धर दबाया। जगत की रक्षा करनेवाली अपने हाथ में धरी हुई तलवार से वह खेत राणा (राणा खेता) प्रसिद्ध हुआ[2]।

(३) एकलिंगजी के मंदिर के दक्षिणी द्वार के सामने के ताक में लगी हुई महाराणा कुँभा (कुँभकर्ण) के पुत्र महाराणा रायमल के समय की वि० सं० १५४५ की प्रशस्ति में लिखा है कि अमीसाहि (अमीशाह) रूपी बूड़े सर्प के गर्व रूपी विष को जड़ से मिटानेवाला बड़ी संपत्ति का स्वामी पृथ्वीपति (राजा) खेत्र चित्रकूट (चित्तौड़) में हुआ[3]।

(१) आजावमीसाहमसिप्रभावा-
जित्वा च हत्वा यवनानशेषान्।
यः कोशजातं तुरगानसंख्या-
न्समानयत्स्वां किल राजधानीं ॥ [६]
(शृङ्गी ऋषि का शिलालेख—अप्रकाशित।)

(२) अमीसाहिरप्र(:)हि येनाहिनेव
स्फुरद्भेक एकांगवीरव्रतेन।
जगत्रा (त्रा)णकृद्धस्य पाणौ कृपाणः
प्रसिद्धोभवद्भूपतिः षे(खे)तराणः ॥ २०२ [॥]
(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति—अप्रकाशित।)

(३) योमीसाहिमहाहिगर्वगरलं मूलाद्वादीदहत्
स घेत्रक्षितिभृत् प्रभूतविभवः श्रीचित्रकूटेभवत् ॥ २१ ॥
दक्षिणद्वार की प्रशस्ति (भावनगर इंस्क्रिपशंस, पृ० ११९)

(४) महाराणा चेत्रसिंह के सामंत[1] बंबावदे (मेवाड़ के पूर्वी हिस्से में) के हाड़ा (चौहानों की एक शाखा) महादेव[2] के वि० सं० १४४६ के मेनाल (बंबावदे के हाडों के अधीन का प्राचीन नगर, बंबावदे से थोड़े ही मील पर) के शिलालेख में उक्त हाड़ा के विषय में लिखा है कि उसकी तलवार शत्रुओं की आंखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देती थी। उसने अमीशाह पर अपनी तलवार खींच कर मेदपाट (मेवाड़) के स्वामी खेता (चेत्रसिंह) की रक्षा की और सुलतान की सेना को अपने पैरों के तले कुचलकर नरेंद्र खेता को विजयी किया[3]।

(१) अमीशाह के साथ की लड़ाई में हाड़ा महादेव लड़ा जिसका कारण उसका महाराणा चेत्रसिंह का सामंत होना ही है। उक्त महाराणा ने हाडावटी (हाड़ौती) के स्वामियों को जीतकर उनका देश अपने अधीन किया था ऐसा उपर्युक्त कुंभलगढ़ तथा दक्षिणी द्वार की प्रशस्तियों से पाया जाता है।

हाडावटीदेशपतीन् स जित्वा
तन्मंडलं चात्मवशीचकार ॥ १६८ ॥
(कुंभलगढ़ की प्रशस्ति।)

हाडामंडलमुंडखंडनभवत्स्फूर्जत्कदंबीद्धरं
कृत्वा संगरमात्मसाद्वसुमतीं श्रीखेतसिंहो व्यधात् ॥ ३१ ॥
दक्षिणद्वार की प्रशस्ति (भावनगर इंस्क्रिप्शंस, पृ० ११६)

(२) महादेव बंबावदे के हाडा कुंतल का पुत्र, केल्हण का पौत्र और रतपाल (रतिपाल) का प्रपौत्र था (मेनाल का वि० सं० १४४६ का शिलालेख—टॉड, राजस्थान, जि० ३, पृ० १८०३, आक्सफोर्ड का संस्करण)। बूंदी के इतिहास वंशभास्कर तथा उसके गद्यरूप सारांश वंशप्रकाश में महाराणा हंमीर के साथ हाडों की लड़ाई होने तथा कुँवर खेतसिंह के घायल होने आदि का जो हाल लिखा है वह सारा ही कल्पित है। इसी तरह उसके प्रसंग में बंबावदे के हाडों की जो नामावली तथा संवत् दिए हैं वे सब के सब गढंत हैं। वे सब भाटों की ख्यातों से लिए गए हैं क्योंकि उनमें मेनाल के शिलालेख में दिए हुए बंबावदे के हाडों के नामों में से एक भी नहीं है।

(३) टॉड; राजस्थान, जि० ३, पृ० १८०२। इस लेख की खोज के लिये मैं दो बार मेनाल गया किंतु बहुत यत्न करने पर भी कहीं इसका पता न चला। अनुमान होता है कि कर्नल टॉड बहुत से शिलालेखों के साथ इसे भी विलायत ले गये हों। अतएव टॉड के दिए हुए अनुवाद पर ही संतोष करना पड़ा।

इन चारों अवतरणों से केवल यही पाया जाता है कि महाराणा चेत्रसिंह ने अमीशाह नामक किसी व्यक्ति को युद्ध में हराया और उसका ख़ज़ाना तथा घोड़े छीन लिए परंतु यह पाया नहीं जाता कि अमीशाह कौन और कहां का था।

मेवाड़ के भिन्न भिन्न इतिहास लेखकों में से कर्नल टॉड ने तो अमीशाह का नाम तक नहीं दिया किंतु यह लिखा है कि 'खेतसी (चेत्रसिंह) ने बाकरोल के पास देहली के बादशाह हुमायूँ को परास्त किया[1], परंतु महाराणा चेत्रसिंह का देहली के बादशाह हुमायूँ से लड़ना सर्वथा असंभव है क्योंकि हुमायूँ की गद्दीनशीनी हि० सन ९३७ (वि० सं० १५८७) में और उक्त महाराणा की वि० सं० १४२१ में हुई थी। टॉड की इस भूल का कारण यही अनुमान होता है कि बादशाह हुमायूँ का नाम प्रसिद्ध होने के कारण भाटों ने अमीशाह को हुमायूँशाह लिख दिया हो और उसीपर भरोसा कर टॉड ने उसे देहली का बादशाह मान लिया हो। कर्नल टॉड को चेत्रसिंह और हुमायूँ की गद्दीनशीनी के संवत् भली भाँति ज्ञात थे परंतु लिखते समय मिलान न करने से ही यह अशुद्धि हुई। महाराणा चेत्रसिंह और अमीशाह के बीच की लड़ाई बाकरोल के पास नहीं किंतु चित्तौड़ के निकट हुई थी[2]।

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास जी ने अपने वीर-विनोद में लिखा है कि—

'इन महाराणा (चेत्रसिंह) के पोते महाराणा मोकल और परपोते महाराणा कुम्भा और कुम्भा के पुत्र रायमल्ल के समय की प्रशस्तियों में...

(१) टॉड; राजस्थान, जि० १, पृ० ३२१।

(२) महाराणा चेत्रसिंह की अमीशाह के साथ की लड़ाई चित्तौड़ के निकट हुई यह मानने का कारण यह है कि मेवाड़ के शिलालेखों में उक्त महाराणा की मुसलमानों के साथ एक ही लड़ाई (जो अमीशाह के साथ हुई) का होना लिखा मिलता है। महाराणा कुंभा के बनवाए हुए चित्तौड़ के कीर्ति-

इनका अमीशाह को फ़तह करके गिरफ्तार करना लिखा है-हमने बहुतसी फ़ार्सी तवारीखों में ढूँढा, लेकिन इस नाम का कोई बादशाह उस ज़मानह में नहीं पाया गया; और प्रशस्तियों का लेख भी झूठा नहीं हो सक्ता, क्योंकि वे उसी ज़माने के करीब की लिखी हुई हैं। यदि यह ख़याल किया जावे, कि लिखने वाले ने अहमदशाह गुजराती को बिगाड़कर अमीशाह बना लिया, तो यह असम्भव है क्योंकि अव्वल तो गुजरात और मालवे की बादशाहत की बुनयाद भी उस वक्त तक नहीं पड़ी थी, और अहमदशाह क्षेत्रसिंह के पोते मोकल के समय में गुजरात का बादशाह बना था; शायद फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ के ख़िताब में अहमद का लफ़्ज़ हो, और उसको बिगाड़कर पंडितों ने अमीशाह बना दिया हो तो आश्चर्य नहीं; अथवा अफ़ग़ानिस्तान तुर्किस्तान, व ईरान की तरफ़ कोई अहमदशाह हुआ हो और वह गुजरातियों की मदद के लिये आया हो क्योंकि उन लोगों की आमदरफ्त सिन्ध देश और गुजरात की तरफ़ होती रही है; अथवा दिल्ली के बादशाह के शाहज़ादे या भाई का नाम अहमदशाह हो जिसको बादशाह ने सेनापति बनाकर राजपूतानह की तरफ़ भेजा होगा; वर्नह मेवाड़ से दक्षिणी हिन्दुस्तान की तरफ़ तो उस समय में मुसलमानों की कोई मज़बूत बादशाहत क़ाइम नहीं हुई थी, सिर्फ़ एक बीजापुर की बादशाहत का बानी अलाउद्दीन गांगू हसन बहमनी इन महाराणा के राज्य के बाद दक्षिण का हाकिम बना था। इससे मालूम होता है, कि अमीशाह या अहमद शाह नाम का कोई बादशाह उस ज़मानह में नहीं था, शायद कोई दूसरा नाम बिगड़कर अमीशाह हुआ हो, तो तअज्जुब नहीं; लेकिन महाराणा क्षेत्रसिंह ने अमीशाह को फ़तह करके गिरिफ़्तार किया, इस बात में संदेह नहीं है'[1]।

इस कथन से भी अमीशाह का निश्चय न हुआ।

स्तंभ की वि० सं० १२१७ की प्रशस्ति में लिखा है कि क्षेत्रसिंह ने चित्रकूट के निकट यवनों की सेना को संहार कर उसे पाताल में भेज दिया—

येनानर्गलभल्लदीर्णहृदया श्रीचित्रकूटांतिके
तत्तत्सैनिकघोरवीरनिनदप्रध्वस्तधैर्योदया।
मन्ये यावनवाहिनी निजपरित्राणस्य हेतोरलं
भूनिक्षेपमिषेण भीपरवशा पातालमूलं ययौ ॥ २२ ॥

कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति—अप्रकाशित।

(1) वीरविनोद, भाग १ पृ० ३०१-२।

बाबू रामनारायण दूगड़ ने अपने 'राजस्थान रत्नाकर' में लिखा है कि—

'महाराणा रायमल्ल की सं० १५४५ वि० (स० १४८८ ई०) की एकलिंगजी के मंदिर की प्रशस्ति में चेत्रसिंह के वर्णन में लिखा है कि "योमीसाहिमहाहिगर्वगरलं मूलादवादीदहत्" आदि अर्थात् अमीसाहिरूपी सर्प के गर्वगरल का गंजन किया, उसके गढ़ उजाड़े (?) योद्धों को पराजित किये और खज़ाना लूटा। हम नहीं कह सक्ते कि अमीसाह कौन था, वह मालवे व गुजरात के सुलतानों में से तो हो नहीं सक्ता क्योंकि गुजरात का पहला सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह स० १३९१ ई० में और मालवे का दिलावरशाह स० १३८७ ई० में महाराणा चेत्र की मृत्यु के पीछे स्वतन्त्र बादशाह हुए थे। शायद मालवे के सुलतान महमूद खिल्जी का पिता आज़म हुमायूँ हो'[1]।

यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि आज़म हुमायूँ, जिसको मलिक मूघीस या खाँजहाँ खिलजी कहते थे और जो मालवे के खिलजी सुलतान हुशंग का भतीजा (या भानजा) था हि० स० ८१२ (वि० सं० १४६६) के आसपास हुशंग का वज़ीर बना था[2] किंतु महाराणा चेत्रसिंह का देहांत वि० सं० १४३९ में हुआ इस लिए वह उक्त महाराणा का समकालीन नहीं हो सकता और न उसका नाम अमीशाह होना कहीं लिखा मिलता है।

महाराणा कुंभा (कुंभकर्ण) के समय के बने हुए 'एकलिंग माहात्म्य' में कुंभा के मालवा के सुलतान महमूद खिलजी को जीतने के प्रसंग में लिखा है कि 'जैसे पहले राजा चेत्र (चेत्र-सिंह) ने रणखेत में मालवा के स्वामी अमीसाह को पीट (हरा) कर विजय प्राप्त की थी वैसे ही श्री कुंभ (कुंभकर्ण) ने हस्तिसैन्यवाले मालवा के स्वामी महमद (महमूद) खिलिची (खिलजी) को युद्ध में जीता'[3] इससे इतना तो निश्चय हो गया कि अमीशाह मालवे का स्वामी था।

(१) राजस्थान रत्नाकर, प्रथम भाग, तरंग २, पृ० ७०।

(२) ब्रिग; फिरिश्ता; जि० ४, पृ० १७४, १८६।

(३) अमीसाहं हत्वा रणभुवि पुरा मालवपतिं
जयोत्कर्षं हर्षादलभत किल चेत्रनृपतिः।

फ़िरिश्ता ने अपनी लिखी हुई तवारीख में मालवा के सुलतानों का विस्तृत इतिहास लिखा है जिसमें वहाँ के सुलतानों की नामावली में अमीशाह का नाम कहीं नहीं है परंतु शेख रिज़कुल्ला मुश्ताक़ी की बनाई हुई 'वाक़िआत-ई-मुश्ताक़ी'[१] से पाया जाता है कि **मांडू (मालवा) के पहले सुलतान दिलावरखाँ गोरी का मूल नाम अमीशाह था,** क्योंकि वह लिखता है कि 'एक दिन एक व्यापारी बड़े साथ (कारवाँ) सहित आया। अमीशाह ने अपने दस्तूर के मुवाफ़िक़ जब उससे महसूल माँगा तब उसने कहा कि मैं सुलतान फीरोज़ का, जिसने कर्नाल के क़िले को दृढ़ किया है, सौदागर हूँ और वहीं अन्न ले जा रहा हूँ। इस पर अमीशाह ने उत्तर दिया कि तुम कोई भी हो तुमको नियम के अनुसार महसूल

तथैव श्रीकुंभः खिलिचिमहमंदं गजघटा-
वृतं संख्येजैषीन्नहि...लजः कोप्य सदृशः ॥

'एकलिंगमाहात्म्य', राजवर्णन अध्याय, श्लो० १२६। ऊपर पृ०—२२ टिप्पण २ में कुंभलगढ़ की प्रशस्ति से महाराणा चैत्रसिंह के अमीशाह को जीतने का उल्लेख किया गया है। उसी प्रशस्ति के श्लोक २०० में यह भी लिखा है कि मालवे का स्वामी शकपति (मुसलमानों का स्वामी, सुलतान) उस (चैत्रसिंह) से ऐसा पिटा कि मानों भयभीत होकर स्वप्न में भी उसी को देखता है—

शस्त्राशस्त्रिहताजिलंपटभटव्रातोच्छलच्छोणित-
च्छन्नप्रोद्गतपांशुपुंजविसरप्रादुर्भवत्कर्दमे ।
त्रस्तः सामि हतो रणे शकपतिर्यस्मात्तथा मालव-
क्ष्मापोद्यापि यथा भयेन चकितः स्वप्नेपि तं पश्यति ।

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति।

उक्त प्रशस्ति में अमीशाह का नाम इस श्लोक के दो श्लोकों के बाद आने से यह संदेह रह जाता है कि मालवे का स्वामी और अमीशाह दो भिन्न व्यक्ति थे वा एक ही, परंतु 'एकलिंगमाहात्म्य' से स्पष्ट हो गया कि वे दोनों एक ही व्यक्ति के सूचक हैं।

(१) रिज़कुल्ला मुश्ताक़ी का जन्म हि० स० ८९७ (वि० सं० १५४८) में और देहांत हि० स० ९८९ (वि० सं० १६३८) में हुआ, इसलिये उसकी तवारीख उक्त दोनों सनों (संवतों) के बीच किसी समय बनी होगी।

देकर ही जाना होगा। व्यापारी ने फिर उससे कहा कि मैं सुलतान के पास जा रहा हूँ, यदि तुम महसूल छोड़ दो तो मैं सुलतान से तुमको मांडू का इलाका तथा घोड़ा और खिलअत दिलाऊँगा। तुम इसको अच्छा समझते हो वा महसूल को? अमींशाह ने उत्तर दिया कि यदि ऐसा हो तो मैं सुलतान का सेवक होकर उसकी अच्छी सेवा बजाऊँगा। फिर उसने उस व्यापारी को जाने दिया। उसने सुलतान के पास पहुँचने पर अर्ज़ किया कि अमींशाह मांडू का एक ज़मींदार है और सब रास्ते उसके अधिकार में हैं। यदि आप उसको मांडू (मालवे) का इलाका, जो बिलकुल ऊजड़ है, बख़्श कर फ़रमान भेजें तो वह वहाँ पर शांति स्थापित करेगा। सुलतान ने उसीके साथ घोड़ा और खिलअत भेजा जिनको ले वह अमींशाह के पास पहुँचा और उन्हें नज़र कर अपनी तरफ़ की भक्ति प्रकाशित की। उसी दिन से अमींशाह पैदल चलना छोड़ कर घोड़े पर सवार होने लगा। उसने अपने मित्रों को भी घोड़े दिए, रिसाला भरती किया और मुल्क को आबाद किया। उसकी मृत्यु के पीछे उसका पुत्र होशंग उसका उत्तराधिकारी और वहाँ का सुलतान हुआ[1]।' फिरिश्ता आदि तवारीखों में हुशंग (अल्पखाँ) को दिलावरखाँ गोरी का पुत्र कहा है इसलिये दिलावरखाँ का ही दूसरा, या सुलतान होने के पहले का, नाम अमींशाह होना पाया जाता है जिसकी पुष्टि बादशाह जहाँगीर भी करता है।

बादशाह जहाँगीर अपनी दिनचर्या की पुस्तक 'तुज़क-इ-जहाँगीरी' में धार (धारा नगरी) के प्रसंग में लिखता है कि '**अमीदशाह गोरी ने जिसको दिलावरखां कहते थे** और जिसका देहली के सुलतान फीरोज़ (तुगलक) के बेटे सुलतान मुहम्मद के समय मालवे पर पूरा अधिकार था, किले के बाहर जामे मसजिद बनाई थी[2]।' तुज़क-इ-जहाँगीरी में दिलावरखाँ का दूसरा नाम अमी-

(१) इलियट; हिस्टरी आफ इंडिया, जि० ४, पृ० ५५२।

(२) अलेकज़ैंडर रॉजर्स का 'तुज़क-इ-जहाँगीरी' का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० १ पृ० ४०७ (हेनरी बेवरिज संपादित)।

शाह नहीं किंतु अमीदशाह मिलता है यह फारसी की वर्णमाला का दोष ही है। अनुमान होता है कि 'नू' की जगह लेखकदोष से 'दाल' लिखे जाने के कारण अमींशाह का अमीदशाह हो गया हो परंतु शुद्ध नाम अमींशाह होना चाहिए क्योंकि ऊपर लिखे हुए मेवाड़ के चार शिलालेखों में अमीसाह या अमीसाहि पाठ मिलता है जो अमींशाह नाम का ही संस्कृत रूप है।

फीरोज़शाह तुग़लक हि० स० ७५२ से ७९० (वि० सं० १४०८ से १४४५) तक देहली का सुलतान था और महाराणा चेत्रसिंह का देहांत वि० सं० १४३९ में हुआ। इसलिये फीरोज़शाह ने जिस अमींशाह को मालवे का अधिकारी नियत किया था उस अमींशाह (दिलावरखाँ गोरी) का उक्त महाराणा का समकालीन होना निश्चित है।

३—मध्यदेश का विकास।

[लेखक—श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा, एम० ए०, इलाहाबाद]

मध्यदेश शब्द वेद की संहिताओं में कहीं नहीं आता। ऋग्वेद संहिता में मध्यदेश नाम का न आना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बाद को जो भूमिभाग मध्यदेश कहलाया, कुछ विद्वानों के मत में, वहाँ पर ऋग्वेदकाल में समुद्र बह रहा था[1]। ऐतिहासिक मत के अनुसार ऋग्वेद काल में आर्य लोगों का कर्मक्षेत्र पंजाब की भूमि था[2]। वे सरस्वती नदी से पूर्व में अधिक नहीं बढ़े थे। ऋग्वेद में गंगा[3] का नाम केवल एक स्थान पर आता है। यजुर्वेद संहिता में 'काम्पील-वासिनी' अर्थात् कांपील की रहनेवाली, यह शब्द एक मंत्र[4] में सुभद्रा नामक किसी स्त्री के विशेषण की तरह आया है[5]। कुछ यूरोपियन विद्वान समझते हैं कि यहाँ कांपिल्य नगर से अभिप्राय है जो बाद को दक्षिण पंचालों की राजधानी हुआ[5]। कांपील नगर फ़रुखाबाद के निकट गंगा के किनारे बसा था। इसका तात्पर्य यह है कि यजुर्वेद-काल में आर्य लोग कुछ और आगे बढ़ आए थे। अथर्ववेद संहिता में अंग और मगध के लोगों का नाम आया है[6] अर्थात् आर्यलोग उस समय तक प्रायः समस्त उत्तर भारत में फैल चुके थे। आश्चर्य है कि मध्यदेश शब्द अथर्ववेद संहिता में भी कहीं नहीं आता। ऐतिहासिक दृष्टि से सामवेद संहिता कुछ मूल्य नहीं रखती। इसका अधिकांश सोमयाग में गाने के लिये ऋग्वेद का संग्रह मात्र है।

---

(१) ऋग्वेदिक इंडिया, भाग १, अध्याय १-४—अविनाशचंद्र दास।

(२) हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ १४५—ए० ए० मेकडानेल।

(३) ऋग्वेद संहिता १०, ७५, ५।

(४) शुक्ल यजुर्वेद संहिता, २३, १८।

(५) वैदिक इंडेक्स, भाग १, पृष्ठ १४९—मेकडानेल और कीथ

(६)—अथर्ववेद संहिता, ५, २२, १४।

मध्यदेश का द्योतक सब से प्रथम वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है[1]। वर्णन से यह स्पष्ट है कि तात्पर्य मध्यदेश से ही है यद्यपि 'मध्यदेश' इन शब्दों का प्रयोग वहाँ भी नहीं हुआ है। यह वर्णन मध्यदेश नाम के शब्दार्थ और देश विशेष के लिये प्रयोग करने के कारण को भी स्पष्ट करता है।

ऐतरेय ब्राह्मण के अंतिम भाग में कई राजाओं की अभिषेक-विधि दी है। इसी संबंध में ऐंद्र महाभिषेक का महत्व बताते हुए एक कथा दी है कि एक बार प्रजापति ने इंद्र का अभिषेक किया और उसके बाद प्रत्येक दिशा के स्वामी ने भी अपनी अपनी ओर से पृथक् पृथक् अभिषेक किया। लिखा है कि अब भी इन दिशाओं के राजाओं के अभिषेक इस पूर्व पद्धति के अनुसार भिन्न भिन्न रूप से होते हैं। पूर्व दिशा में प्राच्य लोगों के राजा अभिषिक्त होने पर अब भी सम्राट् कहलाते हैं। दक्षिण दिशा के सत्वत् लोगों के राजा भोज कहलाते हैं। पश्चिम दिशा के नीच्य व अपाच्य लोगों के राजा स्वराट् कहलाते हैं। उत्तर दिशा में हिमालय के परे उत्तर-कुरु और उत्तर-मद्र के जनपद विराट् कहलाते हैं। और **इस ध्रुव और प्रतिष्ठित मध्यम दिशा में जो ये कुरु-पंचालों और वश उशीनरों के राजा हैं इनका अभिषेक राज्य के लिये होता है और अभिषिक्त होने पर ये राजा कहलाते हैं।"**

इस वर्णन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम मध्यदेश नाम अपने शब्दार्थ 'बीच का देश' में सब से पहले प्रयुक्त हुआ होगा। बीच से तात्पर्य आर्यों से बसे भूमिभाग अर्थात् आर्यावर्त्त के बीच के देश से है। यह आर्यावर्त्त मनुस्मृति के आर्य्यावर्त्त से छोटा रहा होगा। इसका प्रमाण भी सूत्र ग्रंथों में मिलता है। दूसरे,

(१) ऐतरेय ब्राह्मण ३८. ३। मेकडानेल के मतानुसार ब्राह्मण ग्रंथों का समय लगभग वि० पू० ८५७ से वि० पू० ५५७ तक माना जा सकता है।

मध्यदेश संबंधवाची शब्द है, अतः ज्यों ज्यों आर्यों के वासस्थान का विकास हुआ होगा त्यों त्योंही मध्यदेश से द्योतित भूमिभाग की सीमाएँ भी बढ़ती गई होंगी। यह बात भी आगे के प्रमाणों से प्रमाणित होती है[1]।

---

(१) मनुस्मृति, २, २२ "पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक और उन्हीं (अर्थात् हिमालय और विंध्य) पर्वतों के बीच के देश को विद्वान् लोग आर्यावर्त्त कहते हैं।" तथा बौधायन धर्मसूत्र, १, १, २,९; वसिष्ठ धर्मसूत्र १, ८—"अदर्शन से पूर्व में, कालक वन से पश्चिम में, हिमालय से दक्षिण में और पारियात्र से उत्तर में आर्यावर्त्त है।"

इन्हीं सूत्रग्रन्थों में कुछ और भी मत दिए हैं जिनसे मालूम होता है कि मध्यदेश के समान आर्यावर्त्त का भी विकाश हुआ। ऊपर दी हुई सीमाएँ तो मनुस्मृति के मध्यदेश से मिलती हैं। आगे कहा है कि कुछ के मत में गंगा और यमुना के बीच का देश आर्यावर्त्त है, कुछ के मत में विंध्य के उत्तर का सारा देश—यह मनुस्मृति के आर्यावर्त्त से मिलता है। कुछ लोगों का मत है कि जहाँ कृष्ण मृग घूमता है वह भूमिभाग आर्यावर्त्त है। जो हो आर्यावर्त्त के तीन रूप तो स्पष्ट ही हैं।

वसिष्ठ धर्मसूत्र में 'अदर्शन' के स्थान पर एक दूसरा पाठ 'आदर्शन' भी मिलता है। महाभाष्य में (सूत्र २. ४. १० के भाष्य पर) आर्यावर्त्त की पश्चिमी सीमा को 'आदर्श' लिखा है। बूलर का मत है (सैक्रेड बुक्स आव दी ईस्ट, भाग १४, पृष्ठ २) कि आदर्श सब से पुराना और शुद्ध पाठ है। आदर्श के अशुद्ध पाठ क्रम से आदर्शन और अदर्शन हुए। बाद को अदर्शन अर्थ के वाचक विनशन शब्द का प्रयोग होगया जो मध्यदेश की पश्चिमी सीमा मानी गई।

अदर्शन या विनशन से तात्पर्य सरस्वती नदी के रेगिस्तान में नष्ट होने के स्थान से है। यह पटियाला रियासत के दक्षिण में पड़ता है। आदर्श के संबंध में कई मत हैं। कुछ उसे मारवाड़ की संगमरमर की पहाड़ी बताते हैं और उसकी बिगड़ा हुआ रूप अरावली (आदर्शावलि) मानते हैं। कुछ पंजाब के सेंधे नमक के पर्वत को आदर्श पर्वत बताते हैं जो सिंधु और झेलम नदियों के बीच में है। कुछ आदर्श पर्वत को कांगड़े के निकट अनुमान करते हैं।

कालकवन के संबंध में भी कई मत हैं। कुछ कनखल के निकट कालकवन बताते हैं (इं० एं०, भाग ३४, पृष्ठ १७९)। कुछ प्रयाग के निकट के प्राचीन बन को, जिसका उल्लेख रामायण में हुआ है (इं० एं० १९२१, पृष्ठ १६०, नोट २०)। कुछ राजगृह के निकट के वन को (डंटे—विसिसिट्यूड्स आव आरियन सिविलिजेशन इन इंडिया, पृष्ठ ३८०)।

पारियात्र को प्रायः सब लोग विंध्य पर्वत का मालवा के निकट का भाग बताते हैं यद्यपि कुछ सिवालिक पर्वत को भी पारियात्र मानते हैं।

तीसरे, उस समय मध्यदेश में निम्नलिखित लोग गिने जाते थे—कुरु-पंचाल, वश और उशीनर। कुरु-पंचाल तो प्रसिद्ध ही हैं। वश और उशीनर मैकडानेल के मतानुसार कुरु लोगों से उत्तर की ओर हिमालय की तराई में बसते थे[1]। अतः पश्चिम में प्रायः कुरुक्षेत्र से लेकर पूरब में फर्रुखाबाद के निकट तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में प्रायः चंबल नदी तक का[2] आर्यावर्त्त देश ऐतरेय ब्राह्मण के समय में मध्य में गिना जाता था अर्थात् मध्य-देश कहलाता था।

मध्यदेश के चारों ओर के शेष आर्यावर्त्त का भी स्पष्ट वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण के इस उद्धृत अंश में दिया ही है। यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पूर्व के सम्राटों से तात्पर्य अयोध्या और प्रतिष्ठानपुर के प्राचीन सूर्य और चंद्रवंशी महाराजाओं से है या ऐतिहासिक काल के मगध के सम्राटों से। दक्षिण दिशा में मालवा के भोज राजा तो निकट ऐतिहासिक समय में भी प्रसिद्ध रहे हैं। पश्चिम के नीच्य और अपाच्य लोगों के नाम वैदिक काल के बाद नहीं पाए जाते। हिमालय के परे उत्तर कुरु और उत्तर मद्र के जनपदों के नाम ऐतिहासिक काव्यों में[3] केवल कथारूप में मिलते हैं। यहाँ यह

---

(१) वैदिक इंडेक्स, भाग १ के आरंभ में दिया मानचित्र देखिए। इंडियन ऐंटिक्वेरी १९०९, पृष्ठ १७९ में कथासरित्सागर के आधार पर उशीर-गिरि पर्वत को कनखल के उत्तर में गंगोत्री के निकट माना है। लेखक ने अनुमान किया है कि शब्द-सादृश्य के आधार पर उशीनर लोगों का संबंध इस भूमि भाग से हो सकता है।

(२) पंचाल की दक्षिण सीमा महाभारत में चंबल नदी मानी गई है।

(३) महाभारत और पुराणों में हिमालय के उत्तर के देशों से आने जाने की कथाएं प्रायः आई हैं, किंतु ये कहाँ तक ऐतिहासिक गिनी जा सकती हैं इसमें संदेह है। हिमालय के उत्तर में देवताओं की भूमि है इस विचार से तो प्रकट होता है कि इन देशों से निकट संबंध छूट गया था। बौद्धकाल में एक बार फिर हिमालय के उत्तर के देशों से आना जाना होने लगा लेकिन वे भारत के भाग नहीं गिने गए।

बात ध्यान देने योग्य है कि जनपद शब्द केवल इन उत्तर के लोगों के लिये प्रयुक्त हुआ है और इनकी शासन प्रणाली को विराट् अर्थात् बिना राजा की कहा गया है। हिमालय के उत्तर के देशों से निकट संबंध कदाचित् वैदिक काल के बाद बिलकुल बंद हो गया, अतः बाद को आर्यावर्त्त और मध्यदेश दोनों की उत्तरी सीमा हिमालय हो गई। यौगिक मध्यदेश शब्द धीरे धीरे रूढि शब्द हो गया। लौकिक व्यवहार में भी शब्दों के अर्थों में ऐसा हेरफेर अक्सर पाया जाता है। एक बार मंझला लड़का कहलाने पर वह सदा मंझला ही कहलाता है, चाहे कुछ समय के अनंतर उसका छोटा या बड़ा भाई न भी रहे।

मध्यदेश का प्रथम स्पष्ट और प्रसिद्ध वर्णन मनुस्मृति में आया है। धर्मानुष्ठान के योग्य देशों का वर्णन करते हुए[1] सब से प्रथम गणना ब्रह्मावर्त्त देश की की है। यह सरस्वती और

(१) मनुस्मृति, २, १७—२४। बूलर के मत के अनुसार मनुस्मृति का संकलन संवत् २२७ के लगभग हुआ। परंतु मनुस्मृति मानवधर्म सूत्रों के आधार पर लिखी मानी गई है अतः उसके मुख्य अंशों को सूत्रकाल का (जिसका आरंभ मैकडानेल मतानुसार वि० पू० ५४७ में हुआ था) मानना अनुचित न होगा। वसिष्ठ धर्मसूत्र १, ८, में आर्यावर्त्त के संबंध में एक मत दिया है कि वह विंध्य के उत्तर में है। यह कदाचित् मानवधर्मसूत्र का मत होगा क्योंकि मनुस्मृति में भी यह मिलता है। मनुस्मृति के देशों के वर्णन की प्राचीनता इससे स्पष्ट होती है। अतः मैंने मनुस्मृति के मध्यदेश के वर्णन को विनयपिटक के वर्णन से पहले रक्खा है। राइज़ डेविड्ज़ (ज० रा० ए० सो० १९०४, पृष्ठ ८३) का मत है कि बौद्धधर्म के केंद्र मगध इत्यादि देशों को पृथक् कर देने के लिये मनुस्मृति के लेखक ने मध्यदेश की सीमा प्रयाग तक रक्खी है। मैं ऊपर दिए हुए कारणों से मनुस्मृति के वर्णन को बौद्धधर्म के प्रचार से प्राचीन मानता हूँ अतः मनुस्मृति के संबंध में राइज़ डेविड्ज़ के इस मत को मानने को उद्यत नहीं हूँ।

दृषद्वती * नदी के बीच का भूमिभाग है। दूसरे स्थान पर ब्रह्मर्षि देश बतलाया गया है। इसमें कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल और शूरसेन गिनाए गए हैं। यहाँ दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो ब्रह्मर्षि देश में ब्रह्मावर्त्त आजाता है अर्थात् ब्रह्मावर्त्त ब्रह्मर्षिदेश का सबसे अधिक पवित्र भाग है, अत: पश्चिम में इन दोनों की सीमा सरस्वती ही होगी बाकी तीन ओर ब्रह्मर्षिदेश अधिक फैला हुआ था। दूसरे, ऐतरेय ब्राह्मण के मध्यदेश और मनुस्मृति के ब्रह्मर्षिदेश दोनों में कुरु-पंचाल गिनाए गए हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में उत्तर के वश और उशीनर भी हैं। मनुस्मृति में उनका समावेश नहीं है किंतु उनके स्थान पर दक्षिण के मत्स्य और शूरसेन देश हैं। ब्रह्मर्षिदेश के बाद मध्यदेश गिनाया गया है। इसकी सीमाएँ यों दी हैं—"हिमालय और विंध्य के मध्य में और विनशन से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम में जो है वह मध्यदेश कहलाता है।"[1]

---

* व्याकरण में पूर्वी और उत्तरी महाजिरों का भेद है। पाणिनि ने उदीचां और प्राचां के कई भेद गिनाए हैं। इन दोनों का देश भेद बतलाने के लिये काशिका में एक पुरानी गाथा उद्धृत की हुई मिलती है कि जैसे हंस दूध पानी को बिलगाता है वैसे ही जो शब्दों की साधुता के लिये पूर्व और उत्तर को विभाग करती है वह शरावती नदी हमारी रक्षा करे। वैयाकरणों के यहां पाठ बिगड़ने से तथा पूर्व उत्तर की सीमा सदा के लिये निर्दिष्ट न होने से शरावती, दृषद्वती और सरस्वती तीनों नदियां पाठांतरों में यहां पढ़ी जाती हैं। भाषाभेद पर लक्ष्य रक्खें तो ये नदियां सीमा प्रांत पर होनी चाहिएं, और पंजाब पर वाहीकों के आक्रमणों से वहां की भाषा का बिगड़ना मानें तो कुरुक्षेत्र की सीमा ही उत्तर तथा पूर्व की सीमा माननी होगी। [सं०]

(१) मनुस्मृति, २, २१। संभव है कि मनुजी के इसी वाक्य "विनशन से प्रयाग तक" के आधार पर ही प्रयाग में सरस्वती के अंतर्धान रूप में मिलने की कल्पना उठी हो। तीन वेणियां तो बिना सरस्वती का संगम माने ही पूरी हो जाती हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण और मनुस्मृति के मध्यदेश में बहुत अंतर हो गया है। उत्तर की सीमा में अधिक अंतर नहीं आया है। दोनों जगह हिमालय ही सीमा है यद्यपि वश और उशीनर का नाम मनुस्मृति में नहीं मिलता। ऐतरेय ब्राह्मण के वर्णन में दक्षिण के भोज लोग मध्यदेश के बाहर गिने गए हैं। यदि भोज लोगों का देश अवंती अर्थात् मालवा मान लिया जाय तो यह मनुस्मृति के मध्यदेश में आ गया क्योंकि अवंती विंध्य पर्वत के उत्तर में है। पश्चिम और दक्षिण के कोने में शूरसेन और मत्स्य बढ़ गए। ब्रह्मर्षि देश में गिने जाने के कारण ये मध्यदेश में स्वभावत: आ ही गए। पूरब में मध्यदेश की सीमा फ़र्रुख़ाबाद के निकट से हटकर प्रयाग पर आ गई। यदि प्रयाग से उत्तर और दक्षिण में सीधी लकीर खींची जाय तो प्राय: संपूर्ण कोशलदेश और वत्स व चेदि के भूमिभाग भी मध्यदेश की सीमा के अंदर आ जाते हैं। अत: मनुस्मृति के वर्णन से स्पष्ट है कि ऐतरेय ब्राह्मण के काल से इस समय मध्यदेश का बहुत अधिक विकास हो गया था। ब्राह्मण और सूत्रकाल में जो आर्यावर्त्त था वह अब मध्यदेश होगया था और आर्यावर्त्त तो अब समस्त उत्तर भारत—पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक और हिमालय तथा विंध्य के बीच का भूमिभाग—कहलाता था। मनुस्मृति काल में आर्यावर्त्त और मध्यदेश दोनों की उत्तर और दक्षिण की सीमाएँ हिमालय और विंध्य की पर्वतश्रेणियाँ थीं। इसका तात्पर्य्य यह है कि मध्यदेश का शब्दार्थ भुलाया जा चुका था। हिमालय के उत्तर के देश तो बहुत दिनों से आर्यावर्त्त में नहीं गिने जाते थे। विंध्य के दक्षिण में आर्य लोग उस समय तक भली प्रकार नहीं बस पाये होंगे। पंजाब का देश आर्यावर्त्त में फिर गिना जाने लगा था। पूर्व में तो समुद्र तक आर्यों का पूर्ण प्रभुत्व हो गया था। भारतवर्ष का वर्णन मनुस्मृति में नहीं है। बाद की स्मृतियों तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में भारतवर्ष का स्थान प्रधान हो गया है।

मध्यदेश की तीसरी अवस्था का वर्णन विनय पिटक में मिलता है। मनुस्मृति के समान यहाँ भी मध्यदेश की सीमाएँ ठीक ठीक दी गई हैं। यह प्रसंग इस प्रकार उठा है। बौद्धधर्म की दीक्षा लेने के लिये नियम था कि दस भिक्षु उपस्थित होने चाहिएँ। किंतु दूर देशों में, जहाँ अभी बौद्धधर्मानुयायी अधिक नहीं थे, दस भिक्षुओं का सदा मिलना सुलभ न था अतएव बौद्धधर्म के प्रचार में बाधा पड़ती थी। ऐसी ही कठिनता प्रसिद्ध बौद्धधर्मोपदेशक महाकाच्चायन को दक्षिण-अवन्ति में पड़ी। महाकाच्चायन ने इस संबंध में बुद्ध भगवान् से कहला भिजवाया। तब बुद्ध भगवान् ने नियम में इतना नियंत्रण कर दिया कि दस भिक्षुओं का नियम केवल मध्यदेश के लिये हो, बाहर के देशों में केवल चार भिक्षुओं की उपस्थिति पर्याप्त समझी जावे। इसी स्थान पर बुद्ध भगवान ने मध्यदेश की सीमाएँ भी गिनाई हैं जो पिटक में यों दी हैं। पश्चिम में ब्राह्मणों का थून प्रदेश, पूरब में कजंगल नगर के आगे महासाला, दक्षिणपूर्व में सलिलवती नदी, दक्षिण में सेतकन्निक नगर और उत्तर में उसीरधज पर्वत। उत्तर और दक्षिण के ये स्थान आजकल कहाँ पड़ते हैं इसका ठीक निर्णय अभी नहीं होसका है। उत्तर में हिमालय के बाहर सीमा का जाना दुस्तर है दक्षिण में विंध्य ही सीमा मालूम होती है क्योंकि दक्षिण

(१) महावग्ग, ५, १३, १२। अनुवाद के लिये देखिए सेक्रेड बुक्स आव दी ईस्ट—मैक्स मूलर, जिल्द १७, पृष्ठ ३८। प्रोफ़ेसर ओल्डेनबर्ग के मतानुसार (ज० रा० ए० सो० १९०४, पृष्ठ ८३) मध्यदेश का यह वर्णन विक्रम से ४५७ वर्ष पूर्व का है।

(२) जातक, ३, ११५, में दिया है कि भिक्षु लोग हिमालय से मध्यदेश में उतरने से डरते थे क्योंकि वहाँ के लोग बहुत विद्वान् थे।

इं० एं० १९०५, पृष्ठ १७१, में उसीरधज को कनखल के उत्तर में उशीरगिरि पर्वत अनुमान किया है। कथासरित्सागर के आधार पर उशीरगिरि गंगोत्री के निकट था।

अवंति और उड़ीसा मध्यदेश के बाहर थे[१]। ब्राह्मणों का ज़िला थून आज कल का स्थानेश्वर अनुमान किया गया है[२]। यह अनुमान ठीक ही मालूम पड़ता है क्योंकि यहाँ का निकटवर्त्ती देश अति प्राचीनकाल से मध्यदेश की पश्चिम की सीमा रहा है। पूर्व में कजंगल[३] भागलपुर से ७० मील पूर्व में माना गया है।

इससे यह स्पष्ट है कि मनुस्मृति के मध्यदेश को ध्यान में रखते हुए बौद्धकाल का मध्यदेश पूरब में बहुत आगे तक बढ़ गया था। एक तरह से वह प्रायः दुगना हो गया था। भारतीय सभ्यता का केंद्र उस समय विहार की भूमि हो रही थी और उसका भी मध्यदेश में गिना जाना कुछ आश्चर्यजनक नहीं। प्राचीन आर्य सभ्यता के साथ ही आर्यावर्त्त शब्द का लोप हो चुका था अतः बौद्धकाल का मध्यदेश आर्यावर्त्त का मध्यदेश नहीं होगा किन्तु भारत का मध्यदेश होगा। एक प्रकार से वह आर्यावर्त्त का मध्यदेश भी कहा जा सकता है क्योंकि यथार्थ में आर्य सभ्यता विंध्य पर्वत के दक्षिण में प्रायः कृष्णा नदी तक फैल चुकी थी अतः उन भागों की आर्यावर्त्त में गिनती होनी चाहिए थी, यद्यपि इस प्रकार का प्रयोग संस्कृत साहित्य में कहीं नहीं मिलता है। गुजरात और महाराष्ट्र को या कृष्णा के दक्षिण भाग को भी अनार्य देश कौन कह सकता है? सच पूछिये तो प्राचीन आर्य जीवन और सभ्यता का सब से अधिक निकटवर्त्ती चित्र यदि कहीं देखने को मिल सकता है तो वह सुदूर दक्षिण में मिलेगा। सदाचार के केंद्र, आदर्श चरित्र के मूलस्थान, ब्रह्मावर्त्त और ब्रह्मर्षिदेश में तो अब साधारणतया आर्य जीवन के कुछ भी चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते। उड़ीसा और छत्तीसगढ़ की भी गिनती आर्यावर्त्त में होनी

(१) जातक १, ८० में दो व्यापारियों का वर्णन है जो उक्कल (उत्कल व उड़ीसा) से मज्झिम देस (मध्यदेश) की ओर यात्रा कर रहे थे।

(२) इं० एं०, १९२१, पृष्ठ १२१, नोट २६।

(३) ज० रा० ए० सो०, १९०४, पृष्ठ ८३।

चाहिए। आंध्र और कर्नाटक तथा द्रविड़ देशों पर भी आर्य सभ्यता का गहरा रंग चढ़ा हुआ है। वैसे तो दक्षिण में रामेश्वर और लङ्का तथा भारत के बाहर[1] भी चारों ओर के देशों में भी आर्य लोग पहुँच गए थे और उन्होंने वहाँ पर अपनी सभ्यता की छाप लगा दी थी।

हिन्दू काल में मध्यदेश के अर्थ करने में मनुस्मृति के वर्णन का स्पष्ट प्रभाव देख पड़ता है। कुछ लेखकों ने तो मनुस्मृति के शब्द प्राय: ज्यों के त्यों उद्धृत कर दिए हैं[2]। कुछ ने उनका सारांश दे दिया है। एक प्रकार से मध्यदेश के विकास की अंतिम अवस्था बौद्ध काल में बीत चुकी थी और अब उसके संकुचित होने के दिन आ रहे थे। देशों के पुराने नाम अब भुलाए जा रहे थे और उनका स्थान धीरे धीरे नये नाम ले रहे थे। पूरब से हट कर अब प्रभुता का केंद्र पश्चिम की ओर आ रहा था। पाटलिपुत्र का स्थान कन्नौज ने ले लिया था*। मध्यदेश की सीमा की पूरब में कम हो जाने का एक यह भी कारण हो सकता है। मार्कंडेय पुराण[3] में विदेह व मगध को मध्यदेश में नहीं गिना है। इसके अनुसार कोशल और काशी के लोगों तक ही मध्यदेश माना गया है। यह घटने की पहली सीढ़ी

---

(१) इं० एं० १९२१, पृष्ठ ११७ में भारत के बाहर के देशों में भारतीय लोगों के जाने का कुछ वर्णन है।

•हिंदुइज़म एंड बुधिज़म—सर चार्ल्स इलियट, भाग ३। इस पुस्तक में भारत के बाहर के देशों में बौद्धधर्म के प्रचार का अच्छा वर्णन है। निम्न देशों के संबंध में इस भाग में लिखा गया है—लंका, बर्मा, स्याम, कंबोज, चंपा, जावा व अन्य टापू, मध्य एशिया, चीन, कोरिया, अनाम, तिब्बत, और जापान।

(२) त्रिकांड शेष, २. १८६.

अभिधान चिंतामणि, ९४९ वां श्लोक।

अमरकोश, २. १. ७.

* राजशेखर का वर्णन, देखो पत्रिका भाग २ पृ. १०—११ [सं०]

(३) मार्कंडेय पुराण, ५७. ३३.

है । बृहत्संहिता में काशी और कोशल को भी मध्यदेश के बाहर कर दिया है ।

वराहमिहिर की बृहत्संहिता[1] (संवत् ६४४) का वर्णन अधिक प्रसिद्ध और पूर्ण है । ज्योतिष के संबंध में देशों पर ग्रहों के प्रभाव का वर्णन करने के लिये भारत के देशों का विस्तृत वृत्तांत बृहत्संहिता के चौदहवें अध्याय में दिया है । इसके अनुसार भारत-वर्ष में (आर्यावर्त्त में नहीं) देश मध्य, प्राक् इत्यादि भागों में विभक्त हैं । मध्यदेश की सूची में ये नाम प्रसिद्ध हैं, कुरु, पंचाल, मत्स्य, शूरसेन और वत्स । कुछ और नाम भी दिए हैं किंतु वे स्पष्ट नहीं हैं । वत्स देश की राजधानी प्रसिद्ध नगरी कौशाम्बी थी जो प्रयाग से ३० मील पश्चिम में बसी थी । अत: बृहत्संहिता के मध्यदेश की सीमा पूर्व में मनुस्मृति के समान प्रयाग तक ही पहुँचती है । यद्यपि बृहत्संहिता में साकेत नगरी को मध्यदेश में गिना है किंतु काशी और कोशल के लोगों को स्पष्ट रूप से पूर्व के लोगों में लिखा है । संस्कृत के अन्य ग्रंथों[2] में भी मध्यदेश का नाम बहुत स्थानों पर आया है किंतु उनमें कुछ विशेष वर्णन न होने के कारण उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया ।

कुछ विदेशियों ने भी मध्यदेश की चर्चा अपने ग्रंथों में की है । फाहियान (संवत् ४५७) का वर्णन[3] उल्लेखनीय है । "यहाँ से

(१) बृहत्संहिता में आए भूगोलसंबंधी शब्दों की सूची के लिये देखिए इ० एं०, १८९३, पृष्ठ १६९.

(२) महाभारत में बहुत स्थानों पर मध्यदेश का नाम आया है । कोई प्रसिद्ध संस्करण न होने के कारण ठीक पते नहीं दिए हैं । महाभारत युद्ध में आए हुए मध्यदेश के राजाओं के संबंध में देखिए ज० रा० ए० सो० १९०८ पृष्ठ ३२९.

कथासरित्सागर, ३२, १०६ में मध्यदेश के एक राजा का वर्णन आया है । राजतरंगिणी, ६, ३०० में मध्यदेश के लोगों के लिये मंदिर बनवाए जाने का कथन है ।

(३) फाहियान (देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला, सोलहवां पर्व, पृष्ठ ३।

(अर्थात् मताऊल या मथुरा से) दक्षिण मध्यदेश कहलाता है। यहाँ शीत और उष्ण सम है। प्रजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखापढ़ी और पंच पंचायत कुछ नहीं है। लोग राजा की भूमि जोतते हैं और उपज का अंश देते हैं। जहाँ चाहे जायँ, जहाँ चाहें रहें। राजा न प्राणदंड देता है न शारीरिक दंड देता है। अपराधी को अवस्थानुसार उत्तम-साहस व मध्यम-साहस का अर्थ-दंड दिया जाता है। बार बार दस्युकर्म करने पर दक्षिण करच्छेद किया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतनभोगी हैं। सारे देश में कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है, और न लहसुन प्याज़ खाता है, सिवाय चांडाल के। दस्यु को चांडाल कहते हैं। वे नगर के बाहर रहते हैं और नगर में जब पैठते हैं तब सूचना के लिये लकड़ी बजाते चलते हैं कि लोग जान जायँ और बचा कर चलें, कहीं उनसे छू न जायँ। जनपद में सूअर और मुर्गी नहीं पालते, न जीवित पशु बेचते हैं, न कहीं सूनागार और मद्य की दूकाने हैं, क्रय विक्रय में कौड़ियों का व्यवहार है। केवल चांडाल मछली मारते, मृगया करते और मांस बेचते हैं।" इसके आगे मध्यदेश में बौद्धधर्म्म की अवस्था का वर्णन है। फाहियान ने यह नहीं दिया है कि पूरब में कहां तक मध्यदेश माना जाता है।

मध्यदेश का अंतिम उल्लेख अलबेरूनी[१] (संवत् १०८७) के भारत वर्णन में मिलता है। इसका भी यहाँ दे देना अनुचित न होगा। "भारत का मध्य कन्नौज के चारों ओर का देश है जो मध्यदेश कहलाता है।* भूगोल के विचार से यह मध्य या बीच है क्योंकि यह समुद्र और पर्वतों से बराबर दूरी पर है।" गर्म और शीत प्रधान प्रांतों के भी यह मध्य में है और भारत की पूर्वी और पश्चिमी सीमाओं के भी बीच में पड़ता है। इसके सिवाय यह देश

(१) अलबेरूनी का भारत, पर्व १८ (साचौ का अनुवाद, भाग १, पृष्ठ १९८)

* देखो ऊपर पृ० ४० टि० * |

राजनैतिक दृष्टि से भी केंद्र है क्योंकि प्राचीन काल में यह देश भारत के सब से प्रसिद्ध वीर पुरुषों और राजाओं की वास भूमि थी ।" मध्यदेश की सीमाओं के संबंध में इस वर्णन से विशेष सहायता नहीं मिलती ।

इसके बाद प्राय: एक सहस्र वर्ष से आर्यावर्त्त या भारत के हृदय मध्यदेश पर विदेशियों का आधिपत्य रहा है। मुसल्मान काल में मध्यदेश हिंदुस्तान कहलाने लगा । मध्यदेश का यह नया अवतार भी अपने पुराने कलेवर के समान, नहीं नहीं उससे भी अधिक, विकास को प्राप्त हुआ । देहली के चारों ओर के देश से आरंभ करके हिंदुस्तान नाम का प्रयोग धीरे धीरे बढ़ता गया । मुसल्मान काल के अंतिम दिनों में समस्त उत्तर भारत अर्थात् प्राचीन काल का आर्यावर्त्त हिंदुस्तान होगया । अब तो हिंदुस्तान के माने भारतवर्ष हो गए हैं। बृटिश शासन में मध्यदेश ने तीसरी बार मध्यप्रांत के रूप में जन्म ग्रहण किया है । नयी स्थिति के अनुसार यह ठीक ही है । देखें, इसका विकास कहाँ तक होता है ।

विदेशियों के आधिपत्य के कारण मध्यदेश शब्द को यद्यपि मध्य-देश वालों ने बिलकुल भुला दिया किंतु उसका पुराना रूप पूर्णतया लुप्त नहीं हो गया । पिता हिमालय ने उसको भी शरण दी है। काठमांडू के बाज़ार में यदि कोई हिंदुस्तानी निकलता हो तो नेपाली लोग अब भी कहते हैं कि 'मदेशिया' जा रहा है अर्थात् मध्य-देशीय या मध्यदेश का आदमी जा रहा है* ।

* ऊपर, पृ० ३१ में, 'काम्पील्यवासिनी' पद का अर्थ कांपिल्ल की रहनेवाली किया गया है वहाँ सूक्ष्म-कंबल-धारिणी अर्थ भी हो सकता है । [सं०]

४—अशोक की धर्मलिपियाँ।

[लेखक—रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०, और पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए०]

[क १०—दसवाँ प्रज्ञापन]

[पत्रिका भाग २, पृष्ठ ४६१ के आगे]

कालसी	१	देवानं	पिये	पियदषा	लाजा	यषो	वा	किति
गिरनार	२	देवाभं	प्रियो	प्रियदसि	राजा	यसो	व	कीति
धौली	३	. वानं	पिये	पियदसी	लाजा	यसो	वं	किटी
जौगड़	४	. . .	. .	. . . .	. .	. .		. .
शहबाज़गढ़ा	५	देवन	प्रिये	प्रियद्रशि	रय .	यशो	व	किट्रि
मानसेरा	६	. . .	प्रिये	प्रियद्रशि	रज .	यशो	व	किटि
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	यशः	वा	कीर्ति
हिंदी-अनुवाद		देवताओं का	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा	यश को	वा	कीर्ति को

कालसी	७	वा	नो	महयावा	मनति	अनता	यं
गिरनार	८	व	न	महाथालहा	मंञते	अञत	
धौली	९	वा	न	. . ठाहं	मंनते	. . .	
जौगढ़	१०	.	.	. . . . .	. . .	. . .	
शहबाज़गढ़ी	११	व	नो	महठवह	मञति	अञत्र	यो
मानसेरा	१२	व	न	महथ्रुवहं	मञति	अणत्र	यं
संस्कृत-अनुवाद		वा	न	महार्थावहं	मन्यते	अन्यत्र ।	यत्
हिंदी-अनुवाद		वा	नहीं	बहुत लाभ उपजाने वाला	मानता है	परलोक में ।	जो

कालसी	१३	पि	यसो	वा	किति	वा	इछति	तदत्वाये
गिरनार	१४							तदात्पनो
धौली	१५	पि	यसो	वा	किटी	वा	इछति	तदत्वाये
जौगड़	१६		यसो	वा	किटी	वा	इछति	तदत्वाये
शहबाज़गढ़ी	१७	पि	यशो		किद्रि	व	इछति	तदत्तये
मानसेरा	१८	पि	यशो	व	किटि	व	इछति	तदत्तये
संस्कृत-अनुवाद		अपि	यशः	वा	कीर्ति	वा	इच्छति	तदात्वे तदात्वाय
हिंदी-अनुवाद		भी	यश को	वा	कीर्ति को	वा	चाहता है	वर्तमान में वर्तमान के लिये

कालसी	१९	अयतिये	चा		जने	धंमसुसुषा	सुसुषतु
गिरनार	२०	दिघाय	च	मे	जनो[८०]	धंमसुस्रुसा	सुस्रुसतां
धौली	२१	अ .	.		जने[८१]	. . . . सं	सु . सतु
जौगड़	२२	आयतिये	च		जने	धंमसुसूष	सुसूसतु
शहबाज़गढ़ी	२३	अयतिय	च		जने	ध्रमसुश्रुष	सुश्रुषतु
मानसेरा	२४	अयतिय	च		जने	ध्रमसुश्रुष	सु . षतु
संस्कृत-अनुवाद		आयतौ आयत्यै दीर्घाय	च	मे	जनः	धर्मशुश्रूषां	शुश्रूषतां
हिंदी-अनुवाद		भविष्यत् में भविष्यत् के लिये दीर्घ(काल)के लिये	और	मेरी	प्रजा	धर्मशुश्रूषा को (= की)	शुश्रूषा करे

कालसी	२५	मे	ति	धंमवतं	वा	अनुविधियतु		ति	एतकाये
गिरनार	२६			धंमवुतं	च	अनुविधियतं			एतकाय
धौली	२७	मे		धंम . .		. . . .	मे		एतकाये
जौगड़	२८	मे[50]		. . . .		. . . .			. . . .
शहबाज़गढ़ी	२९	मे	ति	ध्रंमवुतं	च	अनुविधियतु			एतकये
मानसेरा	३०	मे	ति	. . . तं[49]		अनुविधियतु			एतकये
संस्कृत-अनुवाद		मे	इति	धर्मव्रतं	च	अनुविदधातु	(मे)		इति । एतत्कृते
हिंदी-अनुवाद		मेरी	ऐसा	धर्मव्रत को (= का)	और	अनुविधान (= आचरण) करें	(मेरा)		ऐसा । इसलिये

कालसी	३१	देवानं	पिये	पियदसि (२५)	लाजा	यषो	वा	किति
गिरनार	३२	देवानं	पियो	पियदसि	राजा	यसो	व	किति
धौली	३३					य .	.	. टी
जौगड़	३४					. .	.	. .
शहबाज़गढ़ी	३५	देवनं	प्रिये	प्रियद्रशि	रय	यशो	व	किद्रि
मानसेरा	३६	देवन	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	यशो	व	किटि
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	यशः	वा	कीर्ति
हिंदी-अनुवाद		देवताओं का	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा	यश को (=की)	वा	कीर्ति को (=की)

कालसी	३७	वा	इछ	अं	चा	किछि	लकमति
गिरनार	३८	व	इछति[२०]	यं	तु	किंचि	पराकमते
धौली	३९	वा	. . .	.	.	. चि	पलकमति
जौगड़	४०	. . .	. . .	.	.	. .	. . . . ति
शहबाज़गढ़ी	४१	व[२१]	इछति	यं	तु	किंचि	परक्रमति
मानसेरा	४२	व	इछति	ए	तु	किंचि	परक्रमति
संस्कृत-अनुवाद		वा	इच्छति।	यत्	च तु	किंचित्	पराक्रमते
हिंदी-अनुवाद		वा	इच्छा करता है।	जो	और तो	कुछ	पराक्रम करता है

कालसी	४३	देवानं	पिये	पियदषि	लजा	त	षवं	पालतिक्याये
गिरनार	४४	देवानं		प्रियदसि	राजा	त	सवं	पारत्रिकाय
धौली	४५	देवानं	पिये					पालतिकाये(४८)
जौगड़	४६	देवानं	पिये					पालतिकाये
शहबाज़गढ़ी	४७	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि	रय	तं	सव्रं	परत्रिकये
मानसेरा	४८	देवन	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	नं	सव्रं	परत्रिकये
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	तत्	सर्व	पारत्रिकाय
हिंदी-अनुवाद		देवताओं का	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा	वह	सब	परलोक के लिये

कालसी	४९	वां	किति	सकले	अपपलाषवे	षियाति	ति	एषे
गिरनार	५०		किंति	सकले	अपपरिस्रवे	अस		एसं
धौली	५१		किंति	सकले	अपंपलिसवे	हुवेयाति		
जौगड़	५२	वा	किंति	सकले	अपपलिसवे	हुवेयाति (२१)		
शहबाज़गढ़ी	५३	व	किति	सकले	अपरिस्रव	सिय	तिं	एषे
मानसेरा	५४	व	किति	... (३७)	अपपरिस्रवे	सियति	तिं	एषे
संस्कृत-अनुवाद		एव ।	किमिति ?	सकल:	अपपरिस्रव:	स्यात् {इति} स्यात्	इति ।	एष
हिंदी-अनुवाद		ही ।	क्यों ?	सब	निर्दोष	होवे {ऐसा} होवे	ऐसा ।	यह

कालसी	५५	चु	पलिसवे	ए	अपुंने	दुकले	चु	खो	एषे
गिरनार	५६	तु	परिस्रवे	य	अपुंञं (८२)	दुकरं	तु	खो	एतं
धौली	५७		पलिस	.	. . .	दुकले	.	.	. .
जौगड़	५८		. .	.	. . .	. . .	.	.	. .
शहबाज़गढ़ी	५९	तु	परिस्रवे	यं	अपुञं	दुकरं	तु	खो	एष
मानसेरा	६०	तु	परिसवे	ए	अपुञं	दुकरं	चु	खो	एषे
संस्कृत-अनुवाद		तु	परिस्रवः	यत्	अपुण्यं।	दुष्करं	तु	खलु	एतत्
हिंदी-अनुवाद		ही	दोष (है)	जो	अपुण्य है।	कठिन है	तो	निश्चय	यह

कालसी	६१	खुदकेन	वा	वगेन	उषुटेन	वा	अनत
गिरनार	६२	छुदकेन	व	जनेन	उसटेन	व	अञत्र
धौली	६३	. . . .					. . त
जौगड़	६४	. . . .					. . .
शहबाज़गढ़ी	६५	खुद्रकेन		वग्रेन	उसटेन	व	अञत्र
मानसेरा	६६	खुद्रकेन	व	वग्रेन्	उसटेन	व	अञत्र
संस्कृत-अनुवाद		क्षुद्रकेण	वा	वर्गेण जनेन	उशता	वा	अन्यत्र
हिंदी-अनुवाद		क्षुद्र [से]	या	समूह से लोगों से	बड़े (= बड़) से	या	बिना

कालसी	६७	अगेना	पलकमेना	षवं		पलितिदितु
गिरनार	६८	अगेन	परा्क्रमेन	सवं		परिचजित्पा
धौली	६९	अगे.	. . . . न	सव	च	पलितिजितु(४९)
जौगड़	७०	. . .	. . . . . .	. .	.	लितिजितु
शहबाज़गढ़ी	७१	अग्रेन	परक्रमेन	सवं		परितिजितु
मानसेरा	७२	अग्रेन	परक्रमेन	सत्र		परिति . तु
संस्कृत-अनुवाद		अग्र्येण	पराक्रमेण।	सर्वं	च	परित्यजतु परित्यज्य
हिंदी-अनुवाद		अगले (= सर्वोत्कृष्ट) (से)	पराक्रम से (= के)।	सब (को)	और	छोड़े छोड़ कर

कालसी	७३	हेत	चु	खो (२८)				
गिरनार	७४	एत	तु	खो				
धौली	७५				खुदकेन	वा	उसटेन	वा
जौगड़	७६				खुदकेन	वा	उसटेन	वा
शहबाज़गढ़ी	७७	एत	चु					
मानसेरा	७८	ए	तु	खो				
संस्कृत-अनुवाद		एतस्मिं	तु	खलु	क्षुद्रकेण	वा	उशता	वा }
हिंदी-अनुवाद		यह	तो	निश्चय	{ छोटे से	या	बड़े से	या }

कालसी	७९	उषटेन	वा	दुकले
गिरनार	८०	उसटेन		दुकर [८३]
धौली	८१	उसटेन	चु	दुकलतले [५०]
जौगड़	८२	उसटेन	चु	दुकलतले [५३]
शहबाज़गढ़ी	८३	उसटे		[२२]
मानसेरा	८४	उसटेन	व	दुकर

संस्कृत-अनुवाद	उशता	वा	दुष्करम्।
		तु	दुष्करतरम्।
हिंदी-अनुवाद	बड़े से	या	दुष्कर [है]।
		तो	अधिक दुष्कर [है]।

[हिंदी अनुवाद ।]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा यश या कीर्ति को परलोक के लिये बहुत काम की वस्तु नहीं मानता । जो वह यश या कीर्ति को चाहता है तो इसी लिये कि मेरी प्रजा वर्तमान और भविष्यत् में (के लिये)[1] (= सदा) धर्म की शुश्रूषा[2] करे और धर्मव्रत का पालन करे । इसलिये देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा यश वा कीर्ति की इच्छा करता है । देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा जो कुछ पराक्रम करता है वह सब परलोक के लिये करता है । क्यों ? इसलिये कि जिसमें सब (लोग) दोष-रहित हों[3] । यही दोष है कि अपुण्य (पुण्य न करना) । यह (अपुण्य से रहित होना) बिना बड़े भारी पराक्रम के[4] छोटे या बड़े जनवर्ग के लिये अवश्य दुष्कर है । चाहे [मनुष्य] सब कुछ छोड़ दे पर (या, सब कुछ छोड़ कर भी) यह तो छोटे बड़े सब के लिये दुष्कर है । बड़े के लिये तो और भी दुष्कर है ।

---

(१) गिरनार—सुदीर्घं काल के लिये ।

(२) (१) सुनने की इच्छा (२) सेवा ।

(३) अप-परिस्रव, अल्प-परिस्रव नहीं ।

(४) अग्रयेण पराक्रमेण-अग्र्यात् पराक्रमात् । मिलाओ प्रज्ञापन ६ का अंत ।

[क ११—ग्यारहवां प्रज्ञापन]

कालसी	१	देवानं	पिये	पियदषि	लाजा	हेवं	हा
गिरनार	२	देवानं	प्रियो	पियदसि	राजा	एवं	आह
शहबाज़गढ़ी	३	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि	रय	एव	अहति
मानसेरा	४	. . .	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	एव	अह
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	एवं	आह।
हिंदी-अनुवाद		देवताओं का	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा	ऐसे	कहता है।

कालसी	५	नथि	हेडिषे	दाने	आदिष	धंमदाने		
गिरनार	६	नास्ति	एतारिसं	दानं	यारिसं	धंमदानं	धंमसंस्तवो	वा
शहबाज़गढ़ी	७	नस्ति	एदिशं	दन	यदिशं	ध्रमदन	ध्रमसंस्तवे	
मानसेरा	८	नस्ति	. दिशे	दने	अदिशे	ध्रमदने	ध्रमस . वे	
संस्कृत-अनुवाद		नास्ति	एतादृशं ईदृशं	दानं	यादृशं	धर्मदानं	धर्मसंस्तवः	वा
हिंदी-अनुवाद		नहीं है	ऐसा	दान	जैसा	धर्मदान	धर्मसंस्तव	या

कालसी	९	धंमषंविभागे		धंमषंबधे		तत	एषे		
गिरनार	१०	धंमसंविभागो	च	धंमसंबधो	व(८४)	तत	इदं	भवति	
शहबाज़गढ़ी	११	ध्रमस्रंविभगो		ध्रमसंबंधो		तत्र	एत		
मानसेरा	१२	ध्रमसंविभगे		ध्रम . धे(४८)		तत्र	एसे		
संस्कृत-अनुवाद		धर्मसंविभागः	वा	धर्मसम्बन्धः	वा ।	तत्र	एतत इदं	भवति ।	
हिंदी-अनुवाद		धर्मसंविभाग	या	धर्मसंबंध	या ।	उसमें	यह	होता है ।	

कालसी	१३	दाषभटकषि	षम्यापटिपति	मातापितिषु	
गिरनार	१४	दासभतकम्हि	सम्यप्रतिपती	मातरिपितरि	साधु
शह्बाज़गढ़ी	१५	द्सभटकनं	संमप्रटिपति	मतपितुषु	
मानसेरा	१६	द्सभट . स	सम्यसंपटिपति	मतपितुषु	
संस्कृत-अनुवाद		दासभृतके दासभृतकानां दासभृतकस्य	सम्यक्प्रतिपत्तिः	मातापित्रोः मातरि पितरि	{साधु}
हिंदी-अनुवाद		दास और भाड़के नौकरों का (०में) (=के प्रति)	सम्यक्व्यवहार	माता पिता में(=की)	{उत्तम}

कालसी	१७	सुसुषा	मितसंथुतनातिक्यानं	समनबंभनानं	
गिरनार	१८	सुस्रुसा	मितसस्तुतञातिकानं	बाम्हणसमणानं	साधु
शहबाज़गढ़ी	१९	सुश्रुष	मित्रसंस्तुतञतिकन	श्रमणब्रमणन (२३)	
मानसेरा	२०	. . .	. . (२०) संस्तुतञतिकन	श्रमणब्रमणन	
संस्कृत-अनुवाद		शुश्रूषा	मित्रसंस्तुतज्ञातिकानां	श्रमणब्राह्मणानां ब्राह्मणश्रमणानां	{साधु}
हिंदी-अनुवाद		शुश्रूषा	मित्र, संस्तुत (और) कुटुंबियों का (= को)	श्रमणों [और] ब्राह्मणों का (= को)	{उत्तम}

कालसी	२१	दाने (२१)	पानान	अनालंभे		एषे	वतविये
गिरनार	२२	दान (२१)	प्राणान	अनारंभो	साधु	एत	वतव्य
शहबाज़गढ़ी	२३	द्रन	प्रणन	अनरंभो		एतं	वतवो
मानसेरा	२४	दने	प्रणन	अनरंभे		एषे	वतविये
संस्कृत-अनुवाद		दानं	प्राणानां	अनालंभः	(साधु) ।	एतत्	वक्तव्यं
हिंदी-अनुवाद		दान	प्राणों का	न मारना	(उत्तम) ।	यह	कहा जाय

कालसी	२५	पितिना	पि	पुते	पि	भातिना	पि	षवामिक्येन
गिरनार	२६	पिता	व	पुत्रेन	व	भाता	व	
शहबाज़गढ़ी	२७	पितुन	पि	पुत्रेन	पि	भ्रतुन	पि	भमिकेन
मानसेरा	२८	पितुन	पि	पुत्रेन	पि	भतुन	पि	स्पमि..
संस्कृत-अनुवाद		पित्रा	अपि वा	पुत्रेण	अपि वा	भ्रात्रा	अपि वा	स्वामिकेन
हिंदी-अनुवाद		पिता से	भी या	पुत्र से	भी या	भाई से	भी या	स्वामी से

कालसी	२९	पि	मितसंयुतानां		अवा	पटिवेसियेना
गिरनार	३०		मितसस्तुतञातिकेन	व	आव	पटिवेसियेहि
शहबाज़गढ़ी	३१	पि	मित्रसंस्तुतेन		अव	पटिवेशियेन
मानसेरा	३२	पि	मित्रसंस्तुतेन		अव	पटिवेशियेन(४८)
संस्कृत-अनुवाद		अपि	मित्रसंस्तुतेन मित्रसंस्तुतज्ञातिकेन	वा	यावत्	प्रतिवेशिकेन । प्रतिवेशिकैः ।
हिंदी-अनुवाद		भी	मित्र, संस्तुत (और) कुटुंबियों से मित्र(और)संस्तुतों से,	या	यहाँ तक कि	पड़ोसी से । पड़ोसियों से ।

कालसी	३३	इयं	साधु	इय	कटविये	शे	तथा	कलंत
गिरनार	३४	इदं	साधु	इदं	कतव्य (८६)	सो	तथा	करु
शहबाजगढ़ी	३५	इमं	सधु	इमं	कटवो	सो	तथ	करंत
मानसेरा	३६	इयं	सधु	इयं	कटविये	से	तथ	करंत
संस्कृत-अनुवाद		इदं-	साधु	इदं	कर्तव्यं।	सः	तथा	कुर्वन्
हिंदी-अनुवाद		यह	उत्तम [है]	यह	कर्तव्य [है]।	वह	वैसा	करता हुआ

कालसी	३७	हिदलोकिक्ये	च		कं	आलधे	होति
गिरनार	३८	इलोक	च	स		आरधो	होति
शहबाज़गढ़ी	३९	इअलोकं	च			अरधेति	
मानसेरा	४०	हिद . क	च			अरधेति	
संस्कृत-अनुवाद		ऐहलौकिकं इहलोकं	च	{सः}	{कं}	आराद्धः आराधयति	भवति
हिंदी-अनुवाद		इस लोक संबंधी को इस लोक को	और	{वह}	{सुख को}	सिद्ध किया हुआ सिद्ध करता है	होता है

कालसी	४१	पलत	च	अनंत	पुंना	पशवति	तेना	धंमदानेना
गिरनार	४२	परत	च	अनंतं	पुंञं	भवति	तेन	धंमदानेन(८७)
शहबाज़गढ़ी	४३	परत्र	च	अनंतं	पुंञं	प्रसवति(२४)	तेन	ध्रमदनेन(२५)
मानसेरा	४४	.रत्र	च	अ त	पुणं	प्रसवति.	..	ध्रमदनेन(५)
संस्कृत-अनुवाद		परत्र	च	अनन्तं	पुण्यं	प्रसूते भवति	तेन	धर्मदानेन।
हिंदी-अनुवाद		परलोक में और		अनंत(को) अनंत	पुण्यको पुण्य	उत्पन्न करता है होता है-	उस(से)	धर्मदान से।

[हिंदी अनुवाद]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा ऐसा कहता है। "जैसा धर्म का दान[1], धर्म का व्यवहार, धर्म का लेनदेन, और धर्म का संबंध है वैसा और कोई दान नहीं है। इसमें ये ये बातें होती हैं[2]—दास और वेतनभोगी सेवकों से अच्छा बरताव, माता पिता की सेवा, मित्र परिचित (संगी साथी), संबंधी, श्रमणों और ब्राह्मणों को दान, [तथा] प्राणों को अहिंसा। पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र परिचित (संगी साथी), संबंधी, यहां तक कि पड़ोसी, [सब] को यह कहना चाहिए[3] कि यही [दान] उत्तम है, यही कर्तव्य है। ऐसा करता हुआ यह [मनुष्य] इसलोक की [सब बातों] को सिद्ध करता है और उसी धर्मदान से परलोक में अनंत पुण्य को उत्पन्न करता है।[4]"

---

(१) धर्मोपदेश।

(२) मिलाओ नवम प्रज्ञापन के गिरनार, धौली और जौगढ़ के पाठ का अंतिम भाग।

(३) गिरनार के पाठ में व्यर्थ ही 'साधु' साधु' बढ़ा दिया है प्रज्ञापन ९ में भी।

(४) गिरनार के पाठ में वाक्यरचना भिन्न है, अर्थ एक ही है।

५—विविध विषय।

[पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी, बी० ए०, काशी

(१) पुरानी पगड़ी।

संस्कृत वैयाकरण लोग पगड़ी के अर्थ में 'उष्णीष' शब्द लाते हैं जिसका अर्थ 'गर्मी का मारने वाला' होता है। शब्दार्थ से अवश्य ही यह सिर में लपेटने की चीज़ होनी चाहिए। यह कई रंग की होती होगी, क्योंकि जो अभिचार (शत्रुमारण आदि) के यज्ञ हैं उनकी विधि में आता है कि 'ऋत्विज् लोग लाल उष्णीष पहन कर काम करते हैं' (लोहितोष्णीषा ऋत्विजः प्रचरन्ति)। यजुर्वेद (शुक्ल) की संहिता में (३८।३) गौ के बाँधने की रस्सी की प्रशंसा में कहा है कि 'तू अदिति का रस्सा है, इन्द्राणी का उष्णीष है'। इससे सिद्ध हुआ कि स्त्रियों का उष्णीष भी कोई लंबी, बाँधने की, लपेटने की चीज़ होती होगी, ओढ़ने की नहीं। संभव है कि स्त्री पुरुष दोनों का उष्णीष एकसा होता हो जैसा पुराने ईरानियों के यहाँ होता था। इस मंत्र की व्याख्या में शतपथ ब्राह्मण में कहा है 'इन्द्राणी इन्द्र की प्रिय पत्नी है उसका उष्णीष 'विश्वरूपतम' है (१४. २. १. ८)। राजसूय प्रकरण में जहाँ अभिषेक और शस्त्रधारण के पहले राजा को वस्त्र पहनाए जाते हैं वहाँ शरीर से सटा हुआ एक तार्प्य नामक कपड़ा पहनाया जाता है। श्रौत सूत्र और उसके भाष्यों में तार्प्य का अर्थ तृपा नाम के घास का बना हुआ, बुनते समय तीन बार घी या जल पिलाया हुआ वस्त्र, या वल्कल, या तीन बार घी में भिगोया हुआ वस्त्र दिया है। जो हो, उसकी प्रशंसा में लिखा है कि 'तस्मिन् सर्वाणि यज्ञरूपाणि निष्यूतानि भवन्ति (शतपथ, ५-३-५-२०) जिसका अर्थ इसके सिवा

कुछ नहीं हो सकता कि उस पर सब यज्ञ की तसवीरें, वा यज्ञपात्र, वेदि आदि की तसवीरें सुई से काढ़ी हुई होती हैं। इसके स्वारस्य से इन्द्राणी के उष्णीष के विशेषण 'विश्वरूपतम' का यही अर्थ करना पड़ेगा कि सबसे अच्छे चित्रों वाला, सबसे अच्छे कसीदे वाला, सब से बड़ी सुंदरता वाला। यह नहीं कह सकते कि वह पंजाबिनों के सालू की तरह पूरा कसीदे का बना हुआ होता था, या राजपूताने की लूगड़ी की तरह रंग विरंगा।

जो हो, राजसूय में **तार्प्य** पहनाए पीछे एक **पांड्व** पहनाया जाता था जिसका अर्थ विना रंगी ऊन का कंबल होता है। तीसरा कपड़ा **अधीवास** या सब कुछ ढकने वाला लंबा चोगा है। चौथा वस्त्र हमारा पहचाना हुआ मित्र उष्णीष है। इसे सिर पर लपेट कर दोनों छोर आगे की ओर लटका कर धोती की मोरी में दोनों ओर खोंस लिए जाते थे, या नाभि के पास ही खोंसे जाते थे। (कात्यायन श्रौतसूत्र १५-५-१३, १४) इस प्रकरण के ब्राह्मण का अनुवाद यह है—"फिर उष्णीष को समेट कर आगे इकट्ठा करता है, इस मंत्र से कि 'तू क्षत्र की नाभि है'; इससे जो क्षत्र की नाभि है उसे ही यों इस में (यजमान में) धरता है। कुछ लोग सब ओर लपेटते हैं, यह कहते हुए कि यह इसकी नाभि है, सब तरफ ही यह नाभि जाती है; सो ऐसा नहीं करना चाहिए आगे ही इकट्ठा करे, आगे ही तो नाभि होती है (शतपथ ५, ३, ५, २३—२४)। इससे जान पड़ता है कि उस समय भी पगड़ी लपेटने की दो चालें थीं, परन्तु दोनों सिरे कमर तक अवश्य लाए जाते थे।

किरीट शब्द भी सिर के ढकने की चीज़ के अर्थ में आता है। यह वैयाकरण पाणिनि से पुराना है, क्योंकि उसने उसे अर्धर्चादि गण (२।४।३१) में पढ़ा है। यदि यह संदेह किया जाय कि गणपाठ में शब्द समय समय पर बढ़ाए गए हैं तो उणादि सूत्र ४।१८४ (कॄतॄकृपिभ्यः कीटन्) से यह शब्द बनता है जिसमें न्यासकार के मत से 'तिरीट' वाला 'तॄ' धातु भले पीछे जोड़ा गया हो तो भी

'किरीट' का कृ तो पुराना मानना पड़ेगा। उणादि सूत्र पाणिनि से पहले के हैं। मुकुट शब्द इतना पुराना नहीं है।

हिंदुस्थान में सबसे पुरानी मूर्त्तियां जो कहीं भी मिली हैं वे भरहुत के स्तूप की भित्तियों पर हैं। उनका समय ईसा से पहले तीसरी शताब्दी माना गया है। वहां के चित्रों में पुरुष बहुत सुंदर साफा बांधे हुए बनाए गए हैं। विशेष करके कनिंघाम के ग्रंथ स्तूप ऑफ भरहुत के प्लेट २१ के चित्र ३ में नागराज चक्रवाक और प्लेट २४ के चित्र २ और ३ देखिए। इनमें साफ़ा या फेंटा बहुत सुंदर लपेटों से बांधा गया है और सामने एक गुंठा या गेंद सी बनाई गई है। यदि श्रौतसूत्र में साफ़ न कहा गया होता तो इन चित्रों को देख कर शतपथ ब्राह्मण के 'आगे समेट कर इकट्ठा' करने का अर्थ ऐसा गुंठा बनाना ही समझ में आता। उस समय स्त्रियों का वेश कैसा था यह उसीके प्लेट २३ में सिरीमा देवता के चित्र से जान पड़ेगा। इसमें एक छोटा रूमाल सिर पर लपेटा हुआ है। बौद्ध जातक ग्रंथों में लिखा है कि धनवानों की सुंदर सुंदर झाड़िया सजाना और बनाना नाइयों का काम था।

चीनी यात्री हुएन्सांग, जो हिंदुस्थान में ईसवी सन की सातवीं शताब्दी के पिछले भाग में आया था, यहां के लोगों के बारे में लिखता है कि लोग सिर पर टोपी या मुकुट पहनते हैं और उनके साथ फूलों की माला या जड़ाऊ सिरपेंच। व्रात्यों की टेढ़ी पगड़ी के लिये देखिए पत्रिका, भाग १, पृ० ७६, ७७ में मेरी टिप्पणी।

(२) छट्ट।

पंजाबी में भारवाहक पशुओं पर माल लादने की गोन को छट्ट कहते हैं। हिंदी में गोन, गौन, गूण ही प्रचलित है, छट्ट केवल पंजाबी में आता है। गणरत्नमहोदधि में गोणी शब्द के अर्थ में वर्धमान ने इस शब्द का प्रयोग किया है (एग्गलिंग का संस्करण, पृष्ठ ८१)। वहां संपादक ने मूल पाठ यह रक्खा है 'धान्याधार

गोणी । यस्याश्छाटीति प्रसिद्धिः' और उसे 'मराठी छाटी (संस्कृत शाटी) = कपड़े का टुकड़ा', से मिलाया है किंतु 'छाटी' पाठ संपादक ने एक ही प्रति के पाठ पर कल्पित किया है । टिप्पणियों में जो पाठांतर दिए हैं उससे यह शब्द छट्ट ही जान पड़ता है (धान्याधारे गोणी यस्याश्छट्टेति A, यस्याः छट्टीति C, यस्यास्त्व-ट्टेति D, यस्याः छाटीति E) । गणरत्नमहोदधि की रचना वि० सं० ११९७ में हुई । उस समय गुजरात में यह शब्द प्रचलित था । यह उस समय की 'हिंदी' का शब्द है क्योंकि उन दिनों तक प्रादे-शिक भाषाएँ इतनी पृथक् और रूढ़ नहीं हुई थीं ।

(३) बिरामण की, सरवण की ।

राजपूताने में माताएँ बच्चों को बुरी दीठ या नज़र से बचाने के लिये दिए पर तकुला (तर्कु) गरम करके एक मंत्र सा कहा करती हैं 'दादा की, दादी की,... नाई की, पड़ौसी की,... बिरामण की, सर-वण की,... जिसकी नज़र बच्चे को लगी हो उसकी आँखों में जलता जलता ताका (तकुला) !!' बौद्ध श्रमण (भिक्षु) इस देश में अब नहीं रह गए किंतु ब्राह्मणश्रमण का जोड़ा जो अशोक के लेखों और पतंजलि के महाभाष्य में अत्यंतसंयोग या शाश्वतविरोध के अर्थ में आता है अब तक जादू टोने में चला आता है[2] । (श्रमण = सरवण) ।

(४) पूर्णपात्र ।

किसी को कोई आनंद का समाचार सुनाने पर मुँहमाँगा इनाम मिलता है । बधाई देने पर यह पूछने की चाल भी है कि बधाई देने-वाले को जो पसंद आवे वह ले ले । अधिक अंतरंगता पर यह भी हो सकता है कि भाई, अच्छी खबर लाए हो, जो वस्त्र, भूषण आदि

(१) वर्धमान के बारे में इसी अंक का प्रथम लेख देखिए ।

(२) देखो पत्रिका भाग १ पृ. ४०४ टि. १ ।

हमारे शरीर पर से उतारना चाहो वह उतार लो। समाचार लानेवाला अधिक प्रौढ़ हो तो स्वयं छीन लेता है। इस चाल का नाम 'पूर्णपात्र का हरण करना' या 'पूर्णपात्र का लेना' है। बाण की कादंबरी में इसका उल्लेख है, हर्षचरित में भी जहाँ हर्ष का जन्म हुआ है वहाँ बाण लिखते हैं कि समाचार लानेवाला **'उत्तरीयं पूर्णपात्रं जहार'**, उसने ऊपर का वस्त्र (दुशाला आदि) पूर्णपात्र छीन लिया। हर्षचरित का संकेत टीकाकार पूर्णपात्र का अर्थ यों समझाता है—पूर्णपात्रं यथापरिहितवस्त्रादि। उक्तं च—आनंददो हि सौहार्दादित्य वस्त्रादिकं बलात्[1]। अजानतो हरत्येव पूर्णपात्रं तु तत्स्मृतम्। अर्थात् 'पूर्णपात्र का अर्थ है, जैसा पहना हो वैसा वस्त्र आदि। कहा भी है कि 'आनंद (का समाचार) देनेवाला प्रेम से आकर ज़बरदस्ती वस्त्र आदि (समाचार सुननेवाले के) बिना जाने हर लेता है वह पूर्णपात्र कहलाता है''।

यह तो सब ठीक है, किंतु पूर्णपात्र का अर्थ वस्त्र कैसे हुआ? दीनारों या रत्नों से भरा पात्र होता, या गृह्यपद्धतियों में जो ब्रह्मा को दिए जानेवाले पूर्णपात्र का लक्षण लिखा[2] है वह होता तो ठीक होता। हेमचंद्र की देशीनाममाला में इसी अभिप्राय के दो शब्द दिए हैं। एक तो **'पुरणवत्त'** जिसका अर्थ 'प्रमोदहृतवस्त्र' अर्थात् खुशी में छीना हुआ कपड़ा दिया है (६।५३)। दूसरा **'वड्ढवण'** जिसके दो अर्थ हैं—वस्त्राहरण और अभ्युदयावेदन, अर्थात् कपड़ा छीनना और बढ़ती की सूचना देना (७।८५)। अब सब स्पष्ट हो गया। 'वड्ढवण' तो हिंदी का बधाई देना, ''बधाई है'' कहना, बढ़ाना, संवर्धना करना है; बधावे गाना, बधाई बजना,

---

(१) डाक्टर फुहरर के संस्करण में छपा है—'वस्त्रादि कम्बलात्'(!)

(२) अष्टमुष्टि भवेत्किंचित् किंचिच्चत्वारि पुष्कलम्।
पुष्कलानि तु चत्वारि पूर्णपात्रं प्रचक्षते ॥ (पारस्करपरिशिष्ट)। कई जगह इस नाप के बारे में मतभेद भी है।

में वही शब्द है। प्रबंधचिंतामणि में 'महाराज, बधाई है' इस अर्थ में 'स्वामिन वर्धाप्यसे' आया है। इस वड्ढवण के दो अर्थ ठीक ही हैं, एक अभ्युदयावेदन कारण और दूसरा वस्त्राहरण कार्य। 'पुण्णवत्त' का ठीक संस्कृत पूर्ण (पुण्य) वस्त्र होना चाहिए अर्थात (हर्ष, या इच्छा--) पूर्ण वस्त्र या पुण्य वस्त्र। किंतु देशी को संस्कृतीकृत करने में 'पूर्णपात्र' हो गया।

(५) सवाई।

आमेर की गद्दी पर महाराज जयसिंह पहले को मुगल बादशाह से मिर्ज़ाराजा की उपाधि मिली थी और यह प्रसिद्ध है कि जयसिंह दूसरे को, जिन्होंने जयपुर बसाया, एक प्रसिद्ध वाक्पटुता पर औरंगजेब ने 'सवाई' उपाधि दी। तब से जयपुर के महाराजा सवाई कहलाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि फ़ारसी लेखक प्रथम और द्वितीय जयसिंह में भेद करने के लिये द्वितीय के नाम को महाराजाधिराज जयसिंह (या धिराज (!) जयसिंह, जैसा कई तवारीखों में है) 'सानी' लिखते थे, 'सानी' का लेखदोष से 'सवाई' हो गया जो बिना पूछे पाछे उपाधि बना लिया गया। इस कल्पना में द्वेष को छोड़कर कुछ सार नहीं। सवाई पद जयपुर के वंश से निकलनेवाले अलवर वंश ने तो लिया, किंतु और भी कई वंशों ने, यों ही था तो, क्यों धारण कर लिया? 'सवाई' पद इतना प्रिय हुआ कि संभा जी भी अपने को सवाई कहता था और पेशवा नारायणराव के पुत्र सवाई माधवराव पेशवा ने उसे नाम का अंग ही बना लिया।

शत्रुंजय पर्वत पर के जैन शिलालेखों में जहांगीर बादशाह के नाम के साथ 'सवाई' उपाधि लगी मिलती है। यथा[1] --

(लेख नं० १५) सं० १६७५ वैशाख सुदि १३ तिथौ शुक्रवासरे सुरताण नूरदीन जहांगीर सवाई विजयिराज्ये ॥...

(लेख नं० १७) सं० १६७५ मिते सुरताण नूरदी जहांगीर सवाई

१ एपिग्राफिका इंडिका, जिल्द २ पृष्ठ ३४ प्रभृति।

विजयिराज्ये साहिजादा सुरताणखोसड्ड (=खुशरो) प्रवरे श्रीराजी नगरे (=अहमदाबाद) सोवइ (=सूबा) साहियान सुरतान पुरमे (=खुर्रम) वैशाखसित १३ शुक्रे...

(लेख नं० १८) संवत् १६७५ प्रमिते सुरताण नूरदी जहांगीर सवाई विजयिराज्ये साहिजादा सुरताण पोमरूप्रवरे राजनगरे सोबइ साहियान सुरतान पुरमे ॥ वैशाखसित १३ शुक्रे।...

(लेख नं० १९) संवत् १६७५ मिते सुरताण नूरदी जहांगीर सवाई विजयिराज्ये साहिजादा सुरताण पोमड्ड प्रवरे राजनगरे सोबड्ड साहियान सुरतान पुरमे वैशाखसित १३ शुक्रे...

(लेख नं० २६) संवत् १६७५ प्रमिते ॥ सुरताणनूरदी जहांगीर सवाई विजयिराज्ये साहिजादा सुरतान पोमरूप्रवरे श्रीराजनगरे सोबइ साहियान सुरतान पुरमे वैशाख सित १३ शुक्रे।...

(लेख नं० २३) सं० १६७५ वैशाख सित १३ शुक्रे सुरताण नूरदी जहांगीर सवाई विजयिराज्ये ॥ श्रीराजनगर...

(लेख नं० २४) सं० १६७५ वैशाख सित १३ शुक्रे सुरताण-नूरदी जहांगीर सवाई विजयिराज्ये ॥ श्रीराजनगर...

(लेख नं० २७) भी जहांगीर के समय का है किंतु उसमें सवाई उपाधि नहीं है—

सं० १६८३ वर्षे । पातिसाह जिहांगीर श्रीसलेमसाह भूमंडला-खंडल विजय राज्ये ॥

अस्तु, ये लेख एक ही संवत और एकही वंश के होने पर भी भिन्न भिन्न स्थलों पर हैं। सवाई एक हिंदुस्तानी उपाधि थी जिसका अर्थ पूर्ण से अधिक (सवा, सपाद, 1¼) होता है। यह बहुत पहले से बादशाह जहांगीर के नाम के साथ प्रामाणिक रूप से मिलती है, या फिर महाराज जयसिंह दूसरे के नाम के साथ।

जैनोंके यहां प्रसिद्ध है कि हीरविजयसूरि के शिष्य विजयसेनसूरि को बादशाह अकबर ने 'सूरिसवाई' की उपाधि दी थी (सूरीश्वर अने सम्राट् पृ० १६८)

जोधपुर के राजा अजीतसिंह, जिनकी कन्या मुगल बादशाह फर्रुखसियर को ब्याही थी, उस समय के राज-कर्ता सैयद बंधुओं में से सैयद अबदुल्ला से मिलकर अपने जामाता के विरुद्ध लड़े। सैयद अबदुल्ला से ही उन्होंने महाराजा उपाधि पाई। अंत को वे रुष्ट होकर अपनी कन्या को नौकर चाकर और बहुत सी धनदौलत के साथ हिंदू वेश में दिल्ली से अपने घर ले आए। तारीख इबराहीम खाँ में लिखा है कि किसी हिंदू राजा ने ऐसी गुस्ताखी नहीं की थी। बाबू राखालदास बनर्जी ने किसी फारसी इतिहास में देखा है कि अजीतसिंह की सवाई उपाधि पाने की इच्छा और उसके लिये परम उद्योग का फलीभूत न होना ही इस विद्रोह का कारण था। यह अंतिम वाक्य बनर्जी महाशय के कथन के प्रमाण पर ही लिखा गया है।

(६) संस्कृत में अकबर का जीवनचरित।

महाराजा दर्भंगा के पूर्वज मिथिला के प्रसिद्ध विद्वान् महेश ठक्कुर ने अकबर बादशाह का जीवनचरित संस्कृत में लिखा था। जैसे अबुलफज़ल ने फ़ारसी में अकबर का चरित लिखा, वैसे ही महेश ठक्कुर से यह लिखवाया गया था। इसकी एक अपूर्ण प्रति इंडिया आफ़िस में है और महाराजा दर्भंगा ने वहाँ से फोटोग्राफ द्वारा उसकी प्रतिकृति उतरवा कर मंगाई है। सुना गया है कि डाक्टर गंगानाथ झा उसका संपादन कर रहे हैं।

(७) पश्चिमी क्षत्रपों के नामों में घ्स, य्स = ज़ (Z)।

पश्चिमी क्षत्रप राजाओं के घ्समोटिक, दमघ्सद आदि नामों में 'घ्स' युक्ताक्षर पढ़ा जाता था। सन् १९१३ में जर्मन विद्वान् डाक्टर लूडर्स ने स्थिर किया कि यह 'घ्स' नहीं 'य्स' है और दमघ्सद का नाम दमजद भी लिखा मिलता है इसलिये यह य्स (घ्स नहीं) ग्रीक के ज़ेड (ज़) के लिये भारतवासियों का संकेतित चिह्न था। माडर्न रिव्यू (जून १९२१) का कथन है कि सन् १९१३ के

एक जर्मन पत्र में डाक्टर लूडर्स ने यह छपवाया और ता० २१ फरवरी सन् १९१३ को इस खोज की सूचना का पत्र शार्लाटनबर्ग से मि० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर को लिखा, किंतु सन् १९१५ की पश्चिमी मंडल की पुरातत्त्वविभाग की खोज की रिपोर्ट में मि० भंडारकर ने इसे अपनी मौलिक खोज की तरह छापा और लूडर्स का उल्लेख भी न किया। माडर्न रिव्यू में लूडर्स और भंडारकर के उन लेखों के फोटो भी छपे हैं। पीछे इस विषय पर बहुत वितंडा हुई; यह सिद्ध करने का यत्न किया गया कि यह लूडर्स की मौलिक खोज नहीं है कई वर्ष पहले डाक्टर भाऊ दाजी ही ऐसा लिख गए थे, किंतु भंडारकर के उसे अपनाने का अपलाप न हो सका।

(८) वैदिक भाषा में प्राकृतपन।

यास्क के निरुक्त में जो वैदिक शब्दों के निर्वचन किए हैं उनमें कुछ प्राकृतपन का प्रमाण है। पहला तो डाक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने अपने निघंटु निरुक्त के संस्करण की भूमिका में बताया है और बाकी पं० विधुशेखर भट्टाचार्य ने उसकी समालोचना करते समय माडर्न रिव्यू (जून १९२१) में लिखे हैं—

कुटस्य = कृतस्य

कीकटा: = किंकृता:

कण्टक: = कृंतक: (कृन्तत:)

कूहु: = गुहु: (गूहत:)

तर्कु का अर्थ डाक्टर लक्ष्मण ने चाकू किया है, किंतु समालोचक ने ठीक बताया है कि कृत् धातु (काटना) से व्यत्यय से बनने पर भी इसका अर्थ ताकूं (तकुला) है। पर कृत (कृन्त) धातु का अर्थ काटना ही नहीं है, जैसे वृध् के अर्थ बढ़ना और बढ़ना (काटना) दोनों हैं वैसे कृत के अर्थ कातना और काटना दोनों हैं (या अकृन्तन्नवयन् इत्यादि मंत्र)।

(९) 'खूब तमाशा'।

मध्यप्रदेश (छत्तीसगढ़) के राजा राजसिंह के यहां एक कवि

गोपालचंद्र मिश्र था। उसने 'खूब तमाशा' नामक कविता का ग्रंथ लिखा है जिसमें कलियुग की अद्भुत बातों का वर्णन देकर प्रति छंद के अंत में खूब तमाशा समस्या की पूर्ति की है। उसका समय इस छंद में लिखा है जो उसीके अंत में है—

संवत् सत्रह से षट चालीस पावस ऋतु हितकारी।
महाराज श्रीराजसिंह नृप जिन यह सुमति विचारी॥

(पांडेय लोचनप्रसाद का लेख, शारदा, सं० १९७७ आश्विन) इस 'खूब तमाशे' का वर्णन कई अवतरणों सहित काशी के इंदु में कई वर्ष पहले छप चुका है।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज, जिल्द १, को देखने से प्रतीत होता है कि संवत् १७४४ में आमेर (जयपुर) में कवि नंदराम ने इसी विषय पर "पचीसी" नाम का एक काव्य रचा था। उसका परिचय और आदि अंत के अंश उसी रिपोर्ट से यहाँ दिए जाते हैं। राजपूताने का कवि पहले का है, मध्यप्रदेश का पिछला। संभव है कि पहले कवि की छाया दूसरे ने ली हो, यह भी संभव है कि दोनों स्वतंत्र हों।

आदि—अथ नंदराय पचीसी लिषते ॥ दोहा ॥ गनपति को जय मनाय हो ॥ रिधि सिधि के हेत ॥ वाकबादनी मात तरू ॥ सूभ अच्छर बही दत ॥ १ ॥ कछुअक चाहत हो कह्यो ॥ तुम्हरे पुन्य प्रताप ॥ ताहि सूनें सुष उपजै ॥ किरपा करो अब आप ॥ २ ॥ कीनो प्रथम प्रकाश ही ॥ तुम्हरो हुकुम जपाय ॥ कलि व्यवहार वर्णन करु ॥ सुनो चतुर मन लाय ॥ ३ ॥ नीति राज की असी होरी ॥ दोलति पास लीजे ॥ गज सिका अर ताल मोल की चढ़ती दिन दिन कीजै ॥ अब पैसा कमी कमी जग माहिं रुपया है नौ मासा ॥ नंदराम कछु दुनिया माही देखा अजब तमासा ॥ ४ ॥

अंत—नाटिक चेटक जामै देखे। जाकी करै ज सेवा। भूत ...से...ल दिषावे ताकु मानै देवा ॥ अंतरजामी नाहिन भजिए। भजिए धूलि धमासा ॥ नंदराम ॥ २३ ॥ कलि व्यवहार पचीसी

बरणी । जथा जोगि मति मोरी । कलियुग की जवानिगो एहै और बात बहुतेरी ॥ राखो राम नाम या कूल में नंद नंदन सूष रासा ॥ २४ ॥ ॥ नंदराम ॥ नंदराम पंडलवाल है अंबावति के वासी ॥ सूत बलिराम गोत हैरावत मत है क्रसन उपासी ॥ संवत सत्रह सै चौवाला कातिक चंद्र प्रकासा ॥ नंदराम कछु दुनिया माही देख्या अजब तमासा ॥२५॥

(१०) देवानां प्रिय ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका, नया संस्करण, भाग १, संख्या ३, पृष्ठ ३५६, में 'देवानां प्रिय' के अर्थ पर कुछ लिखा गया है । इस जगह यह दिखाया जायगा कि पतंजलि के महाभाष्य आदि में 'देवानां प्रिय' साधारण बोलचाल में 'सरकार, हुजूर, राउरे, आप, श्रीमान, जनाब' के अर्थ में काम आता था ।

पाणिनि का एक सूत्र है कि किसी किसी प्रयोग में अज् धातु की जगह वी हो जाता है[1] । अज् का अर्थ चलना है, वी का भी । पतंजलि ने समझाया है कि किन पदों में अज् का वी हो जाता है (जैसे, प्रवेता, प्रवेतुम्, प्रवीतः, संवीतिः) और किन में अज् ही रहता है (जैसे, समाज, समज, उदाज, उदज, समजन, उदजन, समज्या) । इस हिसाब से '(रथ) हाँकनेवाला' इस अर्थ में प्र + अज् से प्राजिता होना चाहिए, किंतु इस सूत्र के अनुसार प्रवेता होगा । पतंजलि ने व्यवहार में 'प्राजिता' प्रयोग भी देखा, इस लिये विकल्प का नियम माना कि 'प्राजिता' भी होता है । यहाँ पर एक वैयाकरण और एक सूत की कल्पित बातचीत[2] दी है । बातचीत

(१) अजेर्व्यघञपोः २।४।५६ ।

(२) किं च भो इष्यत एतद् रूपम् । बाढमिष्यते । एवं हि कश्चिद्वैयाकरण आह—कोस्य रथस्य प्रवेतेति । सूत आह—अहमायुष्मन्नहमस्य रथस्य प्राजितेति । वैयाकरण आह—अपशब्द इति । सूत आह—प्राप्तिज्ञो देवानां प्रियः न त्विष्टिज्ञ इष्यत एतद्रूपमिति । वैयाकरण आह—अहो नु खल्वनेन दुरुतेन बाध्यामहे इति । सूत आह—न खलु वेञः सूतः । सुवतेरेव सूतः । यदि सुवतेः कुत्सा प्रयोक्तव्या दुःसूतेनेति वक्तव्यम् ।

बड़ी रोचक है। वैयाकरण अपने शास्त्रज्ञान के घमंड में है, सूत व्यवहार की भाषा में पक्का है, वह पोथी पढ़े पंडित जी की ज़ीट उड़ाता है।

भाष्यकार पूछते हैं कि क्यों भाई यह रूप (प्राजिता) स्वीकृत है, चाहिए, मान लिया जाय? स्वयं ही उत्तर देते हैं कि बेशक, चाहिए। यों कोई वैयाकरण कहता है-इस रथ का प्रवेता कौन है? वह नियमों का पक्का है, साधु भाषा में 'अज' की जगह 'वी' काम में ला रहा है, वही मज़मून है कि पानी खटिया लग रहो, पूत मरे बकि आव। सूत उत्तर देता है—आयुष्मन्, मैं इस रथ का प्राजिता हूँ। वैयाकरण कहता है कि यह तो अपशब्द है। सूत कहता है कि देवानां प्रिय प्राप्तिज्ञ[1] हैं, इष्टिज्ञ[2] नहीं; यह रूप माना जाता है। यों टोकने पर वैयाकरण खिझ गया। वह सूत को सूत कहलाने योग्य नहीं समझता। वह अपने व्याकरण के भरोसे समझता है कि सूत सु + उत से बना है, सु + उत = अच्छा बुना हुआ, ऐसे दोष दिखानेवाले के नाम में सु = अच्छा क्यों आवे? उसने इस अपराध में सु + उत = सूत को दुर् + उत कहना चाहा। सु का उलटा दुर् है, जैसे सुगंध, दुर्गंध; सूक्त, दुरुक्त। वैयाकरण कहता है, अहो, इस दुरुत ने हमें निश्चय बाधा पहुँचाई। भोज के 'यथा बाधति बाधते' कहनेवाले कहार की तरह सूत झट बोल उठा कि वेञ् (बुनना) धातु से सूत नहीं बनता, यह तो सू (= सुवति, सू = प्रेरणा करना) से सूत बनता है। यदि सू धातु के साथ आपको कुत्सा का प्रयोग करना हो, मेरी ओर अपनी अप्रसन्नता दिखाना हो, तो 'दुःसूत' ऐसा कहिए, दुरुत नहीं।

यहाँ पर पहले तो सूत ने वैयाकरण को आयुष्मन् = (बड़ी) उमरवाला कहकर संबोधन किया है। बोलचाल में बुलाए जाने पर बुलानेवाले के साथ आशीर्वाद से बातचीत शुरू करना सभ्यता की चाल है। हिंदी में किसी को पुकारने पर

---

(१) किस नियम की कहाँ पर प्राप्ति (पहुँच) होती है यह जाननेवाला प्राप्तिज्ञ। 'गिबतिं चर्करीतान्तं पचतीत्यत्र यो नयेत्। प्राप्तिज्ञं तमहं मन्ये प्रारब्धस्तेन संग्रहः'॥ यहां प्राप्तिज्ञ कहने में कुछ ताना है कि आप पोथी ही पढ़े हो।

(२) जो नियम सूत्रों में दिए हैं उनके अपवाद या उनसे अधिक नियम 'इष्टि' (= मंज़ूरी, स्वीकृति, मानना, चाहिए, इच्छा की हुई बात) कहे जाते हैं, उन्हें जाननेवाला इष्टिज्ञ।

उत्तर मिलता है 'जी'—यह 'जीव' = 'जीते रहो' आशीर्वाद है। राजा के पास रहनेवाले 'जय जीव' कहनेवाले कहे जाते हैं[1]। एक श्लोक में विष्णु पुकारते हैं 'हे नंदक', उत्तर मिलता है 'जीव'[2]। हेमचंद्र की देशीनाममाला में धण्णाउस (धन्यायुष्) आशीर्वादात्मक संभाषण में ही दिया मिलता है (५।५८)। दूसरी जगह सूत कहता है कि 'देवानां प्रिय प्राश्निज्ञ' हैं। यहाँ देवानां प्रिय का अर्थ देवताओं का लाड़ला, देवताओं का प्यारा है, यह भी आशीर्वाद और विनय की भाषा है, जैसे राजपूताने में 'राम का पूरा' 'राम जी भला दिन दे' आदि कहते हैं। भागवान, नेकबख्त, भला आदमी आदि पद भी यों बोलचाल में आते हैं। सूत ने 'देवानां प्रिय' सरकार, आप, या जनाब की तरह आदर ही में काम में लिया है (चाहे उसमें कुछ ताना भी हो), इसका अर्थ अच्छा ही है, मूर्ख नहीं।

इस भाष्य की व्याख्या में कैयट ने "देव शब्द मूर्ख का वाचक है। मूर्खों के प्यारे मूर्ख ही होते हैं। अथवा सुख में आसक्त होने के कारण शास्त्र में ध्यान न लगाना ही यहां प्रतिपादित होता है" लिखा है। यह पीछे की बात को लेकर है, पतंजलि के काल में यह अर्थ नहीं था। सूत की बातचीत बहुत सभ्य है, वह 'आयुष्मन' कह कर संबोधन करता है, वैयाकरण की अपेक्षा संस्कृत के महाविरे अच्छे समझता है, दर्जे में भी वह विद्वान वैयाकरण से छोटा है, इन सब कारणों से वह गँवार की तरह मुँहफटपने से वैयाकरण को 'मूर्ख' नहीं कहता। 'देवानां प्रिय' अदब और आशीर्वाद का पद था।

इसी तरह मीमांसा के शाबर भाष्य में जहां यह प्रसंग है कि एक ही सूर्य नाना देशों में कैसे एकसाथ दिखाई देता है वहां उदाहरण दिया है कि किसी को कहा जाय कि 'आदित्य को देख,

(१) जय जीवेति वादिनः = हाँ हुजूर करने वाले।

(२) 'चक्र!'—'ब्रूहि विभो!'—'गदे!'—'जय हरे!'—'कंबो!'—'समाज्ञापय'—'भो भो नन्दक!'—'जीव'—'पन्नगरिपो!'—'किं नाथ?'........॥

देवानां प्रिय !' तो उसे सूर्य एक जगह टिका हुआ सा ही दिखाई देता है[१] वहां देवानां प्रिय का अर्थ आयुष्मान् की तरह आशीर्वादात्मक ही है। गुरु अपने शिष्य को कह रहा है कि बच्चा, चिरंजीव या भले मानस, सूर्य को देख। किसी गाली की यहां ज़रूरत नहीं कि अंधे या मूर्ख, सूर्य को देख। कोई ऐसा प्रसंग ही नहीं है।

वेदांत सूत्रों के शंकर भाष्य में जहां प्रतिवादी के कथन का उल्लेख करके उसका खंडन करने के लिये प्रतिवादी से कोई उसकी कचाई की बात पूछी है, अर्थात् प्रतिप्रश्न से खंडन किया है, वहां कहीं कहीं यह आता है—'इदं तावद् देवानां प्रियः प्रष्टव्यः' अर्थात् देवानां प्रिय से इतना तो पूछो। यहां भी यह मुहावरा सभ्यता ही से संबंध रखता है, संभव है इसमें कुछ ताना भी हो, ज़रा हज़रत से यह तो पूछिए। शिष्ट लोग प्रतिवादी को मुँह पर मूर्ख नहीं कहते, 'रामदुलारे' ही कहते हैं। शंकर ने बूढ़े 'गौतम' को 'गो-तम' कह दिया तो इसका यह अर्थ नहीं कि 'रामदुलारे' (देवानां प्रिय) सदा गाली ही हो तथा शिष्ट शास्त्रार्थ में गाली ही दी जाती हो।

(११) हूण।

पराक्रमी हूणों का स्मरण अभी तक कई प्रकार से चला आता है। हरियाना प्रांत में जब कोई मनुष्य किसी दूसरे से भिड़ते हुए झिझकता है तो उसे हिम्मत बढ़ाने के लिये कहा जाता है अरे, यह क्या कोई हून है? कोई बहुत गाल बजाता है तो भी कहते हैं बड़ा कहीं का हून आया! राजपूताने की ऐतिहासिक दंतकथाओं में कई उच्छृंखल 'हूल' वीरों की कथाएँ हैं जो दुर्गम घाटों में रहते और व्यापारी, यात्रियों आदि से लूट उगाहते थे। दक्षिण में एक सोने का सिक्का 'हुन' नामक था जो अभी अभी तक चलता रहा। राजपूतों के छत्तीस कुलों में एक 'हूण' भी है। इतिहास में कई प्रतिष्ठित

(१) आदित्यवद्यौगपद्यम् (अध्याय १ पाद १ सूत्र १५) पर 'यस्तु एकदेशस्थ सतो नाम्ना देशेषु युगपद्दर्शनमनुपपन्नमिति 'आदित्य' पश्य देवानांप्रिय' एकः सन्नेकदेशावस्थित इव लक्ष्यते कथः पुनः—इत्यादि।

और परिज्ञात राजाओं का हूण-कन्याओं से विवाह हुआ लिखा मिलता है। मेवाड़ के राना अल्लट (वि० सं० १०१०) की रानी हरिया देवी हूणकुल की थी। त्रिपुरी (तेवर, चेदिमंडल) के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा कर्णदेव की स्त्री आवल्लदेवी हूणकुल की थी जिसका पुत्र यशःकर्णदेव था (अजनि कलचुरीणां स्वामिना तेन हूणान्वयजलनिधिलक्ष्म्यां श्रीमदावल्लदेव्याम् ।...श्रीयशःकर्णदेवः, एपि० इंडि० जि० २, ३--५ यशःकर्ण के पुत्र गयकर्ण की प्रशस्ति)।

(१२) यंत्रक।

संस्कृत यंत्र वा यंत्रक के अपभ्रंश 'जंदरा' का पंजाबी में अर्थ ताला है और तुलसीदास जी के रामचरितमानस में—

नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित प्राण जाहिं केहि बाट॥

इस दोहे में भी जंत्रित का अर्थ 'ताले से बंद' ही है। 'जंदर' की खाती के उस यंत्र के लिये भी रूढ़ि हो गई है जो छत की कड़ी को ऊँचा करने के काम में आता है। संस्कृत में 'यंत्रक' चरखे के अर्थ में आता है। एक पुराना श्लोक है—

रे रे यंत्रक मा रोदीः कं कं न भ्रमयन्त्यमूः।
कटाक्षाक्षेपमात्रेण कराकृष्टस्य का कथा॥

रे चरखे! चूं चूं क्यों करता है? क्यों रोता है? स्त्रियाँ केवल कटाक्ष ही डाल कर किस किस को नहीं घुमा देतीं? (तेरी तरह) जिसे हाथ पकड़ कर खैंचे उसका तो कहना ही क्या? प्रबंधचिंतामणि में यह श्लोक मुंज से उस समय कहा हुआ कहा गया है जिस समय वह तैलप की राजधानी में गली गली घुमाया गया था और जिस अवसर पर उसने 'घर घर तिम्म नचाविइ' और 'हिंडइ डोरी बंधियउ' वाला दोहा कहा था। टानी ने यहाँ पर यंत्रक का अर्थ जेलर किया है कि हे जेलर, मत रो इत्यादि! यंत्र की रूढि कहीं कहीं अरहट के अर्थ में भी हो गई है। महाभारत आदि में 'यंत्र' एक तरह की गोफन या तोप के अर्थ में आता है जिससे

शत्रुओं पर बड़े बड़े पत्थर फेंके जाते थे। और वहीं 'यंत्र' का अर्थ वह घिरियों वाला डोरियों का समावेश भी है जिससे इंद्रध्वज पूजा के लिए ऊँचा उठाया जाकर फिर धीरे से गिराया जाता था (यंत्रोत्सृष्ट इव ध्वजः)। हिंदी में 'जंतर' भूतप्रेतादि से बचानेवाले लिखित वर्ण या रेखा निवेश पर नियमित हो गया है और बँगला में 'जाँता' आटा पीसने की चक्की ही रह गई है।

(१३) कुछ पुराने रिवाज और विनोद।

हेमचंद्र की 'देशी नाममाला' में कई शब्द उस समय के रीति रिवाज और विनोद आदि के सूचक हैं। उनका संग्रह पाठकों के मनोविनोद और जानकारी के लिये यहाँ दिया जाता है। अर्थ हेमचंद्र ही का लिखा अनुवाद किया जाता है और कुछ टिप्पणी भी आवश्यकतानुसार दी जाती है—

अंवेट्टी (१।७)—मुट्ठी का जुआ (वुर्भावल)।

अण्णाण (१।७)—विवाह काल में जो वधू को दिया जाय (दहेज) या जो विवाह के लिये वधू ही वर को देती है (उलटी मुँहदिखाई ?)

आणंदवड (१।७२) पति से प्रथम यौवन हरण होने पर स्त्री का रुधिर से छिंटा वस्त्र। वह बांधवों को आनंदित करता है इस लिये आनंदपट कहा जाता है (कई जातियों में अब भी रस्म है कि ऐसे वस्त्र में मिठाई रख कर बिरादरी में बाँटी जाती है)।

इंदमह (१।८१) कौमार, कुमारावस्था।

उड्डुहिअ (१।१३७) ब्याही स्त्री का गुस्सा, या ब्याही की जूठन।

एमिणिआ (१।१४५) वह स्त्री जिसका शरीर सूत से नाप कर सूत चारों दिशाओं में फेंका जाता है। किसी देश की विशेष रस्म है। [पंजाबी

√ मिणना = नापना, सं० √ मा (मीनाति मिनोति०)]

ओलुंका (१।१५३) छिपने का खेल जिसमें लड़के छिप कर खेलते हैं, या चक्षुःस्थगन क्रीड़ा (आँख मिचौनी)।

ओरुंज (१।१५६) वह खेल जिसमें 'नहीं है, नहीं है' यों कहा जाय (कहमुकरनी ?)

काज्जप्प (२।४६) स्त्रीरहस्य।

खिक्खिरी (२।७३) सूचना के लिये छड़ी जिसे डोम आदि इस कारण साथ लिए रहते हैं कि और लोग उन्हें स्पर्श न कर लें (देखिए, फाहियान का वर्णन, पत्रिका भाग ३, पृ. ४२। रजवाड़ों में अछूत जातियाँ काक या कुक्कुट को पर इसी प्रकार सिर पर लगाती हैं)।

गगिज्जा (२।८८). नई व्याही बहू।

गंजोल्लिअ (२।१००) हँसी के स्थान में अंग स्पर्श, जो लोक में 'गिलगिलाविअ' ऐसा रूढ़ है (गिलगिली चलाना)।

छप्पंती (३।२५) एक रस्म जिसमें कमल लिखा जाता है।

छिंछट रमण (३।३०) मिचणकीला, आँखमिचौनी।

झोंडलियां (३।६०) रासक के सदृश खेल जिसमें कन्याएँ (और बालक) नाचते खेलते हैं (रास)।

णवलया (४ । २१) एक रस्म जिसमें स्त्री से पति का नाम पूछते हैं और न कहने पर वह पलाशलता से पीटी जाती है (राजपूताने में कहीं कहीं हिंडोले पर झूलते समय स्त्रियाँ यह खेल अब भी करती हैं, हेमचंद्र ने एक श्लोक

इसका अर्थ समझाने के लिये उद्धृत किया है जिससे जान पड़ता है कि स्त्री पुरुष मिलकर यह खेल खेलते थे और कुछ चक्कर खाना भी होता था—नियमविशेषश्च णावलया ज्ञेया । आदाय पलाशलतां भ्राम्यति लोकोऽखिलो यस्याम् । पृष्टा पतिनाम स्त्री निहन्यते चाप्यकथयन्ती । उसने जो स्वरचित उदाहरण दिया है उसमें भी 'दोलाविलाससमए' है किंतु 'पुच्छन्ती' 'सही (= सखी) ही हैं । [नाँव + लेने की क्रिया—लया]

णीरंगी (४ । ३१) सिर ढँकने का वस्त्र, घूँघट [आभाणक शतक में नीरंगिका (संस्कृत) एक कहावत में आया है कि अंधे श्वसुर के लिये नीरंगिका कैसी ?]

णंड्डुरिआ (४ । ४५) भाद्रपद शुक्ल दशमी का उत्सव विशेष ।

तुणअ (५ । १६) झुंखा नाम का बाजा [पतंजलि का 'मृदंगशंखतूणवाः' का तूणव ?]

थंवरिअ (५ । २९) जन्म के अवसर पर बाजा गाजा ।

दुक्कर (५ । ४२) माघ की रात्रि में चार पहर (प्रति पहर) स्नान का नियम [दुष्कर !] ।

दुद्धोलणी (५ । ४६) जो गाय एक बार दुही जाकर फिर भी दुही जा सके।

दिअसिअ (५ । ४०) सदा भोजन (दिवसिक) ।

दिअहुत्त (५ । ४०) सवेरे का भोजन (दिवाभुक्त) ।

दोवेली (५ । ५०) सायंकाल का भोजन (वियालू) ।

धम्मअ (५ । ६३) चोर दुर्गा के सामने पुरुष को मारकर उसके अंग के रुधिर से जंगल में जो धर्मार्थ बलि करते हैं । [उस समय के ठग ?]

पंथुच्छुहणी (६।३५) सुसराल से पहलेपहल (पीहर) लाई हुई नववधू ।

पाडिअज्झ (६।४३) जो पीहर से बहू को सुसराल पहुँचावे ।

पोअलअ (६।८१) आश्विन मास में उत्सव जिसमें पति स्त्री के हाथ से लेकर अपूप (पुआ) खाता है ।

मुक्कय (६।१३५) जिस स्त्री का विवाह होनेवाला हो उसे छोड़ कर और निमंत्रित स्त्रियों का विवाह हो जाना ।

मट्टुहिअ (६।१४६) ब्याही हुई का कोप ।

लय (७।१६) नए विवाहित स्त्री पुरुषों के जोड़ का आपस में नाम लेने का उत्सव । इस शब्द के उदाहरण में हेमचंद्र ने जो गाथा बना कर लिखी है उसका आशय यह है कि-महाराज कुमारपाल ! आप की सेना को आती हुई देख कर भागते हुए रिपु-दंपति आपस में नाम ले लेकर पुकारते हैं और अपने 'लय' को याद करते हैं (कि विवाह होने पर भी यों किया था) देखो [ऊपर 'णवलया']

लयापुरिस (७।२०) एक उत्सव जिसमें वधू का चित्र हाथ में कमल देकर बनाया जाता है ।

वहुमास (७।४६) जब नई विवाहिता स्त्री के घर से पति बाहर न जाय वहीं रमण करता रहे वह विशेष रीति या उत्सव [हनीमून !]

वहुहाडिणी (७।५०) एक स्त्री के "ऊपर" जो दूसरी स्त्री लाई जाय ।

वोरल्ली (७।८१) श्रावण शुक्ल चतुर्दशी का विशेष उत्सव [राखी ?]

सुग्गिम्मह (८।३९) फाल्गुनोत्सव यह संस्कृत सुग्रीष्मक का तद्भव है इस लिये देशी में नहीं गिना

है। हेमचंद्र ने भामह में से 'सुग्रीष्मक' के प्रयोग का उदाहरण दिया है [फाग?]

संवाडग्र (८।४३) अंगूठे और विचली अंगुलि से चप्पुटिका बजाना [चुटकी]

हिंचिअ, हिंविअ (८।६८) एक टाँग उठा कर एक ही से चलने का बच्चों का खेल।

(१४) पंचमहाशब्द।

इस विषय में पहले लिखा जा चुका है कि पाँच प्रकार के कोई बाजे बजाने का समान, जो बड़े राजा की ओर से छोटे सामंत या अधिकारी को मिलता था, वही 'समधिगतपंचमहाशब्द' उपाधि से सूचित किया जाता था। वे पाँच बाजे कौन होते थे इसकी परिसंख्या में भेद है, केवल नामगणना मिलती है, कोई वैज्ञानिक विभाग नहीं। अमरकोश में चार तरहँ के बाजों का उल्लेख है[1]--तत (तना हुआ) जैसे वीणा, सैरंध्री, रावणहस्त, किन्नरी आदि; आनद्ध (ढका बंधा) जैसे मुरज, दर्दुर, करट आदि; सुषिर (छेद वाला) जैसे वंशी आदि; घन (ठोस) जैसे कांस्यताल आदि। क्षीरस्वामी की टीका अमरकोशोद्घाटन में इस प्रसंग की भरत की परिभाषा भी उद्धृत की है। प्रबंधचिंतामणि में एक जगह 'पंच-शब्द बजानेवालों को सोना बाँट कर फोड़ कर' म्लेच्छों से युद्ध करते समय वलभी के राजा शीलादित्य के घोड़े के चमकाए जाने का उल्लेख है[2]। उसके अनुवाद की टिप्पणी में टानी ने प्रोफ़ेसर ज़ेचर के हवाले से साधुकीर्ति की शेषसंग्रहनाममाला नामक कोश की पूना की एक हस्तलिखित प्रति से पंचशब्द का यह लक्षण उद्धृत किया है[3] जहां बाजों के पाँच वैज्ञानिक विभाग बताने का यत्न किया है--

(१) अमरकोश १।६।४। और क्षीरस्वामी का अमरकोशोद्घाटन, ओक का संस्करण पृ० ३१।

(२) शास्त्री का संस्करण, पृ० २७१

(३) टानी का अनुवाद, पृ० ११४

आहतं अनाहतं दण्डकराहतम् ।
वाताहतं कंसालादि कण्ठाद्यं पटहादिकम ।
वीणादिकं च भेर्यादि पञ्चशब्दमिदं स्मृतम् ॥

यह तो हुआ, किंतु कश्मीर के इतिहास में पंचमहाशब्द का और ही अर्थ मिलता है जो इससे पुराना है । वहाँ पंचमहाशब्द का यही अर्थ होता है कि "पाँच राज्य के अधिकार जिनके नाम के पहले 'महा' शब्द हो ।" इस अर्थ में 'समधिगतपंचमहाशब्द' मंत्रियों, प्रधानों और कामदारों के लिये आ सकता है, सामंत या स्वतंत्र राजाओं के लिये नहीं । यद्यपि उनमें से एक महाशब्द राजा या रानी के लिये भी आया है । ये पंचमहाशब्द ओहदों या पदों के सूचक थे और वे पाँच प्रकार के बाजों के ।

कहते हैं कि पहले कश्मीर का राजप्रबंध इतना अधूरा था कि वहाँ सात ही प्रकृतियाँ (राज्यांग) थीं—धर्माध्यक्ष, धनाध्यक्ष, कोशाध्यक्ष, सेनापति, दूत, पुरोहित और ज्योतिषी । व्यवहार, धन आदि से राज्य की यथावत् वृद्धि नहीं हुई थी इस लिये सामान्य देशों की तरह राज्य चलता था । राजा जलौक ने अट्ठारह कर्मस्थान (महकमे) बना कर युधिष्ठिर की सी स्थिति कर दी[1] । युधिष्ठिर की सी स्थिति कहने का यही अभिप्राय है कि महाभारत, सभापर्व, में जो अट्ठारह 'तीर्थ' या अधिकारी कहे हैं[2] उन सब के अधिकार स्थापित किए । पीछे जब

(१) राजतरंगिणी १।११८-१२० मेवाड़ में कमठाण = कर्मस्थान = इमारत का महकमा ।

(२) महाभारत, सभापर्व, अध्याय ५, श्लोक ३१ में नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया है कि—

कच्चिदष्टादशान्येषु स्वपक्षे दश पञ्च च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः ॥

इसकी टीका में इन तीर्थों का विवरण दिया है—

मंत्री पुरोहितश्चैव युवराजश्चमूपतिः ।
पञ्चमो द्वारपालश्च षष्ठोन्तर्वेशिकस्तथा ॥
कारागाराधिकारी च द्रव्यसंचयकृत्तथा ।
कृत्याकृत्येषु चार्थानां नवमो विनियोजकः ॥

कश्मीर के राजा ललितादित्य मुकुटापीड ने[1] कान्यकुब्ज देश के राजा यशोवर्मा[2] को हराया तब उन दोनों में संधिपत्र लिखा जाने लगा। उसमें लिखा गया कि 'यशोवर्मा और ललितादित्य की संधि'। इसपर ललितादित्य के सांधिविग्रहिक[3] मित्रशर्मा से नहीं रहा गया, उसने आपत्ति की कि पीछे नाम लिखे जाने से विजेता होने पर भी मेरे स्वामी का अपमान होता है। राजा ने इसे बड़ी बात समझी यद्यपि लंबी लड़ाई से थके हुए सेनापतियों को यह हुज्जत बुरी लगी। राजा ने पहले के अट्ठारह कर्मस्थानों के ऊपर और पाँच बनाकर उसे उनका अधिकार दे पंच महाशब्दों का पात्र बनाया[4]। वे पाँच पद ये थे—महाप्रतीहारपीडा[5] (राजा की पेश-गाह में लोगों की सूचना देना और मिलाना), महासंधिविग्रह (इलाके ग़ैर), महाश्वशाला (घुड़साल की प्रधानता), महाभाण्डागार (ख़ज़ाने की प्रधानता) और महासाधनभाग[6] (प्रधान कार्यकारी)। ये पाँच पद प्रतिष्ठ मात्र ही हैं, वस्तुतः अट्ठारह कर्मस्थानों में अंतर्भूत हो जाते हैं[7]।

---

[8] प्रदेष्टा नगराध्यक्षः कार्य्यनिर्माणकृत्तथा ।
धर्माध्यक्षः सभाध्यक्षो दण्डपाल स्त्रिपञ्चमः ॥
षोडशो दुर्गपालश्च तथा राष्ट्रान्तपालकः ।
अटवीपालकान्तानि तीर्थान्यष्टादशैव तु ॥

(१) कल्हण के अनुसार इसका समय ई० सं० ७०० से ७३६ तक आता है। इसीने बादशाह हिउनत्सं के राज्यकाल में चीन में दूत भेजा था।

(२) वाक्पति यशोवर्मा का राजकवि था और उसने गउडवहो में यशोवर्मा की गौड़ राजा पर जीत का वर्णन प्राकृत कविता में किया है। यशोवर्मा (इ-च फोन-मो) ने सन् ७३१ में अपने मंत्री सेङ्-पो-ता को चीनी दरबार में भेजा था। भवभूति भी इसी के यहाँ था। (राजतरंगिणी ४।१४४)।

(३) संधि और विग्रह (मेल और झगड़े) के अधिकारी, फारेन मिनिस्टर।

(४) राजतरंगिणी ४।१३७ से १४२।

(५) पीडा क्या है? पं० दुर्गाप्रसाद जी ने महाप्रतीहारपीठ (आसन) पद की कल्पना की है जो उचित है।

(६) साधनभाग पुलिस हो सकती है।

(७) अष्टादशानामुपरि प्राक् सिद्धानां तदुद्भवैः। कर्मस्थानैः स्थितिः प्राप्ता ततः प्रभृति पंचभिः ॥ राजतरंगिणी ४।१४१।

पीछे शाही आदि राजपुरुषों को भी यह पद मिलने लगे[1]। कश्मीर के राजा जयापीड ने या तो स्वयं 'महाप्रतीहारपीडा(ठा ?)धिकार' पाया या अपनी रानी कल्याणदेवी को यह अधिक कार दिया[2]। उसी राजा के मंत्री जयदत्त ने जयपुर कोट्ट में मठ बनाया था[3] जिसे 'पंचमहाशब्दभाजन' कहा गया है। राजा चिप्पट जयापीड़ की बाल्यावस्था में उसकी माता जयादेवी के भाइयों में बड़े उत्पलक ने 'पंचमहाशब्द' ग्रहण किए, और बाकी कर्मस्थान दूसरे मामाओं ने[4]।

(१५) वेलावित्त।

प्रबंधचिंतामणि में एक जगह आया है कि 'स्थगिकावित्त' से पान दिए जाने के पहले ही मुँह में पान डालकर राजा खाने लगा[5]। स्थगिका तो चंगेरी, पिटारी, थैली या पानदान होता है, तो आशय पानदान रखनेवाले नौकर से हुआ। इसी अर्थ में उसी पुस्तक में 'स्थगीधर'[6] और 'छ(स्थ)गिकाधर'[7] आया है और सइद नामक समुद्र के व्यापारी को 'नौवित्तक'[8] कहा है जिससे 'स्थगिकावित्त' के अर्थ में कोई संदेह नहीं रह जाता।

इससे राजतरंगिणी के 'वेलावित्त' का अर्थ स्पष्ट होता है। वहाँ कई जगह राजा के वेलावित्त नौकरों की चर्चा आती है। राजा शंकर वर्मा (ई० स० ८८३ से ९०२) के मारे जाने पर तीन रानियों के साथ साथ जयसिंह नामक कृतज्ञ, कृती वेलावित्त का उसका अनुगमन करना,

(१) वही, ४।१४३।

(२) महाप्रतीहारपीडाधिकारं प्रतिपद्य स:ऽ कल्याणदेवी(वीं ?) दाक्षिण्या-दकरोदधिकेऽन्नतिम्॥ राजतरंगिणी ४।४८५, पहला अर्थ पं० दुर्गाप्रसाद जी के पाठ का है, दूसरा स्टेन का।

(३) राजतरंगिणी ४।५१२

(४) वही ४।६८०

(५) पृ० ११६

(६) पृ० ८२

(७) पृ० ९५

(८) पृ० २६०

पीछे मरना, लिखा है[१]। (शिलालेखों में पोते के साथ सहमरण करने वाली 'पोतासतियों' और राजा के साथ 'सती' होनेवाले, पाचक, पुरोहित और नौकरों का भी उल्लेख मिलता है)। राजा यशस्कर (ई० स० ९३९---९४८) के लिये लिखा है कि उसने एक वेलावित्त को मंडलेश बना दिया और वह राजपत्नियों से कुव्यवहार करने लगा तो राजा ने इस बात को देखी अनदेखी कर दिया[२]। वही राजा सांघातिक रोग से पीड़ित होकर मठ में मरने गया और उसके प्राण नहीं निकले तो साम्राज्य हर लेने की जल्दी करनेवाले (कृतत्वरैः) मित्र, बंधु, नौकर और वेलावित्तों ने उसे विष देकर मार डाला[३]। उसके पुत्र संग्रामदेव (ई० स० ९४८-९४९) के राजा होने पर पर्वगुप्त ने राज्य के लोभ में संग्रामदेव के पिता के किसी वेलावित्त से नज़र की तरह लाई हुई फूलमाला गले में डाल घसीट कर संग्रामसिंह को राजसिंहासन से गिराया और दूसरे घर में मार कर गले में शिला बांधकर वितस्ता में डुबा दिया[४]।

रानी दिद्दा ने, जो बहुत बदनाम थी, भुय्य नामक नगराधिपति को विष से मरवा कर रक्क के पुत्र वेलावित्त देवकलश को, जो निर्लज्ज छिनला कुटनापन करता था, भुय्य के स्थान पर नियत किया[५]।

इन सब स्थलों में वेलावित्त का तात्पर्य किसी प्रकार के कृपापात्र या हाजिरबाश नौकर से है जिसका समय से कुछ संबंध है।

इसीसे मिलता हुआ शब्द प्रसादवित्त है जो कृपापात्र (मर्ज़ीदाँ) के लिये राजतरंगिणी में दो जगह आया है। एक चमक नामक चारण था जो कुटनेपन से नए राजा कलश (ई० स० १०६३ से

(१) राजतरंगिणी ५।२२६।पं० दुर्गा प्रसाद जी के संस्करणमें 'वेलाविभुः' पाठ है जो कश्मीरी लिखावट में 'त्त' और 'भु' की समानता से हुआ है।

(२) नीतस्य मण्डलेशत्वं वेलावित्तस्य भूभुजा। देवीः कामयमानस्य चक्रे गजनिमीलिका ॥ (राजतरंगिणी, ६।७३)

(३) वही ६।१०६

(४) राजतरंगिणी ६।१२५-२९।

(५) वही ६।३१२-३२४।

१०८९) के मुँह लग गया, मंत्रियों के बीच उस 'प्रसादवित्त' ने प्रतिष्ठा पाई और वह 'नृकुक्कुर' 'ठक्कुर' कहलाने लगा[1]। उसी राजा कलश की भोगपत्नी कय्या की आगे चलकर निंदा की गई है कि सात रानियाँ और एक पासवान तो सती हुई, किंतु उस प्रसादवित्ता ने स्त्रीजाति को कलंकित किया। वह विजयक्षेत्र में किसी ग्रामनियोगी गाँव के कर्मचारी की रक्षिता बन कर रहने लगी[2]।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार वित्त का अर्थ 'पाया हुआ', 'जाना हुआ या प्रसिद्ध' या 'विचारा हुआ' हो सकता है[3]। पाणिनि ने एक सूत्र में दिखाया है कि 'अमुक बात से प्रसिद्ध' इस अर्थ में 'वित्त' आता था[4]। अतएव 'स्थगिकावित्त' का अर्थ हुआ 'स्थगिका रखने से राज दरबार में प्रसिद्ध या जाना गया', वेलावित्त का अर्थ हुआ 'राजा का समय जानने में प्रसिद्ध अर्थात् जो समय असमय राजा के पास जा सके और जिसे अवसर की कोई रुकावट न हो', और प्रसादवित्त हुआ 'राजा की कृपा के कारण प्रसिद्ध'। वित्त का अर्थ पाया हुआ या धन ही करें तो क्रमशः अर्थ हुए —स्थगिका रखना ही है धन जिसका, वेला जानना या वेला का उपयोग करना ही है वित्त जिसका और कृपा ही है वित्त जिसका। नौवित्तक तो स्पष्ट ही है।

(१६) डिंगल।

डिंगल शब्द के अर्थ में कई मतभेद हैं। राजपूताने की प्राचीन

---

(१) राजतरंगिणी ७।८७—९० । स्टाइन ने न मालूम नृकुक्कुर का अर्थ 'मनुष्यों में मुर्गा' कैसे किया है।

(२) वही ७।७२४—८।

(३) वित्तो भोगप्रत्ययोः (पाणिनि ८।२।५८) धनं हि भुज्यते इति भोगोऽभिधीयते। वित्तोऽयं मनुष्यः प्रतीतः प्रतीयते इति (काशिका) वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते। वेत्तेर्विन्नश्च वित्तश्च भोगे वित्तश्च विन्दतेः (महाभाष्य)। विन्दतेर्धनप्रसिद्ध्योः (भाषावृत्ति)।

(४) तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ (पाणिनि ५।२।२६) तृतीयासमर्थात् वित्तः प्रतीतो ज्ञात इति (काशिका)

कविता, जिसमें देशी अपभ्रंश अधिक आते हैं और कर्कश शब्दों का अधिक प्रयोग होता है, डिंगल कहलाती है। डिंगल कविता का समय हो नहीं चुका, अब भी चारण वैसी कविता करते हैं। राजपूताने के कवि और कविता जाननेवाले व्रजभाषा की सुकुमार कविता को तो पिंगल कहते हैं और कर्कशशब्दप्रचुर देशी कविता को डिंगल। पिंगल तो छंद के आचार्य हैं, यह नहीं कि डिंगल कविता के छंद कोई दूसरे हैं, किंतु डिंगल के छंद पिंगल सूत्रों में लिखे छंदों में अंतर्भूत हो जाते हैं, किंतु व्यवहार में शृंगार का दोहा जिसकी भाषा सुकुमार हो 'पिंगल' कहलावेगा (लक्षण शास्त्र का लक्ष्य पर उपचार) और दानस्तुति, निंदा (भूँडा) या वीरता का देशी दोहा डिंगल।

एक महाशय ने तो डिंगल को प्राचीन राजस्थानी भाषा का नाम मान लिया है और राजपूताने की चटशालों की अखरावट को डिंगल की वर्णमाला कह दिया है। इसका अत्यासक्ति को छोड़ कर कोई प्रमाण नहीं। कुछ लोग डिंगल का अर्थ 'डगर की बोली' करते हैं पर डगर क्या है और कहाँ है इसका कुछ पता नहीं। पहाड़ी या रेतली भूमि अर्थ करने से भी डिंगल कविता के क्षेत्र का यह नाम होना सिद्ध नहीं होता। एक चारण महाशय इसकी व्युत्पत्ति में कहते हैं कि "म्हैं डगल जेड़ी करां हां" अर्थात् व्रजभाषा के कवि तो कटे छंटे तराशे पत्थरों से मकान बनाते हैं, हम मिट्टी के टेढ़े मेढ़े डगल या ढेले दो दो जोड़ कर झोंपड़ा चुनते हैं, इस 'डगल' से डिंगल बन गया। इस निर्वचन में भी डगल डिंगल के श्रुतिसाम्य के अतिरिक्त कुछ तत्व नहीं।

मेरे मत में डिंगल केवल अनुकरण शब्द है, 'काफ़िया न मिलेगा तो बोझों तो मरेगा' की कहावत के अनुसार पिंगल से भेद दिखाने के लिये बना लिया गया है। जैसे वासवदत्ता के विषय में (अधिकृत्य) बनाई गई कहानी वासवदत्ता कहलाती है वैसे ही लक्षण शास्त्र और लक्ष्य रचना के अभेदोपचार से हिंदी कविता 'पिंगल' कहलाई।

उससे भेद करने के लिये, श्रुतिकटु टवर्गबहुल भाषा की कविता के लिये 'डिंगल' एक यदृच्छा शब्द है, डित्थ आदि की तरह इसका कोई अर्थ नहीं है।

निश्चित अर्थ के वाचक किसी शब्द से, उससे भेद दिखाने के लिये, उसीकी छाया पर दूसरा अनर्थक शब्द बनने और उसके दूसरे अर्थ के वाचक हो जाने के कई उदाहरण मिलते हैं।

(१) कर्म का अर्थ सब जानते हैं। कुछ धातु द्विकर्मक होते हैं जिनके साथ एक कर्म गौण या अनुक्त होता है और दूसरा प्रधान या उक्त। इस अनुक्त या 'अकीर्तित' कर्म के लिये वैयाकरणों के यहां 'कल्म' संज्ञा है। यह संज्ञा भाष्यकार पतंजलि ने बनाई या परोक्षा, भवन्ती आदि की तरह पुराने आचार्यों की बनाई है इसका तो कोई पता नहीं, किंतु इसका अर्थ कुछ नहीं है, केवल 'कर्म' से भेद करने के लिये उससे मिलता जुलता नाम बना लिया है। स्वामी दयानंद ने केवल परिष्कार जाननेवाले नवीन वैयाकरणों को चकराने के लिये इसका उपयोग किया किंतु 'कल्म', 'कर्म' ऐसे ही हैं जैसे डिंगल, पिंगल।

(२) कुमार का अर्थ बालक है। उसके तद्भव 'कँवर' का अर्थ उस मनुष्य में रूढ़ हो गया है जिसका पिता जीता हो। किसी रज-पूत को पिता के जीते 'कँवर' न कह कर 'ठाकुर' कहना बाप को गाली समझा जाता है। 'कँवर रामसिंह' का अर्थ हुआ रामसिंह जिसका पिता जीता है, पिता के मरने पर वह ठाकुर हो जायगा। अब यदि रामसिंह के पुत्र हो जाय तो वह क्या कहलावेगा? उसका पिता स्वयं कँवर है। इस लिये दादा के सामने पोते के लिये सांकेतिक नाम बनाया गया—भँवर। भँवर का कोई अर्थ नहीं है, न भ्रमर से संबंध है, यह केवल कँवर से भेद करने के लिये मिलता जुलता शब्द है। वैसेही पड़दादा के जीते दुर्लभ पड़पोते को 'तँवर या टँवर' कहते हैं।

(३) जातियों के विभाग में दस्सा और बीसा पद आते

हैं। दस्सा का अर्थ दासीपुत्र, या मातृपक्ष से हीन है। 'दासी' से दस्सा बना है। इस शब्द के प्रचलित होने पर असल या शुद्ध जातिवालों ने 'दस्सा' में दस की संख्या समझ कर और बीस बिस्वे की पूर्णता के उपचार से अपना नाम 'बीसा' रख लिया। दस्सा का दस से कुछ संबंध नहीं है, न बीसा का बीस से; किंतु दास से बननेवाले दस्सा को हीनपक्ष पर रूढ़ देख कर उसका दस की संख्या से श्रुतिसाम्य मानकर उससे भेद करने के लिये और अपने को बीसों बिस्वा 'असल' बताने के लिये बीसा नाम गढ़ लिया गया।

(४) रुक्का का अर्थ पत्र है। सांकेतिक व्यवहार में एक रियासत में पत्रों के क्रमानुसार दरजे हैं जैसे कैफ़ियत, परवाना, रूबकार आदि। रुक्का नीचे के अधिकारी के नाम ऊँचे अधिकारी की लिखावट के अर्थ में रूढ़ हो गया है। रुक्के से नीचे दर्जे की लिखावट के लिये 'सुक्का' नाम बनाया गया है। सुक्का का कोई अपना अर्थ नहीं है, न इसका सूखे से कोई संबंध है; केवल रुक्के से भेद बताने के लिये यह सुक्के का तुक्का चलाया गया है।

(५) पंजाबी 'अढाई घर' सारस्वतों की 'पंचजाति' कुमड़िये, जैतली, झिंगण, तिक्खे और मोहलों से भेद दिखाने के लिये ही 'चार घर' की जातियों के नाम कुछ विकृत करके लुमड़िये, पेतली, पिंगण, पिक्खे और बोहले रक्खे गए (सारस्वतसर्वस्व, पृ० २३२-३)। इन पदों का कोई अर्थ नहीं है, पहले नामों से भेदमात्र दिखाने को परिवर्तन किया है।

(१७) रामचरितमानस और संस्कृत कवियों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव।

(१) सुनु दसमुख खद्योतप्रकासा।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥

यदि खद्योत भासापि समुन्मीलति पद्मिनी।

(२) स्याम सरोज दाम सम सुंदर ।

प्रभुभुज करि कर सम दसकंधर ॥

सो भुज कंठ कि तव असि घोरा ।

रघुपतिभुजदण्डादुत्पलश्यामकान्ते–

र्दशमुख भवदीयान्निष्कृपाद्वा कृपाणात् ॥

---

(३) चंद्रहास हर मम परितापं ।

रघुपति विरह अनल संजातं ॥

चन्द्रहास हर मे परितापं रामचन्द्र विरहानल जातम् ॥

रामचरितमानस के तीनों अवतरण सुंदरकांड में से हैं और संस्कृत के तीनों कवि जयदेव के प्रसन्नराघव नाटक में से (पूना का छपा, सन् १८९४, देखो ज० रा० ए० सो०, अप्रैल १९१४)

(४) है कपि एक महाबल सीला ।

आवा प्रथम नगर जेहि जारा ।......

......सत्य नगर कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ ।

फिरि न गयउ सुग्रीव पहँ तेहि भय रहा लुकाइ ॥

(लंकाकांड)

कस्त्वं वानर रामराजभवने लेखार्थ संवाहकः

यातः कुत्र पुरागतः स हनुमान् निर्दग्धलङ्कापुरः ।

बद्धो राक्षससूनुनेति कपिभिः संताडितस्तर्जितः

स व्रीडात्तपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते ॥

(? हनुमन्नाटक में से, कुवलयानंद में उद्धृत)

(१८) न्यायघंटा ।

राजतरंगिणी में राजा हर्ष (ई० स० १०८९—११०१) के वर्णन में लिखा है कि उसने अपने महल के सिंहद्वार पर चारों ओर बड़े बड़े चार घंटे बँधवा दिए जिससे उनके बजने से वह विज्ञप्ति (प्रार्थना) करना चाहनेवालों का आना जान जाय। जानकर तथा उनकी

दुखिया बानी सुनकर वह उनकी तृष्णा ऐसे हटाता जैसे बरसाती मेघ चातकों की[1] ।

प्रबंधचिंतामणि में एक कथा है कि चौड (= ? चोड, चोल, या गौड) देश में गोवर्धन नामक राजा के यहाँ सभामंडप के सामने लोहे के स्तंभ पर न्यायघंटा था जिसे न्याय चाहनेवाला बजा दिया करता । एक समय उसके एकमात्र पुत्र ने रथपर चढ़कर जाते समय जान बूझ कर एक बछड़े को कुचल दिया । बछड़े की माता (गौ) ने सींग अड़ाकर घंटी बजा दी । राजा ने सब हाल पूछकर अपने न्याय को परम कोटि पर पहुँचाना चाहा । दूसरे दिन सवेरे स्वयं रथ पर बैठ राह में अपने प्यारे इकलौते पुत्र को लिटा कर उस पर रथ चलाया और गौ को दिखा दिया । राजा के सत्व और कुमार के भाग्य से कुमार मरा नहीं[2] ।

जिनमंडनगणि ने कुमारपाल प्रबंध में लिखा है कि कुमारपाल ने राजसिंह द्वार पर न्याय घंटे बँधवाए थे[3] ।

अमीर खुसरो अपने नुह सिपिहर अर्थात् नवचक्र नामक फारसी ग्रंथ में जो कुतबुद्दीन मुबारक शाह (तख्तनशीनी सन हिजरी ७१६, ई० १३१६ ई०) के समय में बना था लिखता है कि मैंने यह कथा सुनी है कि दिल्ली में पाँच या छै सौ वर्ष पहले अनंगपाल नामी एक बड़ा राय था । उसके महल के द्वार पर पत्थर के दो सिंह थे । इन सिंहों के पास उसने एक घंटी लगवाई कि जो न्याय चाहें उसे बजा दें जिस पर राय उन्हें बुलाता, पुकार सुनता और न्याय करता । एक दिन एक कौआ आकर घंटी पर बैठा और घंटी बजाने लगा । राय ने पूछा कि इसकी क्या पुकार है । यह बात अनजानी नहीं है कि कौए सिंह के दाँतों में से मांस निकाल लिया करते हैं । पत्थर के सिंह शिकार नहीं करते तो कौए को अपनी नित्य जीविका कहाँ

(१) राजतरंगिणी ७।८७९–८० ।

(२) पृ० २८९ ।

(३) आत्मानंद सभा का संस्करण, पृ० ६० (२)

से मिले? राय को निश्चय हुआ कि कौए की भूख की पुकार सची है, क्योंकि वह उसके पत्थर के सिंहों के पास आन बैठा था। राय ने आज्ञा दी कि कई भेड़ बकरे मारे जायं जिससे कौए को कई दिन का भोजन मिल जाय[1]।

इब्नबतूता सुलतान अलतंमश के वर्णन में लिखता है कि उसने आज्ञा दी कि जिस किसी पर अन्याय हुआ हो वह रंगीन कपड़े पहना करे। इस देश में लोग सफेद कपड़े पहनते हैं। इससे जब सुलतान का दरबार होता या वह बाहर जाता और किसी को रंगीन कपड़े पहने देखता तो उसकी पूछ ताछ करता और सताने वाले से उसे न्याय दिलवाता। किंतु सुलतान इस उपाय से प्रसन्न नहीं हुआ। सोचा कि कुछ लोगों पर रात को अन्याय होता है मैं उनका भी निस्तार करना चाहता हूँ। इसलिये उसने दरवाजे पर दो संगमर्मर के सिंह ऊँची चौकियों पर स्थापित किए। इनके गले में एक जंजीर थी जिसमें एक बड़ा घंटा लटक रहा था। अन्याय के सताए रात को आकर घंटा बजाते, सुलतान सुनकर झट पूछ ताछ करता और पुकारू को संतुष्ट करता[2]।

सुलैमान सौदागर जो भारत और चीन में पहला मुसलमान यात्री था, और जिसकी यात्रा का विवरण हिजरी सन २३८ (ई० स० ८५१) के समीप का है, चीन के वर्णन में लिखता है—हर एक शहर में एक छोटी घंटी होती है जो राजा के या शासक के (बैठने के स्थान में) सिर पर दीवाल के बँधी होती है। इसके बजाने के

---

(१) इलियट, जिल्द २, पृ० २६९। महाभारत में कुलिंग शकुनि, कलिंगशकुनि या भूलिंगशकुनि (भू पक्षी) का दृष्टांत कई जगह दिया है कि वह कहा तो करता है, मा साहसं मा साहसं, साहस मत करो, किंतु स्वयं इतना साहस करता है कि शेर की दाढ में से मांस के टुकड़े निकाल कर खाता है। 'पर उपदेश कुशल' लोगों पर इस पक्षी का दृष्टांत दिया है 'न गाथा गाथिनं शास्ति बहु चेदपि गायति। प्रकृतिं यान्ति भूतानि कुलिङ्गशकुनिर्यथा'। हेमचंद्र ने परिशिष्ट पर्व में इसे 'मासाहसपक्षी' कहा है।

(२) इलियट, जिल्द २ पृ० ५९१।

लिये लगभग तीन मील लंबी डोर बाजार पर से जाती है कि लोग उसे पहुँच सकें। जब डोरी खिंचती है तब शासक के सिर पर घंटी बजती है और वह झटपट आज्ञा देता है कि जो मनुष्य यों न्याय के लिये पुकार रहा है वह मेरे पास लाया जावे। पुकारू स्वयं अपनी दशा और अन्याय का विवरण कहता है। यही चाल सब सूबों में है[1]।

बीकानेर[2] के राजा रायसिंह के भाई पृथ्वीराज का हाल सुनने से अकबर के समय में भी ऐसी जंजीर का होना पाया जाता है। पृथ्वीराज ने जो बड़े कवि थे यह छप्पय लिखकर गाय के गले में बाँध दिया था—

> अधर धरत त्रिण मुख्य ताहि कोऊ नहिं मारत।
> सो हम निस दिन चरत बैन दुरबल उच्चारत॥
> सदा खीर घृत झरत मोर सुत पृथ्वी वसावत।
> कहा तुरकन को कटु कहा हिंदुन मधु पावत॥
> हम नगार पनही हमहि गलो कटावत हम दिए।
> पुकार अकब्बर साह सों कहा खून हमने किए॥

वह फिरती फिरती बादशाह के महल के नीचे आकर स्वभाव से अदालत की जंजीर से सिर मारने लगी और घंटे बजने लगे। बादशाह फरियादी का आना जान निकल आए और कागज़ पढ़कर उन्हें ऐसी करुणा आई कि गोवध की मनाई कर दी गई।

पूरब के कवि इसी छप्पय के शब्दों में कुछ फेर बदल कर इसे नरहरि कवि की रचना कहते हैं जो उसने गाय के सींगों से बाँध दी थी।

सम्राट् जहाँगीर की ज़ंजीर अदालत का प्रमाण तुजुक जहाँगीरी

(१) रेनादो का अनुवाद; सन् १७३३ का छपा, पृ० २५।

(२) यहां से लेख के अंत तक का विषय मुंशी देवी प्रसाद जी की कृपा से प्राप्त हुआ है।

से मिलता है। वहाँ जहाँगीर लिखता है[1] कि तख्त पर बैठते ही पहिला हुक्म जो मैंने दिया वह इनसाफ़ की जंजीर बाँधने का था, जो अदालत के मुत्सद्दी जुल्म से सताए हुए लोगों की फ़रियाद को पहुँचाने और जांच करने में सुस्ती और ढील करें तो वे लोग इस जंजीर को हिला दें जिस से खबर हो जावे और वह इस तौर पर बनाई गई कि मैंने हुक्म दिया कि ४ (ईरान के ३२) मन खरे सोने की ३० गज़ लंबी जंजीर बनावें जिस में ६० घंटे लगे हों उसका एक सिरा तो किले की शाह बुर्ज से लगाया, और दूसरा दरिया (यमुना) के किनारे तक ले जाकर एक पत्थर की लाट पर गाड़ा गया।

हिंदी तारीख चगत्ता में जो जयपुरी बोली में जयपुर के महाराज माधोसिंह जी (पहले) की आज्ञा से बनाई गई थी और जिसकी प्रति टोंक के पंडित रामकर्ण जी के पास थी, मुंशी जी ने जहाँगीर के इनसाफ़ की यह कथा पढ़ी थी। एक गाय ने जंजीर हिलाई और बादशाह ने उसे देखकर साथ में एक सिपाही कर दिया। गाय सिपाही को एक पठान के घर ले गई जिसने कि उसका बछड़ा मार डाला था। सिपाही पठान को बादशाह के पास ले आया। बादशाह ने उसके हाथ पाँव बँधवा कर उसे गाय के सामने डलवा दिया और गाय ने उसे सींगों से मार डाला।

शायद उसी किताब में यह कथा भी है कि एक बार एक ऊँट ने जंजीर हिलाकर घंटी बजा दी। बादशाह ने उसकी पीठ छिली हुई और लोहू लुहान देखकर ऊँटवाले से कहा कि अगर अब छः मन से ज्यादा बोझ लादा तो सज़ा मिलेगी और उस दिन से ऊंट पर छः मन से ज्यादा बोझ न लादने का कानून बन गया।

(१८) पुरानी हिंदी।

संवत् १२७२ के मंगलाना के शिलालेख में संस्कृत के नीचे चार पंक्ति उस समय की पुरानी हिंदी कविता में भी है जिसे प्राकृत,

(१) जिल्द १ पृ० ५।

अपभ्रंश और पुरानी हिंदी का मिश्रण कह सकते हैं। लेख का उपयोगी अंश यह है—

श्रीमंगलाणके दधीचवंशे महामंडलेस्वर श्रीकदुवराजदेवपुत्र श्रीपदमःसीहदेवसुतमहाराजपुत्र श्रीजयत्रस्यंहदेतेन······वापी कारापिता

इसके नीचे यह प्राचीन संस्कृत श्लोक दाता की प्रशंसा में उद्धृत किया है—

> किं जातैः बहुभि पुत्रै सोकसंतापकारकै
>
> वरमेककुलालंवो यत्र विसर्यते कुलं ॥१॥

(लिपि ज्यों की त्यों रहने दी है।) इसके नीचे इसी श्लोक का अनुवाद प्रसंग के अनुसार कुछ बढ़ा कर यों दिया है—

> कुलु न यत्थ वीसवइ किंपि तिणि पुत्तेण जाएण।
>
> असुहसोवसंतावकरणु वीयकुलसंतावणु॥
>
> पदमसीह अंगज देवगुरुभतिहिं रकतै।
>
> जयतसीह वरु एकु किंपि तह बहु जातई॥

[कुल, न, जहाँ, विश्रुत हो, क्या, उससे, पुत्र से, जाए से, अशुभ-शोक-संताप-करण (से), दो-कुल-संतापन (से), पदमसिंह (का) पुत्र, देव-गुरु-भक्ति में, रक्त, जयतसिंह, वर, एक, क्या, वहाँ बहु, जातों से।] **वीसवइ**-मूल श्लोक का विश्रूयते जो लेख में अशुद्ध है। **वीय**-दोनों, माता पिता के। **रकतै, जातइ**-दोनों चालें लिखने की साथ साथ,—रकतइ, जातइ; रकतै, जातै। अंतिम तीनों पंक्तियाँ हिंदी ही हैं।

(२०) राजाओं की नीयत से बरकत। उनकी कमाई के लिये मूर्तियाँ पधराना।

प्रबंधचिंतामणि में एक कथा है कि एक समय राजा भोज केवल एक मित्र को साथ लिए हुए रात को नगर में घूम रहा था, प्यास से व्याकुल होकर किसी वेश्या के घर जा उसने मित्र द्वारा जल मँगाया। वह शंभली अति प्रेम से किंतु कुछ देर से तथा खेद जतला कर साँठे के रस से भरा करुआ लाई। मित्र ने उसके खेद का

कारण पूछा तो वह बोली 'पहले एक गन्ने के रस में एक घड़ा और एक बाहटिका (बाटी, बाटकी = कटोरा) भर जाता था किंतु अब राजा का मन प्रजा की ओर विरुद्ध है इस लिये इतनी देर में (एक साँठे से) एक बाहटिका हीं भरी, यही मेरे खेद का कारण है। राजा ने यह सुनकर सोचा कि शिवमंदिर में कोई बनिया बड़ा भारी नाटक करा रहा था, मेरे चित्त में उसे लूटने की आई, इस लिये यह जो कहती है सत्य है। राजा लौटकर घर आया और सो गया। दूसरे दिन राजा प्रजा पर कृपा दिखाकर फिर उस पण्य-रमणी के घर गया और साँठे में अधिक रस हो जाने के संकेत से यह जानकर कि आज राजा प्रजा की ओर वत्सलता दिखाता है उस वेश्या ने यही कहकर राजा को संतुष्ट किया[1]। इस कहानी पर मुंशी देवीप्रसाद जी ने कृपा करके यह विशेष लेख भेजा है जिसके लिये मैं उनका उपकृत हूँ।

ऊपर लिखी कहानी से मिलती हुई कथा कई फ़ारसी किताबों में देखी गई। एक किताब (शायद इख़लाक़ महोसनी) में उस बादशाह का नाम भी बहरामगोर पढ़ा था। यह कहानी बहुत मशहूर है, हिंदू मुसल्मान बादशाहों की नीयत के बारे में मिसाल के तौर पर इसे कहा करते हैं। जहाँगीर बादशाह ने भी उसको अपनी तुजक की दूसरी जल्द में एक प्रसंग से लिखा है जब कि वे उज्जैन में थे और प्रसंग शिकार का था। वे लिखते हैं कि "जुमे के दिन (१३वें नोरोज के) आजर[2] महीने की पहिली तारीख को दिल में बाज़ और जुर्रे के शिकार की रग़बत (रुचि) बढ़ी तो सवारी जुवार के खेत में होकर निकली। हर एक तने (संटी में) एक ही बाली निकला करती है पर एक तना ऐसा देखने में आया जिसमें १२ बालियाँ थीं, (देखकर) हैरत हुई और उस वक्त बादशाह और बाग़वान की हिकायत (बात) याद आई।

एक बादशाह गर्म हवा में एक बाग के दरवाजे पर पहुँचा। बूढ़ा बाग़वान दरवाज़े पर खड़ा था। पूछा कि इस बाग में अनार हैं? कहा 'हैं'। बादशाह ने फरमाया कि एक प्याला अनार के रस का ला। बाग़वान की लड़की अच्छी सूरत और स्वभाव की थी; उसको इशारा किया कि अनार का

(१) पृष्ठ ११४-१५।

(२) पूस बदी ६ शुक्रवार सं० १६७५ ता० २७ नवंबर १६१८।

रस ले आ। लड़की गई और फौरन एक प्याला अनार के रस का बाहर ले आई। उस पर कुछ पत्ते भी रखे थे।

बादशाह ने उसके हाथ से लेकर पी लिया और लड़की से पूछा कि इन पत्तों के रस पर रखने का क्या मतलब था। उसने बड़ी मीठी बोली से अर्ज किया कि ऐसी गर्म हवा में पसीने से डूबे हुए और सवारी से पहुँचने में एकदम पानी पीना हिकमत के खिलाफ है, इस विचार से मैंने पत्ते रस और प्याले के ऊपर रख दिए थे कि धीरे धीरे पीयें।

उसकी यह सुहानी अदा सुलतान के मन में भा गई और उसने चाहा कि मैं इस लड़की को महल की खिदमतगारनियों में दाखिल करूँ।

फिर उस बागवान से पूछा कि तुझ को इस बाग से क्या हासिल होता है। कहा, ३०० दीनार। कहा, दीवान (कचहरी) में क्या देता है, कहा कुछ नहीं। सुलतान किसी पेड़ का कुछ नहीं लेता है बल्कि खेती का भी दसवाँ हिस्सा ही लेता है।

बादशाह के मन में आया कि मेरी सलतनत में बाग बहुत और दरख्त बे शुमार हैं, अगर बाग के हासिल भी दसवां भाग दें तो काफी रुपया होता है, और रैयत को कुछ नुकसान भी नहीं पहुँचता। अब फरमा दूँगा कि बागों का भी महसूल लिया करें।

फिर कहा कि अनार का कुछ रस और भी ला। लड़की गई और देर में अनार के रस का एक प्याला लाई। सुलतान ने कहा कि जब तू पहले गई थी तो जल्दी आगई थी और बहुत जियादा ले आई थी। अब तू ने बहुत रास्ता दिखाया और थोड़ा भी लाई। लड़की ने कहा कि तब तो मैंने प्याला एक ही अनार के रस से भर लिया था; अब ५।६ अनारों को निचोड़ा और उतना रस नहीं निकला। सुलतान की हैरत और भी बढ़ गई।

बागवान ने अर्ज की कि महसूल में बरकत बादशाह की नेक नीयती से होती है। मेरे मन में ऐसा आता है कि तुम बादशाह होगे। जब तुमने बाग का हासिल मुझ से पूछा तो तुम्हारी नीयत डावाँडोल हो गई जिससे फल की बरकत जाती रही। सुलतान पर इस बात का बड़ा असर (प्रभाव) पड़ा और उसने उस खयाल को दिल से दूर कर के कहा कि एक बेर फिर अनार के रस का एक प्याला ला। लड़की फिर गई और जल्दी से भरा हुआ प्याला बाहर ले आई और उसने उसे हँसते खेलते सुलतान के हाथ में दिया।

सुलतान ने बागवान की बुद्धिमानी पर शाबासी देकर सारा हाल ज़ाहिर कर दिया और लड़की बागवान से माँग ली। उस खबरदार बादशाह की यह हिकायत दुनियाँ के दफ़तर में यादगार रह गई।

जहाँगीर अपनी ओर से इस कहानी पर लिखते हैं कि इन बातों का जाहिर होना नेक नीयत और इंसाफ के नतीजों से है। जब कि इंसाफी बादशाहों की नीयत और हिम्मत दुनियाँ के आराम और रैयत की भलाई में लगी रहे तो नेकियों का जाहिर होना; खेतियों तथा बागों की पैदावारों का बढ़ जाना मुश्किल नहीं है। खुदा का शुक्र है कि इस सल्तनत (हिंदुस्तान) में पेड़ों के हासिल लेने की लाग कभी नहीं थी और न अब है। अमलदारी के सारे मुल्कों में एक दाम और एक कौड़ी भी इस सीगे (खाते) की दीवान-आला और खजाने आमरे में दाखिल नहीं होती है बल्कि हुक्म है कि जो कोई खेती की जमीन में बाग लगावे तो उसका हासिल माफ रहे। उम्मेद है कि सच्चा खुदा इस न्याजमंद (दीनहीन) को हमेशा नेक नीयती की श्रद्धा दे।

"जब मेरी नीयत भलाई की है तो तू मुझे भलाई दे"¹ ॥

फारसी भाषा के एक कवि ने बादशाहों की नेक नीयत का बखान करते हुए कहा है—

चु नीयत नेक बाशद बादशा रा।
बजाये गुल गुहर खेजद गियारा ॥

अर्थात् जो बादशाह की नीयत नेक हो तो फूल की जगह घास में मोती लगे।

ऊपर जो कहा है कि भोज के मन में शिवमंदिर के नाटक को लूटने की आई वह चाहे अनुचित हो, किंतु लोगों के धर्मविश्वास और विनोद से कमाई करना राजाओं का धन संग्रह करने का पुराना उपाय है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में एक कोशाभिसंहरण का प्रकरण (९२) है, उसमें प्रजा से नज़राने लेने, संमान के बदले धन लेने आदि का वर्णन करके लिखा है कि कुशीलव (नाटककार) और रूपाजीवा (वेश्या) से राजा उनकी आधी कमाई ले ले। आगे धर्म के धन की कथा चलती है— "किसी भी पाखंड (धर्मपंथ) के संघ का धन, या ऐसा देवधन जिसे वेद पढ़े हुए (श्रोत्रिय) न भोगते हों, कृत्यकार (हथकंडों में उस्ताद) लोग यों कहकर ख़जाने में पहुँचा दें कि हमने वह

(१) तुजुक जहाँगीरी, जिल्द २, पृ० २४३-२४

धन किसी ऐसे के यहाँ रखा था जो मर गया, या ऐसे घर में रखा था जो जल गया। देवताध्यक्ष (अधिकारी) दुर्ग और राष्ट्र के देवताओं का जितना धन हो उसे एकत्र करके कोश बना ले और वैसे ही ले आवे। रात ही रात में कहीं पर देवमंदिर या चितास्तूप या कोई सिद्धस्थान या अद्भुत घटना खड़ी करके वहाँ यात्रा और समाज लगवा देवे और उनसे (यात्रा तथा समाजों में आनेवालों के चढ़ावे से) कमावे। यदि चैत्य या बाग के वृक्ष में विना समय फूल फल आ जाय तो देवता का आजाना (कोप) प्रसिद्ध करे (और शांति के चढ़ावे उगाहे)। वृक्ष में किसी मनुष्य को छिपा उसके द्वारा राक्षस का भय दिखला कर सिद्ध का स्वांग बनाए हुए लोग पुर और देशवासियों के सुवर्ण से उसका प्रतीकार (शांति) करावें। सोना भेट चढ़ाने पर सुरंग वाले कुएँ में नाग दिखलावे जिसका सिर बँधा रहे (कि वह दर्शकों को न काटे) श्रद्धालुओं को (भेट लेकर) नाग की प्रतिमा[१] में जिसमें भीतर छेद हो, या मंदिर या समाधि के छेद में, या वल्मीक के छेद में प्रत्यक्ष नाग का दर्शन करावे, पहले उसे खिला कर सुस्त बना दे। जो श्रद्दधान न हों उनके आचमन और छीटने के पानी में कोई (नशे का) रस मिला कर (उनके बेहोश होने पर देवता का कोप बतावे या किसी लावारिस को साँप से कटवा कर अपशकुन मिटाने के लिये शांति करने के बहाने से कोश में धन इकट्ठा करे[२]।" इस प्रसंग में

(१) कहते हैं कि जयपुर में महाराज रामसिंह जी के समय में एक गुसाईंजी आए थे जिनके ठाकुर जी शयन आरती के पीछे नृत्य करते थे। "श्रद्दधानो" की भीड़ होने लगी। एक दिन महाराज पहुँच गए और जब नूपुर की ध्वनि हो रही थी उन्होंने पर्दा हटा दिया। क्या देखते हैं कि चूहों के पैरों में मंजीरे बँधे हैं और वे प्रसाद के लोभ से इधर उधर फिर कर रास-लीला कर रहे हैं। सुनते हैं कि संप्रदायों से महाराज की अरुचि का आरंभ उस दिन से हुआ।

(२) पृष्ठ २४२। अनुवाद मेरा है और पहले अनुवाद से कुछ भिन्न है।

'सर्पदर्शन' उसी ढंग से आया है जिस ढंग से अशोक के प्रज्ञापन में 'विमानदंसनानि'।

जैसा कि कौटिल्य ने लिखा है राजा लोग धन उगहाने के लिए रात को (नया) दैवत चैत्य खड़ा कर वहाँ पर यात्रा और समाज लगवा कर कमाते थे। इसका प्रमाण पतंजलि के महाभाष्य के उस अंश से मिलता है जिसमें कहा गया है "हिरण्यार्थी मौर्यों से अर्चाएँ प्रकल्पित की गईं"। इसपर बहुत टीका टिप्पणी, वादविवाद और संदेह संदोह हुए हैं[१]। कभी अर्थ किया गया कि मौर्यों ने सोने की ज़रूरत पड़ने पर प्रतिमाएँ बेचीं, कभी कहा गया कि प्रतिमाएँ गला कर सिक्के बनवाए। उस प्रसंग का पूरा अर्थ यहाँ दे दिया जाता है।

पाणिनि कहते हैं कि किसी वस्तु के सदृश उसकी प्रतिकृति या मूर्ति बनाई जाय तो उसके आगे क प्रत्यय होगा, जैसे अश्व की सी अश्व की मूर्ति-अश्वक[२]। जो प्रतिकृति जीविका के लिये बनाई हो, परंतु विक्री के लिये न हो वहाँ क नहीं लगता[३]। जैसे सिलावट ने शिव, स्कंद या विशाख की मूर्तियाँ गढ़ कर बज़ार में बेचने को रखी हों तो वे 'शिवक, स्कंदक, विशाखक कहलावेंगी किंतु यदि वे विक्री के लिये न होकर जीविका के लिये हों तो शिव, स्कंद या विशाख ही कहलावेंगी। वे मूर्तियाँ कौन हो सकती हैं जो अपण्य होकर भी जीविकार्थ हों ? स्मरण रहे कि 'क' न लगने के लिये दो शर्तें पूरी होनी चाहिएँ—मूर्ति विक्री के लिये न हो और उससे जीविका भी चल जाय। काशिका और कौमुदी का मत है कि ये देवलक (पुजारी) आदि की जीविका देनेवाली देवप्रतिकृतियों के लिये

(१) गोल्डस्टुकर (पाणिनि पृ० १७५—६), वेबर और भंडारकर (इं० एं० जिल्द १, २) भंडारकर और पीटर्सन का विवाद (ज० ब्रां० बॅं० रा० ए० सो०). और जायसवाल (इं० एं० जिल्द ४७)

(२) इवे प्रतिकृतौ ५।३।९६

(३) जीविकार्थे चापण्ये ५।३।९९।

हैं। कैयट कहता है कि जिन मूर्तियों को लेकर घर घर (पुजारी) फिरते हैं उनसे मतलब है। इसी को देखकर कौमुदी के टीकाकार ने घुमाई जानेवाली मूर्तियों को इस सूत्र में माना है, और स्थिर प्रतिमाओं को क से बचाने के लिये पाणिनि के अगले सूत्र में देव-पथ आदि की शरण ली है[1]। घरों में पूजी जानेवाली मूर्तियाँ जो केवल पूजनार्थ होती हैं, जिनसे जीविका नहीं होती, वे देवपथादि में हैं। वस्तुतः घर घर घूमनेवाली और मंदिरों में स्थिर रहनेवाली मूर्तियों में कोई भेद नहीं है; दोनों ही अपण्य हैं, दोनों ही जीविकार्थ हैं। क कहाँ कहाँ नहीं जुड़ता इसका वैयाकरणों का एक संग्रह श्लोक है—केवल पूजन के काम की अर्चाओं में, चित्रकर्म (= तसवीरों) में (उदा०—अर्जुन की तसवीर =अर्जुन, अर्जुनक नहीं), ध्वज (=झंडों पर बनी मूर्ति) में (उदा०—अर्जुन के रथ के झंडे पर कपि की मूर्ति=कपि, कपिक नहीं) और देवपथ आदि गिने हुए शब्दों में (उदा०—उष्ट्रग्रीवा पतली गरदन की सुराही, उष्ट्रग्रीविका नहीं; काव्यों में शराब पीने की चुसकी के लिये उष्ट्रिका आता है) प्रतिकृति और सादृश्य अर्थ में क नहीं लगता[2]। अब व्याकरण की बात बहुत हो चुकी, पतंजलि की ऐतिहासिक टिप्पणी पर आइए।

(**पाणिनि**) **जीविकार्थ अपण्य** (सदृश प्रतिकृति) **में भी** (क नहीं लगता)।

(१) देवपथादिभ्यश्च॰ ५।३।१००।

(२) अर्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु च। इवे प्रतिकृतौ लोपः कनो देवपथादिषु॥ गणरत्नमहोदधि में किसी वैयाकरण के 'प्रतिच्छन्देऽनर्चादेः' सूत्र पर इस देवपथादिगण को अर्चादि कहा है। उसके श्लोक ये हैं—अर्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्मनटध्वजे। चञ्चाखर कुटी दासीवध्रिका नरि काश्यपः॥ देवराजाज शङ्कुभ्यः कैरिसिन्धुशतात् पथः। सिंहोष्ट्राभ्यां गतिग्रीवे वामाद्रज्जुः स्थलात् पथः॥ खरकुटी = नाई की दुकान।

(**पतंजलि**)[1] (सूत्र में जो) **यह कहा गया है कि 'अपण्य में' तो यह सिद्ध नहीं होता—शिव, स्कंद, विशाख, क्या कारण है ? सोना, चाहनेवाले मौर्यों ने अर्चा कल्पित की थीं,** (मौर्यों ने यात्रा और समाजों से रुपया कमाने के लिये शिव, स्कंद और विशाख की मूर्तियाँ चलाई थीं। यह तो दूकानदारी थी, कमाई थी, सरासर बिक्री थी ! यह तो कोई बात नहीं कि गरीब सिलावट मूर्ति बनाकर धन कमावे तो वह मूर्ति शिवक कहलावे और बड़े राजा दूकानदारी करें तो वह शिव ही कहलावे। क्या व्याकरण के प्रत्यय भी राजाओं के हुकमी बंदे हैं ? इसका उत्तर देते हैं)—**खैर, उनमें न सही** (उनमें क मत उड़ाओ, उन्हें शिवक आदि ही कहो) **किंतु जो ये आज कल पूजा के लिये हैं** (चाहे वे मौर्यों की कल्पित हों चाहे किसी और की) **उनमें तो हो जायगा** (मौर्यों की बनाई मूर्तियाँ उनके समय में पण्य थीं उन्हें शिवक कहो; अब तो मौर्य नहीं रहे, उनकी दूकान उठ गई, यदि उनकी बनाई मूर्तियाँ अब तक पुजती हैं, या किसी और की स्थापित मूर्तियाँ हैं, वे पण्य नहीं हैं, केवल पुजारियों की जीविकार्थ हैं, उन्हें तो शिव, स्कंद आदि कहो)।

(**कैयट**)—(पतंजलि के '**जो तो वे**' आदि लेख पर) इसका अर्थ यह है कि जिन्हें लेकर घर घर फिरते हैं उनमें (क का लोप हो जायगा), जो बेची जाती हैं उनमें (लोप) न होगा (क रह जायगा), जैसे शिवकों को बेचता है।

(**नागोजीभट्ट**)—(पतंजलि के '**मौर्यों ने** आदि लेख पर) मौर्य बेचने के लिये प्रतिमा के शिल्पवाले (बिक्री के लिये मूर्तियाँ बनाने का व्यवसाय करनेवाली, शिल्प जाननेवाली जाति,) हैं उन्होंने मूर्तियाँ बनाई हैं। 'बेचने के लिये इतना और (पतंजलि के वाक्य में) जोड़ो। इस लिये, उनके पण्य होने से वहाँ (क)

---

(१) अपण्य इत्युच्यते तत्रेदं न सिद्ध्यति—शिवः स्कंदो विशाख इति। किं कारणम् ? मौर्यैः हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः। भवेत्, तासु न स्यात्। यास्त्वेताः संप्रतिपूजार्थास्तासु भविष्यति।

प्रत्यय सुनाई देने का मौका है यह मतलब है। वहाँ (क) प्रत्यय का सुनाई पड़ना ठीक ही है, यह कहते हुए (पतंजलि के सूत्र का क न रहने का) उदाहरण, दिखाते हैं **'उनमें हो, जो तो ये** इत्यादि से। **'आजकल पूजा के लिये** (अर्थात्) संप्रति = अपने बनाने के समान काल में ही फल उपजानेवाली जो (प्रतिमाएँ) पूजा और जीविका देनेवाली होने से उस (जीविका देने के) अर्थवाली हैं, यह अर्थ है वही (कैयट) कहता है—'जिन्हें लेकर' इत्यादि। जो मूर्तियाँ घर में शिष्टों से पूजी जाती हैं उनमें तो शिव की अभेद बुद्धि होने से और सादृश्य की बुद्धि न होने से (क) प्रत्यय होता ही नहीं। (संग्रहकारिका की याद करके) यों ही चित्रों के लिये देखना।

कैयट ने ऐतिहासिक बात का कुछ व्याख्यान नहीं किया। यास्त्वेताः संप्रति पूजार्थाः में भी घर घर घुमाई जानेवाली मूर्तियों की बात की। नागोजी ने मौर्य का अर्थ मूर्ति बनानेवाली जाति किया, यह न सोचा कि मूर्ति बनानेवालों का पेशा यही है, उनकी बनाई मूर्ति सदा पण्य होगी, उसमें क न लगने का मौका ही कहाँ आवेगा ? पतंजलि के उदाहरण के लिये **कोई ऐसी मूर्तियाँ चाहिएँ जो प्रत्यक्ष में अपण्य हों, किंतु असल में पण्य हों, जिनकी दूकानदारी छिपी हो।** ऐसी मूर्तियां वे ही हो सकती हैं जो, अर्थशास्त्र के अनुसार राजाओं ने 'यात्रा सामाजाभ्यामुपजीवेत् के लिये खड़ी की हों। फिर संप्रति का अर्थ आजकल, भाष्यकार के समय में, न समझ कर वह कहता है कि अभी, बनाते ही, जिनसे पूजा और जीविका का लाभ हो! आगे उसे यह बरदाश्त न हुई कि घर के शिवलिंग को कोई शिव की 'प्रतिकृति' कह दे। उसमें तो सादृश्य की बुद्धि ही नहीं, अभेद की बुद्धि ठहरी, वहाँ "इवे प्रतिकृतौ" की गुंजाइश ही नहीं!!

मेरे पास सं० १८७२-४ का पंजाब के प्रसिद्ध विद्वान् सारस्वत पं० जैसराम जी का स्वहस्तलिखित एक संपूर्ण सकैयट महाभाष्य है

जिसपर मैंने अध्ययन किया था।[1] उसमें इस स्थल पर पं० जैसरामजी के हाथ की टिप्पणी है। पहले तो नागोजी का मत लिखा है कि "विक्रेतुं प्रतिमाशिल्पवंतो मौर्या इति विवरणकाराः" आगे लिखा है "क्षत्रियविशेषेषु तु प्रसिद्धाः, इस 'तु' से जान पड़ता है कि पुराने पंडितों में मौर्यराजाओं के अर्चाएँ बनाने की कुछ परंपरागत प्रसिद्धि थी और वे नागोजी के अर्थ से संतुष्ट न थे।

---

(१) भिन्न भिन्न अध्यायों के लिखे जाने का काल रोचक होने से यहाँ दिया जाता है—

प्रथम अध्याय (दो आह्निकों में विवरण भी साथ हैं)—संवत् १८७२ ज्येष्ठ शुक्ल १३।

द्वितीय अध्याय—संवत् १८७४ आखा(!)ढ कृष्ण १४ भृगुदिने।

तृतीय अध्याय—संवत् १८७४ दीपमालिकायाम् [= कार्तिक कृष्ण ३०]

चतुर्थ अध्याय—संवत् १८७४ पौषसिताष्टम्याम् [= पौष शुक्ल ८]

पंचम अध्याय—संवत् १८७४ आश्विन सिते ११

षष्ठ अध्याय—तिथि नहीं है।

सप्तम अध्याय—संवत् १८७२ शिवरात्र्यां [= फाल्गुन कृष्ण १४]

अष्टम अध्याय—संवत् १८७३ कार्तिक शुक्ल १५॥ सकैयटं महाभाष्यं जेसराजे न धीमता। भवानीदासपुत्रेण लिखितं शोधितं तथा॥ तदस्तु प्रीतये भूयो भवानी विश्वनाथयोः॥ श्रीगुरुभ्यो नमो नित्यं पितृभ्यश्च नमो नमः॥१॥ श्रीमद्विश्वेश्वरः प्रीयताम्॥ शुभं भवतु॥

शोक-समाचार

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के एक विशेष सार्वजनिक अधिवेशन में जो रविवार १ आश्विन १९७९ (१७ सितंबर १९२२) को हुआ निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए—

(१) इस सभा को अत्यंत शोक है कि इसके २० वर्ष के पुराने सभासद, उपसभापति, बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ के सदस्य, नागरीप्रचारिणी पत्रिका और सूर्यकुमारी पुस्तकमाला के संपादक, सभा के परम सहायक तथा हितैषी, हिंदी और संस्कृत के असाधारण विद्वान और पुरातत्ववेत्ता, स्वनामधन्य पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी का गत मंगलवार १२ सितंबर को प्रातः काल असमय और अकस्मात् काशीवास हो गया जिसके कारण विद्वानों का एक रत्न खो गया और इस सभा का तो एक दृढ़ स्तम्भ सदा के लिये टूट गया।

(२) यह सभा गुलेरी जी के संबंधियों के साथ अपनी आंतरिक समवेदना प्रकट करती है और जगन्नियंता जगदीश्वर से प्रार्थना करती है कि गुलेरी जी की आत्मा को शांति और उनके कुटुम्बियों को धैर्य प्रदान करे।

(३) उक्त गुलेरी जी ने इस सभा के जो अनेक उपकार किए हैं उनसे यह कभी उऋण नहीं हो सकती और न इस बात को कभी भूल सकती है कि वे किस प्रकार उसकी सहायता, उन्नति तथा प्रतिष्ठा के लिये सदा सफलतापूर्वक तत्पर रहते थे। उनके स्थान की पूर्ति होना असंभव है। अतएव यह सभा निश्चय करती है कि उनकी स्मृति में एक तैलचित्र सभा-भवन में लगाया जाय और यदि आगे चलकर यह संभव हो तो उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का कोई विशेष आयोजन भी किया जाय।

(६) राजपूताने के इतिहास पर प्राचीन शोध के प्रभाव का एक उदाहरण।

[लेखक—रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

विक्रम संवत् १४०० के पूर्व का राजपूताने का इतिहास अब तक अंधकार में ही है और जो कुछ उसके संबंध में अब तक लिखा गया है वह वास्तव में बहुत ही कम है इतना ही नहीं किंतु उसमें भी कई स्थलों में प्राचीन शोध के अनुसार परिवर्तन करने की आवश्यकता है। राजपूताना विद्या के संबंध में हिंदुस्तान के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा बहुत कुछ पिछड़ा हुआ है और यहाँ पर प्राचीन शोध का काम बहुत ही कम हुआ है तो भी कई विद्वानों के संतत परिश्रम से जो कुछ नई जानकारी प्राप्त हुई है वह कम महत्व की नहीं है। मेवाड़ (उदयपुर) का राज्य राजपूताने में सबसे अधिक प्रतिष्ठित और प्राचीन है। वहाँ का राजवंश अनुमान १३५० वर्ष से अब तक उसी प्रदेश पर राज्य कर रहा है। हिंदुस्तान के तो क्या किंतु दुनिया के इतिहास में भी इतने दीर्घकाल तक एक ही वंश का एक ही प्रदेश पर राज्य बना रहा हो ऐसा दूसरा उदाहरण शायद ही मिले। जब प्रतापी राजा हर्षवर्द्धन (हर्ष) थानेश्वर के राज्यसिंहासन पर बैठा उससे भी पूर्व मेवाड़ के गुहिलवंश का राज्य वहाँ पर स्थिर हो चुका था। ऐसे प्राचीन वंश का राणा हंमीर के पूर्व का इतिहास वस्तुतः नहीं सा ही है। प्राचीन शोध ने राजपूताने के इतिहास पर कितना प्रकाश डाला इसके उदाहरण में हम पाठकों को मेवाड़ के राजा जैत्रसिंह के इतिहास से परिचय कराते हैं।

कर्नल जेम्स टॉड के प्रसिद्ध इतिहास 'राजस्थान' में तो उक्त **राजा का नाम तक नहीं दिया।** उसमें भर्तृभट के पीछे

तेजसिंह (जैत्रसिंह के पुत्र) का नाम दिया है और उन दोनों के बीच होनेवाले राजाओं के विषय में लिखा है कि "अब हम १५ पीढ़ियां (पुश्तों) को छोड़ देंगे, वे यद्यपि प्राचीनकाल के संबंध में थोड़ी सी मनोरंजक बातें प्रकट करती हैं तो भी सामान्य पाठक को वे रुचिकर न होंगी।"[1]

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी ने मेवाड़ के बृहत् इतिहास 'वीरविनोद' में राजवंश की नामावली में जैतसिंह (जैत्रसिंह) का नाम मात्र दिया है और उसके संबंध में केवल इतना ही लिखा है कि एकलिंगेश्वर में एक समाधि के लेख से विक्रमी १२७० में इनका राज्य करना साबित होता है।[2]

जैत्रसिंह मेवाड़ के राजा मथनसिंह का पौत्र और पद्मसिंह का पुत्र था। प्राचीन शिलालेखादि में जैत्रसिंह के स्थान पर जयतल,[3] जयसल[4], जयसिंह[5] और जयतसिंह[6] नाम भी मिलते हैं और भाटों की ख्यातों में उसका नाम जैतसी या जैतसिंह[7] मिलता है। वह एक प्रतापी राजा हुआ और उसने कई लड़ाइयां अपने पड़ोस के हिंदू राजाओं तथा मुसलमानों से लड़ी थीं। उसके समय के शिलालेखादि

---

(१) टॉड का 'राजस्थान' (ई० स० १९२० का ऑक्सफर्ड का संस्करण) जि० १, पृ० २८७।

(२) वीरविनोद, खंड १, पृ० २६९।

(३) मेदपाटपृथिवीललाटमण्डलं जयतल्लं विग्रहीतुं कृतादरस्य० (हंमीरमदमर्दन, पृ० २७)।

(४) यः श्रीजयसलकार्ये० (चीरवा का शिलालेख, श्लोक २८)।

(५) अथ राउलश्रीजयसिंहवर्णनं। तत्पुत्रस्तु निजप्रतापदहनज्वालासुमन्धुक्षितः प्रोद्दामप्रतिपक्ष[भू]तिरभूत् श्रीजैत्रसिंहो नृपः (कुंभलगढ़ की प्रशस्ति, श्लो० १५४—अप्रकाशित)।

(६) ओं संवत् १२७९ वर्षे वैशाख शुदि १३ सु(शु)क्रे अद्येह श्रीनागद्रहे महाराजाधिराजश्रीजयतसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये० (नांदेसमा गांव के सूर्य के टूटे हुए मंदिर के स्तंभ पर का शिलालेख—अप्रकाशित)।

(७) पुरोहित शंभूनाथजी (उदयपुर वालों) के यहां की ख्यात में।

वि० सं० १२७० से १३०९[1] तक के मिलते हैं जिनसे पाया जाता है कि उसने कम से कम ४० वर्ष राज्य किया होगा।

उसके पुत्र तेजसिंह के समय के घाघसा गाँव (चित्तौड़ से ६ मील पर) से मिले हुए वि० सं० १३२२ कार्तिक शु० १ के शिलालेख में उस (जैत्रसिंह) के वर्णन में दो श्लोक हैं जिनका आशय यह है कि 'उस (पद्मसिंह) का पुत्र जैत्रसिंह हुआ जो शत्रु राजाओं के लिये प्रलयकाल के पवन के समान था। उसके सर्वत्र प्रकाशित होने से किनके हृदय नहीं काँपे? गूर्जर (गुजरात), मालव, तुरुष्क (देहली के मुसलमान सुलतान) और शाकंभरी के राजा[2] (जालौर के चौहान) उसका मानमर्दन न कर सके।[3]

जैत्रसिंह के पौत्र रावल समरसिंह के समय के चीरवा गाँव (एकलिंगजी से ३ मील पर) के मिले हुए वि० सं० १३३० कार्तिक शुदि १ के शिलालेख में उस (जैत्रसिंह) के वर्णन में दो श्लोक हैं जिनमें से पहिला तो वही है जो घाघसा के शिलालेख

(१) इन संवतों के विषय में आगे लिखा जायगा।

(२) मूल में 'शाकंभरीश्वर' पाठ है जिसका आशय सांभर के राजा अर्थात् चौहान है। चौहानों की मूल राजधानी शाकंभरी (सांभर) होने के कारण चौहान मात्र 'शाकंभरीश्वर' या 'संभरी नरेश' कहलाते हैं। जैत्रसिंह के समय चौहानों के मूल राज्य (अजमेर, सांभर आदि) पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था केवल जालौर का राज्य उनके अधिकार में था। यहाँ पर 'शाकंभरीश्वर' से अभिप्राय जालौर के चौहानों से ही है जैसा कि आबू के लेख से आगे बतलाया जायगा।

(३) श्रीजैत्रसिंहस्तनयोस्य जातः
प्रत्यर्थिभूभृत्प्रलयानिलाभः।
सर्व्वत्र येन स्फुरता न केषां
चित्तानि कंपं गमितानि सद्यः॥ ५ [॥]

श्रीमद्गूर्ज्जरमालवतुरुष्कशाकंभरीश्वरैर्यस्य।
चक्रे न मानभंगः स स्वःस्थो जयतु जैत्रसिंहनृपः॥ ६ [॥]

(घाघसा का शिलालेख—अप्रकाशित)

का पाँचवा श्लोक[1] है। दूसरे में लिखा है कि 'मालव, गूर्जर (गुजरात), मारव[2] (मारवाड) तथा जांगल देश[3] के स्वामी और म्लेच्छों का अधिपति (देहली का सुलतान) भी उस राजा (जैत्रसिंह) का मानमर्दन न कर सके।'[4]

रावल समरसिंह के वि० सं० १३४२ मार्गशीर्ष शुदि १ के आबू के शिलालेख में जैत्रसिंह के वर्णन में लिखा है कि 'उस (पद्म सिंह) का स्वर्गवास होने पर जैत्रसिंह ने पृथ्वी का पालन किया। उसकी भुजलक्ष्मी ने नड्डूल (नाडोल) को निर्मूल किया (नष्ट किया), तुरुष्क सैन्य (सुलतान की सेना) रूपी समुद्र के लिये वह अगस्त्य के समान था, सिंधुकों (सिंधवालों) की, सेना का रुधिर पीकर मतवाली पिशाचियों के आलिंगन के आनंद से मग्न हुए पिशाच रणखेत में अब तक श्रीजैत्रसिंह के बाहुबल की प्रशंसा करते हैं (अर्थात् उसने सिंध की सेना को नष्ट किया था)।'[5]

(१) घाघसा और चीरवा के शिलालेखों में एक श्लोक वही होने का कारण यह है कि वे दोनों शिलालेख चैत्रगच्छ के आचार्य रत्नप्रभसूरि के रचे हुए हैं। एकही रचयिता अपनी ही दूसरी कृति में एक राजा के वर्णन का अपना ही श्लोक फिर उद्धृत करे इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(२) मारव (मारवाड़) के राजा से यहां अभिप्राय जालोर के चौहानों से है जिसका राज्य उस समय मारवाड़ के बड़े अंश पर था।

(३) जांगलदेश के स्वामी से यहां अभिप्राय अजमेर, सांभर, नागोर आदि के मुसलमानों से है क्योंकि उस समय जांगल देश पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। (जांगलदेश के लिये देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३२७—३२)

(४) न मालवीयेन न गौर्जरेण
न मारवेशेन न जांगलेन।
म्लेच्छाधिनाथेन कदापि मानो
म्लानिं न निन्ये वनिपस्य यस्य ॥ ६ [॥]
(चीरवा का शिलालेख)

(५) नड्डूलमूलंकष(ष)बाहुलक्ष्मी
स्तुरुष्कसैन्यार्णवकुंभयोनिः।

ऊपर उद्धृत किए हुए तीनों शिलालेखों के अवतरणों से पाया जाता है कि जैत्रसिंह तीन लड़ाइयाँ मुसलमानों से और तीन हिंदू राजाओं से लड़ा था अर्थात् देहली के सुलतान, सिंध की सेना और जांगल के मुसलमानों से तथा मालवा, गुजरात और जालौर के चौहानों से लड़कर विजयी हुआ था परंतु उन अवतरणों से यह पाया नहीं जाता कि वे लड़ाइयाँ किस किस के साथ और कब कब हुईं इस लिये उनका पता लगाने का यत्न किया जाता है।

सुलतान के साथ की लड़ाई।

ऊपर लिखे हुए चीरवा के शिलालेख में श्लोक ३ से ८ तक में मेवाड़ के राजा बप्पक (बापा) के वंशज पद्मसिंह, जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह का संक्षेप से वर्णन है। फिर श्लोक ९ से ४३ तक में मेवाड़ के राजा मथनसिंह (पद्मसिंह का पिता) के नियत किए हुए नागह्रद[1] (नागदा) के तलारक्ष[2] (कोतवाल) उद्धरण के वंश का विस्तार के साथ परिचय दिया है जिसमें उसके जिस जिस वंशज ने जो जो राजकीय सेवा की उसका भी उल्लेख है। उक्त लेख में लिखा है कि 'उद्धरण के ८ पुत्रों में से ज्येष्ठ योगराज

अस्मिन् सुराधीशसहासनस्थे
ररक्ष भूमीमथ जैत्रसिंहः ॥४२॥
अद्यापि सिन्धुकचमूरुधिरावमत्त-
संघूर्णमानरमणीपरिरंभणेन।
आनंदमंदमनसः समरे पिशाचाः
श्रीजैत्रसिंहभुजविक्रममुद्गृणंति ॥ ४३ [॥]

(आबू का शिलालेख, इंडि० ऍंटि०, जि० १६, पृ० ३४९-५०)।

(१) नागद्रह या नागह्रद मेवाड़ की प्रथम राजधानी का नाम है जिसको अब नागदा कहते हैं। वह शहर एकलिंगजी के प्रसिद्ध मंदिर के पास था। अब तो उसके केवल खंडहर मात्र रहे हैं और कई एक विशाल और सुंदर मंदिर टूटी फूटी दशा में वहाँ विद्यमान हैं।

(२) तलारक्ष (तलार ?) के लिये देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ३, पृ० २—३, टिप्पण १।

को राजा पद्मसिंह ने नागह्रद (नागदा) की तलारता दी। उसके चार पुत्र पमराज, महेंद्र, चंपक और क्षेम हुए। नागह्रदपुर (नागदा) टूटा उस समय पमराज भूताला (नागदा के निकट का एक गांव) की लड़ाई में सुरत्राण (सुलतान) के सैनिकों से लड़कर मारा गया।[1] इससे इतना तो निश्चय हो गया कि किसी सुलतान ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर वहाँ की राजधानी नागदा शहर को तोड़ा था। अब यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि वह चढ़ाई किस समय हुई और किस सुलतान की थी। मेवाड़ के शिलालेखों में तो उसका अधिक हाल नहीं मिलता परंतु जयसिंह सूरि के बनाये हुए 'हंमीर-मदमर्दन' नामक नाटक का तीसरा अंक उसी चढ़ाई के संबंध में है उससे पाया जाता है कि वह चढ़ाई मेवाड़ के राजा जयतल (जैत्रसिंह) के समय हुई थी। उसके संबंध का उक्त नाटक का सारांश उद्धृत करने के पहिले उस समय की गुजरात के राज्य की दशा का संक्षेप से परिचय यहाँ देना इसलिये आवश्यक है कि खुशामद के साथ लिखे हुए उस वर्णन का वास्तविक हाल पाठकों को मालूम हो सके। जिस समय सुलतान की वह चढ़ाई होनेवाली थी उस समय गुजरात का राजा सोलंकी (चौलुक्य) भीमदेव

(१) जातश्चांटरडज्ञातौ पूर्वमुद्धरणाभिधः ।
पुमानुमाप्रियोपास्तिसंपन्नशुभवैभवः ॥ ९ [॥]
यं दुष्टशिष्टशिक्षणारक्षणादक्षमत्रतस्तलारत्वं ।
श्रीमथनसिंहनृपतिश्चकार नागद्रहदंगे ॥ १० [॥]
अष्टावस्य विशिष्टाः पुत्रा अभवन्विवेकसुपवित्राः ।
तेषु व(ब)भूव प्रथमः प्रथितयशा योगराज इति ॥ ११ [॥]
श्रीपद्मसिंहभूपालाद्योगराजस्तलारतां ।
नागह्रदपुरे प्राप पौरप्रीतिप्रदायकः ॥ १२ [॥]
योगराजस्य चत्वारश्चतुरा जज्ञिरे गजाः ।
पमराजो महेंद्रोथ चंपकः क्षेम इत्यमी ॥ १५ [॥]
नागद्रहपुरभंगे समं सुरत्राणसैनिकैर्युद्ध्वा ।
भूतालीहटकूटे पमराजः पंचतां प्राप ॥ १६ [॥]
(चीरवा का शिलालेख)।

(दूसरा) था जिसको भोलाभीम भी कहते थे । वि० सं० १२३५[1] में वह गुजरात के राज्यसिंहासन पर बैठा । उस समय वह बालक था और पीछे भी कमजोर ही निकला । वह वि० सं० १२९८ तक[2] नाममात्र का राजा रहा । उस बालक राजा के मंत्रियों और मांडलिकों (सामंतों, सर्दारों) ने शनैः शनैः उसका बहुत सा राज्य छीन लिया[3] और वे स्वतंत्र से बन बैठे । उसके सामंतों में धोलका का बघेल (सोलंकियों की एक शाखा) राणा लवणप्रसाद था । उसने अपने युवराज वीरधवल को अपना राज्य सौंप दिया था और उसीके हाथ में गुजरात के राज्य की लगाम भी थी । वीरधवल के मंत्री पोरवाड (प्राग्वाट) जाति के महाजन वस्तुपाल तथा उसका छोटा भाई तेजपाल थे, जो नीति में चाणक्य के समान थे । वस्तुपाल वीर, विद्वान् और विद्वानों का आश्रयदाता भी प्रसिद्ध था । हंमीरमदमर्दन नाटक वीरधवल और उसके इन मंत्रियों के प्रशंसा के लिये ही रचा गया था ।

उक्त नाटक से पाया जाता है कि जब वीरधवल और उसके मंत्रियों को यह खबर मिली कि सुलतान की सेना (मेवाड़ में होती हुई) गुजरात पर हमला करनेवाली है, उसी समय दक्षिण (देवगिरि) के यादव राजा सिंहण ने भी गुजरात की चढ़ाई के लिये प्रस्थान कर दिया और मालवा का राजा देवपाल (परमार) भी उस समय गुजरात पर चढ़ाई करनेवाला ही था । गुजरात के

---

(१) प्रबंधचिंतामणि, पृ० २४९ ।

(२) प्रबंधचिंतामणि में भीमदेव (दूसरे) का सं० १२३५ से लगा कर ६३ वर्ष (अर्थात् १२९८ तक) राज्य करना लिखा है (पृ० २४९) । भीमदेव के दानपत्रों में सबसे पिछला वि० सं० १२९६ का है (इंडि० एंटि०, जि० ६, पृ० २०६—२०८) और उसके उत्तराधिकारी त्रिभुवनपाल का दानपत्र वि० सं० १२९९ (वही, पृ० २०८—२१०) का है जो प्रबंधचिंतामणि के कथन को पुष्ट करता है ।

(३) मन्त्रिभिर्मांडलीकैश्च बलवद्भिः शनैः शनैः ।
बालस्य भूमिपालस्य तस्य राज्यं व्यभज्यत ॥
(गुर्जरेश्वरपुरोहित सोमेश्वर रचित 'कीर्तिकौमुदी', सर्ग २, श्लो० ६१)

लिये यह बड़ा ही विकट समय था। वीरधवल के उक्त मंत्रियों ने सोमसिंह[1] उदयसिंह[2] और धारावर्ष[3] इन तीन मारवाड़ के राजाओं को (जो स्वतंत्र बन गए थे) अपना सहायक बनाया[4]। ऐसे ही गुजरात आदि के सामंतों को भी अपने पक्ष में लिया। उन्होंने मेदपाट (मेवाड़) के राजा जयतल (जैत्रसिंह) से भी मैत्री करना चाहा परंतु उसने अपनी वीरता के घमंड के मारे उसे स्वीकार न किया। आगे बढ़ने से सिंहण को रोकने के लिये कूटनीति का प्रयोग कर अपने गुप्त दूतों के द्वारा उसकी सेना में फूट डलवाने का प्रयत्न किया। इतना ही नहीं किंतु उसको यह बात भी जँचा दी कि वीरधवल सुलतान से लड़नेवाला ही है, इस लड़ाई से उसके निर्बल हो जाने पर उसको जीतना सहज हो जायगा। इस तरह उधर तो सिंहण को आगे बढ़ने से रोका गया और इधर सुलतान की फौज के साथ की मेवाड़ के राजा की लड़ाई का हाल अपने गुप्तचरों से मँगवाया जाता था। वीरधवल उत्सुकता के साथ तेजपाल से कह रहा है कि शत्रुओं के जीवन रूपी पवन को पीने के लिये काले साँप के समान चलती हुई तलवार के गर्व के कारण जिसने हमारे साथ

(१) सोमसिंह कहाँ का राजा था यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हुआ। आबू के परमार राजा धारावर्ष के पुत्र और उत्तराधिकारी का नाम सोमसिंह था। धारावर्ष के शिलालेखों से पाया जाता है कि उसने ५६ वर्ष से भी अधिक समय तक राज किया था (पं० गौरी० हीरा० ओझा का सिरोही राज्य का इतिहास पृ० १५१)। यदि उसने अपने जीते जी अपने पुत्र को अपने राज्य के किसी अंश का शासक नियत किया हो तो वही सोमसिंह गुजरात का सहायक हुआ हो।

(२) उदयसिंह जालोर का चौहान राजा था जिसके शिलालेख वि० सं० १२६२ से १३०६ तक के मिल चुके हैं।

(३) धारावर्ष आबू का परमार राजा था। उसके समय के कई एक शिलालेख मिले हैं जो वि० सं० १२२० से १२७६ तक के हैं और उस समय के पीछे भी कुछ और वर्ष तक भी वह जीवित रहा हो परंतु वि० सं० १२८७ से पूर्व उसकी मृत्यु होना निश्चित है क्योंकि उक्त संवत् में उसका पुत्र सोमसिंह आबू का राजा था।

(४) श्रीसोमसिंहोदयसिंहधारा-
वर्षैरमीभिर्मरुदेशनाथैः।
दिशोऽष्ट जैतुं स्फुटमष्टबाहु-
स्त्रिभिः समेतैरभवत्प्रभुर्नः॥ ८॥
(हंमीरमदमर्दन, पृ० ११)।

मेल न किया, उस मेदपाट (मेवाड़) देश के राजा जयतल (जैत्रसिंह) से लड़ने की इच्छावाले हंमीर (अमीर, सुल्तान) के समाचार लेकर अब तक कोई दूत नहीं आया।[1] इतने में कमलक नामक दूत आकर निवेदन करता है कि महाराज ! हंमीर के वीरों ने मेवाड़ को जला दिया। वीरधवल पूछता है कि कैसे ? कमलक निवेदन करता है कि 'शस्त्रों से सुसज्जित म्लेच्छों ने मार ! मार ! करते हुए अचानक उसके नगर में प्रवेश कर दिया और लोग भयभीत हो गए।' वीरधवल फिर पूछता है कि 'इस तरह नगर को परवश हुआ देखकर मेदपाट के राजा ने क्या किया ?' कमलक उत्तर देता है कि 'किया क्या ? हंमीर के वीरों ने शस्त्र खींचकर जो कुछ किया वही हुआ।' वीरधवल फिर पूछता है कि 'क्या वहाँ के राजा ने अपने बड़े पुरुषार्थ को उत्तेजित करने के लिये रिपुसैन्य पर अपनी तलवार की धार को तेज किया ?' कमलक हँसकर कहता है कि 'आपको सब अपने ही समान दीख पड़ते हैं, आपके सिवाय कौन ऐसा समर्थ है जो हंमीर के वीरों का सामना करे'। इस प्रकार वीरधवल की बड़ाई करने के बाद कमलक कहता है कि 'कोई क्षत्रिय वहाँ के लोगों की रक्षा करने को न आया। लोग डर के मारे आत्महत्या करने लगे। कई कुओं में गिरे, कई अपने घरों में आग लगा कर उसी में जल मरे, कई फाँसी खाकर मरे और कई क्रोध कर शत्रु पर टूट पड़े। जब मुसलमान सैनिक बच्चों को निर्दयता के साथ मार रहे थे उस समय उनकी चिल्लाहट सुनकर मुसलमान का भेष धारण किए हुए मैंने आवाज़ दी कि भागो ! भागो ! वीरधवल आ रहा है। यह सुनते ही तुरुष्कों की सेना भाग निकली, लोग वीरधवल को देखने के लिये आतुर होकर पूछने लगे कि वीरधवल कहाँ है ? तब मैंने मुसलमान का भेष छोड़कर उनसे कहा कि वीरधवल आ रहा है। इससे उनको हिम्मत बँध गई और उन्होंने भागते हुए मुसलमानों का पीछा किया[2]।

इस वर्णन में जयसिंहसूरि का पक्षपात झलक आता है। इसमें उसने वीरधवल और उसके मंत्रियों का उत्कर्ष और जयतल (जैत्रसिंह) की कमज़ोरी बतलाने की चेष्टा की है। जैत्रसिंह से तो कुछ न बन पड़ा परंतु वस्तुपाल के भेजे हुए दूत के यह कहते ही कि

(१) तं पुनः प्रतिपार्थिवायुर्वायुकवलनप्रसर्पदसितसर्पायमाणकृपाणदर्पस्मितमस्मदमिलितं मेदपाटपृथिवीललाटमण्डलं जयतलं विग्रहीतुं कृतादरस्य हम्मीरमहीशितुः किंवदन्तीं निवेदयितुमद्यापि न कोऽपि दूतः समुपैति। (हंमीरमदमर्दन, पृ० २७।)

(२) वही, अंक १—३ (पृ० ६—३३)।

'भागो! भागो! वीरधवल आ रहा है' सारी मुसलमान सेना, जिसकी वीरता की पहिले बहुत कुछ प्रशंसा की गई है, एक दम भाग निकली यह मानने योग्य नहीं। संभव तो यही प्रतीत होता है कि नागदा के टूटने के बाद सुलतान और जैत्रसिंह की मुठभेड़ हुई हो जिसमें हार कर सुलतान की सेना भाग निकली हो। चीरवा तथा घाघसा के शिलालेखों से ऊपर उद्धृत किया गया है कि 'म्लेच्छों का स्वामी जैत्रसिंह का मानमर्दन न कर सका'[1] और आबू के लेख से यह बतलाया जा चुका है कि 'जैत्रसिंह तुरुष्क सैन्य रूपी समुद्र के लिये अगस्त्य के समान था'[2] जो अधिक विश्वास के योग्य है।

जयसिंहसूरि के उक्त नाटक का नाम 'हंमीरमदमर्दन' रक्खे जाने का मुख्य आधार सुलतान की सेना का मेवाड़ से हारकर भागना ही है जिससे वीरधवल का कुछ भी संबंध न था, तो भी उक्त विजय का सन्मान उक्त सूरि ने जैत्रसिंह को न देकर वीरधवल के नाम पर अंकित किया और अपने सारे पुस्तक में वीरधवल और उसके मंत्रियों की प्रशंसा करने में कुछ भी कमी न रक्खी। इस पक्षपात के दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम तो यह कि जयसिंहसूरि भड़ौच (गुजरात में) के मुनिसुव्रत के जैन मंदिर का आचार्य था और वस्तुपाल तथा तेजपाल ने जैनधर्म के उत्कर्ष के लिये मंदिरादि बनवाने में करोड़ों रुपये खर्च किए थे[3] जिससे एक जैन आचार्य उनकी और उनके स्वामी की प्रशंसा करे यह स्वाभाविक है। दूसरा कारण यह है कि जब तेजपाल यात्रा के निमित्त भड़ौच गया उस समय जयसिंहसूरि ने उसकी प्रशंसा के श्लोक उसे सुनाकर यह प्रार्थना की कि शकुनिका विहार (मंदिर) की पच्चीस देवकुलिकाओं पर बाँस के दंड हैं उनके स्थान में सोने के दंड बनवा

(१) देखो ऊपर, पृ० ११९ टिप्पण ३ और पृ० १२०, टि० ४।

(२) देखो ऊपर, पृ० १२० टिप्पण ५।

(३) सिरोही राज्य का इतिहास, पृ० ६४।

दीजिए। तेजपाल ने अपने बड़े भाई वस्तुपाल की अनुमति से सूरि की प्रार्थना को स्वीकार कर उनपर २५ सुवर्ण के दंड चढ़वा दिए। इस उदारता से प्रसन्न होकर उक्त सूरि ने उन दोनों भाइयों की प्रशंसा का 'वस्तुपालप्रशस्ति' नामक ७७ श्लोकों का शिलालेख बनाकर उक्त मंदिर में लगवाया। 'हंमीरमदमर्दन' की रचना भी उसीका बदला देने की इच्छा से की गई हो यह संभव हो सकता है। गुजरात के डूबते हुए राज्य का सर्दार वीरधवल जैत्रसिंह जैसे प्रबल राजा के सामने कुछ भी न था। वास्तव में जैत्रसिंह ने सुलतान की सेना को भगाकर गुजरात को और भी बर्बाद होने से बचाया परंतु जयसिंहसूरि को अपने आश्रयदाता मंत्रियों तथा उनके स्वामी का उत्कर्ष बतलाना इष्ट था जिससे उक्त वास्तविक घटना का और ही रूप दिया। ऐसे ही उक्त नाटक के चौथे अंक में हंमीर के संबंध में जो कुछ लिखा है[२] वह तो सारा ही कपोलकल्पित है।

(१) 'वस्तुपालप्रशस्ति', श्लोक ६५—६६।

(२) उसका सारांश यह है कि 'तेजपाल का भेजा हुआ गुप्त दूत अपने को खप्परखान (खलीफा का सर्दार या सेनापति ?) का दूत प्रकट कर मुसलमानों के मालिक खलीफा के पास बगदाद पहुंचा उसने खलीफा से यह निवेदन किया कि मीलच्छीकार (देहली का सुलतान शम्सुद्दीन अलतमिश, अमीर शिकार) आपकी आज्ञा को भी नहीं मानता। इसपर क्रुद्ध होकर खलीफा ने उसीके हाथ हुक्म भेजा कि उस (हिंदुस्तान के सुलतान) को कैद कर मेरे पास भेज दो। यह हुक्म लेकर वही दूत अपने को खलीफा का दूत प्रकट कर खप्परखान के पास पहुंचा। खलीफा के हुक्म को देखते ही उसने सुलतान पर चढ़ाई कर दी। जब वह मथुरा के निकट पहुंचा गया तब सुलतान ने घबराकर कादी और रादी नामक अपने दो गुरुओं को खलीफा के पास उसका क्रोध शमन कराने को भेजा। जब सुलतान ने अपने प्रधान (प्रधान मंत्री) गोरी ईसप की राय ली तो उसने सलाह दी कि खप्परखान से लड़ना ठीक नहीं, पीछा हटना ही उचित होगा। परंतु सुलतान ने उसको न माना। इतने में वीरधवल भी सुलतान पर चढ आया जिसपर वह (सुलतान) तथा उसका प्रधान मंत्री दोनों भाग गए' (हंमीरमदमर्दन, अंक ४)। यह सारी कथा गढंत ही है जिसके लिये कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है।

अब हमें यह निश्चय करने की आवश्यकता है कि जैत्रसिंह और सुलतान के बीच की लड़ाई कब हुई और किस सुलतान के साथ हुई।

वि० सं० १२७६ में[1] वस्तुपाल धौलका के सामंत का मंत्री बना। यह लड़ाई उसकी जीवित दशा में हुई अतएव उक्त संवत् के पीछे किसी वर्ष होनी चाहिए। नांदेसमा गाँव के सूर्य मंदिर के स्तंभ पर का राजा जैत्रसिंह के समय का शिलालेख वि० सं० १२७९ वैशाख सुदि १३ शुक्रवार का है जिसमें उक्त राजा का नागह्रद (नागदा) में राज्य करना लिखा है[2] जिससे निश्चित है कि उस समय तक नागदा टूटा न था। अतएव उक्त लड़ाई का उस संवत् के बाद किसी समय होना मानना पड़ता है। 'हंमीरमदमर्दन' की जैसलमेर के जैन-पुस्तक-भंडार की ताड़पत्र पर लिखी हुई प्रति वि० सं० १२८६ की[3] है। यह संवत् चाहे उक्त पुस्तक की रचना का हो या उसके लिखे जाने का, परंतु उससे यह तो निश्चित है कि उक्त संवत् के पूर्व राजा जैत्रसिंह और सुलतान के बीच की लड़ाई हो चुकी थी। ऐसी दशा में वह लड़ाई वि० सं० १२७९ और १२८६ के बीच किसी वर्ष होनी चाहिए।

मेवाड़ के राजाओं के शिलालेखों में जैत्रसिंह के समय मेवाड़ पर चढ़ाई करनेवाले सुलतान का नाम नहीं दिया। उसका परिचय 'म्लेच्छाधिनाथ' (म्लेच्छों अर्थात् मुसलमानों का अधिपति) और 'सुरत्राण' (सुलतान) शब्दों से दिया है। 'हंमीरमदमर्दन' में उसको कहीं 'तुरुष्क' (तुर्क), कहीं 'हंमीर' ('अमीर, सुलतान), कहीं 'सुरत्राण' (सुलतान), कहीं 'म्लेच्छचक्रवर्ती' और कहीं

(१) बालचंद्रसूरिरचित 'वसंतविलास महाकाव्य' की अंग्रेजी भूमिका, पृ० १२। वसंतविलास में वस्तुपाल का इतिहास है।

(२) देखो ऊपर पृ० ११८, टिप्पण ६।

(३) संवत् १२८६ वर्षे आषाढ़ वदि ९ शनौ हम्मीरमदमर्दनं नाम नाटकम्। (जैसलमेर की प्रति के अंत में)।

'मीलच्छीकार' कहा है । इनमें से पहिले चार नाम तो उसके पद के सूचक हैं और अंतिम नाम उसके पहिले के खिताब 'अमीरशिकार' का संस्कृत शैली का रूप प्रतीत होता है । 'अमीरशिकार' का खिताब देहली के ग़ुलाम सुलतान कुतबुद्दीन ऐबक ने अपने ग़ुलाम अलतमिश को दिया था ।[1] कुतबुद्दीन ऐबक के पीछे उसका पुत्र आरामशाह देहली के तख़्त पर बैठा जिसको निकालकर अलतमिश वहां का सुलतान बन बैठा और उसने शम्सुद्दीन ख़िताब धारण कर हिजरी सन् ६०७ से ६३३ (वि० सं० १२६७ से १२९३) तक देहली पर राज किया । ऊपर हम बतला चुके हैं कि जैत्रसिंह और सुलतान के बीच की लड़ाई वि० सं० १२७९ और १२८६ के बीच किसी वर्ष हुई और उस समय देहली का सुलतान शम्सुद्दीन अलतमिश ही था । इसलिये निश्चित है कि जैत्रसिंह ने उसीको हराया था ।

फ़ारसी तवारीखों से पाया जाता है कि शम्सुद्दीन अलतमिश ने राजपूताने पर कई चढ़ाइयाँ की थीं, जैसे कि हिजरी सन् ६१२ (वि० सं० १२७२) के आस पास जालौर के चौहान उदैसिंह पर[2], हिजरी सन् ६२३ (वि० सं० १२८३) में रणथंभोर पर,[3] हि० सं० ६२४ (वि० सं० १२८४) में मंडोर पर[4] और हि० सं० ६२५ (वि० सं० १२८५) में सवालक (सपादलक्ष,[5] आलक), अजमेर, लावा तथा सांभर पर ।[6] इन सब चढ़ाइयों का हाल फ़ारसी तवारीखों में मिलता है परंतु जैत्रसिंह के साथ की मेवाड़ की लड़ा

(१) तबक़ाते—नासीरी, का अंग्रेजी अनुवाद (मेजर रावर्टी का किया हुआ); पृ० ६०३; इलियट्स हिस्टरी आफ इंडिआ, जि० २, पृ० ३२२ ।

(२) ब्रिग्ज़ फरिश्ता, जि० १, पृ० २०७ ।

(३) तबक़ाते—नासीरी (अंग्रेजी अनुवाद), पृ० ६११; इलियट्स हिस्टरी आफ इंडिआ, जि० २, पृ० ३२४ ।

(४) तबक़ाते—नासिरी (अंग्रेजी अनुवाद), पृ० ६२१ ।

(५) सपादलक्ष (आलक) के लिये देखो 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', भाग २, पृ० ३३०—३२ ।

(६) तबक़ाते—नासिरी (अंग्रेजी अनुवाद), पृ० ७२८ ।

का उनमें कहीं उल्लेख नहीं है जिसका कारण यही प्रतीत होता है कि उस लड़ाई में सुलतान को हारकर लौटने की बदनामी उठानी पड़ी जिससे उसे छिपाना पड़ा हो।

कर्नल जेम्स टॉड ने अपने 'राजस्थान' में लिखा है कि राहप ने संवत १२५७ (ई० स० १२०१) में चित्तौड़ का राज्य पाया और थोड़े ही समय के बाद उस पर शम्सुद्दीन का हमला हुआ जिसको उस (राहप) ने नागोर के पास की लड़ाई में हराया।[1] कर्नल टॉड ने राहप को रावल समरसिंह का पौत्र और करण का पुत्र मानकर उसका चित्तौड़ के राज्यसिंहासन पर बैठना लिखा है परंतु न तो वह रावल समरसिंह का जिसके कई शिलालेख वि० सं० १३३० से १३५८ तक[2] के मिले हैं, पौत्र था और न वह कभी चित्तौड़ का राजा हुआ।[3] वह तो सीसोदे की जागीर का स्वामी था और समरसिंह से बहुत पहिले हुआ था। अतएव शम्सुद्दीन को हरानेवाला राहप नहीं किंतु जैत्रसिंह था और उस (शम्सुद्दीन) के साथ की लड़ाई नागोर के पास नहीं किंतु नागदा के पास हुई थी जैसा कि ऊपर चीरवा के शिलालेख से बतलाया जा चुका है।[4]

सिंध की सेना के साथ की लड़ाई।

रावल समरसिंह के समय के आबू के शिलालेख में जैत्रसिंह का तुरुष्क (सुलतान शम्सुद्दीन अलतमिश की) सेना को नष्ट करने के पीछे सिंधुकों (सिंधवालों) की सेना को नष्ट करना लिखा है जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। अब यह जानना आवश्यक है कि वह सेना किसकी थी और मेवाड़ की ओर कब आई। फारसी

(१) टॉड 'राजस्थान' (ऑक्सफर्ड संस्करण), जि० १, पृ० ३०९।

(२) देखो 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' भाग १, पृ० ३० और ४१३ तथा पृ० ४१३ का टिप्पण २७।

(३) राहप के रावल समरसिंह के साथ के संबंध आदि के लिये देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० ३४—३६।

(४) देखो ऊपर पृ० १२२ और वहीं टि० १।

तवारीखों से पाया जाता है कि शहाबुद्दीन गोरी का .गुलाम नासिरुद्दीन कुबाचः, जो कुतबुद्दीन ऐबक का जंवाई था, उस (कुतबुद्दीन ऐबक) के मरने पर सिंध को दबा बैठा। मुग़ल चंगेज़ख़ां ने ख्वार्ज़म के सुलतान मुहम्मद (कुतुबुद्दीन) पर चढ़ाई कर उसके मुल्क को बर्बाद किया। मुहम्मद के पीछे उसका बेटा जलालुद्दीन (मंगबर्नी) ख्वार्ज़िमी चंगेज़ख़ाँ से लड़ा और हारने पर सिंध को चला गया। उसने नासिरुद्दीन .कुबाचः को उच्छ की लड़ाई में हराकर ठट्टा नगर (देवल) पर अपना अधिकार कर लिया जिससे वहाँ का राय, जो सुमरा जाति का था और जिसका नाम जेयसी (जयसिंह) था, भागकर सिंधु के एक टापू में जा रहा। जलालुद्दीन ने वहां के मंदिरों को तोड़ा और उनके स्थान में मसजिदें बनवाई। उसने हि० स० ६२० (वि० सं० १२७६) में खासखां की मातहती में नहरवाले (अनहिलवाड़ा, गुजरात की राजधानी) पर चढ़ाई भेजी जो बड़ी लूट के साथ लौटी।[1] सिंध से गुजरात पर चढ़ाई करनेवाली सेना का मार्ग मेवाड़ में होकर था इसलिये संभव है कि जैत्रसिंह ने उस सेना को अनहिलवाड़ा जाते या वहाँ से लौटते समय परास्त किया हो।

जांगल के मुसलमानों के साथ की लड़ाई।

जांगलदेश की पुरानी राजधानी नागोर (अहिछत्रपुर)[2] थी। चौहान पृथ्वीराज के मारे जाने के बाद अजमेर, नागोर आदि पर, जहाँ चौहानों का राज्य रहा, मुसलमानों का अधिकार होगया। देहली के सुलतान नासिरुद्दीन महमूद के वक्त में नागोर का इलाका .गुलाम उलगख़ाँ (बलबन)[3] को जागीर में मिला था। 'तबक़ाते

(१) ब्रिग्ज़ फ़रिश्ता, जि० ४, पृ० ४१३—२०; डफ़स क्रानोलोजी आफ इंडिआ, पृ० १७६—८०; तबक़ाते—नासिरी (अंग्रेज़ी अनुवाद), पृ० २९४ का टिप्पण।

(२) देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३२७—२६।

(३) बलबन तुर्किस्तान का रहनेवाला एक अच्छे घराने का पुरुष था, वह बचपन में ही कैद हुआ और हिंदुस्तान में लाए जाने पर

नासिरी' से पाया जाता है कि हि० स० ६५१ (वि० सं० १३१०) में उलुग़ख़ां अपने कुटुंब आदि सहित हाँसी में जा रहा। सुलतान के देहली में पहुँचने पर उलुग़ख़ां के शत्रुओं ने सुलतान को यह सलाह दी कि हाँसी का इलाका तो किसी शाहज़ादे को दिया जावे और उलुग़ख़ां नागोर भेजा जावे। इस पर सुलतान ने उसको नागोर भेज दिया। यह घटना जमादिउल्-आख़िर हि० स० ६५१ (भाद्रपद वि० सं० १३१०) में हुई, उलुग़ख़ां ने नागोर पहुँचने पर रणथंभोर, चित्तौड़ आदि पर फौज भेजी।[1] तबक़ाते-नासिरी में चित्तौड़ पर गई हुई फौज ने क्या किया इस विषय में कुछ भी नहीं लिखा जिससे अनुमान होता है कि वह फौज हारकर लौट गई हो जैसा कि घाघसा तथा चीरवा के शिलालेखों का कथन है कि जांगलवाले राजा जैत्रसिंह का मानमर्दन न कर सके। उलुग़ख़ां की उक्त चढ़ाई के समय चित्तौड़ में राजा जैत्रसिंह का ही होना पाया जाता है।

मालवा के राजा के साथ की लड़ाई।

मेवाड़ से मिला हुआ बागड़ का इलाका जैत्रसिंह के समय मालवा के परमार राजाओं के अधीन था[2] और उसपर मालवा के परमारों

देहली के सुलतान शम्सुद्दीन अलतमिश ने उसे खरीदा। पहिले वह भिश्तियों में रक्खा गया फिर उसकी बुद्धिमानी और तेज़ तबीअत के कारण वह ४० खास गुलामों में भरती हुआ। रज़िआ बेगम के समय वह शिकार के काम पर नियत हुआ और कुछ समय तक कैद भी रहा। कैद से भागकर वह मुईज़ुद्दीन बहराम के पक्ष में मिल गया। उक्त सुलतान के समय में उस को हाँसी और रेवाड़ी की जागीर मिली। सुलतान अलाउद्दीन मसऊद के राज्य में वह अमीरहजीब के पद पर नियत हुआ और सुलतान नासिरुद्दीन के समय वह उस फकीरी ढंगवाले सुलतान का वज़ीर बना और राज्य का प्रबंध उसीके हाथ में रहा। उक्त सुलतान के मरने पर देहली का सुलतान बनकर उसने ग़यासुद्दीन बलबन नाम धारण किया। उलुग़ख़ां इसका सुलतान होने के पहिले का खिताब था।

(१) इलियट्स हिस्टरी आफ इंडिआ, जि० २, पृ० ३७०।

(२) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २८।

की छोटी शाखा वाले सामंतों का अधिकार था। जैत्रसिंह के समय मालवे के राजा परमार देवपाल[1] और उसका पुत्र जयतुगिदेव[2], जिसको जयसिंह भी लिखा है, थे। चीरवा के लेख से पाया जाता है कि 'राजा जैत्रसिंह ने तलारच (कोतवाल) योगराज के चौथे पुत्र क्षेम को चित्तौड़ की तलारता (कोतवाल का स्थान, कोतवाली) दी। उसकी स्त्री हीरू से रत्न का जन्म हुआ। रत्न का छोटा भाई मदन हुआ जिसने उत्थूणक (अर्थूणा, बांसवाड़ा राज्य में) के रणखेत में श्रीजयसल (जैत्रसिंह) के लिये 'पंचलगुडिक'[3] जैत्रमल्ल से लड़कर अपना बल प्रकट किया।'[4] अर्थूणा मालवा के परमारों के राज्य के

(१) देवपाल का एक दानपत्र वि० सं० १२७५ का मिला है और जैन पंडित आशाधर ने 'त्रिषष्टिस्मृति' नामक पुस्तक देवपाल के राज्य समय वि० सं० १२९२ में समाप्त की। अतएव वि० सं० १२७५ से १२९२ तक देवपाल का विद्यमान होना तो निश्चित है। जिस समय देवगिरि का यादव राजा सिंहण गुजरात पर चढ़ा उस समय वस्तुपाल के गुप्तचर सुवेग ने देवपाल के अस्तबल में नौकर रहकर देवपाल के नाम का दाग लगा हुआ उसका उत्तम घोड़ा चुराकर सिंहण के सैन्य में जाकर संग्रामसिंह को इस अभिप्राय से दिया था कि इससे सिंहण और संग्रामसिंह के बीच फूट पड़कर वह सिंहण को छोड़कर चला जावे (हंमीरमदमर्दन, अंक २)।

(२) आशाधर पंडित ने जयतुगिदेव (जयसिंह) के राज्य समय वि० सं० १३०० में 'धर्मामृतशास्त्र' की रचना की और उसका राहटगढ़ से मिला हुआ दानपत्र वि० सं० १३१२ का है जिसमें उसका नाम जयसिंह दिया है। जयसिंह, जैत्रसिंह, जैत्रकर्ण, जयतुगिदेव आदि सब पर्याय शब्द हैं।

(३) 'पंचलगुडिक' जैत्रकर्ण (जयसिंह) का खिताब प्रतीत होता है।

(४) क्षेमस्तु निर्मितक्षेमश्चित्रकूटे तलारतां।
राज्ञः श्रीजैत्रसिंहस्य प्रसादादाप्तदुत्तमात् ॥ २२ [॥]
हीरूरिति प्रसिद्धा प्रतिपिद्धार्त्तार्त्ति दुर्मतिरभूच्च।
जाया तस्यामायाजायत तनुजस्तयो रत्नः ॥ २३ [॥]
रत्नानुजोस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः।
मदनः प्रसन्नवदनः सततं कृतदुष्टजनकदनः ॥ २७ [॥]
यः श्रीजेसलकार्ये भवदुत्थूणकरणांगणे प्रहरन्।
पंचलगुडिकेन समं प्रकटबलो जैत्रमल्लेन ॥ २८ [॥]
(चीरवा का शिलालेख)

अंतर्गत था और उनकी छोटी शाखा के सामंतों की जागीर का मुख्य स्थान था। जैत्रकर्ण मालवा का परमार राजा जयतुगिदेव (जयसिंह) होना चाहिए जिसका मेवाड़ के जैत्रसिंह का समकालीन होना ऊपर बतलाया गया है। अनुमान होता है कि जैत्रसिंह ने अपना राज्य बढ़ाने को अपने पड़ोसी मालवा के परमारों के राज्य पर हमला किया हो और वह जयतुगिदेव (जयसिंह, जैत्रकर्ण) से लड़ा हो। इसी समय के आस पास बागड़ पर से मालवा के परमारों का अधिकार उठ जाना पाया जाता है।

गुजरात के राजा के साथ की लड़ाई।

चीरवा के उक्त लेख में यह लिखा है कि नागदा के तलारक्ष (कोतवाल) योगराज के दूसरे पुत्र महेंद्र का बेटा बालाक कोट्टडक (कोटडा) लेने में राणक (राणा) त्रिभुवन के साथ की लड़ाई में राजा जैत्रसिंह के सामने लड़कर मारा गया और उसकी स्त्री भोली उसके साथ सती हुई।[1] त्रिभुवन (त्रिभुवनपाल) गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव दूसरे (भोलाभीम) का उत्तराधिकारी था। भीमदेव (दूसरे) का देहांत वि० सं० १२९८ में हुआ। त्रिभुवनपाल ने 'प्रवचनपरीक्षा' के लेखानुसार ४ वर्ष राज्य किया[2], जिसके पीछे उक्त धोलका के राणा वीरधवल का उत्तराधिकारी वीसलदेव गुजरात का

(१) बालाख्हादनवयजा महेंद्रतनुजास्त्रयस्त्वजायंत।
नयविनयपरपराजयजातलया विहितदीनदयाः॥ १७ [॥]
बालाकः कोट्टडकग्रहणे श्रीजैत्रसिंहनृपपुरतः।
त्रिभुवनराणकयुद्धे जगाम युद्ध्वा परं लोकं॥ १९ [॥]
तद्विरहमसहमाना भोल्यपि नाम्नादिमा विदग्धानां।
दग्ध्वा दहने देह तद्भार्या तमन्वगमत्॥ २० [॥]
(चीरवा का शिलालेख)

(२) संवत् १२३५ वर्षे लघुभीमदेवस्याप्य वर्ष ६३ राज्य कृतं। संवत् १२९८ वर्षे तिहुंणपालस्याप्य वर्ष ४ राज्य कृतं (डाक्टर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर संगृहीत बंबई इहाते के संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की रिपोर्ट, ई० स० १८८३-८४, पृ० १५० और पृ० ३१८।)

राजा बना । इसलिये गुजरात के राजा त्रिभुवनपाल के साथ की जैत्रसिंह की लड़ाई वि० सं० १२९८ और १३०२ के बीच किसी वर्ष हुई होगी । चीरवा तथा घाघसा के शिलालेखों में गुजरात के राजा से लड़ने का जो उल्लेख मिलता है वह इसी लड़ाई का सूचक है ।

मारवाड़ के राजा के साथ की लड़ाई ।

जैत्रसिंह के समय मारवाड़ के बड़े हिस्से पर नाडौल के चौहानों का राज्य था । नाडौल के चौहान साँभर के चौहान राजा वाक्पतिराज (बप्पयराज) के दूसरे पुत्र लक्ष्मण (लाखणसी) के वंशधर थे । उक्त वंश के राजा आल्हण के तीसरे पुत्र कीर्तिपाल (कीतु) ने अपने भुजबल से जालौर का किला परमारों से छीनकर जालौर पर अपना अलग राज्य स्थिर किया । कीर्तिपाल के पौत्र और समरसिंह के पुत्र उदयसिंह के समय नाडौल का राज्य भी जालौर के अंतर्गत हो गया । इतनाही नहीं किंतु मारवाड़ के बड़े हिस्से अर्थात् नड्डूल (नाडौल), जाबालिपुर (जालौर) मांडव्यपुर (मंडोर), वाग्भटमेरु (बाहडमेर), सूराचंद, राटहृद, खेड़, रामसैन्य (रामसेण), श्रीमाल (भीनमाल), रत्नपुर (रतनपुर), सत्यपुर (साचोर) आदि उसके राज्य के अंतर्गत हो गए थे ।[1] समरसिंह के समय के शिलालेख वि० सं० १२३९ से १२४२ तक[2] के और उसके पुत्र उदयसिंह के समय के वि० सं० १२६२ से १३०६ तक[3] के मिले हैं जिनसे पाया जाता है कि वि० सं०

---

(१) श्रीसमरसिंहदेवस्य नंदनः प्रव (ब)लशौर्यरमणीयः ।
श्रीउदयसिंह भूपतिरभूत्प्रभाभास्वदुपमानः ॥ ४२ [॥]

श्रीनड्डूल श्रीजाबालिपुरमांडव्यपुरवाग्भटमेरुसूराचंडराटहृदखेडरामसैन्यश्रीमालरत्नपुरसत्यपुरप्रभृतिदेशानामयमधिपतिः ॥ ४३ ॥ (वि० सं० १३१९ का सूंधा नामक पहाड़ पर के मंदिर का शिलालेख, एपि० इंडिका, जि० ९, पृ० ७७—७८)

(२) वही; पृ० ७८ के पास का वंशवृक्ष ।

(३) वही ।

१२६२ के पहिले से लगाकर १३०६ के पीछे तक मारवाड़ का राजा चौहान उदयसिंह ही था और वह मेवाड़ के राजा जैत्रसिंह का समकालीन था। घाघसा के उपर्युक्त शिलालेख में लिखा है कि शाकंभरीश्वर (चौहान राजा) उस (जैत्रसिंह) का मानमर्दन न कर सका जो जैत्रसिंह का जालौर के चौहान राजा उदयसिंह से लड़ना सूचित करता है। चीरवा के शिलालेख में जैत्रसिंह का मारव (मारवाड़) के राजा से लड़ना पाया जाता है और आबू के शिलालेख में स्पष्ट लिखा है कि 'उस (जैत्रसिंह) की भुजलक्ष्मी ने नाडूल (नाडौल) को निर्मूल (नष्ट) किया था।'

यह लड़ाई किस कारण हुई इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता परंतु अनुमान होता है कि उदयसिंह के महाबली दादा कीर्तिपाल (कीतू) ने मेवाड़ के राजा सामंतसिंह से मेवाड़ का राज्य कुछ समय के लिये छीन लिया जिससे सामंतसिंह ने बागड़ पर अपना अधिकार कर वहाँ अपना नया राज्य स्थिर किया जो पीछे से डूंगरपुर का राज्य कहलाया। सामंतसिंह के छोटे भाई कुमारसिंह ने गुजरात के राजा की सहायता से मेवाड़ का राज्य कीर्तिपाल (कीतू) से छीनकर अपना राज्य वहाँ जमाया।[1] कुमारसिंह तथा उसके उत्तराधिकारी मथनसिंह तथा पद्मसिंह चौहानों से बदला ले न सके परंतु प्रतापी जैत्रसिंह ने उसका बदला लेने के लिये चौहान उदयसिंह पर चढ़ाई कर नाडौल को नष्ट किया हो। बुड़तरा (मारवाड़ में) के शिलालेख से पाया जाता है कि 'चौहान उदयसिंह की पोती और चाचिकदेव की पुत्री रूपादेवी का विवाह तेजसिंह (जैत्रसिंह के पुत्र) के साथ हुआ था।'[2] इससे यह भी अनुमान हो सकता है कि उदयसिंह ने अपनी पोती की शादी जैत्रसिंह के पुत्र के साथ कर मेवाड़वालों के साथ का पुराना वैर मिटाया हो।

ऊपर उद्धृत किए हुए तीन शिलालेखों में जैत्रसिंह की तीन

(१) नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २५—२७।

(२) एपि० इंडिका, जि० ४, पृ० ३१३—१४।

मुसलमानों के साथ की और तीन हिंदू राजाओं के साथ की लड़ाइयों का जो संक्षिप्त वर्णन मिलता है उसका जहाँ तक पता चल सका स्पष्टीकरण किया जा चुका। फिरिश्ता देहली के सुलतान नासिरुद्दीन महमूद के वृत्तांत में लिखता है कि 'हि० स० ६४६ (वि० सं० १३०५) में सुलतान का भाई जलालुद्दीन उसकी जागीर कन्नौज से देहली बुलाया गया परंतु उसको अपने प्राणों का भय हो जाने से वह अपने साथियों सहित चित्तौड़ के पहाड़ों में चला गया। सुलतान ने उसका पीछा किया परंतु आठ महीने बाद जब उसको यह मालूम हुआ कि वह उसके हाथ नहीं आ सकता तब वह देहली को लौट गया।'[1] यदि यहाँ चित्तौड़ के पहाड़ों का अभिप्राय मेवाड़ की राजधानी प्रसिद्ध चित्तौड़ के किले से संबंध रखनेवाले मेवाड़ के पहाड़ों से ही है तो यह भी मानना पड़ेगा कि सुलतान नासिरुद्दीन महमूद ने भी मेवाड़ पर चढ़ाई की थी और आठ महीनों तक वहाँ रहने के बाद उसको निराश होकर लौटना पड़ा था

जैत्रसिंह के समय के शिलालेख।

जैत्रसिंह के समय के अब तक दो शिलालेख मिले हैं जिनमें से एक एकलिंगजी के मंदिर के सामने के आँगन में पाषाण के नंदी के निकट खड़े हुए एक स्मारक पत्थर पर खुदा है जो वि० सं० १२७० का[2] है, दूसरा नांदेसमा गाँव के सूर्य मंदिर के स्तंभ पर खुदा हुआ वि० सं० १२७६ वैशाख सुदि १३ का[3] है जिसमें उक्त संवत् में जैत्रसिंह का नागदा में राज्य करना तथा महं० (महत्तम, मेहता) डूँगरसी का उसका श्रीकरण[4] ('श्री' की

(१) ब्रिगज़ फिरिश्ता, जि० १, पृ० २३८।

(२) संवत् १२७० वर्षे महाराजाधिराज श्रीजैत्रसिंहदेवेनु...(भावनगर इन्स्क्रिपशन्स; पृ० ९३ का टिप्पण)।

(३) देखो ऊपर पृ० ११८, टिप्पण ६।

(४) मुद्रा (मुहर) लगानेवाले राज्याधिकारी के लिये देखो 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका,' भाग १ पृ० ४४१—४२।

मुहर करनेवाला) होना लिखा है। उक्त लेख के खुदवाए जाने तक मेवाड़ की राजधानी नागदा शहर थी जिसके टूटने पर चित्तौड़ राजधानी स्थिर हुई और अकबर ने वि० सं० १६२४ में चित्तौड़ ले लिया तब तक बनी रही।

जैत्रसिंह के समय की हस्तलिखित पुस्तकें

जैत्रसिंह के समय की ताड़पत्र पर लिखी हुई दो पुस्तकें खंभात (गुजरात में) शांतिनाथ के जैन मंदिर के पुस्तक संग्रह में सुरक्षित हैं जिनमें से एक में १७४ पत्रों में 'दशवैकालिकसूत्र', 'पाक्षिकसूत्र' और 'ओघनिर्युक्ति' तीनों साथ लिखी हैं। उनके अंत में लिखा है कि 'समस्त राजपरंपरा से अलंकृत महाराजाधिराज श्रीजैत्रसिंह देव के कल्याणकारी विजय राज्य समय, जब कि उनका नियत किया हुआ महामात्य (मुख्यमंत्री) श्रीजगतसिंह समस्त मुद्रा (मुहर लगाने का[1]) कार्य करता था, शा० (शाह) उद्धर[ण] के पुत्र परमार्हत. (परमजैन) हेमचंद्र ने जो सब सिद्धांतग्रंथों का उद्धार करने में धुरंधर था। और जिसको विशुद्ध सिद्धांतग्रंथों के सुनने से बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई थी, दशवैकालिक, पाक्षिक सूत्र और ओघनिर्युक्ति की पुस्तकें आघाटदुर्ग (आहाड़) में संवत् १२८४ फाल्गुन [बदि] अमावास्या को लिखवाई और ठ० (ठकुर) साहड़ के पुत्र श्रमणोपासक ठ० महिलण के बेटे खेमसिंह ने लिखीं।'[2] दूसरी पुस्तक 'पाक्षिकसूत्रवृत्ति' है जिसके अंत में लिखा है कि 'दक्षिण और उत्तर

---

(१) देखो पृ० १३७, टि० ४।

(२) संवत् १२८४ वर्षे फाल्गुनामावास्यां सोमे अद्येह श्रीमदाघाटदुर्गे समस्तराजावलीसमलंकृतमहाराजाधिराजश्रीजैत्रसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये तन्नियुक्तमहामात्यश्रीजगत्सिंहे समस्तमुद्राव्यापारान् परिपंथयतीत्येवं काले प्रवर्तमाने सा० उद्धरसूनुना समस्तसिद्धांतोद्धारैकधुरंधरेण विशुद्धसिद्धांतश्रवणसमुद्भूतश्रद्धातिरेकेण परमार्हत सा० हेमचंद्रेण दशवैकालिकपाक्षिकसूत्रओघनिर्युक्तिसूत्रपुस्तिका लेखिता' लिखिता च ठ० साहडसुतश्रमणोपासक ठ० महिलणसुतखेमसिंहेन। ('पीटर्सन की बंबई इहाते की 'हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की खोज की तीसरी रिपोर्ट', पृ० ९२)।

के राजाओं का मानमर्दन करनेवाले महाराजाधिराज भगवन्नारायण श्रीजैतसिंह (जैत्रसिंह) देव [तथा] उनके पट्ट (गद्दी) के भूषण राजाश्रित जयसिंह के विजय राज्य में, जब कि उनके चरण कमलों की सेवा करनेवाला मह० (महत्तम, मेहता) तिल्हण श्रीकरण आदि सब कार्य करता था, संवत् १३०९ माघ बदि १४ सोमवार के दिन ठ० वयजल ने आघाट (आहाड़[1]) में पाक्षिकसूत्र वृत्ति को लिखा।[2]' इस अवतरण से अनुमान होता है जयसिंह, जैत्रसिंह का ज्येष्ठ पुत्र हो क्योंकि उसको 'तत्पट्टविभूषण' (उनके पट्ट अर्थात् गद्दी का भूषण) और 'राजाश्रित' (राजा जैत्रसिंह का आश्रित) कहा है। यदि यह अनुमान ठीक हो तो हमें यही मानना पड़ेगा कि जयसिंह का देहांत जैत्रसिंह की विद्यमानता में हुआ होगा जिससे उस (जैत्रसिंह) के पीछे उसका दूसरा पुत्र तेजसिंह मेवाड़ का राजा हुआ हो।

ऊपर उद्धृत किए हुए दोनों शिलालेखों तथा दोनों हस्तलिखित पुस्तकों के अवतरणों से यह तो निश्चित है कि वि० सं० १२७० से लगाकर १३०९ माघ बदि १४ तक तो मेवाड़ का राजा जैत्रसिंह ही था। वि० सं० १२७० से कुछ पूर्व उसके राज्य का प्रारंभ होना माना जा सकता है। ऐसे ही वि० सं० १३०९ के बाद

(१) आघाट या आघाटदुर्ग को इस समय आहाड़ कहते हैं और वह उदयपुर से दो मील पूर्व में है। यह मेवाड़ के प्राचीन नगरों में से एक नगर और गंगोद्भव (गंगोभेव-गंगोद्‌भेद ?) नामक तीर्थ के लिये प्रसिद्ध है। उदयपुर के महाराणाओं की महासती (दाहस्थान) भी उसी तीर्थ (कुंड) के पास है। प्राचीन नगर तो नष्ट हो गया परंतु वहाँ के प्राचीन मंदिरादि के शिलालेख तथा कई मूर्तियाँ नये बने हुए मंदिरादि की दीवारों आदि में लगी हुई हैं।

(२) संवत् १३०९ वर्षे माघ वदि १४ सोमे स्वस्ति श्रीमदाघाटे महाराजाधिराजभगवन्नारायण 'उत्तराधीशमानमर्दनश्रीजयतसिंहदेवतत्पट्टविभूषणराजाश्रिते जयसिंहविजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनि मह० श्रीतिल्हणप्रतिपत्तौ श्रीः श्रीकरणादिसमस्तव्यापारान्परिपंथयतीत्येवं काले प्रवर्त्तमाने ठ० वयजलेन पाक्षिकवृत्तिर्लिखितेति ॥ (वही, पृ० १३०)।

भी कुछ समय तक वह जीवित रहा हो परंतु कब तक यह निश्चित नहीं। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी तेजसिंह के समय की ताड़पत्र पर लिखी हुई विजयसिंहाचार्यरचित 'श्रावकप्रतिक्रमण सूत्रचूर्णि' नामक पुस्तक पाटण (अनहिलवाड़ा) में सुरक्षित है जिसके अंत में लिखा है कि 'महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक शंकर के वरदान से पाए हुए बड़े प्रताप से अलंकृत श्रीतेजसिंहदेव के कल्याणकारी विजय राज्य में जब कि उनके चरण कमलों का सेवक महामात्य श्रीसमुद्धर मुद्रा (मुहर लगाने का) कार्य कर रहा था उस समय आघाटदुर्ग (आहाड़) में संवत् १३१७ माह (माघ) सुदि ४ के दिन आघाट (आहाड़) के रहनेवाले पं० (पंडित) रामचंद्र के शिष्य कमलचंद्र ने यह पुस्तक लिखी।' तेजसिंह के समय के निश्चित ज्ञात संवतों में १३१७ सबसे पहिला है, अतएव यह माना जा सकता है कि जैत्रसिंह का देहांत वि० सं० १३०९ और १३१७ के बीच किसी वर्ष हुआ होगा।

इस लेख से इतिहास के प्रेमियों को मालूम हो जायगा कि प्राचीन शोध का महत्व हमारे इतिहास के लिये कितना अधिक है।

(१) संवत् १३१७ वर्षे माह सुदि ४ आदित्यदिने श्रीमदाघाटदुर्गे महाराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकउमापतिवरलब्धप्रौढप्रतापसमलंकृत श्रीतेजसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये तत्पादपद्मोपजीविनि महामात्यश्रीसमुद्धरे मुद्राव्यापारान् परिपंथयति श्रीमदाघाटवास्तव्य पं० रामचंद्रशिष्येण कमलचंद्रेण पुस्तिका-लेखि॥ (पीटर्सन की पाँचवीं रिपोर्ट, पृ० २३)।

(७)—महाराज शिवाजी का एक नया पत्र।

[लेखक—बाबू जगन्नाथदास, बी० ए०, रत्नाकर, अयोध्या]

तीस बत्तीस बरस बीते होंगे कि मैंने फ़ारसी भाषा के दो छंदोबद्ध ऐतिहासिक पत्र स्वर्गीय श्रीबाबा सुमेरसिंहजी साहेबज़ादे के पास गुरुमुखी अक्षरों में लिखे हुए देखे थे। उक्त बाबाजी उस समय पटने में सिक्खों की हरमंदिर नामक संगत के महंत थे। उन दोनों पत्रों में से एक तो श्रीगुरुगोविंदसिंहजी का पत्र था जो उन्होंने बादशाह औरंगजेब को लिखा था और दूसरा पत्र श्री छत्रपति महाराज शिवाजी का श्रीमिर्ज़ा राजा जयशाह अर्थात् जयसिंह के नाम था।

जब उक्त महंतजी ने वे पत्र मुझे सुनाए तो उनकी भाषा इत्यादि कुछ ऐसी रोचक ज्ञात हुई कि मैंने उनसे उनको लिखा देने की प्रार्थना की और उक्त बाबाजी ने सहर्ष उनको मुझे लिखा दिया। उक्त बाबाजी पढ़ते जाते थे और मैं उनको फ़ारसी अक्षरों में लिखता जाता था। घर लाकर मैंने वे दोनों पत्र किसी पुस्तक में रख दिए और फिर बहुत दिनों तक उनका कुछ ध्यान भी नहीं रहा।

इधर थोड़े दिनों से मैं बिहारी की सतसई पर एक टीका करने का उद्योग कर रहा हूँ और उसके निमित्त जहाँ तहाँ से जो सामग्रियाँ हाथ आई एकत्र की हैं। इन्हीं सामग्रियों की खोज में मेरा ध्यान उन पत्रों की ओर भी गया, क्योंकि उनमें से एक पत्र राजा जयसिंह के नाम था, अतः यह धारणा हुई कि कदाचित् उस पत्र से भी कुछ सहायता राजा जयशाह तथा बिहारी के वृत्तांत के विषय में मिले। यह विचार कर मैंने उनकी खोज की। पर मेरे बहुत दिनों से काशी में न रहने के कारण मेरी पुस्तकें कुछ ऐसी अस्त व्यस्त हो गई हैं कि उन पत्रों का पता लगना बड़ा कठिन हुआ।

यद्यपि इस बीच में कई बार मेरा जाना काशी हुआ पर अवकाश के अभाव से पूरा अनुसंधान न हो सका। थोड़ी बहुत खोज जो हो सकी उससे सफलता न हुई और उनकी प्राप्ति से निराशा सी प्रतीत होने लगी।

शिवाजी की चिट्ठी के कुछ पद मुझे स्मरण थे। अपने कई एक मित्रों को उनको सुनाकर इस बात की भी चेष्टा की कि यदि वे पत्र किसी और के पास भी हों तो वहाँ से प्राप्त हो जायँ। मिस्टर आर० बर्न साहब, सी० एस० आई०, के पास भी जो कि फ़ारसी भाषा के बड़े विद्वान और ऐतिहासिक विषयों के संग्रहकर्त्ता हैं, मैंने शिवाजी के पत्र के वे शैर जो मुझे याद थे लिखकर इस आशा से भेजे कि कदाचित् उनके संग्रह में उस पत्र का पता लगे। पर उनसे भी पता न लगा।

इस बीच में मेरे एक मित्र श्रीयुत पंडित राजवल्लभजी मिश्र, जो आज कल पटने में डिप्टी कलक्टर हैं, श्रीअयोध्याजी आए। उनसे मैंने उक्त पत्रों का वृत्तांत कहकर प्रार्थना की कि वे कृपा कर हरमंदिर से उनके प्रतिलेख प्राप्त करके मेरे पास भेज दें। कुछ दिनों के पश्चात्, उक्त डिप्टी साहब ने मुझे लिखा कि श्रीबाबा सुमेरसिंहजी का देहांत पंजाब में हुआ। उनकी पुस्तकें इत्यादि उन्हीं के साथ थीं। सब इधर उधर हो गईं। हरमंदिर में उन पत्रों का कोई पता नहीं चलता। एक मनुष्य के पास फ़ारसी भाषा के एक ऐतिहासिक पत्र का पता लगा है। उससे लेकर भेजने का उद्योग करूँगा। कुछ दिनों के पश्चात् उन्होंने फ़ारसी भाषा का एक छंदोबद्ध पत्र गुरुमुखी अक्षरों में लीथो का छपा हुआ मेरे पास भेजा। यह पत्र श्रीगुरुगोविंदसिंहजी का बादशाह औरंगज़ेब के नाम है और ज़फ़रनामा कहलाता है। पर यह पत्र श्रीगुरुगोविंदसिंहजी का वह पत्र नहीं निकला जिसका प्रतिलेख मैंने स्वर्गीय श्रीबाबा सुमेरसिंहजी से प्राप्त किया था। इस पत्र में आठ नौ सौ शैर हैं, पर उस पत्र में, जहाँ तक मुझे स्मरण है, सौ शैर से अधिक

नहीं थे। इसके अतिरिक्त, उसमें का एक शैर जो मुझे स्मरण है वह भी इस पत्र में नहीं मिलता। वह शैर यह है—

تو از ناز و نعمت ثمر خوردئی + زجنگی جوانان نه برخوردئی

तुअज़ नाज़ो नेमत् समर खुर्दई। ज़े जंगी जवानान बरखुर्दई॥

इस प्रकार से खोज खाज कर उन पत्रों की प्राप्ति से मैं निराश हो गया था। पर फिर एक दिन मेरीही पुस्तकों में से उनमें से एक पत्र निकल आया। यह वह पत्र है जो शिवाजी ने राजा जयशाह को लिखा था। कागज तो वह अवश्य मिला जिसपर उस पत्र के शैर लिखे थे, पर इतने दिनों से रक्खे रहने के कारण तथा फूल्स्केप कागज होने की महिमा से ऐसा जर्जर और प्रति मोड़ पर से छिन्नभिन्न हो गया था कि शैरों का पढ़ा जाना बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई। किसी न किसी प्रकार से उन टुकड़ों को जोड़ जाड़ कर पढ़ने का उद्योग किया। मैं बड़े श्रम से उन्हें पढ़ पाया। फिर भी यह संदेह अवश्य है कि कदाचित् बीच बीच के दो एक शैर न मिले हों तो कोई आश्चर्य नहीं। यह भी संभावना है कि दो चार शैरों के क्रम कुछ उलट पलट गए हों तथा दो चार शब्द भी बदल गए हों क्योंकि कई एक शैरों में कोई कोई शब्द सर्वथा अनुमान ही से पढ़े गए हैं। उस पत्र को यथाशक्ति पूरा करने के पश्चात् मैंने उसको श्रीयुत मिर्ज़ा मुहम्मद हसन साहब (फ़ायज़) बनारसी को भी, जो कि इस समय हिंदू विश्वविद्यालय में फ़ारसी के अध्यापक तथा फ़ारसी भाषा के प्रसिद्ध विद्वान एवं कवि हैं, दिखलाया। उन्होंने भी दो चार शब्द जहाँ तहाँ अनुमान से बैठाए और बदले। इस प्रकार से यथासंभव यह पत्र पूर्ण हुआ।

बिहारी की सतसई के संपादन में तो इस पत्र से कोई विशेष सहायता नहीं प्राप्त होती तथापि एक ऐतिहासिक घटना के संबंध से यह सुरक्षित रहने का अधिकारी अवश्य प्रतीत होता है। इसी विचार से इसका प्रकाशित कर देना भी उचित जान पड़ता है और इस विषय में हमारे कई एक मित्रों ने भी, विशेषतः बाबू श्याम-

सुंदरदास, बी० ए०, ने आग्रह किया। अतः उक्त पत्र उसके नागरी प्रतिलेख तथा भाषा अनुवाद सहित नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

इस पत्र के विषय में हमारे दो एक मित्रों की धारणा है कि संभवतः यह कृत्रिम हो सकता है। इस विषय में भी मैंने उक्त मिर्ज़ा साहब महाशय से संमति ली। उनका कथन है कि इसकी भाषा ऐसी प्रौढ़ एवं प्रभावशालिनी है कि सौ डेढ़ सौ वर्ष के भीतर का लिखा यह नहीं प्रतीत होता क्योंकि मुसलमानों के राज्य के उठ जाने के कारण फ़ारसी भाषा का पठन पाठन तथा उसमें प्रौढ़ता का अभ्यास भारतवर्ष में दिन पर दिन न्यून होता जाता है। इस कथन पर एक यह अनुमान भी हो सकता है कि जब मुसलमानों ही में फ़ारसी विद्या का अभ्यास अवनत होता जाता है तब हिंदुओं में तो और भी इस के ह्रास की संभावना है। अतः जिस समय मुसलमानों के लिये पत्र का लिखना कठिन माना जाय उस समय हिंदुओं के लिये तो असंभव ही है। इस पत्र का लिखनेवाला अनुमान से कोई हिंदू ही प्रतीत होता है अथवा शिवाजी का आश्रित कोई मुसलमान मुंशी; क्योंकि इसमें कई एक शैर ऐसे हैं कि जिनको कोई मुसलमान शायर कदाचित् अपनी लेखनी से सहर्ष न लिखता। नीचे लिखे हुए ये दो शैर द्रष्टव्य हैं—

बहम् कुश्तओ खस्तः शेरां शवंद। शिगालां हिज़ब्रे नयस्तां शवंद॥
बबायद् कि बर दुश्मने दीं ज़नीं। बुनों बेखे इस्लाम रा बर कनी॥

एक यह बात इस पत्र के बनावटी होने की ओर चित्त को आकर्षित करती है कि—

शनीदम् कि बर क़स्दे मन आमदी। बफ़्तहे दयारे दकिन आमदी॥

इस शैर से प्रतीत होता है कि जयशाह के दक्खिन पहुँचने के थोड़े ही दिनों के पश्चात् यह पत्र लिखा गया और फिर—

चु ख़ुर्शीद फ़र्दा कशद रू ब शाम। हिलालम् नियाम अफ़गनद् वस्सलाम॥

इस शैर से ज्ञात होता है कि यदि इस पत्र पर जयशाह एवं

शिवाजी से भेंट हुई होती तो जयशाह के दक्खिन पहुँचने के थोड़े ही दिन भीतर होती! पर इतिहास से ज्ञात होता है कि ऐसा नहीं हुआ। प्रत्युत जयशाह के शाहज़ादा मोअज्ज़म तथा दिलेरखाँ के साथ दक्खिन पहुँचने के अनुमान दो वर्ष के पश्चात् कई एक लड़ाइयाँ हो चुकने पर शिवाजी जयशाह के पास गए थे।

इससे एकाएक तो यही प्रतीत होता है कि वास्तव में यह पत्र उस समय का लिखा हुआ नहीं है, प्रत्युत पीछे से किसी ऐसे व्यक्ति ने बनाया है जो इतिहास से अनभिज्ञ था।[1] पर कुछ ध्यान देने से दो चार बातें ऐसी ऐतिहासिक मर्म की इसमें पाई जाती हैं जिनसे लेखक का या तो औरंगजेब का समकालीन अथवा इतिहास का पूर्ण ज्ञाता होना सिद्ध होता है। वे बातें ये हैं। अफ़ज़लखाँ का नाश तथा शाइस्त:खाँ की दुर्दशा, जसवंतसिंह को जयशाह का बहकाकर दारा शिकोह की सहायता न करने देना तथा जसवंतसिंह तथा महाराणा का भीतर भीतर औरंगजेब के विरुद्ध होना, जुझारसिंह तथा बालक छत्रसाल के साथ औरंगजेब का दुष्ट बर्ताव, जयशाह का शाहजहाँ के विरुद्ध औरंगजेब की सहायता करना, औरंगजेब की हिंदुओं के साथ गोटियाचाली और अफ़ज़लखाँ का बारह सौ सवार घात में लगाकर शिवाजी से मिलने आना। इनके अतिरिक्त शिवाजी का शाइस्त:खाँ की जेब से कुछ ऐसे गुप्त पत्र प्राप्त करना, जिनमें जयशाह के विषय में कुछ हानिकारक बातें लिखी हुई थीं, भी वास्तविक घटना प्रतीत होती है यद्यपि इसका वर्णन इतिहास में नहीं है। औरंगजेब भीतर भीतर जयशाह के प्राणों का परम शत्रु था यह बात तो इसीसे सिद्ध है कि उसने उनको दक्खिन से लौटने के समय उन्हींके लड़के कीर्तिसिंह को मिलाकर विष दिलवा दिया। फिर क्या आश्चर्य है कि उसने शाइस्त:खाँ को कोई बात पत्रों में जयशाह को हानि पहुँचाने के निमित्त लिखी हो। ऊपर लिखी हुई सभी बातें इतिहास से समर्थित

(१) मुंशी देवीप्रसादजी की संमति है कि संभवतः पीछे से किसी हिंदू कवि ने शिवाजी का इतिहास फ़ारसी कविता में लिखा हो उसीका यह अंश हो।

होती हैं जैसा कि शेरों पर की टिप्पणियों से प्रकट होगा। फिर जिस पत्र के लिखनेवाले को उस समय के इतिहास के ऐसे ऐसे मर्म ज्ञात रहे हों उसके विषय में यह शंका करना कि उसको यह नहीं ज्ञात था कि जयशाह के दक्खिन पहुँचने के कितने दिनों के पश्चात् शिवाजी उनसे मिले, सर्वथा असंगत ही प्रतीत होता है। अब रह गई यह बात कि इस पत्र से जो शिवाजी के जयशाह से मिलने का समय प्रतीत होता है तथा जो इतिहास से सिद्ध होता है इन दोनों के विरोध का कारण क्या है। संभवतः विरोध का कारण यह हो सकता है कि इस पत्र को पाकर जयशाह ने किसी कारण से शिवाजी को यथेष्ट उत्तर नहीं दिया जिससे उस समय भेंट नहीं हुई और लड़ाई आरंभ हो गई। फिर कुछ दिनों के बीतने पर कई एक लड़ाइयों के पश्चात् किसी अवसर पर या तो जयशाह के बुलाने पर अथवा स्वयं शिवाजी उनके पास जा उपस्थित हुए।

मैं इतिहास का मर्मज्ञ नहीं हूँ अतः इस पत्र के वास्तविक अथवा बनावटी होने के विषय में दृढ़तापूर्वक विशेष मीमांसा करना अनुचित समझता हूँ। पर पत्र को रोचक तथा प्रभावशाली समझकर ज्यों का त्यों प्रकाशित कर देता हूँ जिसमें कि इतिहास के ज्ञाताओं तथा अपर विद्वानों को इसपर मीमांसा करने का अवसर प्राप्त हो।

इस पत्र पर ऐतिहासिक टिप्पणियों के लिखने में मुझको स्वर्गीय श्री भारतेंदुजी के दौहित्र बाबू ब्रजरत्नदास से बड़ी सहायता मिली है अतः मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

इस पत्र में जिन शब्दों में कुछ संदेह है वे फ़ारसी मूल में ब्राकेट के भीतर लिखे गए हैं।

पत्र।

سر سروران راجۀ راجگان + چمن بند بستان هندوستان

सरे सर्वरां राजए राजगां। चमनबंद बुस्ताने हिंदोसतां॥

ए सर्दारों के सर्दार, राजाओं के राजा [तथा] भारतोद्यान की कियारियों के व्यवस्थापक।

جگر بند فرزانۂ رامچند + ز تو گردن راجپوتان بلند

जिगर बंद फ़र्ज़ानए रामचंद[1]। ज़े तो गर्दने राजपूतां[2] बुलंद ॥

ए रामचंद्र के चैतन्य हृदयांश, तुझसे राजपूतों की ग्रीवा उन्नत है॥

قویتر ز تو دولت بابری + ز بخت همایون ترا یاوری

क़्वीतर ज़े तो दौलते बाबरी[3]। ज़े बख़्ते हुमायूँ तुरा यावरी ॥

तुझसे बाबरवंश की राज्यलक्ष्मी अधिक प्रबल हो रही है [तथा] शुभ भाग्य से तुझसे सहायता [मिलती] है।

جوان بخت جے شاہ باراے پیر + ز سیوا سلام و درودے بزیر

जवां बख़्त जैशाह[4] बा राय पीर। ज़े सेवा[5] सलामो दरूदे पिज़ीर ॥

ए जवान (प्रबल) भाग्य [तथा] वृद्ध (प्रौढ़) बुद्धि वाले जयशाह, सेवा (अर्थात् शिवा) का प्रणाम तथा आशिष स्वीकृत कर।

جہان آفرینت نگہدار باد + ترا رہنماید سوئے دین و داد

जहां आफ़रीनत् निगहदार बाद। तुरा रहनुमायद सुए दीनो दाद ॥

जगत् का जनक तेरा रक्षक हो [तथा] तुझको धर्म एवं न्याय का मार्ग दिखावै।

شنیدم کہ بر قصد من آمدی + بفتح دیار دکن آمدی

(१) जयपुर का राजवंश श्री रामचंद्र के पुत्र कुश का वंशधर होने से कछवाहा कहलाता है।

(२) दिल्ली सम्राट् के सेनापतियों में मिर्ज़ा राजा जयसिंह सबसे अधिक योग्य और प्रभावशाली थे। इनके साथ बीस सहस्र से अधिक शरीर-रक्षक सेना रहती थी।

(३) इन्हीं क्षत्रिय राजाओं की सहायता से मुग़ल साम्राज्य का इतना विस्तार फैला था और वह कई पीढ़ी तक दृढ़ता से स्थित रहा। इन राजाओं में बाबर के वंशधरों की सहायता का अधिक श्रेय इसी जयपुर के राजवंश को है।

(४) ठीक नाम मिर्ज़ा राजा जयसिंह है पर इस पत्र में जयशाह ही नाम दिया गया है। कविवर बिहारीलाल ने भी सतसई में यही नाम व्यवहृत किया है।

(५) छत्रपति महाराज शिवा जी।

शनीदम कि बर क़स्दे मन् आमदी । बफ़तहे दयारे दकिन[1] आमदी ॥

मैंने सुना है कि तू मुझपर आक्रमण करने [एवं] दक्षिण प्रांत को विजय करने आया है ।

ز خون دل و دیدۂ ھندواں + تو خواھي شوی سرخ رو در جہاں

ज़े ख़ूने दिलो दीदए हिंदुआँ । तु ख़्वाही शवी सुर्ख़रू दर जहाँ ॥

हिंदुओं के हृदय तथा आँखों के रक्त से तू संसार में लाल मुँहवाला (यशस्वी) हुआ चाहता है ।

ندانی مگر کیں سیاھي شود + کزیں ملک و دین را تباھي شود

न दानी मगर कीं सियाही शवद । कज़ीं मुल्को दीं रा तबाही शवद ॥

पर तू यह नहीं जानता कि यह [तेरे मुँह पर] कालख लग रही है क्योंकि इससे देश तथा धर्म को आपत्ति हो रही है ।

اگر سر دمے در گریباں کني + چو نظارۂ دست و داماں کني

अगर सर दमे दर गरेबाँ कुनी । चु नज्ज़ारए दस्तो दामाँ कुनी ॥

यदि तू क्षणमात्र गरेबान में सिर डाले (संकुचित होकर विचार करे) और यदि तू अपने हाथ और दामन पर (विवेक) दृष्टि करे ।

ببیني کہ ایں رنگ از (خو)ن کیست + کہ در دو جہاں (ر)نگ ایں رنگ چیست

बबीनी कि ईं रंग अज़ ख़ून कीस्त । कि दर दो जहां रंग ईं रंग चीस्त ॥

तो तू देखे कि यह रंग किसके खून का है और इस रंग का (वास्तविक) रंग दोनों लोक में क्या है [लाल या काला] ।

تو خو(د) آمدي گر بفتح دکن + شدے فر(ش) راھت سر و چشم من

तु ख़ुद आमदी गर बफ़तहे दकिन । शुदे फ़र्शे राहत सरो चश्मे मन ॥

यदि तू स्वयं [अपनी ओर से] दक्षिण विजय करने आता [तो] मेरे सिर और आँख तेरे रास्ते के बिछौने बन जाते ।

شدم ھمرکابت بفوج گراں + سپردم بتو باز گراں تا کراں

---

(१) यहाँ दक्षिण प्रांत लिखा है । यद्यपि शिवाजी का कुछ प्रांत पर राज्य नहीं था पर महाराज जयसिंह शिवाजी को पराजित करने के साथ ही बीजापुर और गोलकुंडा पर भी अधिकार करने के लिये भेजे गए थे ।

बुदम हमरकाबत् बफौजे गराँ । सुपुर्दम बतो अज़ कराँ ता कराँ ॥

मैं तेरे हमरकाब (घोड़े के साथ) बड़ी सेना लेकर चलता [और] एक सिरे से दूसरे सिरे तक (भूमि) तुझे सौंप देता (विजय करा देता)।

ولے تو ز اورنگ زیب آمدی + بأغوائے زا (هد) فریب آمدی

वले तू जे़ औरंगज़ेब[1] आमदी । बइग़्वाय .जाहिद .फरेब आमदी ॥

पर तू तो औरंगज़ेब की ओर से (उस) भद्रजनों के धोखा देनेवाले के बहकाने में पड़कर आया है ।

ندانم کنون چون بیازم بتو + نه مردي بود گر بسازم بتو

नदानम् कुनूँ चूँ बबाज़म् बतो । न मर्दी बुवद् गर बसाज़म् बतो ॥

अब मैं नहीं जानता कि तेरे साथ कौन खेल खेलूँ । [अब] यदि मैं तुझसे मिल जाऊँ तो यह मर्दी (पुरुषत्व) नहीं है ।

که مردان نه دوران نوازي كنند + هزبران نه روباه بازي كنند

कि मर्दां न दौरां निवाज़ी कुनंद् । हिज़ब्रां न रूबाहबाज़ी कुनंद् ॥

क्योंकि पुरुषलोग समय की सेवा नहीं करते । सिंह लोमड़ापना नहीं करते ।

وگر چاره سازم به تیغ و تبر + دو جانب رسد هندوان را ضرر

वगर चारः साजम बतेग़ो तबर । दो जानिब रसद हिंदुआं रा .जरर ॥

और अगर मैं तलवार तथा कुठार से काम लेता हूँ तो दोनों ओर हिंदुओं को ही हानि पहुँचती है ।

دریغا که تیغم جهد از میان + جز از بهر خون (خوردن) مسلمان

दरेग़ा कि तेग़म जेहद अज़ मियाँ । जुज़ अज़बह्रे .खूं .खुर्दने मुस्लिमाँ ।

बड़ा खेद तो यह है कि मुसलमानों के .खून पीने के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य के निमित्त मेरी तलवार को मियान से निकलना पड़े ।

چو ترکان بدیں کارزار آمدے + بو شیر مردان شکار آمدے

(१) औरंगजेब की आज्ञा से जयसिंह दक्षिण आए थे ।

चु तुर्कां बदीं कारज़ार आमदे। बरे शेर मर्दां शिकार आमदे॥

यदि इस लड़ाई के लिए तुर्क आए होते तो [हम] शेरमर्दों के निमित्त [घर बैठे] शिकार आए होते।

ولے آں سیہ‌کار بے داد و دیں + کہ دیوست در صورت آدمیں

वले आँ सियहकारे बे दादो दीं। कि देवस्त दर सूरते आदमीं॥

पर वह न्याय तथा धर्म से वंचित पापी जो कि मनुष्य के रूप में राक्षस है।

چو فضلے ز افضلے نیامد پدید + نہ شایستہ کاری ز شایستہ دید

चु फ़ज़्ले .ज़े अफ़ज़ल[1] नयामद पदीद। न शाइस्तःकारी .ज़े शाइस्तः[2] दीद॥

जब अफ़ज़ल खाँ से कोई श्रेष्ठता न प्रकट हुई [और] न शाइस्तः खाँ की कोई योग्यता देखी।

ترا در گمارد پئے جنگ ما + کہ دارد نہ خود تاب آهنگ ما

तुरा बगुमारद पए जंगे मा। कि दारद न .खुद ताबे आहंगे[3] मा॥

[तो] तुझको हमारे युद्ध के निमित्त नियत करता है क्योंकि वह स्वयं तो हमारे आक्रमण के सहने की योग्यता रखता नहीं।

بخواهد کہ از زمرۂ هندواں + نہ ماند قوی پنجۂ در جہاں

बख़्वाहद कि अज़ .ज़ुम्रए हिंदुआँ। न मानद क़वीपंजए दर जहाँ॥

[वह] चाहता है कि हिंदुओं के दल में कोई बलशाली संसार में न रह जाय।

(१) बीजापुर के सुल्तान अली आदिलशाह ने सेनापति अफ़ज़लखाँ को शिवाजी पर ससैन्य भेजा था पर वह वहीं मारा गया।

(२) औरंगज़ेब का मामा अमीरुलउमरा नवाब शाइस्ताखाँ शिवाजी के रात्रि आक्रमण से घबड़ा कर लौट गया था जिसके अनंतर जयसिंह भेजे गए थे।

(३) वस्तुतः जबतक शिवाजी जीवित रहे तबतक औरंगजेब दक्षिण की ओर नहीं गया पर उनकी मृत्यु के होतेही उत्तरी भारत के कार्यों को झटपट निपटा कर उधर चल दिया।

بہم کشتہ و خستہ شیراں شوند + شغالاں ہژبر نیستاں شوند

बहम कुश्तःओ ख़स्तः शेरां शवंद। शिग़ालां हिज़ब्रे नयस्तां शवंद॥

सिंहगण आपस ही में [लड़ भिड़ कर] घायल तथा श्रांत हो जायँ जिसमें कि गीदड़ जंगल के सिंह बन बैठें।

نہ ایں راز چوں در سر آید ترا + فسونش مگر بر گراید ترا

न ईं राज़ चूँ दर सर आयद तुरा। फ़ुसूनश मगर बर गिरायद तुरा॥

यह गुप्त भेद तेरे सिर में क्यों नहीं पैठता। प्रतीत होता है कि उसका जादू तुझे बहकाए रहता है।

بسے نیک و بد در جہاں دیدۂ + گل و خار از بوستاں چیدۂ

बसे नेको बद दर जहां दीदई। गुलोख़ार अज़ बोस्तां चीदई॥

तैंने संसार में बहुत भला बुरा देखा है। उद्यान से तैंने फूल और काँटे दोनों संचित किए हैं।

نہ باید کہ باما نبرد آوری + سر ہندواں زیر گرد آوری

न बायद कि बामा नबर्द आवरी। सरे हिंदुआं ज़ेरे गर्द आवरी॥

यह नहीं चाहिए कि तू हम लोगों से युद्ध करे [और] हिंदुओं के सिरों को धूल में मिलावे।

بدیں پختہ کاری جوانی مکن + ز سعدی مگر یاد گیر ایں سخن

बदीं पुख़्तःकारी जवानी मकुन। जे़ सादी मगर यादगीर ईं सख़ुन॥

ऐसी परिपक्क कर्मण्यता [प्राप्त होने] पर भी जवानी (यौवनोचित कार्य) मत कर, प्रत्युत सादी के इस कथन को स्मरण कर—

نہ ہر جا مرکب تواں تاختن + کہ جاہا سپر باید انداختن

न हरजा मुरक्कब तवां ताख़्तन। कि जाहा सिपर बायद अंदाख़्तन॥

सब स्थानों पर घोड़ा नहीं दौड़ाया जाता। कहीं कहीं ढाल भी फेंककर भागना उचित होता है।

پلنگاں بگوراں پلنگي کنند + نه با ضيغماں خانه جنگي کنند

पलंगां बगोरां पलंगी कुनंदं। न बाज़ैगमां खानःजंगी कुनंद॥

व्याघ्र मृगादि पर व्याघ्रता करते हैं। सिंहों के साथ गृहयुद्ध में नहीं प्रवृत्त होते।

چو آبست در تيغ بران تو + چو تابست در اسپ جولان تو

चु आबस्त दर तेगे बुर्राने तो। चु ताबस्त दर अस्पे जौलाने तो॥

यदि तेरी काटनेवाली तलवार में पानी है; यदि तेरे कूदनेवाले घोड़े में दम है।

ببايد که بر دشمن دين زني + بن و بيخ اسلام را بر کني

ब बायद कि बर दुश्मने दीं ज़नी। बुनो बेख़े इस्लाम रा बरकनी॥

[तो] तुझको चाहिए कि धर्म के शत्रु पर आक्रमण करे [एवं] इसलाम की जड़ मूल खोद डाले।

اگر داور ملک دارا بدے + بما نيز لطف و مدارا بدے

अगर दावरे मुल्क दारा[1] बुदे। बमा नीज़ लुत्फ़ो मदारा बुदे॥

अगर देश का राजा दारा शिकोह होता। तो हम लोगों के साथ भी कृपा तथा अनुग्रह के बर्ताव होते।

وے تو بجسونت دادي فريب + بدل در نکردي فرازو نشيب

वले तू बजसवंत[2] दादी फ़रेब। ब दिल दर न कर्दी फ़राज़ो नशेब॥

पर तूने जसवंतसिंह को धोखा दिया [तथा] हृदय में ऊँच नीच नहीं सोचा।

ز روباه بازي نه سير آمدي + بجنگ هزبران دلير آمدي

---

(१) शाहजहाँ का सबसे बड़ा पुत्र दाराशिकोह अकबर के समान कट्टर मुसलमान नहीं था और सभी धर्म की प्रजा को एक समान मानता था।

(२) जब दारा श्यामगढ़ के युद्ध में परास्त होने पर आगरे होता हुआ सिंध गया और वहाँ सेना एकत्र कर जसवंतसिंह की सम्मति से फिर अजमेर आया तब जयसिंह के लिखा पढ़ी और कहने से जसवंतसिंह ने दारा की सहायता नहीं की और वह औरंगजेब से परास्त होकर भाग गया।

जेरूबाहबाज़ी न सेर आमदी। बजंगे हिज़ब्रां दिलेर आमदी॥

तू लोमड़ी का खेल खेलकर अभी अघाया नहीं है [और] सिंहों से युद्ध के निमित्त ढिठाई करके आया है।

ازیں ترک تازی چه آید ترا + هوایت سرابے نماید ترا

अज़ीं तुर्कताज़ी चे आयद तुरा। हवायत सुराबे नुमायद तुरा॥

तुझको इस दौड़ धूप से क्या मिलता है, तेरी तृष्णा तुझे मृगतृष्णा दिखलाती है।

بداں سفله مانی که جهدے برد + عروس بچنگال خویش آورد

बदां सिफ्लःमानी कि जेहदे बरद। उरूसे बचंगाल खेश आवरद॥

तू उस तुच्छ व्यक्ति के सदृश है जो कि बहुत श्रम करता है [और] किसी सुंदरी को अपने हाथ में लाता है॥

وے بر نه از باغ حسنش خورد + بدست حریفے ورا بسپرد

वले बर न अज़ बागे हुस्नश खुरद। बदस्ते हरीफ़े वरा बसपुरद॥

पर उसकी सौंदर्यवाटिका का फल स्वयं नहीं खाता [प्रत्युत] उसको अपने प्रतिद्वंदी के हाथ में सौंप देता है।

چه نازی تو بر مهر آں نابکار + بدانی سرنجام کار جهجهار

चि नाज़ी तु बर मेह्रे आं नाबकार। बदानी सरंजामे कारे जुझार॥[1]

तू उस नीच की कृपा पर क्या अभिमान करता है। तू जुझारसिंह के काम का परिणाम जानता है॥

بدانی که بر (بچه) چهتر سال + چساں خواست وتا رساند زوال

(१) ओड़छानरेश वीरसिंह देव के पुत्र जुझारसिंह बुंदेला ने जहांगीर और शाहजहां की इतनी सेवा की थी कि उसे राजा की पदवी और चार हज़ारी मंसब आदि मिले थे। परंतु जब उसने अपनीही सेना से चौरागढ़ विजय किया तब बादशाह के उसे मांगने पर नहीं देने के कारण औरंगजेब के अधीन बादशाही सेना ने उसपर चढ़ाई कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया और वह पुत्र सहित जंगल में गोंड़ों के हाथ मारा गया।

बदानी कि बर बच्चए छत्रसाल[1]। चेसाँ ख्वास्त ओ ता रसानद ज़वाल ॥

तू जानता है कि कुमार छत्रसाल पर वह किस प्रकार से आपत्ति पहुँचाना चाहता था।

بداني كه بر هندوان دگر + نيامد چه از دست آن كينه ور

बदानी कि बर हिंदुआने दिगर। नयामद चे अज़ दस्ते आँ कीनःवर ॥

तू जानता है कि दूसरे हिंदुओं पर भी उस दुष्ट के हाथ से क्या क्या विपत्तियाँ नहीं आईं।

گرفتم كه پيوند بستي بدو + تو ناموس را در شكستي بدو

गिरफ्तम कि पैवंद[2] बस्ती बदो। तु नामूस रा दर शिकस्ती बदो ॥

मैंने मान लिया कि तैंने उससे संबध जोड़ लिया है और कुल की मर्यादा उसके सिर तोड़ी है।

دران ديو دامے ازين رشته چيست + كه محكم تر از بند شلوار نيست

वराँ देव दामे अजीं रिश्तः चीस्त। कि महकम तर अज़ बंदे शल्वार नीस्त ॥

[पर] उस राक्षस के निमित्त इस बंधन का जाल क्या वस्तु है क्योंकि यह बंधन तो इज़ारबंद से अधिक दृढ़ नहीं है।

پے كام خود اوندارد حذر + زخون برادر زجان پدر

---

(१) छत्रसाल के पिता चंपतराय की सहायता से औरंगज़ेब चंबल पारकर दारा की सेना को पीछे छोड़ आगे बढ़ सका था और श्यामगढ़ के युद्ध में भी बहुत कुछ सहायता दी थी। साथ साथ मुल्तान तक गए थे पर कुछ शंका होने से भागकर अपने देश में चले आए। औरंगजेब ने सेनाएँ भेजकर इनके राज्य पर अधिकार कर लिया और इन्होंने आत्महत्या कर ली। इनके पुत्र अल्पवयस्क छत्रसाल को औरंगजेब ने बहुत छोटा मंसब दिया, इसलिये ये वहाँ से शिवाजी के पास गए और उन्हींके उपदेश से देश आकर स्वतंत्रता के लिये इन्होंने युद्ध करना आरंभ किया था।

(२) पहिले पहिल इसी वंश ने मुग़ल संम्राट् को कन्या विवाह में दी थी।

पए कामे ख़ुद ऊ न दारद हज़र। ज़े ख़ूने बिरादर[1] ज़े जाने पिदर[2] ॥

वह तो अपने इष्ट साधन के निमित्त भाई के रक्त [तथा] बाप के प्राण से भी नहीं डरता।

زپاس وفا گر بدانی سخن + چه کردی بشاه جهان یاد کن

ज़े पासे वफ़ा गर बदानी सख़ुन। चि कर्दी बशाहेजहाँ याद कुन ॥

यदि तू राजभक्ति की दोहाई दे तो तू यह तो स्मरण कर कि तैंने शाहजहाँ के साथ क्या बर्ताव किया[3]।

اگر بهره داری ز فرزانگی + زنی لاف مردی و مردانگی

अगर बहरःदारी,ज़े फ़र्ज़ानगी। ज़नी लाफ़ मर्दी श्रो मर्दानगी ॥

यदि तुझको विधाता के यहाँ से बुद्धि का कुछ भाग मिला है [और] तू पौरुष तथा पुरुषत्व की बड़ मारता है।

ز سوز وطن تیغ را تاب ده + ز اشک ستم دیدگان آب ده

ज़े सोजे़ वतनै तेग़ रा ताब देह। ज़े अश्के सितम दीदःगाँ आब देह ॥

तो तू अपनी जन्मभूमि के संताप से तलवार को तपावे [तथा] अत्याचार से दुखियों के आँसू से [उसपर,] पानी दे।

نه مارا بهم وقت پیکار هست + که بر هندوان کار دشوار هست

न मारा बहम् वक्ते पैकार हस्त। कि बर हिंदुओं कार दुश्वार हस्त ॥

यह अवसर हम लोगों के आपस में लड़ने का नहीं है क्योंकि हिंदुओं पर [इस समय] बड़ा कठिन कार्य पड़ा है।

زن و بچه و ملک و املاک ما + بت و معبد و عابد پاک ما

(१) राज्य लेने की इच्छा से औरंगज़ेब ने अपने भाई दारा और मुराद को मरवा डाला था और तीसरा भाई शुजा भागकर अराकान में मारा गया।

(२) अपने पिता शाहजहाँ को उसकी मृत्यु अर्थात् सातवर्ष तक आगरा दुर्ग में क़ैद रखा था।

(३) मिर्ज़ा राजा ने शाहजहाँ और उसके उत्तराधिकारी दारा का साथ छोड़कर राजद्रोह और विश्वासघात किया था और इतनेही पर संतुष्ट न रह कर महाराज जसवंतसिंह, दिलेर खाँ आदि राजभक्त सर्दारों को राजद्रोही बनाया था।

ज़नो बच्चओ मुल्को इमलाके मा। बुतो माबिदो आबिदे पाके मा॥

हमारे लड़के बाले, देश, धन, देव, देवालय तथा पवित्र देव पूजक—

همه را تباهیست از کار او + بجائے رسیدست آزار او

हमः रा तबाहीस्त अज़ कारे ऊ। बजाए रसीदस्त आज़ारे ऊ॥

इन सब पर उसके काम से आपत्ति पड़ रही है। [तथा] उसका दुःख सीमा तक पहुँच गया है।

که چندے چو کارش بماند چنیں + نشانے نماند زما بر زمیں

कि चंदे चु कारश बमानद चुनीं। निशाने न मानद ज़े मा बर ज़मीं॥

कि यदि कुछ दिन तक उसका काम ऐसाही चलता रहा [तो] हम लोगों का कोई चिह्न [भी] पृथ्वी पर न रह जायगा।

تعجب که یک دستهٔ مسلمان + برین پهن ملکم شوند حکمران

तअज्जुब कि यक दस्तए मुस्लिमां। बरीं पहन मुल्कम् शवद हुक्मरां॥

बड़े आश्चर्य की बात है कि एक मुट्ठी भर मुसलमान हमारे [इतने] बड़े इस देश पर प्रभुता जमावें।

نه این چیره دستي ز مردانگیست + بده بین گر ترا چشم فرزانگیست

न ईं चीरःदस्ती ज़े मर्दानगीस्त। बबीं गर तुरा चश्मे फ़र्ज़ानगीस्त॥

यह प्रबलता [कुछ] पुरुषार्थ के कारण नहीं है। यदि तुझ को समझ की आँख है तो देख।

چسان او بما مهره بازی کند + چسان بر رخش رنگسازی کند

चसां ऊ बमा मोह्रःबाज़ी कुनद। चसां बर रुख़श रंगसाज़ी कुनद॥

[कि] वह हमारे साथ कैसी गोटियाचाली करता है और अपने मुँह पर कैसा कैसा रंग रँगता है।

کشد پاے مارا بزنجیرما + ببرد سرما به شمشیر ما

कशद् पाय मारा ब ज़ंजीरेमा। बबुरद् सरेमा ब शमशीरे मा॥

हमारे पावों को हमारी ही साँकलों में जकड़ देता है [तथा] हमारे सिरों को हमारी ही तलवारों से काटता है ।

مرا جهد باید فراوان نمود + پئے ہندؤ ہندو دین ہنود

मरा जह्द बायद फरावाँ नमूद ।. पए हिंदुओ हिंदो दीने हुनूद ।।

हम लोगों को [इस समय] हिंदू, हिंदोस्तान तथा हिंदू धर्म [की रक्षा] के निमित्त बहुत अधिक यत्न करना चाहिए ।

بباید که کوشیم ورائے زنیم + پئے ملک خود دست و پائے زنیم

बबायद कि कोशेमो राये ज़नेम । पए मुल्के ख़ुद दस्तो पाये ज़नेम ।।

हमको चाहिए कि यत्न करें और कोई राय स्थिर करें [तथा] अपने देश के लिये खूब हाथ पाँव मारें ।

بشمشیر و تدبیر آبے دهیم + بترکان بترکی جوابے دهیم

व शमशीरो तदबीर आबे दहेम । बतुर्कां ब तर्की जवाबे देहेम ।।

तलवार पर और तदबीर पर पानी दें [अर्थात् उन्हें चमकावें और] तुर्कों को जवाब तुर्की में (जैसे का तैसा) दें ।

بجسونت گر تو موافق شوی + بدل در پئے آن منافق شوی

ब जसवंत गर तू मुवाफ़िक़ शवी । ब दिल दर्पए आँ मुनाफ़िक़ शवी ।।

यदि तू जसवंतसिंह से मिल जाय और हृदय से उस कपट कलेवर के पैंड़े पड़ जाय ।

برانا دمی همدم همدمی + بباید که کارے بر آید همی

ब राना दमी हमदमे हमदमी । बे बायद कि कारे बर आयद हमी ।।

[तथा] राना[1] से भी तू एकता का व्यवहार करले तो आशा है कि बड़ा काम निकल जाय ।

زهرسو بتازید و جنگ آورید + سر مار را زیر سنگ آورید

ज़े हर्सू बताज़ेदो जंग आवरेद । सरे माररा ज़ेरे संग आवरेद ।।

---

(१) उस समय मेवाड़ की गद्दी पर महाराणा राजसिंह शोभायमान थे ।

चारों तरफ से धावा करके तुम लोग युद्ध करो। उस साँप के सिर को पत्थर के नीचे दबा लो (कुचल डालो)।

که چندے بہ پیچد بر انجام خویش + نیارد بملک دکن (دام) خویش

कि चंदे ब पेचद बर अंजामे ख़ेश। नेयारद बमुल्के दकिन दाम ख़ेश॥

कि कुछ दिनों तक वह अपने ही परिणाम के सोच में पड़ा रहे [और] दक्षिण प्रांत की ओर अपना जाल न फैलावे।

من ایں سو بہ مردان نیزہ گزار + ازیں ہر دو شاہان برآرم دمار

मन ईं सू ब मर्दाने नेज़ःगुज़ार। अज़ीं हर दो शाहाँ बर आरम दमार॥

[और] मैं इस ओर भाला चलाने वाले वीरों के साथ इन दोनों बादशाहों का[1] भेजा निकाल लूँ।

بہ افواج غرندہ (مانند) میغ + ببارم ابر مسلمان آب تیغ

ब [illegible] हा मानिंदे मेग़। बेबारम अबर मुस्लिमाँ आबे तेग़॥

मेघों की भाँति गरजने वाली सेना से मुसलमानों पर तलवार का पानी बरसाऊँ।

بشویم ز اسلام نام و نشان + ز لوح دکن ازکران تا کران

ब शोयम ज़े इसलाम नामो निशाँ। ज़े लौहे दकिन अज़कराँ ताकराँ॥

दक्षिण देश के पटल पर से एक सिरे से दूसरे सिरे तक इस्लाम का नाम तथा चिह्न धो डालूँ।

ازاں پس بہ مردان پیمودہ کار + بجنگی سواراں نیزہ گزار

अज़ाँ पस ब मर्दाने पैमूदःकार। बजंगी सवाराने नेज़ःगुज़ार॥

इसके पश्चात् कार्यदक्ष शूरों तथा भाला चलानेवाले सवारों के साथ।

چو دریاے پرشورش و موج زن + برآیم بہ میدان ز کوہ دکن

चु दरियाय पुर शोरिशो मौजज़न। बर आयम ब मैदाँ ज़े कोहे दकिन॥

(१) बीजापुर का सुलतान अली आदिल शाह द्वितीय और गोलकुंडा का सुलतान अब्दुला कुतुबशाह।

लहरें लेती हुई तथा कोलाहल मचाती हुई नदी की भाँति दक्षिण के पहाड़ों से निकल कर मैदान में आऊँ।

شوم زود تر ہم رکاب شما + ازو باز پرسم حساب شما

शवम ज़ूदतर हमरकाबे शुमा। अज़ो बाज़ पुर्सम हिसाबे शुमा॥

और अत्यंत शीघ्र तुम लोगों की सेवा में उपस्थित हूँ और फिर उससे तुम लोगों का हिसाब पूछूँ।

زهر چار سو سخت جنگ آوریم + برو عرصهٔ جنگ تنگ آوریم

ज़े हर चार सू सख़्त जंग आवरेम। बरो अर्सए जंग तंग आवरेम॥

[फिर हम लोग] चारों ओर से घोर युद्ध उपस्थित करें और लड़ाई का मैदान उसके निमित्त संकीर्ण कर दें॥

بدهلي رسانيم افواج را + بدان خانهٔ (خسته) امواج را

बदेहली रसानेम अफ़वाजरा। बदाँ खा[illegible] अमवाजरा॥

हमलोग अपनी सेनाओं की तरंगों को, दिल्ली में, उस जर्जरीभूत घर में, पहुंचा दें।

زنامش نه اورنگ ماند نه زیب + نه تیغ تعدي نه دام فریب

ज़े नामश न औरंग मानद न ज़ेब। न तेगे तअद्दी न दामे फरेब॥

उसके नाम में से न तो औरंग (राजसिंहासन) रह जाय और न ज़ेब (शोभा)। न उसकी अत्याचार की तलवार [रह जाय] न कपट का जाल।

برآریم جوے پر از خون ناب + بروح بزرگان رسانیم آب

बरारेम जूए पुर अज़ ख़ूने नाब। बरूहे बुज़ुर्गां रसानेम आब॥

हम लोग शुद्ध रक्त से भरी हुई एक नदी बहा दें [और उस से] अपने पितरों की आत्माओं का तर्पण करें।

بهنیروے دادار جان آفرین + بسازیم جایش بزیر زمین

बनैरूए दादारे जाँ आफ़रीं। बसाज़ेम जायश बज़ेरे ज़मीं॥

न्यायपरायण प्राणों के उत्पन्न करनेवाले (ईश्वर) की सहायता से हम लोग उसका स्थान पृथ्वी के नीचे (क़ब्र में) बना दें ।

نه این کار بسیار دشوار هست + دل و دیده و دست درکار هست

न ईं कार बिसियार दुशवार हस्त । दिलो दीदश्रो दस्त दर्कार हस्त ॥

यह काम [कुछ] बहुत कठिन नहीं है । [केवल यथोचित] हृदय, आँख तथा हाथ की आवश्यकता है ।

دو دل یک شود بشکند کوه را + پرا گندگی آرد انبوه را

दो दिल यक शवद् बेशकुनद् कोहरा । परागंदगी आरद् अंबोहरा ॥

दो हृदय (यदि) एक हो जायँ तो पहाड़ को तोड़ सकते हैं [तथा] समूह के समूह को तितिर बितिर कर दे सकते हैं ॥

ازین در مرا گفتني ها بسیست + که در نامه آوردنش رای نیست

[illegible] गुफ़्तनीहा बसेस्त । कि दर नामः आवुर्दनश राय नेस्त ।

इस विषय में मुझको तुझसे बहुत कुछ कहना [सुनना] है, जिसका पत्र में लाना (लिखना) [युक्ति] सम्मत नहीं है ॥

بخواهم که رانیم باهم سخن + نیاریم بے سود رنج و محن

बख्वाहम कि रानेम बाहम सखुन । ने यारेम बे सूद रंजो मेहन ॥

मैं चाहता हूँ कि हम लोग परस्पर बात चीत करलें जिसमें कि व्यर्थ दुःख तथा श्रम न झेलें ।

چو خواهي بیایم بدیدار تو + بگوش آورم راز گفتار تو

चु ख्वाही बे आयम बदीदारे तो । बगोश आवरम राजे गुफ़्तारे तो ॥

यदि तू चाहे तो मैं तुझसे साक्षात् करने आऊँ । [और] तेरी बातों का भेद श्रवणगोचर करूँ ।

بخلوت کشائیم روے سخن + کشم شانه بر پیچ موے سخن

बख़ल्वत कुशायेम रूए सखुन । कशम शानः बर पेचे मूए सखुन ॥

हम लोग बात रूपी सुंदरी का मुख एकांत में खोलें । [और] मैं उसके बालों के उलझन पर कंघी फेरूं ।

بدامان تدبیر دست آوریم + فسونے بران دیو مست آوریم

ब दामाने तदबीर दस्त आवरेम। फ़सूनें बरां देव मस्त आवरेम॥

यत्न के दामन पर हाथ धरें। [और] उस उन्मत्त राक्षस पर कोई मंत्र चलावें।

تراذیم راهے سوے کام خویش + فرازیم در دوجہان نام خویش

तराजेम राहे सुए कामे ख़्वेश। फ़राजेम दर दो जहाँ नामे ख़्वेश॥

अपने कार्य की [सिद्धि] की ओर का कोई रास्ता निकालें [और] दोनों लोकों (इहलोक तथा परलोक) में अपना नाम ऊँचा करें।

بہ تیغ و بہ اسپ و بہ ملک و بدین + کہ ہرگز گزندت نہ آید ازین

बतेग़ो बअस्पो बमुल्को बदीं। कि हर्गिज़ गज़ंदत न आयद अज़ीं॥

तलवार की शपथ, घोड़े की शपथ, देश की शपथ तथा धर्म की शपथ करता हूँ कि इससे तुझपर कदापि [कोई] आपत्ति नहीं आवेगी।

ز انجام افضل مشو بدگماں + کہ اورا نہ بد راستی (درمیان)

ज़े अंजामे अफ़ज़ल मशौ बदगुमां। कि ओरा न बुद रास्ती दरमियाँ॥

अफ़ज़ल खाँ के परिणाम[1] से तू शंकित मत हो क्योंकि उसमें सचाई नहीं थी।

(१) बीजापुर के राज्य के कुछ अंश पर अधिकार कर लेने से वहाँ के सुल्तान अली आदिलशाह ने अफ़ज़लखाँ पठान के अधीन बड़ी सेना शिवाजी को दमन करने के लिये भेजी। शिवाजी ने उससे पत्रव्यवहार कर एकांत में बातचीत करना निश्चित किया जिसमें अफ़ज़लखाँ मारा गया। मुसलमान इतिहासों ने शिवाजी पर विश्वासघात का दोष लगाया है जिसे अंग्रेज इतिहास लेखकों ने भी अभी तक सत्य माना था। पर अब धारणा बदल गई है और इस विषय में शंका होने लगी है। पत्र के इन शैरों से कम से कम शिवाजी के 'शठं प्रति शठं कुर्यात्' की नीति की अवश्य ही पुष्टि होती है और विश्वासघात का बहुत कुछ दोष अफ़ज़लखाँ के सिर पर जा रहता है।

ز زنگی سواران پرخاش جو + هزار و دو صد در کمین داشت او

जे ज़ंगी सवाराने परख़ाशजू । हज़ारो दो सद दर कमीं दाश्त ऊ ॥

बारह सौ बड़े लड़ाके हब्शी[1] सवार यह मेरे लिये घात में लगाए हुए था ।

اگر پیش دستی نه کردم برو + که این نامه اکنون نوشتے بتو

अगर पेश दस्ती न कर्दम बरो । कि ईं नामः अकनूँ नविश्ते बतो ॥

यदि मैं उसपर पहिले ही हाथ न फेरता तो इस समय यह पत्र तुझको कौन लिखता ।

مرا باتو چشم چنیں کار نیست + ترا خود بمن نیز پیکار نیست

मरा बातो चश्मे चुनीं कार नेस्त । तुरा खुद बमन नीज़ पैकार नेस्त ॥

[पर] मुझको तुझसे ऐसे काम की आशा नहीं है [क्योंकि] तुझको भी स्वयं मुझसे कोई शत्रुता नहीं है ॥

جوابت بیابم اگر با صواب + شب آیم به پیش تو تنها شتاب

जवाबत बयाबम् अगर बाशवाब । शब आयम् ब पेशे तो तनहा शिताब ।

यदि मैं तेरा उत्तर यथेष्ट पाऊँ तो तेरे समक्ष रात्रि को अकेला आऊँ ।

نمایم بتو نامه هاے نہان + که بگرفتم از جیب شایستہ خان

नुमायम् बतो नामःहाए निहाँ । कि बगिरफ़्तम अज़ जेबे शायस्तःख़ां ॥

मैं तुझको वे गुप्त पत्र[2] दिखाऊं जोकि मैंने शाइस्त: खां के जेब से निकाल लिए थे ।

---

(१) हबशी देश के रहनेवाले काले मनुष्य जो बड़े लड़ाकू होते हैं । बीजापुर के अधीनस्थ ज़जीरा बंदर में इन्हीं हबशी सीदियों का अधिकार था और इस जाति की सेना भी उस राज्य में रहती थी ।

(२) जिस समय शिवाजी ने शाइस्ताखां पर रात्रिआक्रमण किया था उस समय वह सोता था और शोर सुनकर जागते ही खिड़की से भागा था । शिवाजी भागते हुए खाँ की केवल दो अंगुली काट सके थे जिसके अनंतर उसके चोगे या पलंग पर से ये पत्र पाए गए होंगे । इनमें हिंदुओं और हिंदू सर्दारों के नाश के कुछ उपाय और आज्ञा अवश्यही रही होंगी जिन्हें दिखलाकर शिवाजी जयसिंह की तंद्रा तोड़ना चाहते थे ।

زنم آب اندیشه بر دیده‌ات + کنم دور خواب پسندیده‌ات

ज़नम आबे अंदेशः बर दीदःअत। कुनम् दूर ख़्वाबे पसंदीदःअत॥

तेरी आँखों पर मैं संशय का जल छिड़कूँ (और) तेरी सुख-निद्रा को दूर करूँ।

کنم راست تعبیر خواب ترا + وزان پس بگیرم جواب ترا

कुनम् रास्त् ताबीर ख़्वाबे तुरा। वज़ाँ पस बगीरम् जवाबे तुरा॥

तेरे स्वप्न का सच्चा सच्चा फलादेश करूँ (और) उसके पश्चात् तेरा जवाब लूँ।

نیابد چو این نامه امزاج تو + من و تیغ بران و فواج تو

नयाबद् चु ईं नामःइमज़ाजे तो। मनो तेग़ बुर्रानो अफ़वाजे तो॥

यदि यह पत्र तेरे मन के अनुकूल न पड़े। (तो फ़िर) मैं हूँ और काटने वाली तलवार तथा तेरी सेना।

چو خورشید فردا کشد رو بشام + (هلا)لم نیام افکند والسلام

चु ख़ुर्शेद फ़र्दा कशद रू ब शाम्। हिलालम् नेयाम अफनगद् वस्सलाम॥

कल जिस समय सूर्य अपना मुँह संध्या में छिपा लेगा। उस समय मेरा अर्धचंद्र (खड्ग) मियान को फेंक देगा (मियान से निकल आवेगा)। बस, भला हो।

बाज़बहादुर और रूपमती।
शिकार की थकान।

८—बाजबहादुर और रूपमती।

[लेखक—मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर]

बाजबहादुर मालवे का सुलतान था। मालवे में पहले पँवारों का राज था, उनमें विक्रम और भोज सरीखे नामी और धर्मात्मा राजा महाराजा हो गए हैं जिनको सारे हिंदुस्तान के लोग आज तक याद करते हैं। विक्रम की राजधानी उज्जैन और भोज की धार थी।

दिल्ली के बादशाहों में से पहले शमसुद्दीन अलतमिश ने सन् ६२४ हिजरी (संवत् १२८३) में और फिर गियासुद्दीन बलबन ने सन् ६४६ (संवत् १३०८) में मालवे पर चढ़ाई करके उज्जैन भेलसा वगैरह कई शहर फतह किए परंतु पूरा अमल नहीं जमा। मिदान् सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने सन् ७०४ (सं० १३६१) में अलाउलमलिक मुलतानी को भेजकर राजा गोगादेव से मालवा छीना और उज्जैन, धार,

(१) पँवारों के समय की मालवे की नीमसीम तो मालूम नहीं हुई। सम्राट् अकबर की सूबाबंदी में मालवे का सूबा गढ़े (गोंडवाड़े) के नीचे से बांसवाड़े तक २४५ कोस लंबा और चँदेरी से नडुरबाड़ तक २३० कोस चौड़ा था। उसके पूरब में बांधो (रीवां), उत्तर में नरवर, दक्खन में बगलाना, पश्चिम में गुजरात व अजमेर के सूबे और दक्खन से पहाड़ थे। १२ सरकारें, ३०१ परगने, जमीन नपी हुई ४२ लाख ६६ हजार २२१ बीघे ६ बिस्वे और जमा २४ करोड़ ६ लाख ९५ हजार ५२ दाम (४० दाम का एक रुपया) के हिसाब से ६०१७३७६ रुपये थी। उसमें ११ लाख ५० हजार ४३३ दाम (२८७६० रुपये) जमींदारों के इनाम के थे। २९६६८ सवार, ४८०६६१ पैदल और ९० हाथी इस सूबे में थे।

१२ सरकारों के नाम—

१ उज्जैन, २ रायसेन, ३ चैनपुर (गोंडवाना), ४ चंदेरी, ५ सारंगपुर ६ बीजागढ़, ७ मांडू, ८ हंडिया, ९ नडुरबाड़ १० मंदसोर, ११ गागरौन, १२ कोटड़ी।

मांडू वगैरह में अपने हाकिम बैठाए। तबसे सन् ८०३ (सं० १४५८) तक १०४ बरस के लगभग मालवा दिल्ली के नीचे रहा। सन् ८०४ में सुलतान मोहम्मद तुग़लक़ की बादशाही कमज़ोर होने पर मालवे का हाकिम दिलावर खाँ गोरी ख़ुदमुख़्तार हो गया। उसके घराने में ७ सुलतान सन् ९३७ (सं० १५८७) तक हुए जिनके नाम ये हैं—

नंबर	नाम	सन्	संवत्	हाल
१	दिलावरख़ाँ	८०४	१४५८	इसका असली नाम तुज़ुक जहाँगीरी[1] में अमीदशाह लिखा है परंतु मेवाड़ के शिलालेखों में अमीशाह मिलता है जो शुद्ध है[2]। फ़रिश्ता में इसका नाम हुसेन दिया है। इसने मेवाड़ पर चढ़ाई की परंतु हारकर लौटा। इसकी राजधानी धार थी। इसने १६ बरस हाकिमी और ४ बरस बादशाही की।

(१) तुज़ुक जहाँगीरी पृ० २०३ (नवलकिशोर प्रेस) में लिखा है कि अमीदशाह गोरी ने जिसका नाम दिलावरखाँ था और जो दिल्ली के सुलतान फ़ीरोज़ के बेटे मोहम्मद तुगलक के राज में मालवे का मुस्तक़िल (पक्का) हाकिम था किले (धार.) के बाहर एक बस्ती में जामा मसजिद बनाई थी। उसके २ दरवाजे थे, एक पर तो नस्र (गद्य) में यह खुदा है कि अमीद शाह गोरी ने सन् ८७० (सं० ११२३) में यह मसजिद बनाई, दूसरे पर कई बैत (छंद) हैं, जिनमें यह आशय है कि अमीदशाह दाऊद गोरी दिलावर खां की यह जामा मसजिद सन् ८७० में तैयार हुई।

अमीदशाह के आगे दाऊद या तो नाम के शामिल है या बाप का नाम है जैसे जहांगीर अकबर शाह।

(२) दे० पत्रिका भाग ३, अंक १, पृ० १९ से २१।

नंबर	नाम	सन्	संवत्	हाल
२	होशंग गोरी, दिलावरखाँ का बेटा, असली नाम तातारख़ाँ	८०८	१४६२	इसने राजधानी मांडू में की। इसकी लड़ाइयाँ दिल्ली, जौनपुर, गुजरात, दक्खन के बादशाहों और ग्वालियर, खेडला, जालवाड़ा (झालावाड़) वगैरह के राजाओं से होती रहीं। इसने जाजनगर तक भी धावा किया था।
३	मोहम्मद-शाह गोरी, होशंग का बेटा	८३८	१४९१	इससे महमूद ख़िलजी ने राज छीन लिया।
४	महमूद ख़िलजी	८३९	१४९२	होशंग का भानजा था। यह भी दिल्ली, जौनपुर, गुजरात, दक्खन के बादशाहों और राना कूँभा वगैरह राजाओं से बहुत सी लड़ाइयाँ लड़ा, कभी हारा, कभी जीता।
५	ग़ियासुद्दीन ख़िलजी	८७३	१५२६	इसने अपने बापके समय में बहुत सी लड़ाइयाँ कीं। बादशाह होने के पीछे औरतों का एक शहर बसाकर जिसमें कोतवाल से लेकर चौकीदार तक, औरतें ही औरतें थीं अख़ीर उमर तक

नंबर	नाम	सन	संवत्	हाल
				बड़े सुख चैन से रहा। एक बार दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी ने चढ़ाई की थी परंतु वह जल्दी से भगा दिया गया। निदान अपने बेटे नासिरुद्दीन के ज़हर देने से बुढ़ापे में मारा गयो।
६	नासिरुद्दीन खिलजी	९०६	१५५७	यह पहिले तो अपने भाई बेटों से लड़ता रहा। फिर बुरहानपुर के बादशाह की मदद पर अहमद नगर के बादशाह से लड़ने गया। आखिर शराब ज़ियादा पीने से गरमी गरमी पुकारता हुआ मर गया। सम्राट् जहाँगीर ने सन् १०२६ (सं० १६७३) में अपने बाप को मारने के गुस्से में उज्जैन में इसकी कबर खुदवाकर हड्डियाँ नर्मदा में फिकवा दीं।[1]
७	महमूद खिलजी (दूसरा) नासिरुद्दीन का बेटा	९१७	१५६८	यह पहिले तो मेदनीराय वगैरह अपने राजपूत सरदारों के दबाव से सुलतान मुज़फ्फर गुजराती के पास गया। उसने मदद करके इसको फिर मांडू के तख़्त पर बैठा दिया। फिर राना साँगा से लड़ा और पकड़ा गया। राना

(१) तुज़ुक जहांगीरी पृ० १८२।

नंबर	नाम	सन्	संवत्	हाल
				ने चित्तौड़ के किले में कैद रखा। वह जगह अब तक वहाँ बादशाह की भाकसी (जेल) के नाम से मशहूर है। इसने होशंग गोरी का जड़ाऊ ताज, कमरपट्टा और मालवे के कई परगने लेकर उसे छोड़ा मगर सुलतान बहादुर गुजराती ने सन् ९३७ (सं० १५८७) में इसको पकड़कर मालवा गुजरात में मिला लिया और यह उसके नौकरों के हाथ से मारा गया।

खिलजियों के पीछे

नंबर	नाम	सन्	संवत्	हाल
१	बहादुरशाह गुजराती	९३७	१५८७	इसने राजा विक्रमाजीत पर चढ़ाई करके चित्तौड़ का किला तोड़ा। हुमायूँ बादशाह ने आगरे से आकर इसको काठियावाड़ की तरफ भगाया और मालवे तथा गुजरात में अमल करके राज्य अपने भाई मिरजा असकरी को सौंप दिया।
२	हुमायूं बादशाह	९४१	१५९१	हुमायूँ बादशाह बुरहानपुर फतह करने की फिक्र में थे कि शेरशाह के फ़साद का हाल सुन

नंबर	नाम	सन्	संवत्	हाल
				कर बंगाले को चले गए। वहाँ उनकी हार हुई। जब यह ख़बर मालवे में आई तो मल्लूखाँ जो ख़िलजियों का गुलाम था उनके अमीरों को निकालकर सुलतान कादिर के नाम से मालवे का बादशाह बन गया।
३	सुलतान कादिर (मल्लूख़ां)	९४२	१५९२	शेर शाह ने सन ९४९ (सं० १६००) में मल्लूखाँ को भगाकर मालवे में अमल कर लिया और शुजाअ को वहाँ का हाकिम नियत किया।
४	शेरशाहसूर	९४९	१६००	
५	सलीमशाह सूर	९५२	१६०३	इसने भी शुज़ाअख़ाँ को मालवे का हाकिम बना रक्खा।
६	मोहम्मद शाह सूर	९६०	१६१०	इसकी बादशाही बिगड़ जाने से शुज़ाअ ख़ां ख़ुदमुख़्तार हो गया।
७	शुज़ाअख़ाँ (सजावल ख़ां)	९६१	१६११	यह मांडू छोड़ सारंगपुर में रहने लगा।
८	बाज़बहादुर	९६२	१६१२	यह मालवे का आख़िरी सुलतान था। इससे सं० १६१९ में सम्राट् अकबर की फ़ौज ने मालवा छीन लिया।

बाज़बहादुर।

इधर बाज़बहादुर और उधर सम्राट् अकबर दोनों समकालीन बादशाह एकही बरस अर्थात् संवत् १६१२ में तख़्त पर बैठे थे परंतु दोनों का भाग एक सा नहीं था। अकबर के भाग में तो सारे हिंदुस्तान का सम्राट् होना बदा था और बाज़बहादुर के भाग में मालवे का रहना भी नहीं लिखा था।

शुजाअख़ाँ[1] के दो बेटे मियाँ बायज़ीद और मलिक मूसा (मुस्तफ़ा) थे। तीसरा मुँह बोला बेटा दौलतख़ाँ था उसपर दिल्ली के बादशाह सलीमशाह सूर[2] की बहुत मेहरबानी थी जिससे शुजाअख़ाँ को बहुत मदद मिलती थी।

शुजाअख़ाँ ने उज्जैन नौलाई वग़ैरह परगने तो दौलत-ख़ां को दिये थे और रायसेन व भेलसा मलिक मुस्तफ़ा को। शुजाअख़ाँ के मरने पर मियाँ बायज़ीद ने हंडिया से सारंगपुर में आकर राज काज पर क़बज़ा कर लिया और उज्जैन में जाकर दौलतख़ाँ को धोखे से मार डाला, फिर तख़्त पर बैठकर अपना नाम बाज़बहादुर रखा। उसने मलिक मुस्तफ़ा पर चढ़ाई की। मुस्तफ़ा बहादुरी से लड़ा मगर हारकर भागा। बाज़बहादुर रायसेन लेकर गोंडवाने पर गया और वहाँ भी फ़तह पाकर सारंगपुर लौट आया।

कुछ अरसे पीछे लशकर सजकर कटंगा[3] फ़तह करने को चढ़ा। रानी दुर्गावती जो वहाँ राज करती थी गोंड़ों को जमा करके घाटी पर आकर लड़ी और उसके बहुत से पैदलों ने बाज़बहादुर के लशकर चारों तरफ़ से घेर लिया। बाज़बहादुर हैरान होकर भागा, उसके

(१) आईन अकबरी और अकबरनामे में इसका नाम सजावलख़ाँ लिखा है।

(२) सलीमशाह अपने बाप शेरशाह के पीछे सं० १६०२ में बादशाह हुआ था।

(३) यह गोंड़वाने की मरदानी रानी दुर्गावती की राजधानी थी। गढ़े के पास होने से गढ़ कटंगा कहलाती थी (दे० पत्रिका, भाग २ पृ० २२४)

सिपाही और बड़े बड़े आदमी रानी की पकड़ में आगए जिनमें से बहुत से मारे भी गए।

बाज़बहादुर बड़ी मुशकिलों से सारंगपुर पहुँचा और इस हार का दुःख और पछतावा भूल जाने के लिये ऐश में पड़ गया। बहुत सी औरतें जमा करके रूपमती के इश्क़ में ऐसा बुरा फँसा कि राज काज को बिल्कुल भूल गया। सम्राट् अकबर ने उसकी ग़फ़लत और बेख़बरी की ख़बरें सुनकर सन ९६८ (सं० १६१८) में मालवा फतह करने के वास्ते अदहमख़ाँ कोका को भेजा। जब कोका सारंग पुर से एक कोस इधर पहुँचा तब बाज़बहादुर की आँख खुली और वह औरतों में से उठकर लड़ने को निकला पर बहुत बेतुकेपन से कुछ देर लड़कर भागा। अदहमख़ाँ ने उसके माल ख़ज़ाने और पातरख़ाने पर क़बज़ा कर लिया और वह भी ऐश में पड़कर दूसरा बाज़बहादुर बन गया। सम्राट् यह सुनकर मालवे में आए और लूट का सारा माल अदहमख़ाँ से लेकर पीरमुहम्मदख़ाँ को मालवा दे गए।

पीरमुहम्मदख़ाँ ने सन ९६९ (सं० १६१९) में बाज़बहादुर पर चढ़ाई की जो मालवे की सरहद पर था। वह बराड़ के शाह तफ़ाबुलख़ाँ[1] और बुरहानपुर के बादशाह मीराँ मुबारक शाह[2] को बुलाकर लड़ने आया। पीरमुहम्मदख़ाँ इन तीनों का मुक़ाबिला न कर सका और भागकर नर्मदा में डूब मरा। बाज़बहादुर फिर मालवे के तख़्त पर आ बैठा परंतु दूसरे ही, बरस सन ९७१ (सं० १६२१) में अबदुल्लाहख़ाँ उज़बक ने सम्राट् के हुक्म से आकर उसको लड़े बिना ही भगा दिया। तब वह मालवा, ख़ानदेश और

(१) यह बराड़ का आख़िरी बादशाह था। इससे सन् ९८२ (सं०१६४१) में अहमद नगर के बादशाह मुरतज़ा निज़ामशाह ने बराड़ छीन लिया।

(२) यह बुरहानपुर का ११ वाँ बादशाह सन् ९४३ (सं० १५९३) में तख़्त पर बैठा था।

बाज़बहादुर औ रूपमती   ली जाति से जंग

दक्खन के पहाड़ों में छिपता फिरा। निदान बचाव का कोई उपाय न देखकर सम्राट् की दरगाह में हाज़िर हो गया।

फिर दोहजारी मनसब[1] पाकर बाक़ी उमर आराम से तय करके मर गया। उसकी बादशाही क्या मालवे में और क्या जंगलों और पहाड़ों में १७ बरस[2] रही थी। उसका भाई मलिक मुस्तफ़ा भी सम्राट् के अमीरों में दाख़िल होकर हकीम अबुलफ़तह के साथ यूसुफ़ज़ई पठानों की मुहिम पर गया और एक लड़ाई में मारा गया[3]।

यह ख़ुलासा तो तारीख़ फ़रिश्ता में लिखे हुए मालवे के हालात का हुआ। अब अकबरनामे से भी बाज़बहादुर का हाल अख़ीर तक लिखा जाता है।

अकबरनामे में शुजाअख़ाँ को सजावलख़ाँ कहा है और लिखा है कि सलीमख़ाँ सूर के पीछे जब मुहम्मदख़ाँ अदली (दिल्ली का) बादशाह हुआ तो उसने मालवे की हकूमत सजावलख़ाँ को दे दी। उसके पीछे बाज़बहादुर उसकी जगह बैठा। सम्राट् ने उसके हाज़िर होने का रास्ता देखकर बहादुरख़ाँ को मालवे पर भेजा मगर

---

(१) आईन अकबरी में बाज़बहादुर का मनसब एक हज़ारी जात २०० सवारों का ही है और उसको सजावलख़ाँ का बेटा लिखा है (पृ० २८३ दफ़्तर २) मगर मआसिरुलउमरा में लिखा है कि बाज़बहादुर का मनसब पहले तो हज़ारी ही था लेकिन अख़ीर में दोहज़ारी दोहज़ार सवार का हो गया था (जिल्द १ पृ. ३८१)।

आईन अकबरी में सन् ४० इलाही या जलूसी (सं० १६५३) तक के मनसब लिखे हैं, उसके पीछे बाज़बहादुर का मनसब बढ़कर दोहज़ारी दोहज़ार सवार का हो गया होगा जैसा कि फ़रिश्ता और मआसिरुलउमरा में लिखा है।

(२) १७ बरस सं० १६१२ से सं० १६२८ तक होते हैं और अकबरनामे में जो सं० १६२७ में बाज़बहादुर का बादशाह की ख़िदमत में हाज़िर होना लिखा है वह भी उसीके लगभग है। फ़रिश्ता के मत से बाज़बहादुर १७ बरस तो स्वतंत्र रहा था फिर परतंत्र हो गया।

(३) लड़ाई सन् ३० इलाही सन् ९९४ (सं० १६४२) में हुई थी जिसमें राजा बीरबर भी काम आया था।

बैरमखाँ[1] का बखेड़ा खड़ा हो जाने से उसको रास्ते से ही लौट आना पड़ा। फिर साल ५ जलूसी के आख़ीर और सन् ९६८ के शुरू (सं० १६१८) में अदहमख़ाँ कोका वहाँ भेजा गया। बाज़बहादुर ने सारंगपुर से निकलकर दो कोस पर पैर जमाया। आप बीच में रहा। चंदेरी और रायसेन के हाकिम सलीमख़ाँ ख़ासाखेल को दहने हाथ पर और ताजख़ाँ खासाखेल को बाएँ हाथ पर रखा परंतु लड़ाई में हारकर बगलाने[2] के राजा भरजी के पास गया। वहाँ से चंगेज़ख़ाँ[3] और शेरख़ाँ[4] फ़ौलादी के पास और अख़ीर में निज़ामुलमुल्क[5] दखनी के पास गया परंतु सब जगह से निरास होकर राना उदयसिंह की सरन में आया। सम्राट् ने उसके संकट के समाचार सुनकर सन् ९७१ (सं० १६२१) में हसनख़ाँ ख़ज़ानची, पायंदाख़ाँ पचभइया और ख़ुदावर्दी बेग को महरबानी का फ़रमान देकर उसके लाने को डूँगरपुर की तरफ़ भेजा परंतु वह किसी नाज़िर के बहका देने से नहीं आया और उसने माफ़ी की अरज़ी लिख भेजी। सन् ९७८ (सं० १६२७) में सम्राट् ने नागोर से फिर हसनख़ाँ ख़ज़ानची को भेजा। बाज़बहादुर उसके साथ आकर बादशाही महरबानियों में शामिल[6] हो गया।

(१) तारीख़ फ़रिश्ता जिल्द २ पृ० २७३—७४ (लखनऊ)। बैरमख़ाँ सम्राट् का अतालीक़ और वज़ीर था परंतु लोगों के बहकाने से बाग़ी होकर लड़ा और मक्के जाता हुआ गुजरात में मारा गया।

(२) बगलाना एक पुराना राज राठोड़ों का गुजरात में था और उस वक्त गुजरात के बादशाह दूसरे मुज़फ़्फ़र के अधीन था। इस घराने का हाल 'राष्ट्रौढ़वंश महाकाव्य' (गायकवाड़ संस्कृत सिरीज़, बड़ौदा) में छपा है।

(३।४) ये दोनों गुजरात के बादशाह के अमीर थे।

(५) अहमदनगर का बादशाह हुसैन निज़ामशाह जो सन् ९६१ (सं० १६११) से सन् ९७२ (सं० १६२२) तक तख़्त पर रहा था। मुरतिज़ा निज़ामशाह इसीका बेटा था (फ़रिश्ता)।

(६) यह बुलाना ज़ाहिर में तो महरबानी से था परंतु भीतरी सबब कुछ और भी होंगे। लड़ाई झगड़ा खड़ा करने का खटका तो उसकी तरफ़

बाज़बहादुर की सेवावृत्ति ।

सन् ६८० (संवत् १६२९) में सम्राट् ने खानेआज़म को बाग़ी मिरज़ा मुहम्मदहुसेन का फ़साद मिटाने के लिये गुजरात में भेजा, उसके साथ बाज़बहादुर की भी नौकरी बोली गई थी । वह चांपानेर और नहरवाले (अनहिलपुर पट्टन) की लड़ाइयों में हाज़िर था । फिर जब दूसरा बाग़ी मिरज़ा इबराहीम दक्खन से गुजरात में आया और कुछ बादशाही नौकर नमकहरामी से उसके पास चले गए और बड़ौदे का क़िला लड़े भिड़े बिनाही उसके हाथ आगया तब बाज़बहादुर लड़ने को निकला मगर अपने विश्वासघाती नौकरों की नालायकी से कुछ न कर सका । फिर पीरपुर और अस्थान की लड़ाइयों में भी उसके नौकरों ने वैसी ही बेशर्मी की जिससे उसकी हिम्मत टूट गई । सुरनाल की लड़ाई में भी ऐसाही हुआ कि जब बाज़बहादुर लड़ने को निकला तब उसके लालची नौकर ग़नीम से जा मिले ।

सन ६६३ (सं० १६४२) में खानेआज़म को दक्खन फ़तह करने का हुक्म हुआ, बाज़बहादुर भी उसके साथ गया ।

सन १००० (सं० १६४८) में बाज़बहादुर नवाब अब्दुर्रहीम खां खानखाना[1] के साथ सिंध की मुहिम पर भी गया था ।

से कमही हो गया। पर दुश्मन को खुला छोड़ने से दबा गया के बंधन में रखना अच्छाही था । दूसरे वह गान विद्या में निपुण और नामी था, इधर सम्राट् ऐसे गुणीजनों के ग्राहक ही थे । उन्होंने तानसेन को भी रीवां के राजा के पास से बड़े मान सम्मान के साथ बुलाया था, उसी प्रसंग से बाज़बहादुर को भी बुलाकर अपने संगीत समाज की शोभा बढ़ाई हो । आईने अकबरी में अमीरों के सिवाय गवइयों में भी बाज़बहादुर का नाम होने से इस अनुमान की कुछ पुष्टि होती है । नाम भी तो वहां उसकी गान विद्या की पूरी तारीफ़ के साथ लिखा है (दफ़तर १—पृ० २८३।३२३) ।

(१) यही मशहूर खानेखाना है जो बैरमखां खानखाना का बेटा और बहुत बड़ा उदार अमीर हिंदी और संस्कृत का नामी कवि था । इसका पूरा हाल मेरे खानखानानामे में छपा है ।

सन् १००८ (सं० १६५६) में सम्राट् ने आसेरगढ़ पर चढ़ाई की, उसमें मियाँ बाज़बहादुर भी हाज़िर थे ।

सन् १००९ (सं० १६५७) में भी शाहज़ादे दानियाल के तैनातियों में, जो दक्खन को भेजा गया था, बाज़बहादुर का नाम है ।

सन् १०१० (सं० १६५८) में शेख़ अब्दुलरहमान[1] तिलंगाना फ़तह करके लौटा था तब बाज़बहादुर को किले की फ़ौज में छोड़ गया था । अहमदनगर के सेनापति अंबर चंपू ने पीछे से आकर तेलिंगाना ले लिया और कुछ बादशाही नौकरों को क़ैद भी कर लिया । उनमें बाज़बहादुर भी था मगर शेख़ अबुलफ़ज़्ल[2] ने सुलह करके उसे छुड़ा लिया ।[3]

इस तरह बाज़बहादुर का नाम संवत् १६५८ तक अकबरनामे में आता है । फिर सम्राट् जहाँगीर के तख़्त पर बैठने अर्थात् संवत् १६६२ तक और उसके पीछे भी सम्राट् जहाँगीर के इतिहास में उसका मौजूद होना नहीं पाया जाने से यही जाना जाता है कि वह इन चार बरसों (सं० १६५८ से १६६२ तक) में किसी बरस मर गया होगा । परंतु मुंतख़बुत्तवारीख़ से 'जो सं० १६५१ में पूरी हो

---

(१) यह शेख़ अबुलफ़ज़्ल का बेटा था ।

(२) सम्राट् अकबर ने शेख़ अबुल फ़ज़्ल को भी सन १००७ (सं० १६५५) में दक्खन की मुहिम पर भेजा था उसने वहाँ अंबर चंपू और राजू वगैरह दक्खनी सरदारों से कई लड़ाइयाँ जीती थीं । फिर सम्राट् के बुलाने से आगरे को आता था परंतु बड़े शाहज़ादे सुलतान सलीम (जहाँगीर बादशाह) के हुक्म से बीरसिंहदेव बुंदेले ने रास्ते में ही रबीउलअव्वल सन् १०११ (भादों सुदी २ सं० १६५९) को उसे मार डाला । यह वज़ीर भी था और मीर मुनशी भी । अकबरनामा और आईन अकबरी जैसे अनोखे ग्रंथ इसीके बनाए हुए हैं ।

(३) अकबरनामा दफ़्तर २ पृ० ९०।१३४।१३५।१३६।१३७।१४०।१४१।१४२।१४३।१६६।१६७।१६८।१६९।२११।२३१।२४८ और दफ़्तर ३ पृ० २४।२०७।२१४।४६५।६०८।७६७।७७३।७८१।७८६।८००।

गई थी उसका मरना संवत् १६५१ के पहले ही मालूम होता है क्योंकि उसमें लिखा है कि बाज़बहादुर दूसरी बार लड़ाई हार जाने के पीछे कुछ अरसे तक चित्तौड़ और उदयपुर में राना उदयसिंह का आसरा लेकर भटकता फिरा। फिर कुछ अरसे तक गुजरात में रहकर दरगाह के खैरख्वाहों (शुभचिंतकों) में आ मिला, अरसे तक कैद रहकर छूटा परंतु मौत के पंजे से नहीं छूट सका[1]।

अब यह शंका होती है कि बाज़बहादुर जब मुंतख़बुत्तवारीख के कर्ता मुल्ला अबदुलक़ादिर बदायूनी के सामने ही सं० १६५१ के पहलेही मर चुका था फिर अकबरनामे में १६५८ तक उसका नाम कैसे आया, शायद वह कोई दूसरा बाज़बहादुर हो।

शुजाअतखाँ के बेटे का नाम भी बाज़बहादुर था जिसका जिक्र सन् २५ जलूसी सन ९८८ (सं० १६३७) के हाल में इस प्रसंग से आया है कि सम्राट् ने शुजाअतखाँ को पूरब के बाग़ियों पर जाने वाले लश्कर में शामिल होने के लिये मालवे से बुलाया था परंतु वह सारंगपुर में पहुँचकर मर गया तब उसके बेटे बाज़बहादुर को हुक्म भेजा गया कि गुजरात से आकर उस लश्कर के साथ हो जावे[2]।

इससे जाना जाता है कि गुजरात की लड़ाइयों में जिस बाज़बहादुर का नाम लिख लिया गया है वह यही बाज़बहादुर है, हमारा चरित्रनायक विलासी बाज़बहादुर नहीं हो सकता जो लड़ाई भिड़ाई के काम का नहीं था। वह तो एक शोभाऊ और मजलिसी छैला और गाने बजाने का बड़ा रसिया था जिसकी चाट में और तो क्या बादशाही जैसे दुर्लभ पद से भी उसका मौजी मन उचाट ही रहता था।

(१) मुंतख़बुत्तवारीख जिल्द २, पृ० २११।२१।

(२) अकबरनामा, दफ्तर ३, पृ० ३१३।३१४

रूपमती।

रूपमती सारंगपुर[1] की एक चतुर सुघड़ सुंदर सुजान पातुर थी। नाचने गाने बजाने और रिझाने में सारी पातुरों से बढ़कर निकली थी।

सारंगपुर अब भी ग्वालियर राज्य में है परंतु जो शोभा और सुहावनापन उसमें रूपमती[2] के दमकदम से था वह अब बिल्कुल नहीं है[3]।

(१) सारंगपुर एक पुराना शहर मालवे में काली सिंध नदी के किनारे पर बसता है। खींचीवाड़े अर्थात् गागरोन राघोगढ़ अमलावदा वगैरह के खींची राजाओं की ख्यातों में जो अभी नहीं छपी हैं लिखा है कि "अमलावदे के राजा अँगाढे के बड़े बेटे सूजा ने तो सुजालपुर और छोटे सारंगदेव ने सारंगपुर बसाया था"।

मालवे की उर्दू तवारीख में (जो सन् १२९० हिजरी = संवत् १९२८) में छपी है लिखा है कि "सारंगपुर २४० बरस से राजा सारंगदेव का आबाद किया हुआ है (पृ० २१६) परंतु इसमें भूल है क्योंकि उस वक्त २०० बरस तो बाजबहादुर के राज को ही हो गए थे।

(२) मुंतखाबुततवारीख में मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी ने लिखा है कि "रूपमती खास और आम में पद्मिनी मशहूर थी (जिल्द १, पृ० १९३) मआसिरुलउमरा में भी रूपमती की तारीफ में लिखा है 'कहते हैं पद्मिनी थी। यह हिंदुस्तान के दानाओं की ठहराई हुई चार किसम की औरतों में से पहली किसम है अर्थात् जो खूबियां अच्छी औरतों के डील डौल में की हैं वह उसमें होती हैं. (जि० १ पृ० ३८९)।

रूपमती की गानविद्या का बखान करते हुए उसी तवारीख मालवे में मुंशी करम अली लिखते हैं कि तानसेन ने एक बेर दीपक राग गाया था उसकी गरमी से उसके बदन में आग लग गई थी। जब किसी इलाज से आराम न हुआ तो रूपमती के पास आया। रूपमती ने मेघराग गाकर मेह बरसाया और उसके तन की तपन बुझा दी।

संगीतशास्त्र में मेघ और दीपक रागों के ऐसे ही चमत्कार लिखे हैं।

(३) शायद इसी लिये ग्वालियर के दो उर्दू जुगराफियों में सारंगपुर का नाम तक नहीं है। ये दोनों सन १८९७ और १९११ के छपे हुए हैं।

सारंगपुर उस वक्त अलबेले सुलतान बाज़बहादुर का राज्य-स्थान भी था और जब वह रानी दुर्गावती से लड़ाई हारकर आया तब फिर शर्म के मारे कहीं लड़ने को सारंगपुर से बाहर नहीं गया, ग़म ग़लत करने और दिल बहलाने के लिये वहीं रहा। वहाँ पहले ही सुख समाज और रासविलास के ठाट थे। गली गली में रंग रँगीली गायनों के ठट थे, जिधर तिधर मोहनी मूरत सोहनी सूरत-वाली सुंदरियों के जमघट थे, जिनके वास्ते किसी रंगीले शायर का यह शैर खूब फबता हुआ है—

तिरछी तिरछी नजरें हैं और गोरी गोरी गातें हैं।
अच्छी सूरत वालों की क्या अच्छी अच्छी बातें हैं॥१॥

इस पर भी उसने इधर उधर से अपछरा जैसी अल्लाह की बंदियों और रामजनिओं को जमा करके परस्तान सरीखा खासा पातरखाना क्या राजा इंद्र का सा अखाडा जोड़ लिया था जिसमें रात दिन रंग रलियां करता हुआ वह राज काज की भूलभुलैयां को भूला बैठा था। दिन कब निकलता है, रात कब पड़ती है इसकी भी उसको कुछ खबर नहीं होती थी क्योंकि चंदमुखियों के रूप जोबन की ज्योति का प्रकाश रात दिन उसकी आँखों में समान रूप से बना रहता था।

बाज़बहादुर जैसा रँगीला छबीला सजीला जवान था वैसा गाने बजाने और कविता करने में भी चतुर सुजान था। इसलिये रूपमती से उसका खूब तालमेल मिल गया था क्योंकि वह नई नवेली नायिका होने पर भी इन बातों में परम परवीन थी। दोनों एक दूसरे पर मोहित होकर आठ पहर साथ रहते थे। दम भर भी अलग नहीं होते थे, साथ सोते थे, साथ उठते थे, जवानी की रातें, मुरादों के दिन थे।

(१) आईन अकबरी में बाज़बहादुर का नाम मनसबदारों में भी है और गवैयों में भी। वहां लिखा है कि मालवे का मर्ज़ुबान (जमींदार) गाने में कम बराबरी वाला है (अर्थात् उसके बराबर गाने वाले कम हैं) दफ़तर १, पृ० २८३—३३२।

रूपमती अपने रूप जोबन के ललित लावण्य पर बहुत गरबीली थी तो भी बाज़बहादुर के प्रेम में ऐसी पग गई थी कि अपनी माशूक़ी के सब मान गुमान छोड़कर उस कन्हैया जैसे कंत की गोपी बन गई थी। जिस तरह से आशिक़ माशूक़ों के नाज़ नखरे उठाते हैं वैसे ही वह उसके उठाती थी। उसके बाल बाल से बाज़बहादुर के वास्ते यही धुन निकलती थी जो किसी प्रेम पगी लगन लगी नायिका की ज़बान से एक विलासी कवि ने इस दोहे में लिख छोड़ी है—

थारी छूँ रे बालमा, गोड़े लागी[1] राख।
ख़रबूजा री फाँक ज्यों, न्यारी न्यारी चाख॥

दोनों साथ साथ रहकर बनों बागों में बिहार तो करते ही थे परंतु जंगलों और पहाड़ों में भी कभी कभी शिकार खेलने को साथही जाते थे। रूपमती गायिन ही नहीं थी सिपाहिन भी थी। अपनी बाँकी भौंवों जैसी कड़ी कमानों को खैंचकर ऐसे बेख़ता[2] तीखे तीर चलाती थी जो उसकी तिरछी नज़रों के समान निशानों पर कारगर होते थे। जब कभी शिकार खेलते हुए जंगली भीलों, गोंड़ों या मोगियों से मुठभेड़ हो जाती थी तो बाज़बहादुर से आगे घोड़ा बढ़ाकर तीर चलाती थी जो दुश्मनों के शरीर के पार निकल जाते थे। यह बात तारीखों में तो नहीं लिखी है परंतु पुरानी तसवीरों में देखी जाती है।

बाज़बहादुर और रूपमती की यह रंग रलियां बहुत समय तक नहीं चलीं, ५। ७ बरस में ही उनका अंत आ गया। "चार दिना की चाँदनी फिर वही अँधेरा पाख" की मसल मशहूर है।

उस ऐश आराम का यह परिणाम हुआ कि सम्राट् अकबर की फौज से लड़ाई हारकर बाज़बहादुर को भागना और उमर भर कष्ट उठाना पड़ा और रूपमती अपनी जान से जाती रही। इसका यह

(१) घुटने से लगी।
(२) निशाना नहीं चूकनेवाले।

हाल उस ज़माने की तवारीखों में बहुत लिखा है। उसका सारांश यह है कि बाज़बहादुर जब सम्राट् की फौज से लड़ने को निकला था तो ज़नाने और पातरखाने पर पहरे बैठाकर कह गया था कि हार होने पर अंदरवालियों को मारकर बाहर निकल आवे ताकि ये जीती जागती तसवीरें दुश्मनों के हाथ में न पड़ जावें, लेकिन भागड़ की गड़बड़ और घबराहट में वे भी उन फूलों की छड़ियों पर तलवारों का एक एक हाथ छोड़ते हुए दुश्मनों के डर से निकल भागे। इस खून खराबी में बहुत तो मर गईं और कुछ अधमुई पड़ी सिसकती रहीं।

सम्राट् के सेनापति अदहमखाँ कोका ने रती जैसी रूपवती रूपमती की स्तुति पहले से सुन रक्खी थी। इसलिये शहर में घुसतेही उसका पता लगाया तो यह खबर आई कि ज़खमों से चूर हुई पड़ी है पर अपने जीव के जोखों को भूलकर प्राणप्यारे बाज़बहादुर को याद कर कर रो रही है। कोका को दया आ गई, मया करके कहा कि इस चकोर का अपने चाँद के हज़ूर से दूर रहना जरूर नहीं है और उससे कहला भेजा कि जल्दी इलाज करके चंगी होजा, तुझे तेरे अर्धंगी के पास पहुँचा दूँगा[1]। रूपमती इस खुशखबरी से हरी हो गई, बाज़बहादुर के मिलने की आस बँध जाने से मरहम पट्टी कराने लगी। जब चतुर चितचोर के हाव भाव के चाव से सारे घाव भर गए तब कोका से अरज़ कराई कि आपकी कृपा से चंगी हो गई हूँ, अब अपना वचन पूरा कीजिए। अदहमखाँ ने ज़वाब दिया कि बाज़बहादुर अभी तक बाग़ी है, सम्राट् की ड्योढ़ी पर हाज़िर होजाता तो मैं तुम को उसके पास भेज देता, यों भेजने में हज़रत की खफ़गी का डर है[2]। रूपमती इस जवाब से निराश हो गई, उसका दुख दूना हो गया। एक दुख तो उस दुखिया को प्यारे पिया के मिलने की आस टूट

(१) ऐसा कहलाना तारीख फरिश्ता में फरेब से लिखा है (पृ० २२७)

(२) इक़बाल नामा जहांगीरी में लिखा है कि रूपमती ने अदहमखां से कहलाया था कि मुझे शेख अहमद के पास भेज दो उसकी घरवालियां सार

जाने का था और दूसरा दुशमनों के पंजे में फँस जाने का। जान के लाले तो पहलेही पड़े थे अब लाज जाने के भी पड़ गए। उसके बचाने की अभी कोई बात उसकी समझ में नहीं आई थी कि रात पड़तेही अदहमखाँ के आदमी उसके पास आए और कहने लगे कि खान तुमको याद फरमाते हैं जो अब मालवे के मालिक हैं, चलो और उनकी मलिका[1] बनो, बाज़बहादुर की लगन छोड़ो जो लापता है, उसके पास कुछ रहा भी नहीं है, अदहमखाँ भी सजीला और जोशीला जवान है, बाज़बहादुर से बढ़कर तुम्हारे नाज़ नखरे उठाएगा।

ये कड़ी बातें रूपमती के कोमल कलेजे में कटारी जैसी कारी लगीं क्योंकि वह बाज़बहादुर के सिवाय और किसीसे नहीं मिलने की कसम खा चुकी थी और अपने सत्य पर स्थिर थी, परंतु अब यह सोचकर कि जो मैं और कुछ कहूँगी तो ये लोग पकड़ ले जायेंगे तब अधम अदहमखाँ से इज्जत बचना मुशकिल होगा और इन जमदूतों के होते हुए मैं अपनी जान पर भी नहीं खेल सकूँगी। वह बड़े चाव और उछाव से बोली कि मैं नवाब साहिब की ताबेदार हूँ जैसा फरमावेंगे करूँगी, तुम जाओ, उनको ले आओ, जब तक मैं नहा धोकर सोरह सिंगार सज लेती और बाल बाल मोती पिरो लेती हूँ। वे तो यह बधाई लेकर हँसते खिलखिलाते वहाँ से चले और रूपमती

सँभाल कर लेंगी, जब घाव भर जाएँगे और आराम हो जायगा तो आपकी खिदमत में हाजिर हो जाऊँगी। शेख एक महात्मा पुरुष था, रूपमती को उसका स्नेह था। वह कुछ दिनों वहाँ रही, बदन के ज़ख्म तो भर गए परंतु दिल का घाव नहीं भरा। अदहमखाँ बराबर उसकी खबर लेता और मिलने का रास्ता देखता रहा। जब उसको पूरा आराम हो गया और वह नहा भी ली, फिर कोई बहाना करने की जगह नहीं रही तो उसने खाँ से केसर कपूर कस्तूरी अतर फुलेल मंगाए। खाँ ने बहुत से भेज दिए। वह एक हथेली भर कपूर खाकर सोई और चादर ओढ़कर जान से जाती रही। (पृ० १६६, नवल० प्रेस, लखनऊ)।

(१) रानी, बेगम।

ने नहा धोकर नए कपड़े पहिन खूब अतर फुलेल लगाया, गले में बहुत से फूलों के माले डाले, कुछ कपूर खाया, थोड़ा सा तेल पिया फिर फूलों की सेज पर पौढ़ गई और ऊपर चादर ओढ़ ली। उधर अदहमखां बड़ी उमंग से बन सज कर छैला बना, पर सम्राट् को खबर हो जाने के डर से भेस बदलकर अकेला दो तीन आदमियों के साथ चुप चाप चलकर आया और सहेलियों से रूपमती का पता पूछने लगा। उन्होंने कहा कि वह सोई हुई हैं।

अदहमखाँ ने बड़े जौक़ शौक़ औ रस रंग की तरंग से पलंग के पास जाकर चादर उठाई तो दंग रह गया कि सोरह सिंगार तो सजे हुए हैं पर सजीव नहीं, सुगंध तो आ रही है पर फूलों की छड़ी मुरझाकर सूख गई है। हैरान होकर पासवालियों से हाल पूछा। उन्होंने रो रोकर सब बयान कर दिया। खां के औसान [illegible] गए। उसकी बहादुरी का लोहा मानकर कहने लगा—वाह! रूपमती वाह!! तू ने प्रीति की रीति खूब निबाही[1]। फिर वह रूपमती के कफन दफ़न[2] का हुक्म देकर अपने डेरे पर चला आया। उर्फी शायर का यह शैर उसकी उस वक्त की हालत पर खूब घट जाता है—

(१) अकबरनामे में भी ऐसाही लिखा है कि अदहमखां ने रूपमती के ढूंढने को आदमी भेजे। जब यह भनक रूपमती के कान में पड़ी तब वफ़ादारी का खून जोश में आया। उसने बाज़बहादुर की दोस्ती में मर्दों की तरह जहर हलाहल का प्याला पी लिया और उसके नामूस (लाज) को नास्ती के लिये हुए घर में ले गई। (दफ़्तर २, पृ० १३६, छापा कलकत्ता)

(२) रूपमती की क़ब्र भी सारंगपुर में है। तवारीख़ मालवा में लिखा है कि रूपमती का कुंड और उसकी क़ब्र एक तालाब में है। क़ब्र से इश्क के आसार (चिह्न) जाहिर हैं। गुंबद टूट गया है। तालाब पर बाज़बहादुर के महल भी थे जो ऐसे बेनाम निशान हुए कि अब निशान तक बाकी नहीं है (पृ० २१८)। मगर मुआसिरुलउमरा में इसके खिलाफ़ यह बात लिखी है कि बाज़बहादुर और रूपमती दोनों उज्जैन के तालाब के बीचों बीच एक पुश्ते (टीले) पर एक ताक (कमरे) में आराम कर रहे हैं (जिल्द १, पृ० ३६१, छापा कलकत्ता)। उज्जैन से एक मित्र लिखते हैं कि यहां तो नहीं किंतु मांडू में रेवाकुंड पर रूपमती की क़ब्र है और उसके सामने बाज़बहादुर के महल हैं।

अज़ दरे दोस्त चे गोयमः ब चे उनवां रफ़तम।

हमं शौक़ आमदः बूदम हमं हिरमां रफ़तम॥

अर्थ—दोस्त के दरवाजे से क्या कहूँ मैं कि किस तरह से गया, पूरे शौक़ (उछाह) से आया था और पूरी नाउम्मेदी से गया।

यहाँ यह उर्दू शैर भी बाज़बहादुर और रूपमती की हालत पर खूब फबता है—

सुन रखे हैं जो हवस इश्क़ की करनेवाले।

इस तरह इश्क़ में मर जाते हैं मरनेवाले॥

रूपमती नाम की पातुर थी परंतु वास्तव में बड़ी सुपात्र पतिव्रता सती थी[1]। बाज़बहादुर तो जो उसको जानी जानी कहता हुआ मरा जाता था लड़ाई में मर्दों के सामने से जान लेकर भाग गया मगर मरदानी रानी[2] रूपमती उसके नेह संग्राम में मरदानगी से जान देकर अपना और उसका नाम अमर कर गई। उसकी इस फतह पर तो दुशमनों ने भी शाबास दी और तारीफ़ की है। अकेला बाज़-बहादुर तो दोनों संग्रामों अर्थात् शत्रु-संग्राम और नेह-संग्राम से भाग कर बदनाम ही रहा और बेशर्मी से जीकर मानो जीताही मुए बराबर जिया। उर्दू भाषा के नामी शायर मारूफ़ ने यह शैर अन्योक्ति से उस जैसे झूठ इश्क़बाज़ों के लिये ही कहा है—

संगे तिफ़लां की अज़ीयत से गया मजनूँ भाग।

इस मोहब्बत पड़ें तेरे भगोड़े पत्थर॥

अर्थ—हे भगोड़े! मजनूँ! तेरी मोहब्बत पर पत्थर पड़ें कि तू पत्थरों की मार से (लैली को छोड़कर) भाग गया। लैली मजनूँ का क़िस्सा मशहूर है। ये दोनों आशिक़ माशूक़ अरब में हुए हैं।

(१) मुंतख़िबुललुबाब में लिखा है कि रूपमती में दूसरे गुणों के साथ साथ इफ़फत (परपुरुष से परहेज) का भी गुण था। यह किसीका हाथ अपने कपड़े से छूजाने के पहले ही जहर खाकर मरगई (जिल्द १, पृ० १२३०, छापा कलकत्ता)।

(२) 'राजा के आई रानी कहलाई' मसल मशहूर है। तसवीर पर शाहजादी लिखा है, आगे देखो जहां तसवीरें हैं।

मजनूँ का असली नाम कैस था परंतु वह लैली की लगन में बावला सा रहता था इसलिये मजनूँ कहलाने लगा था। मजनूँ अर्बी भाषा में बावले को कहते हैं। सच्चा बावला लड़कों के पत्थरों से नहीं भागता है वही इस शेर में दिखाया है।

अदहमखां[1] ने जो फरेब रूपमती को दिया था वही रूपमती अखीर में उसको देकर पशेमान कर गई और अपनी इज्ज़त उस अधम के हाथों से बचा लेगई। उसका यह चरित्र चित्तौड़ की रानी पदमावती से कम नहीं था।

---

(१) अदहमखाँ सम्राट् अकबर का कोका अर्थात् धाभाई माहम अंगा धाय का बेटा था। सम्राट् की धायें तो कई थीं परंतु सब में मुख्य माहम अंगा और जीजी अंगा थीं। सम्राट् बचपन में माहम अंगा के पास बहुत रहे थे इसलिये उसकी बहुत खातिर रखते थे।

इसी खातिर से अदहमखां पर भी बहुत महरबानी थी और उसको फ़ौज का अफ़सर बनाकर मालवा फतह करने के वास्ते भेजा था। फ़तह के पीछे जो १२ रज्जब सन् ९६८ (चैत सुदी १३ सं० १६१८) को हुई थी उसने बाज़-बहादुर के माल खज़ाने और पातरखाने से अच्छी अच्छी चीजें और पातरें तो अपने पास रख लीं और सम्राट् के वास्ते कुछ हाथी और रद्दी चीजें भेज दीं और आप मालवे में दूसरा बाज़बहादुर बनकर उन ललित ललनाओं के साथ वैसी ही रंग रलियां करने लगा जैसी कि बाज़बहादुर करता था। सम्राट् यह सुन कर शाबान सन् ९६८ (बैसाख सुदी ३ सं० १६१८) को सारंगपुर में आए और अदहमखां से सब चीजें और पातरें २९ रमजान (असाढ़ सुदी १) को ले गए। अदहमखां मां की सिफ़ारिश से बच तो गया परंतु सम्राट् के चित्त से उतर भी गया और मालवे की सूबेदारी से भी। उस वक्त बादशाही का कुलम कुला काम जीजी अंगा का पति शमसुद्दीनखां अत्तका (धाऊ) करता था। कुछ स्वार्थी लोगों ने अदहमखां को बहकाया कि जो तू अत्तका को मार डाले तो यह सारा काम तेरे हाथ आ जावे। अदहमखां ने दीवानखाने में काम करते हुए अत्तका को मार डाला। सम्राट् उस समय महल में सोए हुए थे, गुल गपाड़ा सुनकर बाहर आए। अत्तकाखां को मरा देखकर अदहमखां से बोले कि हरामज़ादे तूने हमारे अत्तका को क्यों मारा। उसने गुस्ताखी से सम्राट् के दोनों हाथ पकड़ लिए। उस वक्त वहां बहुत से आदमी इकट्ठे हो रहे थे, पर किसीको यह हिम्मत नहीं हुई कि आ हाथ छुड़ा दे। निदान सम्राट् ने ही ज़ोर

ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह उसी समय के लिखे हुए या उनके आधार पर पीछे के बने हुए नीचे लिखे इतिहासों का सारांश है—

१—तारीख़ निज़ामी, दूसरा नाम तबक़ाते अकबरी, निज़ामुद्दीन बख़्शी की, सन हिजरी १००१ (संवत् १६४७) की बनाई हुई।

२—मुंतख़ाबुत्तवारीख, मुल्ला अबदुलक़ादिर बदायूनी की, सन् १००४ (संवत् १६५२) में बन चुकी थी।

३—आइनेअकबरी, शेख़ अबुल फ़ज़्ल की।

४—अकबरनामा अबुलफ़ज़्ल का, सन १०१० (सं० १६५८) में बना।

५—तारीख़ फ़रिश्ता, मुहम्मद कासिम हिंदूशाह फरिश्ता इस्तराबादी की, सन १०१५ (संवत १६६४) में बनी।

६—मआसिरेरहीमी, नवाब अबदुलरहीमख़ाँ ख़ानख़ाना की जीवनी, मुल्ला अबदुल्ला बाक़ी निहावंदी की, सन् १०२५ (संवत् १६७४) में बनाई हुई।

७—इक़बालनामा जहाँगीरी, मोतमदख़ाँ बख़्शी का, सन १०३७ (संवत् १६८५) में बनाया हुआ।

करके अपने हाथ छुड़ा लिए और उसके मुँह पर एक मुक्का इस जोर से मारा कि वह कबूतर के बच्चे की तरह से चकरा कर गिर गया और सम्राट् के हुक्म से दो बार चबूतरे के नीचे गिराकर मार डाला गया। उधर से शमसुद्दीन ख़ाँ का बेटा यूसुफ़ख़ाँ अत्तका ख़ैल अर्थात् अपने साथियों को लेकर अदहमख़ाँ से बदला लेने को आया मगर जब उसने सुना कि सम्राट् के इनसाफ़ से अदहमख़ाँ अपनी सज़ा को पहुँच गया है और उसकी लाश भी आखों से देख ली तब लौट गया। माहम अंगा पहले से बीमार थी। बेटे के मारे जाने से अधमुई सी हो गई। बादशाह ने उसको तसल्ली देकर अदहमख़ाँ की लाश दिल्ली भिजवा दी। माहम अंगा भी बेटे के ग़म में ४० दिन पीछे मर गई। सम्राट् उसकी लाश पर बहुत रोए और कंधा देकर लाश को दिल्ली भेज दिया और उसपर एक बड़ा मकबरा बनवा दिया। अदहमख़ाँ और माहम अंगा के मक़बरे अब तक वहाँ मौजूद हैं।

८–मुंतखिबुललुबाब, हाशिमखां खाफी (खाफीखां) का, सन ११३५ (संवत् १७८०) में बनाया हुआ।

९–सैरुलमुताखिरीन, सैयद गुलाम हुसेनखां तबातबाई की, सन ११९५ (संवत् १८३८) में बनाई हुई।

१०–मआसिरुलउमरा,—इसे नवाब समसामुद्दौला ने सन ११५५ (सं० १७९९) में बनाना शुरू किया था परंतु वह इसे अधूरा छोड़कर मरा फिर उसके बेटे मीर अबदुलहईखाँ ने सन ११९४ (सं० १८३७) में पूरा किया। बड़ा विचित्र ग्रंथ ३ खंडों में है[1]।

११–तवारीख मालवा उर्दू, मुनशी करमअली ने सन १२९० (सं० १९२८) में बनाई।

इन पुस्तकों के कर्ताओं ने बाज़बहादुर और रूपमती के वृत्तांतों को रोचक समझकर अपनी अपनी रुचि के अनुसार अलग अलग ढंग से चुनाचुनी करके थोड़ा बहुत लिखा है।

बाज़बहादुर और रूपमती की कविता।

१–अकबरनामे में लिखा है कि बाज़बहादुर हमेशा हिंदी शेर रूपमती के वास्ते कह कह कर अपना दिल हलका किया करता था[2]।

२–तबकातेअकबरी में लिखा है कि बाज़बहादुर जो हिंदी शेर कहता था उनमें रूपमती का नाम रखा करता था[3]।

३–मुंतखिबुललुबाब में लिखा है कि रूपमती हिंदी शेर नाजुक मजमूनों के खूब कहती थी[4]।

४–मआसिरेरहीमी में लिखा है कि बाज़बहादुर अपने हिंदी शेरों में रूपमती का नाम दाखिल करता था[5]।

---

(१) देखो लक्ष्मिका, भाग १, पृ० २०१-२०५।

(२) दफतर २, पृ० १३६।

(३) पृ० २९६, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

(४) जिल्द १, पृ० १९२ कलकत्ता।

(५) पृ० १९८ कलकत्ता।

५—इकबालनामे जहाँगीरी में लिखा है कि ४०० कलावंत बाज़बहादुर के नौकर थे। वह आप भी गाने और रागिनियाँ बनाने में अपने ज़माने में बेबदल था। अकसर रागिनियों में, जो वह बनाता या उसके कलावंत उसके वास्ते बनाते थे, उसका और रूपमती का नाम साथ साथ होता था[1]।

६—सैरुलमुताखिरीन में लिखा है कि रूपमती गाने में बेनज़ीर थी। हिंदी ज़बान में अकसर मज़मून बाँधती थी और उनमें अपना नाम इस खूबसूरती से लाती थी कि दिल लोट पोट हो जाता था[2]।

७—"हिंदुओं की मशहूर औरतों" के नाम से एक उर्दू पुस्तक लाहौर में छपी है उसमें लिखा है कि रूपमती के बनाए हुए गीत मालवे की सीधी सादी जबान में बहुत हैं उनसे दिल का दर्द टपकता है। एक गीत का उर्दू तरजुमा जिसको बाज़ भूप कल्याण कहते हैं यह है—

"जो दौलतमंद हैं उनको घमंड करने दो, यहाँ तो निष्कपट प्रेम से आनंद है। इस खजाने पर मज़बूत ताला लगा है जिसकी मैं रखवाली हूँ और जो पराई आँखों से बचा हुआ और बेखटके है, उसकी कुंजी मेरे पास है। यह पूँजी दिन दिन कुछ न कुछ बढ़ती ही है, इसको घटने से क्या काम है? मैंने अपने मन में यह ठान लिया है कि लाभ हो या हानि, उमर भर बाज़बहादुर का साथ दूँ।

बाज़बहादुर के वियोग की रूपमती ने कुछ कविता की थी उसमें का एक यह दोहा भी सुना है—

"बिना पिया पापी जिया चाहत है सुख साज।
रूपमती दुखिया भई बिना बहादुर बाज़॥"

हमने किताबों से यहाँ तक चुन चुना कर स्वयं भी रूपमती की कविता का पता लगाने के लिये कई मित्रों को खत लिखा तो सबसे

(१) जिल्द २ पृ० १६६।
(२) पृ० १९३, लखनऊ।

पहले धार राज्य के मीर मुनशी अबदुलरहमानजी ने यह गीत भेजा है जो ऊपर लिखे तरजुमे का मूल मालूम होता है—

और धन जोड़ता है री, मेरे तो धन प्यारे की पीत पूँजी ॥
काहू त्रिया की न लागे दृष्टि, अपने कर राखूँगी कूँजी ॥
दिन दिन बढ़े सवायो डेवढ़ों, घटे न एको गूँजी ॥
बाज बहादुर के सनेह ऊपर, निछावर करूँगी धन और ज़ी ॥

फिर लाला भगवानदीन ने काशी से यह दोहा लिख कर भेजा—

रूपमती दुखिया भई, बिना बहादुर बाज़ ।
अब जिय तुम पै जात है, यहाँ कहा है काज ॥

तसवीरें ।

मेरे संग्रह में तीन पुरानी असली तसवीरें चतुर चितेरों की बनाई बाज़बहादुर और रूपमती की थीं जिनके नाम और इनाम के कई कई सौ रुपये उनकी पीठ पर लिखे थे । रंग और सोना बिलकुल मैला नहीं हुआ था ।

एक तसवीर में तो ऐसा दृश्य दिखाया था कि रूपमती तो शिकार की थकन से महलों के बाग़ में पलंग पर लेटी हुई है, बाज़-बहादुर उसके पास बैठा है, सहेलियाँ कोई घोड़ा पकड़े खड़ी हैं, कोई हाथों में बाज़ लिए हैं, कोई इधर उधर देखती हैं । ये सब मर्दाना और सिपाहियाना भेस में हैं ।

दूसरी में बाज़बहादुर रूपमती की लड़ाई जंगली लोगों के साथ दिखाई गई थी जिनके कई आदमी बाज़बहादुर और रूपमती के तीरों से, जो घोड़े दौड़ाते हुए मार रहे हैं, ज़ख्मी होकर गिरे हैं और मर भी गए हैं । उनके तीर इन तक नहीं पहुँचे हैं । शिकारी कुत्ते भी अपनी चाकरी बजा रहे हैं ।

तीसरी में ऐसा समाँ झलकता है कि घनघोर घटाएँ छाई हुई हैं, रूपमती मरदाने कपड़े पहिने बाग में अकेली कुरसी पर बैठी हुई हाथ में तँबूरा लिए गा रही है ।

अफ़सोस है कि ये तसवीरें चोरी चली गई। इनके फोटो जो पहले लिए गये थे उन्हीं पर से चित्र इस निबंध के साथ दिए जाते हैं।

परिशिष्ट ।

इतनी खोज करने पर भी यह निबंध अधूरा सा है, विद्वानों की पसंद के योग्य नहीं है, क्योंकि इस में कई त्रुटियाँ दिखाई देंगी। बड़ी त्रुटि तो यही है कि चरित्रनायक बाज़बहादुर के मरने की तिथि और गड़ने की जगह का ठीक पता नहीं है। रूपमती के मरने की तिथि तो संवत् १६१८ चैत सुदी १३ और वैसाख सुदी ३ के बीच की कोई तिथि हो सकती है क्योंकि पहली तिथि तो रूपमती के जखमी होने की और दूसरी तिथि सम्राट् के सारंगपुर पर कूच करने की है जब कि वह इन १९।२०, दिनों में मर चुकी थी। परंतु बाज़बहादुर के मरने की तिथि तो क्या बरस भी किसी तारीख़ से मालूम नहीं हुआ। आईनेअकबरी से तो सन् ४० इलाही के अखीर अर्थात् असफंदार महीने की ३० तारीख़ (चैत बदी १ सं० १६५२) तक उसका जिंदा होना साबित है जब कि मनसबदारों की सूची में उसका नाम लिखा गया था और तवारीख़ बदायूनी में उस (पुस्तक) के खतम होने के पहले उसका मर जाना लिखा मिलता है। बदायूनी शुक्रवार २३ जमादिउलआखिर सन् १००४ को खतम हुई थी। उस दिन ५ असफंदार सन् ४० इलाही (फाल्गुन बदी ११ सं० १६५२) थी जब कि सन् ४० के पूरे होने में २६ दिन बाकी रह गए थे। ये तारीखें जंत्री के हिसाब से तो प्राय: सही हैं परंतु मरने की तारीख़ नहीं मालूम होने से कुछ अनुमान बाज़बहादुर के मरने का संवत् १६५२ के अखीर में हो सकता है। आगे विद्वान् जाँच लें।

रही मरने और गड़ने की जगह सो अभी अज्ञात ही है। तारीख़ मालवा से रूपमती की क़बर सारंगपुर में और मआसिरुल-उमरा से बाज़बहादुर और रूपमती की कबर उज्जैन में होनी कही जाती है परंतु दोनों में कौन सही है यह भी परस्पर विरोध होने से विवादग्रस्त विषय है।

६-चाँदबीबी।

[लेखक—मुंशी देवी प्रसाद, जोधपुर]

यह अहमदनगर के बादशाह हुसैन निज़ामशाह[1] की बेटी थी। इसका विवाह हिजरी सन ९७२ संवत् १६२१ में बीजापुर के बादशाह अली आदिलशाह[2] से हुआ था। इस संबंध से दोनों बादशाहों में मेल होगया जो पिछले बरसों में नहीं था। आपस में लड़ाइयाँ हुआ करती थीं जिनमें बीजापुरवाले विजय-नगर के राजा रामराज को भी कुछ देना करके अहमदनगर पर चढ़ा लाया करते थे। अब जो दोनों बादशाह एक हुए तो विजय-नगर पर चढ़ गए क्योंकि रामराज जब इन मुसलमानी रियासतों पर चढ़ आता था तब मसजिदों को खराब कर जाता था। इसीका बदला लेने के लिये उनकी यह चढ़ाई हुई। रामराज लड़ाई में मारा गया और इन बादशाहों ने उसके राज्य और मंदिरों को लूट-कर उजाड़ दिया। रामराज का भाई तनकनादरी तो अली आदिल शाह के और उसका भतीजा निमराज हुसैन निज़ामशाह के अधीन होगए। तब दोनों बादशाह उनको थोड़ा थोड़ा इलाका विजयनगर का देकर लौट आए। हुसैन निज़ामशाह तो थोड़े दिनों पीछे ही मर गया। मुरतिजा निज़ामशाह जो चाँदबीबी का सगा भाई था तख्त पर बैठा। वह बालक ही था और उसकी माँ खोनजा हुमायूं राज्य का काम करने लगी।

यह सुनकर निमराज ने अली आदिलशाह से तनकनादरी के स्वछंद हो जाने और हुक्म न मानने की शिकायत की। अली

(१) अहमदनगर निज़ामशाही मुसलमान बादशाहों के राज्य की राज-धानी था।

(२) यह कर्णाटक देश के आदिलशाही बादशाहों की राजधानी थी।

आदिलशाह उसको लेकर तनकनादरी पर चढ़ गया जो विजयनगर के उजड़ जाने से नलकंड के किले में रहता था। उसने खोनजा हुमायूं से मदद माँगी। खोनजा ने बाँह गहे की लाज से अपने बेटे मुरतिजा निज़ामशाह को साथ लेकर बीजापुर पर धावा किया और अपने जमाई की राजधानी को घेर लिया। अली आदिलशाह इस शह की खबर सुनते ही अपनी सास को शहमात देने के लिये लौट आया। बीजापुर के पास सास जमाई कई लड़ाइयां लड़े और बराबर रहे। हिजरी सन् ९७४ संवत् १६२३ में अली आदिलशाह ने खोनजा हुमायूं से सुलह करली परंतु दूसरे ही बरस फिर बिगाड़ हो गया और बीजापुर की फौज अहमदनगर पर चढ़ आई। यों होते होते व्यभिचारी अली आदिलशाह दो गुलामों के हाथ से हिजरी सन् ९८८ संवत् १६३७ में मारा गया। चांदबीबी विधवा हो गई। उससे कोई संतान नहीं थी और न दूसरी बेगमों से हुई थी। इसलिये अली आदिलशाह ने जीते जी अपने भतीजे इब्राहीम आदिलशाह को गोद ले लिया था जो ९ बरस की उम्र में बीजापुर के तख्त पर बैठा। कामिलखां दखनी ने, जो उस समय प्रधान मंत्री था, बादशाह की सँभाल और देख भाल का काम चाँदबीबी को सौंपा। उस दिन से चाँदबीबी का अधिकार बढ़ने लगा जो कामिलखां को न भाया और अब यह बात बात में चाँदबीबी से अड़ने लगा। चाँदबीबी ने गुप्त रीति से हाजी किशवरखाँ को कहलाया कि कामिलखाँ इस बड़े काम पर रहने के लायक नहीं है, जो तू उसको जलदी से हटा दे तो मैं इसकी जगह तुझे दे दूँ, देर करने में वह और भी जोर पकड़ जावेगा।

किशवरखाँ १०० सवार लेकर हर महल में, जहाँ कामिलखाँ कचहरी कर रहा था, बेधड़क घुसा चला गया। कामिलखाँ यह देख कर महल की तरफ चाँदबीबी की सहायता लेने को भागा, परंतु ड्योढ़ीदारों ने उसके कान में कहा कि यह काम चाँदबीबी के ही कहने से हुआ है, उसकी शरण लेना व्यर्थ है। तब वह महल के

पीछे से नदी में कूदकर घर को भागा और रास्ते में किशवर के आद-मियों के हाथ से मारा गया। फिर किशवरखाँ चाँदबीबी की हिमायत और मदद से काम करने लगा।

चाँदबीबी के भाई मुरतिजा निजामशाह ने इस गड़बड़झाला की खबर सुनकर अपने १५ हजार सवार बीजापुर की सीमा पर भेज दिए। चाँदबीबी ने भी ऐनुलमुल्क वगैरह अमीरों को उनसे लड़ने के लिये भेजा। दोनों लशकरों में बड़ी घमासान लड़ाई हुई। अहमद-नगर वाले हारकर भाग गए। बीजापुर के अमीर उनका माल लूट लाए। चाँदबीबी ने इस फतह से प्रसन्न होकर अमीरों को खिलअत और जड़ाऊ हथियोर दिये परंतु किशवरखाँ ने चाँदबीबी से पूछे बिना ही उन अमीरों से अहमदनगर की लूट के हाथी मांगे। इस नाराजी से उन्होंने चाँदबीबी से अरज करके किशवरखाँ की जगह काम करने के लिये मुस्तफाखाँ को बीजापुर से बुलाना चाहा जो अली आदिलशाह के बड़े अमीरों में से था। किशवरखाँ ने यह खबर सुन पाई और बालक बादशाह की मुहर से मुस्तफाखाँ के मार डालने का हुक्म अपने भरोसे के एक आदमी को लिख दिया जिसने बीजापुर में पहुंचकर धोखे से उसको मारडाला। चाँद बीबी ने यह सुनकर किशवरखाँ को बहुत बुरा भला कहा। किशवरखाँ उस वक्त तो चुप हो रहा परंतु फिर चाँदबीबी को यह दोष लगाकर कि अपने भाई को यहाँ की खबरें भेजती है और उसको बीजापुर लेलेने के वास्ते उकसाती है बादशाह से कहा कि इसको कुछ दिनों सितारे के किले में भेज देना चाहिए। जब मुरतिजा निजामशाह का पाप कट जावेगा फिर बुलवा लेंगे। बाद-शाह बालक और बेइखतियार था और ऐसी लाग लपेट की बातों को नहीं समझ सकता था। इसलिए उसने भी हाँ में हाँ मिला दी।

किशवरखाँ ने चाँदबीबी से सितारे जाने को कहलाया परंतु वह महल से बाहर नहीं आती और न बादशाही ख्वाजासरा और बड़ी बूढ़ी औरतें उसको ड्यौढ़ी पर ला सकती थीं इसलिये किश-

वरखाँ ने ख्वाजासरा और अपनी औरतों को महल में भेजा। ये लोग उस बड़ी बेगम को ज़बरदस्ती खैंच लाए और पालकी में डाल कर सितारे के किले में ले गए। यह बात सब शहर वालों को बुरी लगी और सीमाप्रांत के अमीर तो इसको सुनकर इतने बिगड़े कि अहमदनगर की सरहद से उठकर बीजापुर को चले आए। किशवरखाँ अपनी बात जमाने के लिये बादशाह को गोठ और भेंट देने के बहाने से अपने घर ले गया परंतु जब बाजार में होकर निकला तब औरतों तक ने उसको बहुत लानत मलामत की और कहा कि यह वही ज़ालिम है जिसने सैयद मुस्तफाखाँ का नाहक खून किया है और अली आदिलशाह की बेगम चाँदबीबी को महल से निकालकर सितारे के किले में भेज दिया है।

किशवरखाँ ने इन बातों से जान लिया कि लोगों के दिल मेरी तरफ से फिर गए हैं। अब यहाँ रहने में खैर नहीं है। इसलिये बादशाह को शिकार के बहाने से बाहर ले गया और एक बाग में छोड़कर अपने घरू आदमियों और बहुत से खजानों सहित अहमदनगर होकर तिलंगाने की तरफ चला गया जहाँ एक आदमी ने सैयद मुस्तफ़ाखाँ के वैर में उसको मार डाला।

बादशाह ने इख़लासखाँ हबशी को प्रधान मंत्री बनाकर चाँदबीबी के बुलाने का हुक्म भेजा। जब चाँदबीबी सितारे से आई तो इख़लासखाँ ने फिर बादशाह की सँभाल और देख भाल उसीको सौंप दी। चाँदबीबी ने पेशवा का बड़ा ओहदा अफ़ज़लखाँ शीराजी को और इसतीफा अर्थात् दफ़्तर का काम रासू बहमन पंडित को बादशाह से दिला दिया। इख़्लासखाँ ने जो चाँदबीबी का ध्यान परदेसियों की तरफ देखा तो वह भी किशवरखाँ के समान इस वहम में पड़ गया कि कहीं मेरा ओहदा भी न जाता रहे और इसी लिये उन दोनों को मरवा डाला। बाकी परदेसियों को निकाल दिया और गुलामों से मेल करने लगा।

इस घर की फूट का हाल सुनकर मुरतिज़ा निजामशाह और

मुहम्मद अलीकुतुबशाह ने मिलकर ५० हजार सवारों से बीजापुर को आ घेरा। तब गुलामों ने चाँदबीबी से कहा कि आखिर तो हम लोग गुलाम हैं, अमीर और अशराफ़ लोग हमारी हुकूमत से नाराज़ हैं इस लिये बीजापुर में नहीं आते हैं और अब दो दो ग़नीम चढ़ आए हैं और उनसे लड़ने की ज़रूरत है इस वास्ते आप किसी असील और अशराफ़ को सारा काम सौंप दें तो अमीर लोग बाहर से आ जावें और दुशमनों से लड़ें। चाँदबीबी ने उनकी राय पसंद की और अरज़ कबूल करके शाह अबुलहसन को मीर जुमला का मनसब और ख़िलअत बख़शा और बरगी जाति के हिंदू अमीरों को भी जो अली आदिलशाह के समय में बीजापुर छोड़कर विजयनगर के राजा के पास चले गए थे फ़रमान भेजकर बुलाया। उन्होंने आते ही दुशमनों के लशकर की रसद बंद कर दी और लूट मार करके उनको ऐसा तंग किया कि वे बिना फतह किए ही बीजापुर का घेरा छोड़ गए। तब बादशाह ने इख़लासख़ाँ की सलाह से दिलावरख़ाँ हबशी को गुलबरगे की तरफ भेजा जिसको कुतुबशाह घेरे बैठा था। दिलावरख़ाँ ने उसको भगाकर बहुत सा माल लूटा और इस फतह के घमंड में आकर इख़लास ख़ाँ के ओहदे की उम्मेद बाँधी। वह उसे धोखा देकर किले में बादशाह के पास चला गया। इख़लासख़ाँ यह सुनकर किले में जाने लगा तो दिलावरख़ाँ ने नहीं आने दिया और अंदर से लड़ाई शुरू कर दी जो एक महीने तक दोनों तरफ से चलती रही। फिर दिलावरख़ाँ ने इख़लासख़ाँ को पकड़कर अंधा कर दिया और बादशाही के तमाम कामों पर कबजा करके अगले कामदारों को निकाल दिया तथा चाँदबीबी का अधिकार भी सब छीन लिया यहाँ तक कि कोई आदमी उसकी तरफ मुँह भी नहीं करता था। इस तरह दिलावरख़ाँ ने सन् ९८९ संवत् १६३८ से ८ बरस तक कुल काम बादशाही का अपना मन चाहा किया। फिर अहमदनगर वालों से मेल करके सन् ९९२ संवत १६४१ में इब्राहीम आदिलशाह की बहन ख़ुदेजा सुलतान (राजा जीव) का

निकाह मुरतिज़ा निज़ामशाह के बेटे मीराँ हुसेनशाह से ठहराया जिसकी पालकी लेने के लिये अहमदनगर के अमीर बीजापुर में आए और बड़ी धूमधाम से ले गए। राजा जीव की सवारी के साथ चाँदबीबी भी अपने भाई मुरतिज़ा निज़ामशाह से मिलने चली गई। वह रास्ते में ठहरती ठहरती अगले बरस के अंत में अहमदनगर पहुँची।

चांदबीबी अहमदनगर में।

यों बीजापुर में तो चाँदबीबी के राज काज का ख़ात्मा होगया। अब अहमदनगर में जहाँ जन्म हुआ था उसकी राजक्रिया का नया जीवन शुरू हुआ।

उसके आने के पीछे अहमदनगर में भी वही गड़बड़ मची जो बीजापुर में थी। उसका भाई मुरतिज़ा निज़ामशाह अपने बेटे मीराँ हुसेनशाह के हाथ से मारा गया। वह कपूत भी साल भर के अंदर ही अपने बाप के पास जा पहुँचा और इसमाईल निज़ामशाह तख़्त पर बैठाया गया। यह बुरहानशाह का बेटा था और बुरहानशाह जो अपने भाई मुरतिज़ा निज़ामशाह के डर से भाग कर अकबर बादशाह के पास चला गया था अकबर बादशाह को बरार का सूबा देना कबूल करके मुगलों की फौज लेकर अहमदनगर पर चढ़ आया और अपने बेटे इसमाईल को दो बरस पीछे निकालकर बादशाह हुआ। ८ शाबान सन् १००३ बैसाख सुदि ९ संवत् १६६२ को वह भी मर गया तब उसका दूसरा बेटा इब्राहीम निज़ामशाह बादशाह हुआ। चार महीने पीछे वह भी एक लड़ाई में जान से जाता रहा। चाँदबीबी उसके बेटे बहादुरशाह को तख़्त पर बैठाया चाहती थी परंतु वह अभी डेढ़ बरस का ही था इसलिये मियाँ मंझू वग़ैरह सरदारों ने चाँदबीबी का कहना न मानकर ताहरशाह के बेटे अहमदशाह को जूंद के किले से बुलाकर ईद के दिन तख़्त पर बैठा दिया और बहादुरशाह को जूंद में भेजकर उसकी जगह कैद कर दिया। यह बात चाँदबीबी को बुरी तो बहुत लगी क्योंकि असली

हकदार निकाला जाकर एक दूर का हकदार जो मुरतिज़ा निज़ाम-शाह के चचा ताहरशाह का बेटा कहा जाता था लाया गया परंतु देशकाल के फेर से चुप मारकर देखने लगी कि क्या होता है और किस तरह बादशाही का काम चलता है जिसमें अराजकता से धड़ाबंदी हो रही थी। एक धड़ा तो दखनियों का था, दूसरा हबशियों का था। उसे जब यह मालूम हुआ कि अहमदशाह निज़ामशाह के घराने से नहीं है तब उन्होंने भी अहमदनगर के बाज़ार से एक लड़का लाकर निज़ामशाह बना दिया और उसको तख्त पर बैठाने के लिये मियाँ मंझू वग़ैरह दखनियों पर चढ़ाई की। मियाँ मंझू ने उनसे लड़ाई शुरू करके अकबर बादशाह के बेटे सुलतान मुराद को गुज़रात से अपनी मदद पर बुलाया परंतु उसके आने से पहले ही उसने २५ मुहर्रम शनिवार सन १००४, आसोज बदी १२ संवत् १६५२, को हबशियों को हराकर भगा दिया और उनके बनाए हुए बादशाह को भी पकड़ लिया। इतने में ही सुलतान मुराद, खानखाना और बुरहानपुर के शाह राजाअलीखां के साथ, बड़े लाव लशकर और धूमधाम से आ पहुँचा। मियां मंझू जो हबशियों पर फतह पाकर शाहजादे के बुलाने से दिल में पछता रहा था अपने आदमियों को अहमदनगर का किला सौंपकर और चाँदबीबी को खज़ाने और जवाहरात समेत किले में रखकर आदिलशाह और कुतुबशाह की मदद लाने के लिये बाहर निकल गया।

मुगलों के बुलाने की बात चाँदबीबी के मन में भी नहीं भाई थी क्योंकि वह अपने घर के झगड़ों में मुग़ल जैसे जबरदस्त दुशमनों का दख़ल हो जाना आगे के वास्ते ठीक नहीं समझती थी और इसी लिये मियाँ मंझू से और भी नाराज हो गई थी। अब जो उसने मौका पाया तो मुग़लों से लड़ने को कमर कसकर पहले तो अपने भाई मुरतिज़ा निज़ामशाह के धाभाई मुहम्मदखाँ को बहादुरशाह का हुक्म दिलाकर अनसारखाँ को मरवा डाला जिसे मियाँ मंझू किला सौंप गया था और फिर शहर और किले में अपने भतीजे

बहादुरशाह के नाम की दुहाई फेरकर सब बातों का बंदोबस्त कर लिया।

२३ रबीउलसानी सन् १००४, पौस बदी ११ संवत् १६५२, को मुग़लों का लशकर उत्तर की तरफ से दिखाई दिया और ईदगाह के पास ठहरकर किले की तरफ देखने लगा। कुछ दिलचले लोग काले चबूतरे तक भी बढ़ आए। चाँदबीबी ने उन्हें देखकर क़िलेवालों को तोपें मारने का हुक्म दिया। गोले पड़तेही वे लोग चबूतरे के पास ठहर न सके, भाग गए।

दूसरे दिन शाहज़ादे मुराद ने शहर में अमल करके क़िले से मोरचे लगाए। चौथे दिन शहबाज़ख़ाँ कम्बो ने शहर लूट लिया और राफ़ज़ियों को मार डाला क्योंकि वह बड़ा कट्टर सुन्नी मुसलमान था। बाक़ी लोग डरकर रात को अहमदनगर से भाग गए।

उस वक्त निज़ामशाही सरदारों के तीन धड़े थे। मियाँ मंझू तो अहमदशाह को बादशाह समझकर बीजापुर की तरफ गया हुआ था, इख़लासख़ां ने दौलताबाद के आस पास रहकर मोतीशाह नाम एक गुमनाम लड़के को निज़ामशाह बना रखा था और अभंगख़ाँ हबशी ने जो आदिलशाह की सरहद में जा रहा था पहले बुरहान निज़ामशाह के बेटे शाह अली को जो ७० बरस का बूढ़ा था बीजापुर से बुलाकर उसके सिर पर छत्र रख दिया था।

मुगलों का आना सुनकर पहले तो इख़लासख़ां अहमदनगर की तरफ़ आया परंतु मुगलों के सेनापति ख़ानख़ानाँ के नौकर दौलतख़ाँ ने उसको मार भगाया और पीछा करके पाट्टन को लूटा जो निज़ाम राज्य का एक मालदार शहर था।

रही चाँदबीबी सो अहमदनगर के क़िले में थी और मियाँ मंझू से नाराज़ थी क्योंकि उसने बहादुरशाह को क़ैद करके मुगलों को बुलाया और राज गँवाने का प्रपंच रचा था। इसलिये चाँदबीबी ने परवाना लिखकर अभंगख़ाँ को बुलाया। वह छै कोस पर पहुँचकर क़िले में जाने का रास्ता ढूंढ़ने लगा और अपने एक जासूस के पता

लगाने से पूर्व की तरफ एक जगह मुग़लों के घेरे से ख़ाली मालूम करके उधर से शाह अली समेत क़िले में जाना चाहता था कि शाहज़ादे मुराद ने, जो मोरचे देखता फिरता था, उस जगह कोई मोरचा न देखकर ख़ानख़ाना को हुक्म दिया और वह ख़ुद वहाँ जा पड़ा। जब अभंगख़ाँ आया तो उससे लड़ने लगा परंतु अभंगख़ाँ तो लड़ता भिड़ता क़िले की तरफ बढ़ता चला गया और क़िले में जा पहुँचता मगर शाह अली के दिल छोड़ देने और क़िले में जाने की हिम्मत न करके लौट पड़ने से उसे भी लौटना पड़ा। दौलतख़ाँ ने उसका भी पीछा किया और ९०० दखनियों को मार डाला।

जब चाँदबीबी का यह उपाय भी ख़ाली गया तब उसने आदिलशाह को लगातार चिट्ठियाँ लिख लिखकर मदद मँगाई। आदिलख़ाँ ने सुहेलख़ाँ को २५ हज़ार सवारों से भेजा। मियाँ मंझू और इख़लासख़ाँ वगैरह निज़ामशाही अमीर भी उससे जा मिले और ५।६ हज़ार सवार मुहम्मद कुतुबशाह के भेजे हुए भी गोलकुंड से आगए।

शाहज़ादे मुराद ने दखनियों के इस बड़े जमघट की खबर शाह दुर्ग में जहाँ वह रहता था सुन कर उनके आने से पहलेही सादिक मुहम्मदख़ाँ वगैरह अमीरों की सलाह से जो ख़ानख़ाना के ख़िलाफ़ थे किला फतह कर लेने के लिये सुरंगें लगाने का हुक्म दिया। उन्होंने पाँच सुरंगें अहमदनगर के किले तक पहुँचा दीं और पाँच बुरजों को भीतर से खोखला कर दिया।

जिस दिन उन सुरंगों में आग लगाई जाती उससे अगली रात को ख़्वाज़ा मुहम्मद नाम शीराज़ के रहनेवाले एक मुसलमान ने किलेवालों पर दया करके रात के अँधेरे में शाहज़ादे के लशकर से किले में पहुँचकर चाँदबीबी को उस खतरे की ख़बर कर दी। तब तो चाँदबीबी ने बड़ी सावधानी से हुक्म दे दिया कि सब छोटे बड़े किले वाले अभी इस भले आदमी की बताई हुई जगह को खोदकर

सुरंगों का पता लगावें और उनमें से बारूद निकाल लें। इस हुक्म के सुनतेही सब लोग दौड़ पड़े और रातों रात सुरंगों का पता लगाकर खोदने लगे और दूसरे दिन तीसरे पहर तक दो सुरंगों की बारूद निकाल ले गए। बाकी सुरंगों का पता लगा रहे थे कि शाहज़ादे ने ख़ानख़ाना को ख़बर किए बिनाही फ़ौज की तैयारी का हुक्म कर कहा कि जब सुरंगें उड़ें तो किले पर धावा कर दें।

जब अकबरी लशकर किले के पास पहुँचा तो किले वाले तीसरी सुरंग के खोदने और बारूद निकालने में लगे हुए थे जो सब से बड़ी सुरंग थी। मुगलों ने उसीमें आग लगाई, वह उड़ी और उसके उड़तेही किले की ५० गज दीवार भी उड़ गई। उसके पत्थर दूर दूर जाकर पड़े और वे लोग जो सुरंग खोद रहे थे मिट्टी पत्थर और आग के नीचे दबकर मर गए। बाकी सिपाही सरदार अर्थात् शाहअली के बेटे मुरतिज़ाखाँ, अभंगखाँ, शमशेरखाँ, मुहम्मदखाँ और सब छोटे लोग जो दूर खड़े थे यह प्रलय की सी घटना देखकर भाग निकले। टूटे हुए कोट की क्या, किले की भी रखवाली नहीं कर सके। यह ऐसा कठिन काल और विकराल समय था कि बड़े बड़े योधाओं के छक्के छूट गए परंतु चाँदबीबी औरत की ज़ात और सुकुमार शाहज़ादी होकर भी जरा भर न घबराई और न डरी। तुरंत नंगी तलवार लेकर परदे से निकल आई और जो थोड़े से आदमी ड्योढ़ी पर हाजिर थे उन्हींको साथ लेकर घोड़े पर सवार हुई और सुरंग की तरफ चली। उसको देखकर मुरतिज़ाखाँ और अभंगखाँ वगैरह भी शर्माशर्मी कोनों कुचालों से जहाँ जहाँ डर के मारे छुपे हुए थे निकलकर उसके साथ होगए। शाहज़ादे का लशकर तो दूसरी सुरंगों के उड़ने का रास्ता देखता रहा और चाँदबीबी उड़ी हुई दीवार की दराड़ पर पहुँच कर तोपें लगाने लगी।

शाहज़ादा और उसके अमीर जब दूसरी सुरंगों के उड़ने से निरास होगए तब उन्होंने उसी दरार में होकर अंदर घुसने के लिये धावा किया। किले वालों ने उनपर ऐसी आग बरसाई कि जिससे

बढ़कर बरसना असंभव थी । चाँदबीबी उनको उभार उभारकर दरार और किले पर से तोपें मारने, बान और बंदूकें चलाने का हुक्म देती थी और उनके निशानें उड़ाने की तारीफें कर करके उनका दिल बाँसों बढ़ाती थी, और वे भी अपनी नमक-हलाली का मुजरा अपनी मालिकनी की आँखों के आगे होता हुआ देखकर खूब बढ़बढ़कर तोपों और बंदूकों की मार मुगलों पर मारते थे । उस दिन की सी आग शायद ही कभी कहीं बरसी होगी कि पल पल भर में ३ । ३ हजार गोले गोलियां औ बानों की मार मुगलों के लशकर पर पड़ती थी । उसने भी तीसरे पहर से शामतक लड़ने मरने और किले में घुसने के लिये आगे बढ़ने में अपनी तरफ से कुछ कसर नहीं रक्खी थी । लड़ाई का जोश दोनों तरफ ही बढ़ा हुआ था और दोनों तरफ के सिपाही अपने अपने मालिकों और अफसरों के आगे अपने अपने करतब दिखा रहे थे । उधर तो एक जवान शाहज़ादा मुगलों के लशकर की कमान कर रहा था और इधर एक अधेड़ शाहजादी दक्खनियों को लड़ा रही थी । यह औरत मरद का मुकाबला बहुत अद्भुत था और ताड़ने वाले बड़ी गहरी नज़र से ताड़ रहे थे कि देखें खेत किसके हाथ रहता है । देखने में तो मुगल किलेवालों से १० गुने थे । इधर जैसी लगन चाँदबीबी को अपना किला बचाने की थी वैसी ही उधर भी किला लेने की थी लेकिन इतनी कमी थी कि चाँदबीबी के समान जान पर खेलकर कमान करनेवाला कोई न था । निदान जो उसका फल हुआ वह किसीके ध्यान गुमान में भी न था अर्थात् मुगलों का वह दल बादल जैसा लशकर उस "शेरज़न" अर्थात् नाहरी जैसी नारी के आगे से पीठ फेरकर भाग निकला और अपने बहुत से सिपाहियों की लाशें रण में छोड़ गया । तो भी अपनी छावनी में पहुँच उसको इनसाफ से सच कहना और एक औरत के मुकाबले में अपनी हार माननी पड़ी । वहाँ सब छोटे बड़ों ने यही कहा कि जो वीरता धीरता और गंभीरता की अंतिम सीमा है वहाँ तक

पहुँचकर आज जो काम उस वीर बाला ने किया है सच तो यह है वह उसीका काम था। उस दिन से चाँदबीबी का नाम चाँद सुलताना हो गया परंतु विशेष करके लोग उसे चाँद सुलतान कहते थे।

मुगलों के लौट जाने और रात पड़ जाने पर भी जब तक कि सिलावटों और बेलदारों ने उस दराड़ में २।३ गज ऊँची मज़बूत दीवार न उठा ली चाँदबीबी वैसे ही घोड़े पर सवार हथियार बाँधे खड़ी रही। जब वहाँ काम निबट गया तब महल में गई और वहाँ उसने कमर खोली।

मुगल किले से तो हट गये थे परंतु अपनी छावनी से न हटे थे और उनसे लड़ने के लिये ताजा फौज की जरूरत भी थी। इस लिये बीबी चाँद सुलताना ने कमर खोलतेही सुहेलखाँ वगैरह दखन के बादशाहों के अमीरों को जलदी से आने को ताकीदी खत लिखे जिनमें किले की खराबी और रसद की कमी का भी हाल था। ये खत मुगलों के लशकर में पकड़े गये। और उनके अफसरों खानखाना और सादिक मुहम्मदखाँ वगैरह ने भी इन खतों के साथ अपने खत भी सुहेल खाँ वगैरह के नाम लिख भेजे कि जलदी आओ तो यह लड़ाई मिट जाय।

सुहेलखाँ इन खतों के पहुँचते ही पहाड़ों के रास्ते से अहमद-नगर को चल दिया। उस समय मुगलों के लशकर में अनाज का काल था और घोड़े थक गए थे। इसलिये शाहज़ादे ने उसके आने की खबर सुनकर लड़ाई बंद कर दी, और चाँद सुलताना से इस शर्त पर सुलह चाही कि बराड तो हिंदुस्तान के बादशाह को नज़र करदो और बाकी मुलक हुसेन निज़ामशाह के समय के अनुसार अपने पास रक्खो।

चाँद सुलताना ने पहले तो मुगलों के लशकर में खराबी देखकर बेपरवाई दिखाई परंतु फिर अपने को मुगलों से घिरा हुआ देखकर, जिससे वह बहुत तंग हो गई थी, उसी शर्त पर सुलह कर ली। तब शाहजादा तो दौलताबाद की तरफ कूच करके बराड को चला गया। सुहेलखाँ और मुहम्मद कुली सुलतान जो बीजापुर और गोल-

कुंडे से मदद के वास्ते भेजे गए थे अहमदनगर आ गए। इनके साथ मियाँ मंझू भी अहमदशाह को लिए हुए था। उसने अहमदशाह को किले में भेजकर कहलाया कि यह बना बनाया बादशाह है इसको किले में रहने देना चाहिए परंतु अभंगखाँ ने अहमदशाह को किले से निकालकर मियाँ मंझू को भी अंदर न आने दिया और इब्राहीम के बेटे बहादुरशाह को जूँद के किले से बुलाकर उसके नाम की दुहाई फेरी। मियाँ मंझू इस पर उससे लड़ना चाहता था परंतु आदिलखाँ ने उसको अपने पास बुलाकर अहमदशाह के बाबत तहकीकात की तो मालूम हुआ कि यह निजामशाह के घराने से नहीं है इसलिये उसको अपने पास रखकर मियाँ मंझू को भी जागीर दे दी और यह बखेड़ा यों मिटा दिया। अहमदशाह की बादशाही आठ महीने अहमदनगर के बाहर रही थी।

अब जो चाँद सुलतान को घर और बाहर के दुशमनों के हट जाने से कुछ साँस आया और वह अपने मनचाहे और प्यारे पाले बहादुरशाह को भी बहुत से फेरफार और ऐंच पेंच के बाद उसके बपौती के तखत पर बैठा पाई तो उसे उमेद थी कि मेरी बाकी उमर सुख चैन से बीतेगी परंतु वह सुख तो अपने भाग में लिखाकर लाई ही न थी। उसके बदले बहादुरी, विपत्ति, लड़ाई भिड़ाई और अंत में अहमदनगर की अज़ादी के वास्ते मरखप जाना लिखा लाई थी। इस लिये थोड़े दिनों में ही फिर वही चिह्न दिखाई देने लगे। विधाता ने उसके ललाट में यह भी लिख दिया था कि वह जिसके साथ भलाई करे वही उसका वैरी बन जावे और बुरा चीतने लगे जैसा कि पहले भी लिख आए हैं और आगे भी लिखना पड़ता है।

चाँद सुलतान ने बहादुर निजामशाह को तखत पर बैठाकर मुहम्मदखाँ धाभाई को पेशवा[1] बनाया था। अहमदनगर की बाद-

(१) सब अमीरों के आगे चलनेवाला अर्थात् मुख्य प्रधान। इसी नियम से सितारे के छत्रपति महाराज शाहूजी ने भी अपने महामंत्री बालाजी विश्वनाथ को पेशवा की पदवी दी थी जिसके वंश में पूना के पेशवा बाजीराव वगैरह हुए हैं।

शाही में सब से बड़ा ओहदा पेशवा का होता था। पेशवा फारसी शब्द है इसका अर्थ आगे चलनेवाले का है। हिंदी में इसका ठीक उल्था पुरोहित, अग्रणी, और आशय प्रधान मंत्री या सांधिविग्रहिक अमात्य हो सकता है। दक्खन की मुसलमानी बादशाहतों के बिगड़ जाने पर जब मरहठों का राज खड़ा हुआ तो पेशवा का ओहदा उसमें भी जगह पाकर अपना वही चमत्कार दिखा गया जो अहमद-नगर वगैरह में दिखाता रहा था और जिसका परिणाम यह हुआ था कि सितारा पूना के आगे अस्त हो गया।

मुहम्मदखाँ भी दौलत और हकूमत पाकर वही चाल चला जो उसके पहले के पेशवा चले थे अर्थात् अपने को मज़बूत करने के लिये उसने अपने आदमियों को सब छोटे बड़े कामों पर भर दिया और उनके अधिकार बढ़ाकर अपना पाँव अपनी समझ में ऐसा जमा लिया कि फिर कोई हिला न सके। ऐसे ही चाँद सुलतान के अधिकार घटाने में भी कमी नहीं रक्खी। अभंगखाँ और शमशेरखाँ को भी युक्ति से पकड़कर बेड़ियाँ पहिना दीं। यह देखकर बाकी अमीर डर के मारे इधर उधर भाग गए। तब तो चाँद सुलतान ने भी घबराकर इब्राहीम आदिलखाँ को लिखा कि जब दुशमन घात लगाए बैठा है और घर के नौकरों की यह करतूत है तो आप जो इनको दंड न देंगे तो यह रहा सहा मुल्क भी अकबर बादशाह के हाथ में चला जावेगा।

आदिलखाँ ने अपने सर-लशकर (सेनापति) सुहेलखाँ को हुक्म दिया कि अहमद नगर में जाकर चाँद सुलतान की जैसी मरजी हो वैसा करो।

सुहेलखाँ सन् १००५ (संवत् १६५३) में अहमदनगर आया। मुहम्मदखाँ किले में घिर तो गया परंतु चाँद सुलतान के अधीन न हुआ तब सुहेलखाँ ने चाँद सुलतान के लिखने से किले को घेर लिया और चार महीने तक वह उसे घेरे रहा। मुहम्मदखाँ ने खानखाना को अरज़ी भेजकर[1] मदद माँगी। किलेवालों ने यह खबर पाकर उसे पकड़ा और चाँद सुलतान को सौंप दिया। चाँद सुलतान ने अभंगखाँ हबशी को जो

शाही गुलामों में से था भरोसा करके पेशवा बनाया और सुहेलखाँ को खिलअत देकर बड़े सत्कार से बिदा किया। वह अभी रास्ते में ही था कि अकबरी अमीरों ने मुहम्मदखाँ के लिखने से अपना वचन तोड़ कर पाटड़ी में कबज़ा कर लिया जो बराड़ में एक अच्छा कसबा निज़ामशाही राज्य का था। चाँद सुलतान और अभंगखाँ ने मुगलों से नाराज होकर फिर आदिलशाह को बड़ी लाचारी और विनय भाव से प्रार्थना-पत्र भेजे। आदिलशाह ने सुहेलखाँ को मुगलों से लड़ने का हुक्म लिख दिया। उधर कुतुबुलमुल्क ने भी तैलिंग से अपना लशकर भेजा। इधर अहमदनगर से ६० हजार सवार चाँद सुलतान ने बाहर निकाले।

१८ जमादिउस्सानी सन् १००५ को गंगा [गोदावरी] के किनारे पर दखनियों और मुगलों का घमासान संग्राम हुआ जिसमें मुग़ल हारे। उनके मददगारों में से राजा अलीखाँ[1] और राजा जगन्नाथ कछवाहा वग़ैरह मारे गए बाकी लशकर भाग गया। परंतु खानखाना रात भर रण में जमा खड़ा रहा। उधर सुहेलखाँ भी अपनी जगह से न हटा जब कि उसका लशकर लूट में लगा हुआ था। दूसरे दिन फिर लड़ाई हुई और अकेले खानखाना ने तीनों दखनी बादशाहों के लशकरों को हरा दिया और एक ऐसी शानदार फतह पाई जिससे मुगलों का राज्य दक्खन में जम गया।

हार के पीछे सुहेलखाँ तो बालाबाला बीजापुर को चल दिया, निज़ामशाही और कुतुबशाही अमीर लुटे पिटे अहमदनगर में आए। शाहज़ादे मुराद और सादिक़ मोहम्मदखाँ ने तो लगे हाथों अहमदनगर को भी घेरकर फतह कर लेना चाहा परंतु खानखाना ने इस मामले को अगले साल पर रखने को कहा। इस पर शाहजादे और सादिक मुहम्मदखाँ ने खानखाना को दरपरदः दखनियों से मिला हुआ समझकर उसकी इतनी शिकायतें अकबर बादशाह को लिखीं कि उन्होंने खानखाना की जगह शेखअबुल फ़ज़्ल को दक्खन की फौजों का सिपहसालार बनाकर भेजा और

(१) यह बुरहानपुर का शाह था।

ख़ानख़ाना सन् १००५ संवत् १६१३ में बादशाह के पास चला गया ।

अभंगख़ाँ को मुगल सेनापतियों की खैंचतान और उलटपलट से जो कुछ फ़ुरसत मिली तो उसको वही आपाधापी सूझी जो दूसरे पेशवाओं से उसके हिस्से में आई थी अर्थात् अब उसने यह इरादा किया कि बहादुर निज़ामशाह को अपने काबू में करके चाँद सुलतान को किले में कैद करदें और आप खुदमुख़तारी से राज का सारा काम करें । चाँद सुलतान ने यह ख़बर पाकर बहादुरशाह का पहरा दूना कर दिया और अभंगखाँ का ड्योढ़ी पर आना बंद करके कहा कि किले के बाहर कचहरी किया करे । उसने कई दिन तो हुक्म की तामील की परंतु फिर बाग़ी होकर किले को घेर लिया और लड़ाई शुरू कर दी । चाँद सुलतान ने भी अंदर से मोरचेबंदी कर ली । आदिलखाँ ने इस लड़ाई की खबर सुनकर दोनों में सुलह करा देने के लिये बहुत कोशिश की परंतु सफलता न हुई । अभंगखाँ का जोर दिन दिन बढ़ता गया और उसने खानखाना से मैदान खाली पाकर बीर का किला मुगलों से छुड़ा लेने को फौज भेजी । वहाँ के किलेदार शेर मुहम्मद ने बाहर निकल कर शेरमरदी से मुकाबला किया परंतु शिकस्त खाकर दखनियों का जोर बढ़ जाने और शेख अबुलफजल के मदद न भेजने की शिकायत अकबर बादशाह को लिखी । बादशाह पहले से जानते थे कि दखिनी बग़ैर ख़ानख़ाना के नहीं दबेंगे इसलिये वे ख़ानख़ाना को फिर दक्खन का सिपहसालार करके भेजने ही वाले थे कि इतने में सुलतान मुराद जियादा शराब पीने से शाहपुर में मर गया जो उसका बसाया हुआ एक नया शहर बुरहानपुर के पास था ।

अकबर बादशाह ने मुराद की सुनावनी सुनकर उसकी जगह उसके भाई सुलतान दानियाल को खानखाना के साथ भेजा और उसके पीछे उसने आप भी शेख़ अबुलफ़ज़ल के लिखने से दखन को कूच किया और सन १००८ संवत् १६५६ में बुरहानपुर पहुँच कर

जो चाँद सुलतान और अभंगखाँ में झगड़ा चलता हुआ सुना तो शाहजादे दानियाल और खानखाना को अहमदनगर भेजा। अभंगखाँ जिसके पास १५ हजार सवार थे अहमदनगर का घेरा छोड़कर मुगलों का रास्ता रोकने के लिये घाट चीतोड़ का मुँह बंद करने को गया परंतु मुगलों ने दूसरे घाटे से उतरकर अहमदनगर का रास्ता लिया। अभंगखाँ अपना डेरा डंडा जलाकर उनसे लड़ा और भागकर अहमदनगर में चाँद सुलतान और बहादुरशाह से मिले बिनाही जुनेर की तरफ चला गया। फिर तो मुगल बिना रोक टोक अहमदनगर के किले तक जा पहुँचे और मोरचे लगाकर सुरंगें खोदने लगे। तब चाँद सुलतान ने चीतेखाँ ख्वाजासरा से कहा कि अभंगखाँ और दूसरे सरदारों की नमकहरामी से यहाँ तक नौबत पहुँची है कि अकबर बादशाह आप दखन में चढ़ आए हैं और अब यह किला कुछ दिन में उनके हाथ फतह हो जावेगा। चीतेखाँ ने कहा जो होना था सो हो गया पर अब क्या किया जावे आप जैसा मुनासिब समझकर हुक्म दें वैसा हम करें।

चाँद सुलतान जानती थी कि अब किले में न तो पहले जैसा सामान है न लशकर न गोला बारूद है इसलिये जो बात उसके दिल में जँची वह आगापीछा सोचे बिना बेधड़क कह दी जिसका नतीजा वह नहीं जानती थी कि क्या होगा।

वह बहादुर और मरदानी जरूर थी पर कुछ भोली भी थी जैसा कि बहादुर लोग हुआ करते हैं और इसीसे वह अपने नौकरों से बार बार धोखा खाकर भी कुछ पकी नहीं हुई थी और फिर उनका भरोसा कर लेती थी। आखिर तो औरत की जात नर्म तबीअत की थी। इसलिये उसने चीतेखाँ से कहा कि अब तो सलाह यही है कि किला सुलतान दानियाल को सौंप दें और अपनी शर्म लाज और इज्जत आबरू के बचाव का वचन लेकर बहादुरशाह को जुनेर के किले में ले चलें और देखें खुदा क्या करता है।

यह सुनते ही उस कमबख्त ने किलेवालों को बुलाया और पुकारकर कहा कि चाँद सुलतान तो अकबर से मिल गई और उनको किला सौंपा चाहती है।

किला सौंपने का नाम सुनकर उन लोगों को ऐसा जोश आया कि आपे से बाहर होगए और कुछ कहे सुने बिना ही महल में घुसगए और उस बड़ी बेगम को बुरी तरह से काट कुचलकर चले आए क्योंकि वे मूर्ख यह समझे थे कि चाँद सुलतान के मार डालने से किले को बचा लेंगे परंतु किला भी न बचा और उसके बेगुनाह खून के बदले से वे भी न बच सके क्योंकि थोड़े दिन पीछे ही अकबरी अमीरों ने सुरंगों में आग लगाकर कई जगह से कोट उड़ा दिया और किले में घुसकर लड़कों और जवान औरतों को पकड़ लिया और बाकी मर्द औरत अमीर फकीर और चीतेखाँ वगैरह सब किलेवालों को मारडाला तथा बहादुरशाह को पकड़ लिया।

चाँद सुलतान मारे जाने में भी भाग्यवान ही थी और उसका पहले से मारा जाना अच्छा ही हुआ और इसमें भी परमात्मा की हिकमत ही थी कि उसने यह बुरा दिन उसको नहीं दिखाया और वह मुगलों से अपनी इज्जत बचा ले गई जो उससे बहुत जले भुने हुए थे और जिन्होंने किसीपर कुछ दया मया न की तो इसपर कब करने-वाले थे।

सुलतान दानियाल किला फतह होने के पीछे निजामशाहियों के मुल्क माल खजाने और जवाहिरात को अपने कब्जे में करके बहादुरशाह को बुरहानपुर में लेगया जहाँ उसके बाप अकबर बादशाह ठहरे हुए थे। उन्होंने बराड़ और मरहठ देश दानियाल को देकर वापस कूच किया और बहादुर निज़ामशाह को गवालियर के किले में भेजकर कैद कर दिया।

यहाँ आकर चाँदबीबी का जीवनचरित्र समाप्त हो जाता है। यह ऐतिहासिक है और इतिहासों के आधार पर ही लिखा गया

है । इसमें नावल और नाटक की चाट नहीं दीगई है और इसीलिये शायद उन लोगों को रूखा और फीका लगे जो इतिहास में भी हँसी दिल्लगी और रास विलास की रसीली और रँगीली बातें ही चाहा करते हैं ।

दूसरी बात यह है कि यह कुछ बढ़ भी गया है । नाम को तो चाँदबीबी का जीवनचरित्र है पर उसके सिवाय इधर उधर के भी बहुत से वृत्तांत प्रसंग में आगए हैं क्योंकि वह समय ही ऐसी अशांति और अराजकता का था जिसमें हर एक आदमी का जीवन बहुत से राजनैतिक कलहों के उतार चढ़ाव और सुख दुख का मूर्तिमान इतिहास होता था ।

चाँदबीबी को जब तक उसकी हवा नहीं लगी थी तब तक नाम के सिवाय कोई उसका कुछ हाल नहीं जानता था और न उसके घर के ही किसी इतिहासवेत्ता ने लिखा है कि वह कब जन्मी, जन्म पीछे उसका लालन पालन कैसे हुआ, क्या शिक्षा दी गई और विवाह के पीछे उसके सुहाग भाग का क्या हाल रहा । फरिश्ता जो बड़ा इतिहासवेत्ता था और बीजापुर में नौकर होने से पहले अहमदनगर में नौकर था उसने भी ये बातें नहीं लिखी हैं परंतु जब बीजापुर और अहमदनगर के राज काज में चाँदबीबी की पंचायत हुई तब ही से उसका नाम तवारीख में बार बार आने लगा और उसीके प्रसंग से हमको भी चाँदबीबी की जीवनयात्रा के आसपास की ये थोड़ी थोड़ी सब घटनाएँ लिखनी पड़ीं जो उससे या उसके कामों से संबंध रखती थीं और यही कारण इस निबंध के इतने बढ़ जाने का है ।

हमने सुना था कि चाँदसुलतान का चित्र पूना के चित्रशाला प्रेस से छपा है और चित्रमय जगत् के संपादकजी ने कृपा करके दो प्रतियाँ भी उसकी भेज दीं परंतु इस निबंध के योग्य न देखकर उसको इसके साथ देना उचित न समझा क्योंकि उस चित्र में चाँदबीबी को ऐसा दिखाया गया है कि मानो कोई मरहठन मरहठी साड़ी पहने

बैठी है, एक हाथ में सुराही और दूसरे हाथ में प्याला, मुँह के पास तक लगाया हुआ है। चाँदबीबी इस बानक से शायद अपनी मजलिस में बैठती हो पर हमारे निबंध के लिये तो उसकी तसबीर मरदाने भेस और सिपाहियाना ठाठ में होनी चाहिए क्योंकि इसीसे उसका नाम इतिहास के संसार में हुआ था।

तीसरे कहने को तो यह कथा चाँदबीबी की है परंतु इसमें दक्खन की बादशाहतों के बिगड़ने के दिन और मुगलों के बनने के लक्षण कैसे साफ दिखाई देते हैं। जब किसीका बुरा भला समय आता है तब उसकी गति और मति भी वैसी ही हो जाती है। अहमदनगर और बीजापुर उस समय के दक्षिणी बादशाहों में बड़े राज्य थे पर अब जो बुरे दिन आए तो आपस में ही लड़ने और उनके घरू नौकर ही दुशमन बनकर दुख देने लगे। अली आदिल शाह के मरे पीछे ही चाँदबीबी ने बीजापुर और अहमदनगर में क्या क्या संकट लगातार भुगते और कोई बरस चैन से नहीं गुजरा। उधर अकबर बादशाह की बढ़ती दौलत के दिन थे तो उन्हें कोई न कोई नई फतह मिलती थी और राज भी बढ़ता जाता था। तीन पीढ़ी तक यही हाल रहा। चौथी पीढ़ी में औरंगजेब हुआ। उसने बीजापुर और गोलकुंडे को फतह कर के सारा दक्खन अपनी अमलदारी में मिला लिया पर दक्खन से ही उसके राज की खराबी हुई और मरहठों ने जो अहमदनगर और बीजपुर के ही नौकर थे मुगलों के बहुत बड़े राज को जो दक्खन में सेतबंध रामेश्वर से उत्तर में बलख बुखारा की सरहद तक फैला हुआ था औरंगजेब के मरते ही, थोड़े बरसों में मटियामेट कर दिया। दिल्ली के बादशाहों ने अलाउद्दीन खिलजी से औरंगजेब तक बढ़ते बढ़ते सौ सवा सौ बरस में सारा दक्खन जीत लिया था, परंतु दक्खन वालों ने जो ज़ोर पकड़ा तो १०० बरस के अंदर ही तमाम हिंदुस्तान को जीतकर दिल्ली के मुगल बादशाह शाहआलम को अपना पंशन-ख्वार बना लिया था। देखो आज दक्खनी हिंदुओं की कई बड़ी बड़ी रियासतें

हिंदुस्तान में हैं, दिल्ली के बादशाहों की औलाद के पास चप्पा भर भी ज़मीन नहीं है पर उनके बनाए हुए कई हिंदू मुसलमानों के राज्य अब तक बने हुए हैं। वे चाहे उनके अहसान भूल गये हों या भूल जाँय परंतु तवारीख तो कभी नहीं भूलेगी। जब तक तवारीख नहीं भूलेगी तब तक दुनिया में उनकी कीर्ति और नामवरी बनी रहेगी। यह भी हिंदू धर्म का एक सिद्धांत है और इसी लिये हिंदू शास्त्रों में पृथ्वीदान की बड़ी महिमा है। हम चाँदबीबी का पूरा हाल मालूम न होने से उसके दान पुण्य के विषय में कुछ नहीं कह सकते क्योंकि उससे ५०० कोस दूर उत्तर में बैठे हैं तो भी अहमदनगर के साथ उसके नाम को भी सुनते हैं जो चाँदबीबी का अहमदनगर कहलाता है जैसा कि हैदराबाद चंदूलाल का भागनगर। वीरता और दान दो ऐसे गुण हैं जो वीरों और दाताओं का नाम ही अमर नहीं कर देते हैं वरन उनके प्रसंग से दूसरों का नाम भी अमर हो जाता है।

१०—अशोक की धर्मलिपियाँ ।

[लेखक—राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०, और पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए०]

[क १२—बारहवाँ प्रज्ञापन]

[पत्रिका भाग ३ पृष्ठ ७१ के आगे]

कालसी	१	देवाना	पिये	पियदषि(३०)	लाजा	षवा	पाषंडनि
गिरनार	२	देवानं	पिये	पियदसि	राजा	सव	पासंडानि
शहबाज़गढ़ी	३	देवनं	प्रियो	प्रियद्रशि	रय	सव्र	प्रषंडनि
मानसेरा	४	देवन	प्रिये	प्रियद्रशि	रज	सव्र	प्रषडनि
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियः	प्रियदर्शी	राजा	सर्वान्	पाषण्डान्
हिंदी-अनुवाद		देवताओं का	प्रिय	प्रियदर्शी	राजा	सब (को)	धर्मवालों (को)

कालसी	५		पवजितानि		गहथानि	वा	पुजेति
गिरनार	६	च	पवजितानि	च	घरस्तानि	च	पूजयति
शहबाज़गढ़ी	७		प्रव्रजित		ग्रहठनि	च	पुजेति
मानसेरा	८		प्रव्रजितनि		गहथनि	च	पुजेति
संस्कृत-अनुवाद		{च}	प्रव्रजितान	{च}	गृहस्थान	च वा	पूजयति
हिंदी-अनुवाद		{और}	प्रव्रजितों (को)	{और}	गृहस्थों को	और या	पूजता है

कालसी	९	दानेन		विविधेन	च	पुजाये	
गिरनार	१०	दानेन	च	विविधाय	च	पूजाय	पुजयति ने (८८)
शहबाज़गढ़ी	११	दनेन		विविधये	च	पुजये	
मानसेरा	१२	दनेन		विविधये	च	पुजय	
संस्कृत-अनुवाद		दानेन	(च)	विविधया	च	पूजया	(पूजयति तु) ।
हिंदी-अनुवाद		दान से	(और)	विविध (से)	और	पूजा से	(पूजता है निश्चय) ।

कालसी	१३	नो	चु	तथा	दाने	वा	पुजा	वा	देवानं
गिरनार	१४	न	तु	तथा	दानं	व	पूजा	व	देवानं
शहबाज़गढ़ी	१५	नो	चु	तथ	दनं	व	पुज	व(२६)	देवनं
मानसेरा	१६	नो	चु	तथ	दन	व	पुज	व(५२)	देवनं
संस्कृत-अनुवाद		न	तु	तथा	दानं	वा	पूजां	वा	देवानां
हिंदी-अनुवाद		नहीं	तो	वैसे	दान (को)	या	पूजा को	या	देवताओं का

कालसी	१७	पियं	मनति	अथा	कित	शालवढि	शिया	ति
गिरनार	१८	पियो	मंञते	यथा	किति	सारवढी	अस	
शहबाज़गढ़ी-	१६	प्रियो	मञति	यथ	किति	सलवढि	सिय	
मानसेरा	२०	प्रिये	मञति	अथ	किति	सलवढि	सिय	
संस्कृत-अनुवाद		प्रिय:	मन्यते	यथा	किमिति	सारवृद्धि:	स्यान्	{इति}
हिंदी-अनुवाद		प्रिय	मानता है	जैसे	क्या(+ कि)	सारवृद्धि	होवे	{ऐसा}

कालसी	२१	ग्रवपाशंडानं		शालवढि	ना	बहुविधा
गिरनार	२२	सवपासंडानं		सारवढी	तु	बहुविधा(८६)
शहबाज़गढ़ी	२३	सव्रप्रषंडनं		सलवढि	तु	बहुविध
मानसेरा	२४	सव्र प्रषडन	ति	सलव्रुढि	तु	बहुविध
संस्कृत-अनुवाद		सर्वपाषण्डानाम्	इति ।	सारवृद्धिः	तु नाम	बहुविधा।
हिंदी-अनुवाद		सबधर्मवालों की	ऐसा ।	सारवृद्धि	तो	बहुत प्रकार की [है]।

कालसी	२५ तथ	चु	इयं	मुले	अ	वचगुति	किति
गिरनार	२६ तस्ततस	तु	इदं	मूलं	य	वचिगुती	किंति
शहबाज़गढ़ी	२७ तस	तु	इयो	मुल	यं	वचगुति[२७]	किति
मानसेरा	२८ तस	चु	इयं	मुले	अं	वचगुति[२८]	किति
संस्कृत-अनुवाद	तस्याः	तु	इदं	मूलं	यत्	वचोगुप्तिः । वचसि गुप्तिः ।	किमिति
हिंदी-अनुवाद	उसका	तो	यह	मूल [है]	जो	वाणी का (या, में) संयम ।	क्यों यह ?

कालसी	२९	त	अतपाशंडे पुजा		पलपाशंडगलहा	व	नो
गिरनार	३०		आत्पपासंडपूजा	व	परपासंडगरहा	व	नो
शहबाज़गढ़ी	३१		अतप्रषंडपुज	व	परपषंडगरन	व	नो
मानसेरा	३२		अतप्रषडपुज	व	परपषडगरह	व	नो
संस्कृत-अनुवाद		{ तत् } ।	आत्मपाषंड पूजा आत्मपाषण्डपूजा	वा	परपाषण्डगर्हा	वा	न
हिंदी-अनुवाद		{ वह } ।	अपने मत की (या में) पूजा	या	पर धर्म की (और घृणा से) निंदा	या	न

कालसी	३३	शया(३१)	अपकलनशि	लहुका	वा शिया	तशि
गिरनार	३४	भवे	अपकरणम्हि	लहुका	व अस(४०)	तम्हि
शहबाज़गढ़ी	३५	सिय	अप्रकरनसि	लहुक	व सिय	तसि
मानसेरा	३६	सिय	अपकरणसि	लहुक	व सिय	तसि
संस्कृत-अनुवाद		भवेत	अप्रकरणे	लघुका	वा स्यात्।	तस्मिन्
हिंदी-अनुवाद		होवे	विना प्रसंग में (= के)	लघुता (= परधर्म की हलकाई)	वा होवे।	उस (में)

कालसी	३७	तथि	पकलनथि	पुजेतविय		चु	पलपाशडा
गिरनार	३८	तम्हि	प्रकरणे	पूजेतया	तु	एव	परपासंडा
शहबाज़गढ़ी	३९	तसि	प्रकरणे	पुजेतविय	व	चु	परप्रषं(२८)ड
मानसेरा	४०	तसि	पकरणसि	पुजेतविय	व	चु	परप्रषड
संस्कृत-अनुवाद		तस्मिन्	प्रकरणे	पूजयितव्याः	वा / तु / तु	तु / एव	परपाषण्डाः
हिंदी-अनुवाद		उस (में)	प्रकरण(= प्रसंग) में	पूजनीय [हैं]	या / तो / तो	तां / ही	परधर्म

कालसी	४१	तेन	तेन	अकालन	हेवं	कलत	अतपषंडा	बाढं
गिरनार	४२	तेन	तन	प्रकरणेन	एवं	करं	आत्पपासंडं	
शहबाज़गढ़ी	४३	तेन	तेन	अकरेन	एव	करंतं	अतप्रषंडं	
मानसेरा	४४	तेन	तेन(२४)	अकरेन	एवं	करतं	अत्मपषड	बढं
संस्कृत-अनुवाद		तेन	तेन	आकारेण। प्रकरणेन।	एवं	कुर्वन्	आत्मपाषण्डम्	बाढं
हिंदी-अनुवाद		उस(से)	उस(से)	आकार से। प्रकरण से।	ऐसा	करता हुआ	अपने धर्म को	बढ़कर (= निश्चय)

कालसी	४५		वढियति	पलपाशड	पि	वा	उपकलेति
गिरनार	४६	च	वढयति	परपासंडस		च	उपकरोति(४१)
शहबाज़गढ़ी	४७		वढेति	परप्रषंडस	पि	च	उपकरोति
मानसेरा	४८		वढयति	परपषडस	पि	च	उपकरोति
संस्कृत-अनुवाद		च	वर्धयति	परपाषण्डस्य परपाषण्डं	अपि	च वा	उपकरोति।
हिंदी-अनुवाद		और	बढ़ाता है	परधर्म का परधर्म को(=का)	भी	और या	उपकार करता है।

कालसी	४९	तदा अंनथा	कलत		अतपाषड	च	छनति
गिरनार	५०	तदंञथा	करोतो		आत्पपासंड	च	छणति
शहबाज़गढ़ी	५१	तद- अञथ	करत	च	अतप्रषंड		छणति
मानसेरा	५२	तदञथं	करतं		अत्मपषड	च	छणति
संस्कृत-अनुवाद		तदन्यथा तदा अन्यथा	कुर्वन्	च	आत्मपाषण्डं	च	क्षिणोति
हिंदी-अनुवाद		उसके विपरीत तब [उसके] विपरीत	करता हुआ	और	अपने मत को	और	क्षीण करता है

कालसी	५३	पलपशड		पि	वा	अपकलेति	ये	हि	केछ
गिरनार	५४	परपासंडस	च	पि		अपकरोति	यो	हि	कोचि
शहबाज़गढ़ी	५५	परप्रषंडस	च			अपकरोति	यो	हि	कोचि
मानसेरा	५६	परपषडस		पि	च(२२)	अपकरोति	बे	हि	केचि
संस्कृत-अनुवाद		परपाषण्डस्य परपाषण्डम्	च	अपि	च	अपकरोति।	यः	हि	कश्चिद्
हिंदी-अनुवाद		परधर्म का परधर्म का	और	भी	और	अपकार करता है।	जो	ही	कोई

कालसी	५७	अंतपाखड	पुनति (३२)	पलपाषड	वा	गलहति
गिरनार	५८	आत्पपासंडं	पूजयति	परपासंडं	वा	गरहति (१२)
शहबाज़गढ़ी	५९	अतप्रषड	पुजेति	परप्रषड		गरहति
मानसेरा	६०	अत्मपषडं	पुजेति	परपषड	व	गरहति
संस्कृत-अनुवाद		आत्मपाषण्डं	पूजयति	परपाषण्डं	वा	गर्हते
हिंदी-अनुवाद		अपने मत को	पूजता है	दूसरे धर्म को (= की)	वा	निंदा करता है

कालसी	६१	सवे	अतपाषंडभतिया	वा	किति	अतपाषंड
गिरनार	६२	सव	आत्पपासडभतिया		किंति	आत्पपासंडं
शहबाज़गढ़ी	६३	सव्रे	अतप्रषडभतिय	व	किति(३०)	अतप्रषंडं
मानसेरा	६४	सव्रे	अत्मपषडभतिया	व	किति	अत्मपषड
संस्कृत-अनुवाद		सर्वे:	आत्मपापण्डभक्त्या	वा एव	किमिति	आत्मपाषण्डं
हिंदी-अनुवाद		सब	अपने मत की भक्ति से	वा ही	क्यों (+कि)	अपने मत को

कालसी	६५	दिपयेम		षे	च	पुना	तथा	कलंत
गिरनार	६६	दीपयेम	इति	से	च	पुनं	तय	करातो
शहबाज़गढ़ी	६७	दिपयमि	ति	से	च	पुन	तय	करंत
मानसेरा	६८	दिपयम	ति			पुन	तथ	करत (५६)
संस्कृत-अनुवाद		दीपयेम दीपयामि	इति ।	सः	च	पुनः	तथा	कुर्वन्
हिंदी-अनुवाद		प्रकाशित करें प्रकाशित करूँ	ऐसा ।	वह	और	पुनः	वैसा	करता हुआ

कालसी	६९							बाढतले
गिरनार	७०						आत्पपासंडं	बाढतरं
शहबाज़गढ़ी	७१	सो	च	पुन	नय	करतं		बढतरं
मानसेरा	७२							वधंतरं
संस्कृत-अनुवाद		{सः	च	पुनः	तथा	कुर्वन्}	{आत्मपाषण्डं}	वाढतरं
हिंदी-अनुवाद		{वह	और	पुनः	वैसा	करता हुआ}	{अपने मत को}	और भी बढ़कर (= अवश्य)

कालसी	७३	उपहंति	अतपाषंडषि		समवाये	व
गिरनार	७४	उपहनाति		त	समवायो	एव
शहबाज़गढ़ी	७५	उपहंति	अतम्रषडं	सो	सयमो	वो
मानसेरा	७६	उपहनति	अत्मपषड	से	समवये	व
संस्कृत-अनुवाद		उपहंति	आत्मपाषण्डं। आत्मपाषण्डे।	तत्	समवायः	एव
हिंदी-अनुवाद		हानि पहुँचाता है	अपने मत को। अपने मत में।	इसलिए	मेलजोल	ही

कालसी	७७	षाधु	किति	अंनमनषा	धंम	षुनेयु	चा
गिरनार	७८	साधु (६३)	किंति	अंञमंञस	धंम	स्रुणारु	च
शहबाज़गढ़ी	७९	सधु	किति	अञमञस	ध्रमो (३१)	श्रुणेयु	च
मानसेरा	८०	सधु	किति	अणमणस	ध्रम	श्रुणेयु	च
संस्कृत-अनुवाद		साधु।	किमिति ?	अन्योन्यस्य	धर्मं	श्रृणुयुः	च
हिंदी-अनुवाद		उत्तम [है]।	क्यों ? (+कि)।	एक दूसरे के	धर्म को	सुनें	और

कालसी	८१	षुषुषेयु	चा	ति	हेव	हि	देवानं	पियषा	इछा
गिरनार	८२	सुसुंसेर	च		एव	हि	देवानं	पियस	इछा
शहबाज़गढ़ी	८३	शुश्रुषेयु	च	ति	एव	हि	देवनं	प्रियस	इछ
मानसेरा	८४	शुश्रुषेयु	च	ति	एव	हि	देवनं	प्रियस	इछ
संस्कृत-अनुवाद		शुश्रूषेरन	च	इति ।	एवं	हि	देवानां	प्रियस्य	इच्छा ।
हिंदी-अनुवाद		शुश्रूषा करें	और	ऐसा ।	ऐसे	ही	देवताओं के	प्रिय की	इच्छा [है] ।

कालसी	८५	किति(३२)	सवपाषंड	बहुसुता	चा	कयानागा	च
गिरनार	८६	किंति	सवपाषंडा	बहुस्रुता	च असु	कलाणागमा	च
शहबाज़गढ़ी	८७	किति	सव्रप्रषंड	बहुश्रुत	च	कलणागम	च
मानसेरा	८८	किति	सव्रपषंड	बहुश्रुत	चं(२७)	कयणागम	च
संस्कृत-अनुवाद		किमिति ?	सर्वपाषण्डाः	बहुश्रुताः	च	कल्याणागमाः	च
हिंदी-अनुवाद		क्यों ? (+कि) ।	सब धर्म [वाले]	बहुश्रुत	और	कल्याणकारक और आगम(=ज्ञान)वाले	

कालसी	८९	हुवेयु	ति	ए	व	तत	तता	पषंन	तेहि
गिरनार	९०	असु (३४)		ये	च	तत्र	तते	प्रसंना	तेहि
शहबाज़गढ़ी	९१	सियसु		ये	च	तत्र	तत्र (३२)	प्रसन	तेषं
मानसेरा	९२	हवेयु	ति	ए	च	तत्र	तत्र	प्रसन	तेहि
संस्कृत-अनुवाद		भवेयुः स्युः	इति ।	ये	च वा	तत्र	तत्र	प्रसन्नाः	तैः तेषां
हिंदी-अनुवाद		होवें	ऐसा ।	जो	और वा	वहाँ	वहाँ	प्रसन्न [हों] (= स्थिर)	उनसे

कालसी	९३	वतविये	देवाना	पिये	नो	तथा	दानं	वा
गिरनार	९४	वतव्य	देवानं	पियो	नो	तथा	दानं	व
शहबाज़गढ़ी	९५	वतवो	देवनं	प्रियो	न	तथ	दनं	व
मानसेरा	९६	वतविये	देवन	प्रिये	नो	तथ	दनं	व
संस्कृत-अनुवाद		वक्तव्यं	देवानां	प्रिय:	न	तथा	दानं	वा
हिंदी-अनुवाद		कहा जाय	देवताओं का	प्रिय	नहीं	वैसा	दान को	या

कालसी	९७	पुजा	वा	मंनति	अथा	किति	षालवढि
गिरनार	९८	पूजा	व	मंञते	यथा	किंति	सारवढी
शहबाज़गढ़ी	९९	पुज	व	मञति	यथ	किति	सलवढि
मानसेरा	१००	पुजं	व	मणति	अथ	किति	सलवढि
संस्कृत-अनुवाद		पूजां	वा	मन्यते	यथा	किमिति	सारवृद्धिः
हिंदी-अनुवाद		पूजा को	या	मानता है	जैसा	क्या (= यह कि)	सार की बढ़ती

कालसी	१०१	षिया		षवपाषंडति	बहुका	चा	
गिरनार	१०२	अस		सर्वपासंडानं	बहका	च	एताय(६५)
शहबाज़गढ़ी	१०३	सिय	ति	सव्रप्रषडनं	बहुक	च	एतये
मानसेरा	१०४	सिय		सव्रपषडन(२८)	बहुकं	च	एतये
संस्कृत-अनुवाद		स्यात्	{इति}	सर्वपाषण्डानां	बहुका	च।	एतस्मै
हिंदी-अनुवाद		होवे	{ऐसा}	सब धर्मों की	बड़ाई	और।	इस (के लिये)

कालसी	१०५	एतायाठाये	वियापटा	धंममहामाता		इथिधियखमहामाता
गिरनार	१०६	अथा	व्यापता	धंममहामाता	च	इथीभखमहामाता
शहबाज़गढ़ी	१०७	अ . . (३३)	वपट	ध्रममहमत्र		इस्त्रिधियक्षमहमत्र
मानसेरा	१०८	अथ्रये	वपुट	ध्रममहमत्र		इस्त्रिभक्षमहमत्र
संस्कृत-अनुवाद		अर्थाय	व्यापृता:	धर्ममहामात्रा:	{च}	स्त्र्यध्यक्षमहामात्रा:
हिंदी-अनुवाद		अर्थ के लिये	नियत [हैं]	धर्ममहामात्र	{और}	स्त्रियों के अध्यक्ष महामात्र

कालसी	१०९		वचभूमिकया	|	अने	वा	निकाया(३४)	इय
गिरनार	११०	च	वचभूमीका	च	अञे	च	निकाया	अयं
शहबाज़गढ़ी	१११		वचभुमिक		अञे	च	निकये	इम
मानसेरा	११२		व्रचभुमिक		अञे	च	निकय	इय
संस्कृत-अनुवाद		च	व्रजभूमिकाः	(च)	अन्ये	च वा	निकायाः ।	इदं
हिंदी-अनुवाद		और	व्रजभूमिक	(और)	दूसरे	और या	अधिकारी वर्ग ।	यह

कालसी	११३	च	एतिषा	फले	यं	अतपाषंडवढि	चा	होति
गिरनार	११४	च	एतस	फल	य	आत्पपास डवढी	च	होति
शहबाज़गढ़ी	११५	च	एतिस	फलं	यं	अतप्रषडवढि		भोति(३४)
मानसेरा	११६	च	एतिस	फले(३५)	यं	अत्मपषडवढि	च	भोति
संस्कृत-अनुवाद		च	एतस्य	फलं	यत्	आत्मपाषण्डवृद्धिः	च	भवति
हिंदी-अनुवाद		और	इसका	फल [है]	जो	अपने मत की बढ़ती	और	होती है

कालसी	११७	**धमष**	**चा**	**दिपना**
गिरनार	११८	**धंमस**	**च**	**दीपना**(३६)
शहबाज़गढ़ी	११९	**ध्रमस**	**च**	**दिपन** (३५)
मानसेरा	१२०	**ध्रमस**	**च**	**दिपन**
संस्कृत-अनुवाद		धर्मस्य	च	दीपना।
हिंदी-अनुवाद		धर्म को	और	उद्दीपना(= उत्तेजना) [होती है]।

[हिंदी अनुवाद]

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा सब धर्मवालों[1] का, [चाहे वे] त्यागी[2] [हाँ चाहे] गृहस्थ, दान और अनेक प्रकार की पूजा से सत्कार करता है। दान या पूजा को देवताओं का प्रिय उतना नहीं मानता जितना कि क्या[3]? यह कि सब धर्मवालों की सारवृद्धि[4] (=सत्व की बढ़ती) हो। सारवृद्धि कई प्रकार की होती है। इसका मूल वाणी का संयम है, (क्योंकि=) कि जिस में अपने धर्मवालों का [अति] आदर और दूसरे धर्मवालों की निंदा न हो और विना प्रयोजन[5] [उनकी] हलकाई[6] न की जाय [या उनकी ओर ओछापन न दिखाया जाय]। अवसर अवसर पर भिन्न भिन्न रीति से दूसरे धर्मवाले [भी] आदर के योग्य हैं। जो ऐसा करता[7] है [अर्थात् अपने से भिन्न धर्मवालों का आदर करता है]

(१) पाषण्ड—देखो प्रज्ञा० ५ टि० ४ तथा प्रज्ञा० ७।

(२) प्रव्रजित—परिव्राजक, गृहत्यागी।

(३) किमिति (किंति)—वाक्य के बीच में संयोजक सर्वनाम की तरह प्रश्न करके उत्तर देना हिंदी लिखावट में नहीं है किंतु बोलचाल में है। अनुवाद इस तरह से किया गया है कि पुराने मुहाविरे की रक्षा हो। थोड़ा सा ध्यान देने से बोलचाल से इसकी समानता तथा अर्थ की स्पष्टता जान पड़ेगी।

(४) सारवृद्धि—बल, सत्व या तेज की बढ़वारी, थोथी चेलों के द्वारा बढ़ाई नहीं।

(५) अप्रकरण—बेमौके, केवल द्वेष से, आकार—ढंग।

(६) लहुका, आगे चल कर बहुका—लघुता और बहुमान, छुटाई बड़ाई। विना प्रसंग परमत की घटी न की जाय और सब धर्मों की ओर महत्व का भाव हो। बूलर आदि 'बहुका' को 'सारवृद्धि' के साथ न लेकर इसे 'व्यापृताः' का विशेषण 'बहुकाः' मानते हैं, वहाँ 'सब मतों की सारवृद्धि हो' इसपर वाक्य समाप्त हो जाता है और 'बहुत से धर्ममहामात्र आदि नियत हैं' ऐसा अर्थ किया जाता है। सेनार्ट ने लहुका, बहुका को भाववाचक माना है।

(७) करु (गिरनार) ध्यान देने योग्य है। आगे 'करोतो' है; दोनों पुरानी गुजराती आदि से मिलते हैं।

वह अपने धर्म की बहुत [=निश्चय] उन्नति करता है और [साथही] दूसरे धर्मवालों का भी उपकार करता है। जो इस के विपरीत करता है वह अपने धर्म को क्षीण और और परधर्म का अपकार करता है। जो कोई अपने धर्मवालों का आदर और दूसरे धर्मवालों का अनादर करता है वह अपने धर्म का भक्ति से ही करता है क्यों[३] ? कि जिसमें अपने धर्म का प्रकाश हो किंतु वैसा करने से वह अपने धर्म को अत्यंत हानि पहुँचाता है। इस लिये आपस का मेल जोल[८] ही अच्छा है कि [लोग] एक दूसरे के धर्म को सुनें और उसकी शुश्रूषा[९] करें। यही देवताओं का प्रिय चाहता है। क्यों ? कि सब धर्मवाले बहुश्रुत हों और उनका ज्ञान कल्याणमय हो [या, उनका परिणाम अच्छा हो][१०] जो लोग जिस जिस (धर्म) पर दृढ़ (=जमे हुए) हों[११] वे यह कहें कि देवताओं का प्रिय दान और पूजा को वैसा नहीं मानता जैसा क्या[३] ? कि सब धर्मवालों की सारवृद्धि[४] और बड़ाई[५] हो। इसी उद्देश्य से धर्ममहामात्र,[१२] स्त्रियों के अध्यक्ष महामात्र[१३],

(८) **समवाय**=मेल मिलाप, संघीभाव; शहबाजगढ़ी का '**सयमों**' (संयम) ऊपर के 'वचोगुप्ति' से मेल खा जाता है, पर यहाँ **समवाय** ही ठीक है।

(९) **शुश्रूषा**=(१) सुनने की इच्छा और उसीमे (२) सेवा।

(१०) **कल्याणागम**=(१) कल्याण ज्ञान वाले (२) शुभ परिणाम वाले।

(११) **प्रसन्न**—जमे हुए, सद् (सीद्) धातु का वास्तव अर्थ; 'जो जिस जिस मत पर जमे हों' इसीसे 'जो जिस जिसमें प्रसन्न हों' या 'जो जिस जिस अधिकार पर नियत हों'।

(१२) **धर्ममहामात्र**—देखो प्रज्ञा० ५ मूल टि० ३, ४, १०।

(१३) **अध्यक्षमहामात्र**—देखो वही प्रज्ञा० ५ मूल तथा टि० १२। संभव है ये पीछे नियत किए गए हों।

व्रजभूमिक[१४] तथा दूसरी संस्थाएं (अधिकारी)[१५] नियत हैं। इसका फल यह है कि अपने मत की उन्नति और धर्म का प्रकाश होता है।[१६]

---

(१४) व्रजभूमिक—(१) 'व्रच' को 'वर्च' मान कर 'शौच भूमि को शुद्ध करने वाले' अर्थ करना हास्यास्पद है (देखो प्रज्ञा० ६ टि० ६) (२) व्यापार, यात्रा आदि के मार्गों (सड़कों के अधिकारी, संभव है कि अशोक ने इनसे यात्रियों की सम्हाल, उनसे कर उगाहने आदि के साथ सब धर्मों की ओर प्रेमभाव का उपदेश देने का काम भी लिया हो (३) चरागाहों के अध्यक्ष जिनकी सम्हाल में व्रज (गोष्ठान) थे। कौटिल्य ने उनके विषय में बहुत लिखा है (२।३४)। संभव है नगरों के बाहर लोगों के आने जाने के मार्गों के पास रहने के कारण वे भी सर्व-धर्म-समादर-का उपदेश देने के लिये नियत किए गए हों (४) प्रसिद्ध व्रजभूमि मथुराप्रांत के निवासी अधिक यात्राप्रिय या धर्मकथा-प्रचारकुशल या अन्यदेशीय समझ कर (पाटलिपुत्र आदि में) इस काम पर नियत किए गए हों।

(१५) निकाय—संघ, समूह, अधिकारी-परिषद्।

(१६) प्रज्ञापन ७ तथा १२ में प्रियदर्शी के सर्वमतसमादर का उल्लेख है। कौटिल्य (१३।५) में लिखा है कि नया देश जीतने पर राजा को उनके धार्मिक आचारों और रीतियों का अनुसरण उनके मनोरंजन के लिये उन्हींकी तरह करना चाहिए और उनके धर्म का बहुत आदर करना चाहिए। यह बारहवां प्रज्ञापन शहबाजगढ़ी में पृथक् चट्टान पर खुदा हुआ है। क्या इसका यह कारण हो सकता है कि वहां के निवासियों में उस समय भी कट्टरपन की मात्रा अधिक थी कि उनका विशेष ध्यान दिलाने के लिये ऐसा किया गया?

११—एक ऐतिहासिक काव्य ।

[लेखक—पंडित शोभालाल शास्त्री, उदयपुर]

अज्ञान और देशविप्लव के भीषण महाप्रलय के समय जिन अल्प-संख्यक ग्रंथों ने पंडितों की टूटी फूटी झोंपड़ियों में छिपकर अपने प्राण बचाए थे, उनमें से भी कई, सैकड़ों वर्षों का कारावास भोगने के बाद, उन पंडितों के मूर्ख वंशजों द्वारा निर्दयता के साथ पंसारियों के हाथ बेचे गए और कठिन दुर्दशा भोगकर इस संसार से विदा हो गए। तथापि आज भी ऐसे ग्रंथ मिल जाते हैं, जो अंधकार में पड़े हैं और जिन्होंने सैकड़ों वर्षों से संसार का प्रकाश नहीं देखा है।

पंसारियों के सूनागृह (कसाईखाने) से कुछ ग्रंथों के प्राण बचाने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ है। उनमें से एक का विवरण मैं आज उपस्थित करता हूँ।

यह एक छोटा सा काव्य है जिसमें उदयपुर (मेवाड़) के महाराणा श्रीअमरसिंहजी (द्वितीय) के राज्याभिषेक का वर्णन है। इसके १० X ४½ इंच के आकार के कुल तेरह पृष्ठ हैं। छः पत्रों में पाँच तो दोनों तरफ और एक एक तरफ लिखा हुआ है। प्रत्येक पृष्ठ पर किसी पर तेरह और किसी पर पंद्रह पंक्तियाँ हैं। पुस्तक पुराने सफेद रफ़ कागज़ों पर लिखी हुई है। पुस्तक के अंत में—"संवत् १७६२ सावण वदि २ बुधे" लिखा होने से विदित होता है कि प्रायः २१६ वर्ष पहिले यह पुस्तक लिखी गई।

समय।

इसमें तीन स्थानों पर संवत् लिखे हुए हैं।

(१) पहले लिखा है—

"मुन्येकाब्दशतादूर्ध्वमब्दे षट्पंचके परे ।
माघशुक्लवसन्तस्य पञ्चम्यां विधुवासरे ॥
अमरेश नरेशस्याभिषेकैक महोत्सवे ।
व्यासेनायं समासेन वैकुण्ठेन कृत: स्वयम् ॥"

अर्थात् संवत् १७५६ माघ शुक्ला वसंत पंचमी सोमवार को महाराणा श्रीअमरसिंहजी के राज्याभिषेक के उत्सव पर व्यास वैकुंठ ने इसे संक्षेप से निर्माण किया।

(२) कुछ श्लोकों के बाद फिर लिखा है—

"षष्ठिसंख्यागते वर्षे चन्दोनेऽलेखि लाघवात् ।
ऊर्जस्य शुद्धपञ्चम्यामुदयादिपुरे पुरे ॥"

५९ वें वर्ष में[1] (सं० १७५९ में) कार्तिक शुक्ला ५ को उदयपुर में यह पुस्तक संक्षेप से लिखी गई।

(३) पुस्तक के अंत में लिखा है—

"सिद्धिरस्तु शुभं भवतु संवत् १७६२ सावण वदि २ बुधे"

इनमें से प्रथम के लिये तो यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि यह पुस्तक के निर्माण तथा महाराणा अमरसिंहजी (द्वितीय) के राज्याभिषेक का संवत् है।

द्वितीय के विषय में यह प्रश्न हो सकता है कि क्या यह श्लोक ग्रंथकर्ता ही ने बनाकर ग्रंथ के अंत में लिखा है? अथवा नकल करनेवाले लेखक ने नकल करने का संवत् पद्यबद्ध करके लिख दिया है?

प्रथम बात स्वीकार करने में यह दोष आता है कि जब कोई पुस्तक बनाई जाती है तब साथ ही वह लिखी भी जाती है। यह पुस्तक राज्याभिषेक के अवसर पर श्रीमहाराणा जी को भेंट करने

(१) संवत् लिखने में कभी कभी शतक न लिखकर केवल ऊपर ही के अंक लिख दिये जाते हैं। जैसे "माघशुक्ला २ संवत् १९७८ लिखना हो तो "मा० शु० २, ७८" ऐसा लिख देते हैं। छप्पन्ना = सं० १९५६। १६ का गदर = सं० १९१६ का। अँग्रेज़ी में भी ऐसा होता है।

के लिये निर्माण की गई होगी, अतः उस अवसर पर यह अवश्य लिख ली गई थी। ऐसी दशा में एक ही ग्रंथकार बनने का समय तो सं० १७५६ माघशुक्ला ५ सोमवार लिखे और लिखने का समय सं० १७५९ कार्तिक शुक्ला ५ लिखे यह संभव नहीं है।

दूसरी बात इसलिये स्वीकार नहीं की जा सकती कि "षष्ठि संख्यागते" इस श्लोक के बाद एक और श्लोक है जिसमें ग्रंथ का फलादेश लिखा है कि—"जो कोई पुरुष इस ग्रंथ में श्रद्धा रक्खेगा उसे गंगासागर में स्नान करने का फल मिलेगा[1]।" यह तो संभव है कि ग्रंथकर्ता अपने ग्रंथ के अंत में फलादेश लिखे। पर नकल करनेवाला ग्रंथ का फलादेश लिखे यह न तो संभव है न ऐसी रीति ही है।

ऐसी दशा में इसी निश्चय पर आना पड़ता है कि यह पद्य है तो ग्रंथकार का ही लिखा हुआ परंतु प्रथम प्रति का न होकर ग्रंथकार ही ने जो इस ग्रंथ की दूसरी प्रतिलिपि की उसके लिखे जाने का संवत् है। और संवत् लिखने के बाद अपने ग्रंथ के अंत में फलादेश लिखना आवश्यक समझ ग्रंथकार ने ही दूसरी प्रतिलिपि में फलादेश का एक श्लोक अंत में और बढ़ा दिया है।

इस दूसरी प्रतिलिपि से जो तीसरी वर्तमान प्रतिलिपि की गई है तीसरा संवत् उसका है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि तीसरी प्रति भी ग्रंथकर्ता ही की लिखी हुई है अथवा अन्य की। परंतु स्थान स्थान पर प्राचीन पाठ को बदल कर पाठांतर,[2] और

---

(१) ग्रन्थेऽस्मिन् श्रद्दधानस्य यस्य कस्यापि देहिनः।
गंगासागरयोः सम्यक् जायते स्नानजं फलम् ॥
पत्र ७, पृ० १, पं० १२

(२) पत्र २, पृ० १, पं० ८ में—
"आलाहजरतेनाथ मेदपाटेश्वरस्य तु।
सख्यं जातं दैवगत्या प्रजानां सुखकारणम् ॥"

कई जगह अधिक ' श्लोक लिखे रहने से यही प्रतीत होता है कि यह प्रति भी ग्रंथकर्ता ही की लिखी हुई है और उसीने जहाँ उचित और आवश्यक समझा परिवर्तन तथा अभिवृद्धि की है। अन्यथा नकल करनेवालों को न तो दूसरे की बनाई हुई पुस्तक में पाठांतर और अभिवृद्धि करने का अधिकार है, न प्रायः उनमें इतनी योग्यता ही होती है।

इस पद्य के "आलाहजरतेनाथ" प्रथम चरण के स्थान पर हाशिये पर "शाहजानावनीशेन" यह पाठ लिखा है।

पत्र २, पृ० २, पं० ७ में—

"ज्वालामुखैः किमुज्वालामुख्यः शंकेऽरिभीतिदा।
कालदण्डगोलकच्छ्ममुण्डमाला अनः स्थिता॥"

इसके उत्तरार्द्ध को बदल कर हाशिये पर—

"गजगोळामिषोपात्त दण्डमुंड अनः स्थिता।" यह लिखा है।

पत्र ३, पृ० १, पं० ११ में—

"ततो जैसिंहदेवस्य वैमनस्यं किमप्यभूत।
लोकोक्तेर्निर्निमित्तं सज्जले तैलस्य बिन्दुवत्॥"

इसके उत्तरार्द्ध को हाशिये पर—

"कुमारेणात्र निर्णिक्तसलिले तैलबिन्दुवत्" इस तरह लिखा है। इसी प्रकार कई और भी हैं।

(१) जैसे पत्र ३ के पृष्ठ २ में महाराणा जयसिंह के वर्णन में—

यद्दष्टिसुधया स्नातो दरिद्री धनवदोऽभवत्।
यथा गङ्गाजले मग्नः पापीयानपि शाम्भवः॥
प्रजानां पालने दक्षो गजाश्वानां च चालने।
वालने गतभूमीनां रिपूणां चापि ताडने॥

ये दो श्लोक हाशिये पर पीछे से बढ़ा कर लिखे गए हैं।

पत्र ५, पृ० १ में जयसिंह जी के ही वर्णन में—

संयोगे दर्शनं शम्भोरर्बुदे गुरुसिंहयोः।
गुरुजेसिंहयोर्योगे प्रत्यक्षं शिवदर्शनम्॥

यह श्लोक हाशिये पर अधिक लिखा है। और भी कई जगह ऐसा है। यह तो दिग्दर्शन मात्र है।

ग्रंथकार।

इसका बनानेवाला पल्लीवाल जातीय व्यास हरराम का पुत्र वैकुंठ था, जैसा कि ग्रंथ के अंत में लिखा है—

व्यासेन पल्लिवालेषु हररामात्मजेन वै।
वैकुंठेन कृतं काव्यं लोकनाथयशस्करम् ॥

ग्रंथकार ने दो स्थानों पर पीतांबर (ठाकुरजी श्रीपीतांबररायजी) का निर्देश किया है; एक तो राज्याभिषेक के बाद सवारी से लौटने पर महाराणाजी का अपने भाइयों सहित पीतांबर[1] के दर्शन को जाने का वर्णन है, दूसरा ग्रंथ की समाप्ति में आशीर्वाद के समय लिखा है कि—

पीताम्बरप्रभुकृतैश्च कृपाकटाक्षैः
सूर्यान्वये समधिगम्य परां प्रतिष्ठाम्।
संग्रामसिंहतनुजेन समं नरेन्द्र(न्द्रो ?)
जीव्यादरीन्विदलयन्निह मेदपाटे ॥

अर्थात् श्रीपीतांबररायजी की कृपादृष्टि से सूर्यवंश में उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त कर, अपने शत्रुओं को नष्ट करते हुए महाराज अपने पुत्र संग्रामसिंहजी सहित चिरजीवी रहें।

इससे श्रीपीतांबररायजी में ग्रंथकार की पूर्ण भक्ति होना सिद्ध होता है, साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि इसका ज़नानी ड्योढ़ी से अवश्य संबंध था। क्योंकि श्रीपीतांबररायजी का मंदिर ज़नानी ड्योढ़ी के भीतर है। महाराणा श्रीअमरसिंहजी के समय में भी वह वहीं था क्योंकि पीतांबररायजी के दर्शन का वर्णन करते समय कवि ने अंतःपुर-द्वार (ज़नानी ड्योढ़ी) का वर्णन किया है—

"अंतःपुरद्वारनिवोढनार्यः सन्देहसन्दिग्धमनोऽनुभावाः।
काचिद्बभाषाह पुरन्दरोऽयं काचित्पुनर्भूमिपुरन्दरोऽयम् ॥"

बिना किसी संबंध के सर्व साधारण पुरुष ज़नानी ड्योढ़ी पर नहीं

---

(१) ततः स पीताम्बरदर्शनार्थं जगाम राजा गुरुणा समेतः।
तत्र स्थितो भ्रातृभिरप्रमेयैरराज राजीव विशालनेत्रः ॥

जा सकते, ऐसी दशा में उसके भीतर विराजनेवाले श्रीपीतांबररायजी में भक्ति होना उसका ज़नानी ड्योढ़ी से संबंध होना सिद्ध करता है। इस समय भी ज़नानी ड्योढ़ी के रक्षकों में (मोसलों में) व्यास गोत्र के पल्लिवाल मौजूद हैं और वे कई पीढ़ियों से यही काम करते हैं। संभव है कि हरराम और उसका पुत्र वैकुंठ (ग्रंथकार) भी इन्हींके पूर्व पुरुषों में हों।

महाराणा अमरसिंहजी जब कुमारावस्था में थे, तब अपने पिता महाराणा श्रीजयसिंहजी के साथ इनका मनोमालिन्य हो गया था। इस समय वैकुंठ ने इनकी बहुत सेवा की होगी। राज्य से इसका वेतन बंद हो गया था। शायद महाराणाजी के विरुद्ध महाराजकुमार की सेवा में रहने ही के कारण इसपर यह विपत्ति आई हो। परंतु फिर भी वह दृढ़तापूर्वक राजकुमार की सेवा करता रहा। जब अमरसिंहजी सिंहासनारूढ हुए तब उसके चित्त में अनेक आशाएँ उत्पन्न होने लगीं। उसे विश्वास था कि अब इतने दिन की सेवा का फल अवश्य मिलेगा। परंतु सिंहासनारूढ़ होने पर महाराणाजी उसे भूल गए। उसकी आशाएं व्यर्थ गईं। और तो दूर रहा, उसके वेतन के फिर मिलने की आज्ञा भी न मिली। तब उसने अपनी सेवाओं का स्मरण दिलाने के लिये यह छोटा सा काव्य बना कर महाराणाजी के भेंट किया और इसीमें अपने वेतन के लिये भी प्रार्थना की, जैसा कि नीचे लिखे श्लोकों से प्रतीत होता है–

> पुष्पितः सेवितो भृंगैर्माकन्दः फलितोऽधुना।
> तत्फलावाप्तिरन्येषां राजैश्चित्रम्प्रवर्तते ॥
> हेमाभरणमारूढे वारणं वैरिवारणम्।
> त्वयीदानीं कथं न्याय्यं मम वेतनवारणम् ॥

अर्थात्–हे राजन् जब से आम के मौर आए भ्रमरों ने उसकी सेवा की, अब उसके फल लगे हैं पर आश्चर्य है कि उसके फल औरों ही को मिलते हैं। शत्रुओं को हटा देनेवाले सुवर्ण के आभूषणों

से सुसज्जित हाथी पर आपके सवार हो जाने पर अब भी मेरा बेतन बंद रहा यह क्या उचित है ?

इसको अपने पांडित्य का बहुत ही गर्व था। ग्रंथ के आरंभ में ही एक स्थान पर इसने लिखा है कि—

विचार एव कर्तव्यो, यत्र बोधो न जायते।
शुद्धं वा नैव शुद्धं वा बुद्ध्वा दूष्यं वचो मम॥

अर्थात् जहाँ समझ न पड़े वहाँ विचार करना चाहिये। मेरा बचन शुद्ध है अथवा अशुद्ध यह भली भाँति समझ कर फिर दोष देना।

ऐतिहासिक अंश।

इस लघु काव्य में आलंकारिक और वर्णनात्मक अंश को छोड़कर जो ऐतिहासिक अंश है उसका सार नीचे लिखा जाता है।

श्रीसूर्यवंश में कर्णदेव रावल हुए। इनके परम पराक्रमी दो पुत्र थे जिनका नाम उन्होंने माहप और राहप रक्खा। एक दिन वीर राहप ने मंडोवर के राजा को बाँध कर अपने पिता के सम्मुख उपस्थित किया और उनसे प्रार्थना की कि महाराज! यह अब आपके शरण आया है इसे छोड़ दीजिये। कर्ण रावल ने अपने पुत्र की प्रार्थना स्वीकार कर उसे छोड़ दिया और वह अपनी "राणा" पदवी राहप को देकर अपने शहर (मंडोवर) को लौट गया। इस प्रकार राहप "राणा" पद को प्राप्त कर चित्तोड़ का स्वामी बना। माहप की पदवी "रावल" ही रही और वह डूंगरपुर[1] का स्वामी बना[2]।

हंमीर कुम्भकर्ण आदि राजाओं से सुशोभित इस वंश में उदयसिंहजी नामी राजा हुए, जिन्होंने उदयपुर नगर बसाया

(१) डूंगरपुर राजपूताना में उदयपुर से दक्षिण में एक छोटी रियासत है।

(२) यह सारा कथन कल्पित है। डूंगरपुर के राज्य की स्थापना मेवाड़ के राजा सामंतसिंह ने की थी। देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० १६ से १९ [सं०]

तथा उदयसागर नामक तालाब बनाया। चित्तौड़ के बाद उदयपुर ही मेवाड़ की राजधानी हुई। इनके बारह पुत्र थे जिनमें सबसे बड़े महाराणा प्रतापसिंह थे जिन्होंने मानसिंह[1] के साथ लड़ाई में हाथी के कुंभस्थल पर भाले का प्रहार किया था। राणी भट्याणीजी के गर्भ से जो जगमाल आदि पुत्र हुए थे वे दीवाणजी (महाराणा) की कुदृष्टि से राज्य से भ्रष्ट हो गए।

दीवाणजी के वंश में होनेवाले आज भी राणावत कहलाते हैं। इसी प्रकार चूँड़ा रावत के वंश में होनेवाले चूँडावत और शक्तसिंह (महाराणा प्रतापसिंहजी के छोटे भाई) के वंश में होनेवाले शक्तावत कहलाते हैं।

महाराणा प्रतापसिंहजी के पुत्र अमरसिंहजी हुए जो भालों से लड़ाई करने में बहुत कुशल थे। इनके पाँच पुत्र हुए जिनमें सब से बड़े भीम और उनसे छोटे कर्ण थे। कर्ण के ऊपर पिता का स्नेह अधिक होने से उन्हें राज्य प्राप्त हुआ और भीम दिल्ली के बादशाह के पास चले गए।

कर्णसिंहजी के तीन पुत्र हुए जिनमें पाटवी (ज्येष्ठ) जगत्सिंहजी थे। इन्होंने इस लोक में सुख के लिये जगमंदिर और परलोक में सुख के लिये जगदीश का मंदिर बनवाया। इनके समय में शाहजहाँ बादशाह के साथ संधि हुई जिससे प्रजा में सुख तथा शांति की वृद्धि हुई।

जगत्सिंहजी के दो पुत्र हुए, बड़े राजसिंहजी और छोटे अरिसिंहजी (अरसीजी)। महाराणा राजसिंहजी ने अपनी युवावस्था में सर्वर्तुविलास नामक उद्यान और वृद्धावस्था में अपने नाम से राजसमुद्र नामक विशाल तालाब बनवाया। दारा और मुराद जब आपस के लड़ाई झगड़े में लग रहे थे, इन्होंने अवसर

(१) आमेर नरेश मानसिंहजी जो अकबर की सेना लेकर मेवाड़ पर आए थे। यह लड़ाई "हलदी घाटी की लड़ाई" के नाम से प्रसिद्ध है।

पाकर मालपुर को लूट लिया। ये नव दिन तक मालपुरे में रहकर फिर अपनी राजधानी को लौट आए।

राजसिंहजी के पुत्र जयसिंहजी हुए। ये बड़े विलासी थे। इन्होंने कृष्ण विहार (बाग) सुंदर महल और फव्वारों सहित बनवाया[1], जिसमें वे अंत:पुर सहित सैर करने जाया करते थे।

जयसिंहजी के चार पुत्र हुए जिनके नाम क्रमश: अमरसिंह, उमेदसिंह, प्रतापसिंह और तखतसिंह थे। ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंहजी के एक पुत्र तथा एक कन्या हुई। पुत्र का नाम संग्रामसिंह था और कन्या को माता स्नेह से चंद्रकुँवर नाम से पुकारा करती थी। जब कुँवर अमरसिंहजी के पुत्र (संग्रामसिंहजी) उत्पन्न हुए तब महाराणा जयसिंहजी जयसिंहपुर में विराजते थे। वे पौत्र जन्म के शुभ समाचार को सुनकर उदयपुर आए और उन्होंने संग्रामसिंहजी के जातकर्म आदि संस्कार अपने हाथ से किए। कुँवर अमरसिंहजी को भी पुत्रजन्म से बहुत ही हर्ष हुआ। कुछ समय के बाद महाराणा जयसिंहजी तथा कुँवर अमरसिंहजी का आपस में मनोमालिन्य होगया और धीरे धीरे उसने भयंकर रूप धारण कर लिया। महाराणा के कई चूंडावत, शक्तावत, राणावत, झाला और राठौर सरदार (कुँवरजी के पक्ष में होकर) महाराणा की आज्ञा की अवहेलना करने लगे। इस प्रकार आंतरिक कलह से मेवाड़ की दुर्दशा होते देख मेवाड़ के अधिष्ठाता और इष्टदेव श्री-एकलिंगजी की कृपा और पुरोहित श्रीनिवास के यत्न से महाराणा तथा राजकुमार दोनों का फिर मेल होगया।[2]

महाराणा जयसिंह ने वंशपत्रपुर (बाँसवाड़ा) पर आक्रमण

(१) शायद वह स्थान है जहाँ अब सेंट्रल जेल है?

(२) कर्नल टाड के अनुसार यह सुलह इस शर्त पर श्रीएकलिंगजी के मंदिर में हुई कि महाराणा अपनी राजधानी को लौट आवें और राजकुमार अपने पिता के जीवन समय में बाहिर नए महलों में रहें।

कर वहाँ के राजा अजब रावल को पराजित किया पर उसे राज्य-च्युत न कर उसपर योग्य दंड करके उसे अपने स्थान पर फिर नियत कर दिया।

महाराणा ने बहुत से पुण्यकार्य किए जिनमें गोपीनाथ[1] इनका मुख्य सहायक था। इन्होंने सुवर्ण हल आदि कई दान दिए और अपनी पिछली अवस्था में तुलादान भी दिए। इनकी कृपा-दृष्टि से कई लोगों ने, जो पहले साधारण दशा में थे, उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त की। इनमें "खेम" नामक व्यक्ति भी एक था।

इस समय, जब कि देश में पूर्ण शांति विराजमान थी, मेवाड़ की उर्वरा भूमि अतुलित धान्यराशि और फल फूलों से सम्पन्न होकर लहलहा रही थी। भीतरी तथा बाहिरी झगड़ों के न होने से प्रजा संतुष्ट और सुखी थी। महाराणा जयसिंह का अचानक स्वर्गवास होगया।

इनके बाद महाराणा अमरसिंह सिंहासनारूढ़ हुए, जिनके राज्याभिषेक का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

श्रीमहाराणाजी अपनी पटरानी सहित भद्रपीठ पर आकर विराजमान हुए। अभिषेक के लिये कई नदियों, तालाबों और समुद्रों का जल मँगवाया गया। पुरोहित ने विद्वान् ब्राह्मणों को साथ लेकर महाराणाजी का अभिषेक किया। इसके बाद महाराणाजी हाथी पर सवार हुए। परम्परा की रीति के अनुसार भीलों के मुखिया ने राज्यतिलक किया। तदुपरांत बाज़ार में सवारी निकलने और सवारी से लौटकर गुरु तथा भाइयों-सहित पीतांबर (श्रीपीतांबर-रायजी) के दर्शन करने का वर्णन है।

अंत में महाराणा के राज्यशासन की प्रशंसा, देश में धर्म प्रचार करने के लिये देवराम तथा कृपाराम की नियुक्ति और कुछ आशीर्वाद के श्लोक लिख कर काव्य को समाप्त किया है।

---

(१) ये गोपीनाथ घाणेराव के ठाकुर थे। जो अल्प संख्यक सर्दार कुँवरजी के पक्ष में न होकर महाराणा के सहायक रहे थे उनमें ये एक थे।

इस काव्य से इतिहास के तिमिराच्छन्न भाग पर चाहे अधिक प्रकाश अब न पड़े किंतु एक ऐतिहासिक काव्य का तथा मेवाड़ के एक अब तक अज्ञात कवि का पता चलता है।

१२—अशोक की धर्मलिपियाँ ।

[लेखक—राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०, और पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए०]

[क १३—तेरहवाँ प्रज्ञापन]

[पत्रिका भाग ३ पृष्ठ २४७ के आगे]

कालसी	१	अठवषाभिसितषा	देवानं	पियष	पियदषिने	लाजिने
गिरनार	२	. . . .	. . .	. . .	. . . . . .	. . ओ
शहबाज़गढ़ी	३	अस्तवषअभिसितस	देवन	प्रिअस	प्रियद्रशिस	रञो
मानसेरा	४	. . . .	. . .	. . .	. . . . . .	. .
संस्कृत-अनुवाद		अष्टवर्षाभिषिक्तस्य	देवानां	प्रियस्य	प्रियदर्शिनः	राज्ञः
हिंदी-अनुवाद		आठ वर्ष से अभिषिक्त (के = से)	देवताओं के	प्रिय(के = से)	प्रियदर्शी (के = से)	राजा(के = से)

कालसी	५	कलिग्या	विजिता	दियढमाते	पानषतषहश्रे	येतफा
गिरनार	६	कलिगा	विजि .	. . . . .	. . . .	. . .
शहबाज़गढ़ी	७	कलिग	विजित	दियधमत्रे	प्रणशतसहस्त्रे	येततो
मानसेरा	८	कलिग	. . .	. . . . य	प्रणश	. . .
संस्कृत-अनुवाद		कलिंगाः	विजिताः।	अध्यर्धमात्रं	प्राणशतसहस्त्र	एतत्तः
हिंदी-अनुवाद		कलिंग	जीते गए।	ड्यौढ़ा भर = डेढ़,	सौहजार(= लाख) प्राणी	यहाँ से

कालसी	९	अपवुढे	शतषहषमाते	ततं	हते	बहुतावंतके	वा
गिरनार	१०	. . . ढे	सतसहस्रमात्र	तत्रा	हतं	बहुतावतकं	
शहबाज़गढ़ी	११	अपवुढे	शतषहस्रमत्रे	तत्र	हते	बहुतवतके	
मानसेरा	१२	. . . .	. . . .	. .	. .	. . . . . .	
संस्कृत-अनुवाद		अपव्यूढं	शतसहस्रमात्रा	तत्र	हताः	बहुतावत्का	वा
हिंदी-अनुवाद		बाहर लेजाए गए सौ हजार (लाख) भर		वहाँ	आहत हुए	उससे [भी] बहुत	वा

कालसी	१३	मटे	तता	पछा	अधुना	लधेसु	कलिग्येषु	तिवे
गिरनार	१४	मत	तता	पछा	अधना	लधेसु	कलिंगेसु	तीवो
शहबाज़गढ़ी	१५	मुटे(३९)	ततो	पछ	अधुन	लधेषु	कलिंगेषु	तिव्रे
मानसेरा	१६	..	..(६०)	पछ	अधुन	लधेषु	कलिगेषु	
संस्कृत-अनुवाद		मृताः।	ततः	पश्चात्	अधुना	लब्धेषु	कलिंगेषु	तीव्रः तीव्रं
हिंदी-अनुवाद		मरे।	उससे	पीछे	अब	प्राप्त होने पर	कलिंग (पर)	तीव्र

कालसी	१७	धंमवाये[३५]	धंमकामता	धंमानुषथि	चा	देवानं
गिरनार	१८	धंमवायो[६७]	. . . . .	. . . . .	.	. . .
शहबाज़गढ़ी	१९	ध्रमपलनं	ध्रमकमत	ध्रमनुशस्ति	च	देवन
मानसेरा	२०	. . . . .	. . . . .	. मनुश .	च	. . .
संस्कृत-अनुवाद		धर्मवाय: धर्मपालनं	धर्मकामता	धर्मानुशिष्टि:	च	देवानां
हिंदी-अनुवाद		धर्मविस्तार धर्मपालन	धर्म की इच्छा	धर्मानुशिष्टि	और	देवताओं के

कालसी	२१	पियषा	षे	अथि	अनुषये	देवानं	पियषा
गिरनार	२२	...	.	..	सये।	देवानं	प्रियस
शहबाज़गढ़ी	२३	प्रियस	सो	अस्ति	अनुसोचनं	देवन	प्रियस
मानसेरा	२४	...	.	..	......	...	...
संस्कृत-अनुवाद		प्रियस्य ।	तत्	अस्ति	अनुशय: अनुशोचनं	देवानां	प्रियस्य
हिंदी-अनुवाद		प्रिय की [हुई]।	सो	है	पछतावा	देवताओं के	प्रिय के (को)

कालसी	२५	विजिनितु	कलिग्यानि	अविजित	हि	विजिनमने
गिरनार	२६	विजि . .	. . . .	. . . .	.	. . . . .
शहबाज़गढ़ी	२७	विजिनितु	कलिंगनि (३७)	अविजितं	हि	विजिनमनि
मानसेरा	२८	. . . .	. . . .	. . . .	.	. . . . .
संस्कृत-अनुवाद		विजेतुः	कलिंगान् ।	अविजितं	हि	विजितं मन्ये
हिंदी-अनुवाद		विजयी (के =) को	कलिंगों (को =) के ।	नहीं जीता हुआ (को)	ही	जीते हुए (को) मानता हूँ

कालसी	२९	ए	तता	वधं	वा	मलने	वा	अपवहे	वा
गिरनार	३०	.	..	वधो	व	मरणं	व	अपताहो	व
शहबाज़गढ़ी	३१	ये	तत्र	वधो	व	मरणं	व	अपवहो	व
मानसेरा	३२	.	.. (११)	..	.	...	.	अपवहे	व
संस्कृत-अनुवाद		यत्	तत्र	वधः	वा	मरणं	वा	अपवाहः	वा
हिंदी-अनुवाद		जो	वहाँ	वध	या	मरण	या	लेजाना	या

कालसी	३३	जनषा	षे	बाढ	वेदनियमुते		गुलुमुते	चा
गिरनार	३४	जनस	त	बाढं	वेदनमतं	च	गुरुमतं	च
शहबाज़गढ़ी	३५	जनस	त	बढं	वेदनियमतं		गुरुमतं	च
मानसेरा	३६	जन.	से	...	वेदनियम.		....	
संस्कृत-अनुवाद		जनस्य ।	सः	बाढं	वेदनीयमतः	च	गुरुमतः	च
हिंदी-अनुवाद		लोगों का ।	वह	अत्यंत	दुःखदायी माना गया	और	भारी माना गया [है]	और

कालसी	३७	देवानं	पियषा	इयं	पि	चु	ततो	गलुमततले
गिरनार	३८	देवानं	. स(६८)	..	.	.	..	......
शहबाज़गढ़ी	३९	देवनं	प्रियस	इम	पि	चु	ततो	गुरुमत . र
मानसेरा	४०	...	...	..	.	.	..	......
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियस्य।	इदं	अपि	च	ततः	गुरुमततरं
हिंदी-अनुवाद		देवताओं के	प्रिय (का =) से।	यह	भी	और	उससे	अधिक भारी माना गया [है]

कालसी	४१	देवानं	पियषा[३६]	सवता	वषति	बंभना	व
गिरनार	४२	. . .	. . .	. . .	. . .	बाम्हण	व
शहबाज़गढ़ी	४३	देवनं	प्रियस	तत्र हि[३८]	वसंति	ब्रमण	व
मानसेरा	४४	. . .	. . .	. . .	. .	. . .	.
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियस्य	सर्वत्र तत्र हि	वसंति	ब्राह्मणाः	वा
हिंदी-अनुवाद		देवताओं के	प्रिय (का =) से	सब जगह वहाँ	रहते हैं	ब्राह्मण	या

कालसी	४५	षम	वा	अने	वा	पाशंड	हिगिया	वा
गिरनार	४६	समणा	व	अ .	.	. . .	. . .	.
शहबाज़गढ़ी	४७	अमण	व	अंञे	व	प्रषंड	ग्रहथ	व
मानसेरा	४८	. . .	.	. .	.	. . .	. . .	.
संस्कृत-अनुवाद		श्रमणाः	वा	अन्ये	वा	पाषण्डाः	गृहस्थाः	वा-
हिंदी-अनुवाद		श्रमण	या	दूसरे	या	धर्मवाले	गृहस्थ	या

कालसी	४९	येसु	विहिता	एष	अगभुत	सुसुषा	मतापिति
गिरनार	५०	..	. ..	..	....	..सा	मातापितरि
शहबाज़गढ़ी	५१	येसु	विहित	एष	अग्रभुटि	सुश्रुष	मतपितुषु
मन्सेरा	५२	.. (६२)	...	एष	अग्रभु.	सुश्रुष	मतपिषु
संस्कृत-अनुवाद		येषु.	विहिता	एषा	अग्रभूतिः	शुश्रूषा	मातापित्रोः
हिंदी-अनुवाद		जिनमें	विहित [हैं]	यह	[सब से] आगे भरण [पोषण]	शुश्रूषा	माता पिता (में=) की

कालसी.	५३	षुषुषा	गलुषुष	मितषंथुतषहायनातिकेषु	दाश्चभतकषि
गिरनार	५४	सुसुंसा	गुरुसुसूसा	मितसंस्तुतसहायञातिकेसु	दासभ . . . (११)
शहबाज़गढ़ी	५५	सुश्रुष	गुरुनंसुश्रुष	मित्रसंस्तुतसहय(३६)ञतिकेषु	दसभटकनं
मानसेरा	५६	सुश्रुष	गुरुसुश्रुष	मि . संस्तु	. . . . . .
संस्कृत-अनुवाद		शुश्रूषा	गुरुशुश्रूषा गुरूणां शुश्रूषा	मित्रसंस्तुतसहायज्ञातिकेषु	दासभृतकेषु दासभृतकानां
हिंदी-अनुवाद		शुश्रूषा	गुरु-शुश्रूषा	मित्र परिचित सहायक और कुटुंबियों में	नौकर चाकरों का दास और [वेतनभोगी] नौकरों का (में)

कालसी	५७	सम्यापटिपति	दिढभतिता	तेषं	तता	होति	उपघाते
गिरनार	५८	. . . . . .	. . . . .	. .	. .	. .	. . . .
शहबाज़गढ़ी	५९	संमप्रतिपति	दिढभतित	तेषं	तत्र	भोति	अपग्रथो
मानसेरा	६०	. . . . . .	. . . . .	. .	. .	. .	. . . .
संस्कृत-अनुवाद		सम्यक् प्रतिपत्तिः	दृढ़भक्तिता।	तेषां	तत्र	भवति	उपघातः अपघातः
हिंदी-अनुवाद		उचित आदर	दृढ़भक्ति।	उनका	वहाँ	होता है	घात

कालसी	६१	वा	वधे	वा	अभिलतानं	वा	विनिखमने (३७)	येषं
गिरनार	६२	.	..	.	अभिरवानं	व	विनिखमण	येसं
शहबाज़गढ़ी	६३	व	वधो	व	अभिरतन	व	निक्रमणं	येषं
मानसेरा	६४	. (६३)	.	व	अभि . . नं	व	विनिक्रमणे	येषं
संस्कृत-अनुवाद		वा	वधः	वा	अभिरतानां	वा	विनिष्क्रमणं । निष्क्रमणं ।	येषां
हिंदी-अनुवाद		या	वध	या	सुख से रहते हुओं का	या	निकाला जाना ।	जिनका

कालसी	६५	वा	पि	षंविहितानं	षिनेहे	अविपहिने	एतानं
गिरनार	६६	वा	पि	. . . . . .	. . .	. . . . . .	. . .
शहबाज़गढ़ी	६७	व	पि	संविहितनं	नेहो	अविप्रहिनो	एतेष
मानसेरा	६८	व	पि	संवि . . न	सिनेहे	अविप्रहिने	एत . .
संस्कृत-अनुवाद		वा	अपि	संविहितानां	स्नेहः	अविप्रहीणः	एतेषां
हिंदी-अनुवाद		या	भी	सुव्यवस्थित [लोगों] का	स्नेह	नहीं घटा [है]	इनके

कालसी	६९	मितशंयुतषहायनातिक्य	वियषने	पापुनाति	तत
गिरनार	७०	......हायञातिका	व्यसनं	प्रापुणति	तत्र
शहबाज़गढ़ी	७१	मित्रसंस्तुतसहयञतिक	वसन(४०)	प्रपुणति	तत्र
मानसेरा	७२	मित्रसं.........	...(६४)	....	..
संस्कृत-अनुवाद		मित्रसंस्तुतसहायज्ञातिकाः	व्यसनं	प्राप्नुवन्ति	तत्र
हिंदी-अनुवाद		मित्र, परिचित, सहायक, और कुटुंबी	दुःख (को)	प्राप्त होते हैं	वहाँ

कालसी	७३	षे	पि	नत	मेव	उपघाते	होति	पटिभागे	चा
गिरनार	७४	सो	पि	तेसं		उपघातो	होति	पटीभागो	चे
शहबाज़गढ़ी	७५	तं	पि	तेष	वो	अपग्रथो	भोति	प्रतिभगं	च
मानसेर	७६		.	..	..	....	..	....	..
संस्कृत-अनुवाद		सः	अपि	तेषां	एव	उपघातो	भवति।	प्रतिभागः	च
हिंदी-अनुवाद		वह	भी	उनका	ही	उपघात	होता है।	दशा	और

कालसी	७७	एष	षव	मनु . नं	गुलुमते	चा	देवानं	पियषा
गिरनार	७८	सा	सव	. . सानं	. . . . .	.	. . .	. . .
शहबाज़गढ़ी	७९	एतं	सव्रं	मनुशनं	गुरुमतं	च	देवनं	प्रियस
मानसेरा	८०	. .	सव्रं	मनुशनं	गुरुमते	च	देवनं	प्रियस
संस्कृत-अनुवाद		एषः	सर्वः	मनुष्याणां	गुरुमतः	च	देवानां	प्रियस्य।
हिंदी-अनुवाद		यह	सब	मनुष्यों को [है]	भारी माना गया [है]	और	देवताओं के	प्रिय (का =) से।

५

कालसी	८१	नथि	चा	षे	जनपदे	यता	नथि	इमे	निकाया
गिरनार	८२	. .	.	.	. . . .	. .	ॅस्ति	इमे	निकाया
शहबाजगढ़ी	८३	. .							
मानसेरा	८४	नस्ति	च	से	जनपदे	यत्र	नस्ति	इमे	निकय
संस्कृत-अनुवाद		नास्ति	च	सः	जनपदः	यत्र	न सन्ति	इमे	निकायाः
हिंदी-अनुवाद		नहीं है	और	वह	जनपद	जहाँ	नहीं हैं	ये	संप्रदाय

कालसी.	८५	आनंता	येनेष[३८]	बंह्मने	चा	षमने	चा	नथि
गिरनार	८६	अञत्र	येनेस	. . .	.	. . .	.	. .
शहबाज़गढ़ी	८७							
मानसेरा	८८	अ . .	येनेष	ब्रमण	च	श्रम	.	. .
संस्कृत-अनुवाद		अनंता: अन्यतरे	येन एष =ये एते(?)	ब्राह्मणा:	च	श्रमणा:	च ।	नास्ति
हिंदी-अनुवाद		अनंत नाना प्रकार के	जिस से यह =जो ये(?)	ब्राह्मण	और	श्रमण	और ।	नहीं है

कालसी	८९	वा	कुवापि	जनपदषि	यता	नथि		मनुषानं
गिरनार	९०	.	. . .	. . . . (१००)म्हि	यत्र	नास्ति		मनुसानं
शाहबाज़गढ़ी	९१					नस्ति	च	
मानसेरा	९२		पि	जन . . सि				
संस्कृत-अनुवाद		च	क्व अपि	जनपदे	यत्र	नास्ति	च	मनुष्याणां
हिंदी-अनुवाद		और	कहीं भी	जनपद में	जहाँ	नहीं है	और	मनुष्यों की

कालसी	९३	एकतलषि	पि	पाषडषि	नो	नाम	पषादे	षे
गिरनार	९४	एकतरम्हि		पासंडम्हि	न	नाम	प्रसादो	
शहबाजगढ़ी	९५	एकतरस्पि	पि	प्रषंडस्पि	न	नम	प्रसदो	सो
मानसेरा	९६	. . . . .	.	. . . . (६१)	नो	नम	प्रसदे	से
संस्कृत-अनुवाद		एकतरस्मिन्	अपि	पाषण्डे	न	नाम	प्रसादः ।	सः
हिंदी-अनुवाद		किसी न किसी एक में	भी	धर्म में	न	नाम	प्रीति ।	वह

कालसी	९७	आवतके	जने	तदा	कलिंगेषु		
गिरनार	९८	यावतको	जन	तदा (१०१)	...		
शहबाज़गढ़ी	९९	यमत्रो	जनो	तद	कलिगे		
मानसेरा	१००	यवतके	जने	तद	कलिगेषु	हते	च
संस्कृत-अनुवाद		यावत्क: यावन्मात्र:	जन:	तदा	कलिंगेषु	{हत:	च}
हिंदी-अनुवाद		जितना	मनुष्य	तब	कलिंगों में (=के)	{मारा गया	और}

कालसी	१०१	ल . षु	हते	च	मटे	चा	अपवुढे	चा
गिरनार	१०२	. .	. .	.	. .	.	. . . . :	
शहबाज़गढ़ी	१०३		हतो	च	मुटो	च	अपवुढो	च
मानसेरा	१०४	. . .	. .	.	. .	.	अपवुढे	च
संस्कृत-अनुवाद		लब्धेषु	हतः	च	मृतः	च	अपव्यूढः	च
हिंदी-अनुवाद		प्राप्त होने पर	आहत हुआ	और	मरा	और	बाहर लेजाया गया	और

कालसी	१०५	तता	शतेभागे	वा	सहषभागे	वा	अज
गिरनार	१०६	..	....		स्त्रभागो	व	..
शहबाजगढ़ी	१०७	ततो[४१]	शतभगे	व	सहस्त्रभगं	व	अज
मॉनसेरा	१०८	तत	शतभगे	व	सहस्त्रभगे		अज
संस्कृत-अनुवाद		ततः	शतभागः	वा	सहस्त्रभागो	वा	अद्य
हिंदी-अनुवाद		उस [में] से	सौवाँ भाग	या	हजारवाँ भाग	या	आज

कालसी	१०९	गुलुमते	वा	देवानं	पियषा[३१]			
गिरनार	११०	गरुमतो		देवानं	...			
शहबाजगढ़ी	१११	गरुमतं	वो	देवनं	प्रियस	यो	पि	च
मानसेरा	११२	गुरुमते		व	प्रियस			
संस्कृत-अनुवाद		गुरुमतः		देवानां	प्रियस्य।	यः	अपि	च
हिंदी-अनुवाद		भारी माना गया [है]		देवताओं के	प्रिय का (= को)।	जो	भी	और

कालसी	११३	....	....	.	...	...	
गिरनार	११४	....	....	.	...	..न	य
शहबाज़गढ़ी	११५	अपकरेयति	छमितवियमते	वो	देवनं	प्रियस	यं
मानसेरा	११६	..क...	.मितवि(६६)..	.	...	...	.
संस्कृत-अनुवाद		अपकरोति	क्षन्तव्यमतः		देवानां	प्रियस्य	यः
हिंदी-अनुवाद		अपकार करता है	क्षंतव्य माना गया [है]		देवताओं के	प्रिय का	जो

कालसी	११७	. .	. . . .	.	.	.	. . . .	. . .
गिरनार	११८	सकं	छमितवे	या	च	पि	अटवियो	देवानं
शहबाज़गढ़ी	११९	शको	छमनये	य	पि	च	अटवि	देवनं
मानसेरा	१२०	. . .	. . . .	य	पि	च	अटवि	देवनं
संस्कृत-अनुवाद		शक्यः	क्षमितवे । क्षमणाय ।	यः	अपि	च	अटव्यः	देवानां
हिंदी-अनुवाद		शक्य [है]	क्षमा करने के लिए।	जो	भी	और	बन-निवासी	देवताओं के

कालसी	१२१	. . .	. . .	. .			
गिरनार	१२२	प्रियस	पिजिते	पाति(१०२)	.	.	. . . .
शहबाज़गढ़ी	१२३	प्रियस	विजिते	भोति	त	पि	अनुनेति
मानसेरा	१२४	प्रियस	विजितसि	होति	त	पि	अनुनयति
संस्कृत-अनुवाद		प्रियस्य	विजिते	भवति	तं	अपि	अनुनयति
हिंदी-अनुवाद		प्रिय के	विजित [देश] में	होता है	उसको	भी	मनाता है

कालसी	१२५	. . . .	. . . .	.	.	. . .	. . .	. . .
गिरनार	१२६	. . . .	. . . .	.	.	. . .	. . .	. . .
शहबाज़गढ़ी	१२७	अनुनिभपेति	अनुतपे	पि	च	प्रभवे	देवनं	प्रियस
मानसेरा	१२८	अनुनिभपयेति	अनुतपे	पि	च	प्रभवे	देवनं	प्रियस
संस्कृत-अनुवाद		य अनुनिध्यापति।	अनुताप:	अपि	च	प्रभावे	देवानां	प्रियस्य।
हिंदी-अनुवाद		वा ध्यान करता है।	पछतावा	भी	और	प्रभाव में [है]	देवताओं के	प्रिय के।

कालसी	१२९	....	..	...	...	..	......
गिरनार	१३०	चते	तेषं	देवानं	प्रियस	..	......
शहबाज़गढ़ी	१३१	वुचति	तेष			किति	अवत्रपेयु
मानसेरा	१३२	वुचति	तेषं			..	......
संस्कृत-अनुवाद		उच्यते	तेषां	{देवानां	प्रियस्य}	किमिति	अपत्रपेरन्
हिंदी-अनुवाद		कहा जाता है	उनका (= उनको)	{देवताओं के	प्रिय का}	क्या? यह	लज्जित हों

कालसी	१३३	.	.	. . नेयु	इछ .		. . .	. . (४२)
गिरनार	१३४	.	.	. . . .	. . .	.	. . .	. .
शहबाज़गढ़ी	१३५	न	च	ञेयसु	इछति	हि	देवन	प्रियो
मानसेरा	१३६	.	.	. . . .	. . .	.	. वन	प्रिये (६७)
संस्कृत-अनुवाद		न	च	हन्येरन्।	इच्छति	हि	देवानां	प्रियः
हिंदी-अनुवाद		न	और	मारे जावें।	इच्छा करता है	ही	देवताओं का	प्रिय

कालसी	१३७	षवभु . .	. . .	.	षयम	.	षमचलियं	
गिरनार	१३८	सवभूतनां	अछति	च	सयमं	च	समचेरां	च
शहबाज़गढ़ी	१३९	सव्रभुतन	अछति		संयमं		समचरियं	
मानसेरा	१४०	. . . . .	. . .		. . .		. . . . . .	
संस्कृत-अनुवाद		सर्वभूतानां	अक्षतिं		संयमं	च	समचर्यां	
हिंदी-अनुवाद		सब प्राणियों की	क्षति न होने को		संयम को	और	समचर्या को	और

कालसी	१४१	मदवति		इयं	वु	मु . . .	. . . (४३)
गिरनार	१४२	मादव	च(१०३)	. .	.	. . . .	. . .
शहबाज़गढ़ी	१४३	रभसिये		एषे	च	मुखमुते	विजये
मानसेरा	१४४	. . . .		. .	.	मुते	विजये
संस्कृत-अनुवाद		मोदवृत्तिं मोदं राभस्यं	च	अयं एषः	च	मुख्यमतः	विजयः
हिंदी-अनुवाद		हर्ष को	और	यह	और	मुख्य माना गया [है]	विजय

कालसी	१४५	देवानं	पियेषा	ये	धंमविजये	षे	च	पुना
गिरनार	१४६	. . .	. . .	.	. . . . .	.	.	. .
शहबाज़गढ़ी	१४७	देवनं	प्रियस	यो	ध्रमविजयो	सो	च	पुन
मानसेरा	१४८	देवनं	प्रियस	ये	ध्रमविजये	से	च	पुन
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियस्य	यः	धर्मविजयः।	स	च	पुनः
हिंदी-अनुवाद		देवताओं के	प्रिय का	जो	धर्मविजय।	वह	और	फिर

कालसी	१४९	लधे	देवानं	पि ..	. द	च[४८]	षवेषु	च
गिरनार	१५०	लधे	.. नं	प्रियस	इध	.	....	.
शहबाज़गढ़ी	१५१	लधो	देवनं	प्रियस	इह	च	सव्रेषु	च
मानसेरा	१५२	लधे	देवनं	प्रियस	हिद	च	सव्रेषु	च
संस्कृत-अनुवाद		लब्धो	देवानां	प्रियस्य।	इतः इह	च	सर्वेषु	च
हिंदी-अनुवाद		प्राप्त हुआ [है]	देवताओं के	प्रिय का (= को)।	यहां इधर	और	सब (में)	और

कालसी	१५३	अंतेषु	अषषु	पि	योजनषतेषु	अत	अतियोगे
गिरनार	१५४	. . .	. . .	.	. . . . . .	. .	. . . .
शहबाज़गढ़ी	१५५	अंतेषु (४२)	अषषु	पि	योजनशतेषु	यत्र	अंतियोको
मानसेरा	१५६	अंतेषु	अषषु	पि	य . . . तेषु	. .	. . योक
संस्कृत-अनुवाद		अन्तेषु	आपट्सु	अपि	योजनशतेषु	यत्र	अंतियोकः
हिंदी-अनुवाद		सीमांत देशों में	तक छः (में)	भी (= ही)	सौ योजनों में	जहाँ	अंतियोक

कालसी	१५७	नाम	योन . .	पलं	चा	तेना[६७]	अंतियोगेना
गिरनार	१५८	. .	योनराजा	परं	च	तेन	
शहबाज़गढ़ी	१५९	नम	योनरज	परं	च	तेन	अंतियोकेन
मानसेरा	१६०	नम	. न . .[६८]	. .	.	. .	. . . . .
संस्कृत-अनुवाद		नाम	यवनराज:	परं	च	तस्मात्	अन्तियोकात्
हिंदी-अनुवाद		नाम	यवनराज	परं	और	उस (से)	अंतियोक से

कालसी	१६१	चतालि४	लजाने	तुलमये		नाम	अंतेकिने	
गिरनार	१६२	चत्पारो	राजानो	तुरमायो	च		अंतेकिन	च
शहबाज़गढ़ी	१६३	चतुरे४	रजनि	तुरमये		नम	अंतिकिनि	
मानसेरा	१६४	…	…	…		…	…	
संस्कृत-अनुवाद		चत्वारः	राजानः	तुरमयः	च	नाम	अंतिकिनः	च
हिंदी-अनुवाद		चार	राजा	तुरमय	और	नाम	अंतिकिन	और

कालसी	१६५	नाम	मका		ना(४६)म	अलिक्यषुदले	नाम	निचं
गिरनार	१६६		मगा	च(१०४)	. .	. . . .	. .	. .
शहबाज़गढ़ी	१६७	नम	मक		नम	अलिकसुदरो	नम	निच
मानसेरा	१६८	. . .	मक		नम	अलिकसुदरे	नम	निचं
संस्कृत-अनुवाद		नाम	मगः मकः	च	नाम	अलिकसुदरः	नाम	नीचैः
हिंदी-अनुवाद		नाम	म मक	और	नाम	अलिकसुदर	नाम	नीचे

कालसी	१६९		चोड	पंडिया	अवं	तंबपंनिया	हेवमेव	हेवमेवा	(४७)
गिरनार	१७०		. .	. . .	. .	. . . . .	. . . .	. . . .	
शहबाज़गढ़ी	१७१		चोड	पंड	अव	तंबपंनिय	एवमेव		
मानसेरा	१७२	च	चोड	पंडिय	अ	तंबपंनिय	एवमेव		
संस्कृत-अनुवाद		च	चोडाः	पांड्याः	एवं	ताम्रपर्णीयाः	एवमेव	एवमेव	
हिंदी-अनुवाद		और	चोड	पांड्य	तथा	ताम्रपर्णीवाले	ऐसे ही	ऐसे ही	

कालसी	१७३	हिद	लाजा	विशवजि	योनकंबोजेषु	नाभके
गिरनार	१७४	इध	राज	विसयम्हि	यो	. .
शहबाज़गढ़ी	१७५	हिद	रज	विषवत्रि	योनकंबोयेषु	नभके
मानसेरा	१७६	. .	रज	विषवत्रि	योनकं . . षु	नभके
संस्कृत-अनुवाद		इत:	राज्ये	विषत्रज्जिपु विषये	यवनकंबोजेषु	नाभके
हिंदी-अनुवाद		इधर	राज में	विष-त्रज्जियों में देश में	यवन-कंबोजों में	नाभक में

कालसी	१७७	**नाभपंतिषु**	**भोजपितिनिक्येषु**[४८]	**अधपलदेषु**	**षवता**
गिरनार	१७८	. . . . .	. . . .	**. धपारिदेसु**	**सवत**
शहबाज़गढ़ी	१७९	**नभितिन**[४३]	**भोजपितिनिकेषु**	**अंध्रपुलिदेषु**	**सवत्र**
मानसेरा	१८०	**नभपंतिषु**	**भोजपितिनि . षु**	**अंधप . . .**	**. . .** [६६]
संस्कृत-अनुवाद		नाभपङ्क्तिषु नाभितिषु	भोजपितिनिक्येषु	अन्ध्रपुलिन्देषु	सर्वत्र
हिंदी-अनुवाद		नाभपंक्तियों में नाभितियों में	भोज–पैठनिकों में	अंध्र–पुलिंदों में	सर्वत्र

कालसी	१८१	देवानं	पयषा	धंमानुषथि	अनुवतंति	यत	पि
गिरनार	१८२	देवानं	पियस	धंमानुसस्टि	अनुवतरे	यत	पि
शहबाज़गढ़ी	१८३	देवनं	प्रियस	ध्रमनुशस्ति	अनुवटंति	यत्र	पि
मानसेरा	१८४	...	...	.....	.....	..	.
संस्कृत-अनुवाद		देवानां	प्रियस्य	धर्मानुशिष्टिं	अनुवर्तन्ते।	यत्र	अपि
हिंदी-अनुवाद		देवताओं के	प्रिय की	धर्मानुशिष्टि को	अनुसरण करते हैं।	जहाँ	भी

कालसी	१८५	दुता (४६)	देवानं	पियसा		नो	यंति	ते
गिरनार	१८६	दूति (१०५)	. . .	. . .		.	. .	.
शहबाज़गढ़ी	१८७		देवन	प्रियस	दुत	न	व्रचंति	ते
मानसेरा	१८८	. .	. . न	प्रियस		नो	यंति	ते
संस्कृत-अनुवाद		दूताः	देवानां	प्रियस्य	{दूताः}	न	यान्ति व्रजन्ति	ते
हिंदी-अनुवाद		दूत	देवताओं के	प्रिय के	{दूत}	नहीं	जाते हैं	वे

कालसी	१८९	पि	सुतु	देवानं	पियंय	धंमवुतं	विधनं (५०)	धंमानुसथि
गिरनार	१९०	.	..	...	...	....	..नं	धमानुसस्टिं
शहबाज़गढ़ी	१९१	पि	श्रुतु	देवनं	प्रियस	ध्रमवुटं	विधेनं	ध्रमनुशस्ति
मानसेरा	१९२	पि	श्रुतु	देवनं	प्रियस	ध्रमवुतं	विधनं	ध्रमनुशस्ति
संस्कृत-अनुवाद		अपि	श्रुत्वा	देवानां	प्रियस्य	धर्मवृतं	विधानं	धर्मानुशिष्टिं
हिंदी-अनुवाद		भी	सुनकर	देवताओं के	प्रिय के	धर्मवृत को	विधान को	धर्मानुशिष्टि को

कालसी	१९३		धंमं	अनुविधियंति	अनुविधियिसंति	चा	ये
गिरनार	१९४	च	धम		. . . .	.	.
शहबाज़गढ़ी	१९५		ध्रमं	अनुविधियंति	अनुविधियिशंति	च	यो
मानसेरा	१९६		ध्रमं	अनुविधियंति	अनुविधियिसंति	च	य
संस्कृत-अनुवाद		च	धर्मं	अनुविदधन्ति	अनुविधास्यंति	च।	यत्
हिंदी-अनुवाद		और	धर्म को	अनुसरण करते हैं	अनुसरण करेंगे	और।	जो

कालसी	१९७	से	लधे(२१)	एतकेना	होति	सवता	विजये	
गिरनार	१९८	.	. .	. . . .	. .	. . .	विजयो	सवथा
शहबाज़गढ़ी	१९९	च	लधे	एतकेन	भोति	सवत्र	विजयो	सवत्र
मानसेरा	२००	.	. .	.तकेन	होति		विज .	. . .
संस्कृत-अनुवाद		तत् च	लब्धं	एतावत्केन	भवति	सर्वत्र	विजयः	{ सर्वत्र
हिंदी-अनुवाद		वह और	प्राप्त	इतने से	होती है	सर्वत्र	विजय	{ सर्वत्र

कालसी	२०१			पितिलसे	से	गधा	सा	होति
गिरनार	२०२	पुन	विजयो	पीतिरसो	सो	लधा	सा	
शहबाज़गढ़ी	२०३	पुन[४४]	विजयो	प्रितिरसो	सो	लध		भोति
मानसेरा	२०४	. .	. . .	. . .				
संस्कृत-अनुवाद		पुनः	विजयः }	प्रीतिरसः	सः ।	लब्धा गाढा	सा	भवति
हिंदी-अनुवाद		फिर	विजय }	प्रीति-रस [वाला]	वह ।	प्राप्त गाढ़ी	वह	होती है

कालसी	२०५	पिति		पिति	धंमविजय(५२)षि	लहुका	वु	खो
गिरनार	२०६	पीती	होति		धमवीजयम्हि(१०६)	. . .		
शहबाज़गढ़ी	२०७	म्रिति			ध्रमविजयस्पि	लहुक	तु	खो
मानसेरा	२०८	. .			. . . . . . (७०)	. . .	.	.
संस्कृत-अनुवाद		प्रीतिः	{भवति}	प्रीतिः	धर्मविजये।	लघुका	तु	खलु
हिंदी-अनुवाद		प्रीति	{होती है}	प्रीति	धर्मविजय में।	हलकी	तो	निश्चय

कालसी	२०९	सा	पिति	पालंतिक्यमेवे	महफला	मंनंति	देवनं
गिरनार	२१०	.	. .	. . . .	. . . .	. . .	. . नं
शहबाज़गढ़ी	२११	स	प्रिति	परत्रिकमेव	महफल	मेञति	देवनं
मानसेरा	२१२	.	. .	. . . .	. . . .	. . .	. . .
संस्कृत-अनुवाद		सा	प्रीतिः ।	पारत्रिकमेव	महाफल	मन्यते	देवानां
हिंदी-अनुवाद		वह	प्रीति [है]।	पारलौकिक [लाभ] को ही	महाफलवाला	मानता है	देवताओं का

कालसी	२१३	पिने[५३]	एताये	चा	अठाये	इयं	धंमलिपि	लिखिता
गिरनार	२१४	प्रियो	एताय		अं . ये	अयं	धंमलि :	. . .
शहबाज़गढ़ी	२१५	प्रियो	एतये	च	अठये	अयो	ध्रमदिपि	दिपिस्त
मानसेरा	२१६	प्रिये	एतये		अथ्रये	इयं	ध्रम . .	लिखित
संस्कृत-अनुवाद		प्रियः ।	एतस्मै	च	अर्थाय	इयं	धर्मलिपिः	लिखिता ।
हिंदी-अनुवाद		प्रिय ।	इस (के लिये)	और	प्रयोजन के लिये	यह	धर्मलिपि	लिखाई ।

कालसी	२१७	किति	पुता	पापोता	मे	अ .(१४)	नवं	विजय
गिरनार	२१८	. .	. .	. . .	.	. .		विजयं
शहबाज़गढ़ी	२१९	किति	पुत्र	पपोत्र	मे	असु	नवं	विजयं
मानसेरा	२२०	किंति	पुत्र	प्रपोत्र	मे	अ .	नव	
संस्कृत-अनुवाद		किम्मिति	पुत्राः	प्रपौत्राः	मे	स्युः	नवं	विजयं
हिंदी-अनुवाद		क्यों ? यह (= कि)	पुत्र	प्रपौत्र	मेरे	होवें	नए (को)	विजय को

कालसी	२२१	म	विजयंतविय	मनिषु	षयकषि	नो
गिरनार	२२२	मा	विजेतव्यं	मञा:	सरसके	एव
शहबाज़गढ़ी	२२३	म	विजेतवियं	मञिषु	. . . क	. यो
मानसेरा	२२४	. .	. . . . .	. . .	. . . .	. (७१)
संस्कृत-अनुवाद		मा	विजेतव्यं	मन्येरन्।	शराकर्षे शरासके	नु एव
हिंदी-अनुवाद		मत	जीतने योग्य(को)	मानें।	बाण खैंचने [से होने] वाले(में) बाण फेंकने [से होने] वाले(में)	ही

कालसी	२२५	विजयषि	खंति	चा	लहु[55]दंडता	चा	लोचेतु
गिरनार	२२६	विजये	छाति	च[107]	. . . . .	.	. . .
शहबाज़गढ़ी	२२७	विजये	छंति	च	लहुदंडत	च	रोचेतु
मानसेरा	२२८	. . .	. .	.	. . . . .	.	. . .
संस्कृत-अनुवाद		विजये	शांतिं	च	लघुदंडतां	च	रोचयन्ताम्।
हिंदी-अनुवाद		विजय में	शांति को	और	लघुदंडता को	और	रुचि करें।

कालसी	२२९	तमेव	चा	विजयं	मनतु	ये	धर्मविजये	षे
गिरनार	२३०	...	.	...	...	.	.....	.
शहबाज़गढ़ी	२३१	तं एव		विज	मञ(४५)	यो	ध्रमविजयो	सो
मानसेरा	२३२	...		..	..		......	.
संस्कृत-अनुवाद		तम् एव	च	विजयं	मन्यताम्	यः	धर्मविजयः।	सः
हिंदी-अनुवाद		उसको ही	और	विजय	मानें	जो	धर्मविजय [है]।	वह

कालसी	२३३	हिदलोकिक्य .	पललो[५६]किक्ये	षवा	च	निलति	होतु	
गिरनार	२३४	. . . .	. . . . . .	. .	.	. . .	. .	
शहबाज़गढ़ी	२३५	हिदलोकिको	परलोकिको	सव्र	च	निरति	भोतु	य
मानसेरा	२३६	. . . . . .	. . लोकिके	सव्र	च	निरति	होतु	यु
संस्कृत-अनुवाद		ऐहलौकिकः	पारलौकिकः ।	सर्वा	च	निरतिः	भवतु	या
हिंदी-अनुवाद		इस लोक का [और]	परलोक का [है] ।	सब	और	आनंद	हो	जो

कालसी	२३७	उयामलति	षा	हि	हिदलोकिक		पललोकिक्या(२७)
गिरनार	२३८	. . . . .	.	.	इलोकिका	च	पारलोकिका च(१०८)
शहबाज़गढ़ी	२३९	स्त्रमरति	स	हि	हिदलोकिक		परलोकिक(४६)
मानसेरा	२४०	स्त्रमरति	स	हि	हिदलोकिक		परलोकिक(७२)
संस्कृत-अनुवाद		उद्यमरतिः। श्रमरति।	सा	हि	ऐहलौकिकी	च	पारलौकिकी च।
हिंदी-अनुवाद		उद्यम का आनंद [है]। श्रम का आनंद [है]।	वह	हि	इहलौकिक	और	पारलौकिक [है]।

[हिंदी अनुवाद]

अभिषिक्त होने के आठवें वर्ष देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंगों[1] को जीता। यहाँ से डेढ़ लाख प्राणी बाहर ले जाए गए, एक लाख आहत हुए और उससे अधिक (संख्या में) मरे। इसके अनंतर जीते हुए कलिंगों में देवताओं के प्रिय का खूब धर्मविस्तार, धर्मकामना और धर्मानुशिष्टि हुई। इस पर कलिंगों को जीतनेवाले देवताओं के प्रिय को बड़ा पछतावा होता है, (क्योंकि) जहाँ लोगों का वध, मरण या देश-निकाला हो उस देश को मैं जीतने पर भी नहीं जीता हुआ मानता हूँ। यह (वध आदि) देवताओं के प्रिय को अत्यंत दुःखद और भारी जान पड़ता है। यह देवताओं के प्रिय को और भी भारी जान पड़ता है (क्योंकि) वहाँ सर्वत्र ब्राह्मण, श्रमण तथा दूसरे धर्मवाले और गृहस्थ रहते हैं, जिनमें सबसे पहले भरण-पोषण विहित है, जिनमें मातापिता की शुश्रूषा, गुरु की शुश्रूषा, मित्र, परिचित, सहायक, संबंधी तथा नौकर चाकरों का उचित आदर और (उनकी ओर से) दृढ़ भक्ति का विधान है। ऐसे लोगों का वहाँ घात, वध, या सुख से रहते हुओं का देशनिकाला होता है। जिन सुव्यवस्थित लोगों का स्नेह नहीं घटा है उनके मित्रों, परिचितों, सहायकों तथा कुटुंबियों को दुःख होता है। (इसलिए) उनका भी उपघात होता है। यह दशा सब मनुष्यों की है पर देवताओं के प्रिय को यह अधिक दुःखद जान पड़ती है। कोई ऐसा जनपद नहीं है जहाँ ब्राह्मण और श्रमण आदि के अनंत संप्रदाय न हों। ऐसा कोई

(१) कलिंग—कलिंग प्रदेश के वासी। यह प्रदेश महानदी और गोदावरी नदियों के बीच में बंगाल की खाड़ी के पश्चिम किनारे पर है। आजकल के उड़ीसा प्रांत का यह पुराना नाम है। इस प्रदेश के प्राचीन इतिहास का बहुत कुछ पता खारवेल के अभिलेख से लगता है।

जनपद भी नहीं है जिसमें मनुष्यों की किसी न किसी धर्म में प्रीति न हो। जितने मनुष्य कलिंग-विजय (प्राप्ति) के समय आहत हुए, मारे गए और बाहर निकाले गए उनका सौवाँ अथवा हजारवाँ भाग भी (यदि) आहत होता, मारा जाता या निकाला जाता तो आज देवताओं के प्रिय को भारी दुःख देनेवाला होता। देवताओं के प्रिय का मत है कि जो अपकार करता है वह भी क्षमा के योग्य है यदि वह क्षमा किया जासके। जो वन-निवासी देवताओं के प्रिय के विजित देश में हैं उनको भी वह मनाता और उनका ध्यान रखता है कि जिसमें देवताओं के प्रिय को पछतावा न हो। वे अपने कर्मों पर लज्जित हों और नष्ट न हों। देवताओं का प्रिय सब जीवों की अक्षति, संयम, समचर्या, तथा प्रसन्नता चाहता है। जो धर्म की विजय है वही देवताओं के प्रिय की मुख्य विजय है। यह विजय देवताओं के प्रिय को यहाँ (अपने राज्य में) तथा सब सीमांत प्रदेशों में छः सौ योजन तक जिसमें अंतियोकस[1] नाम का यवन राजा तथा अन्य चार राजा—तुरमय[2], अंतकिन[3], मग[4] तथा असिकसुदर[5] (के राज्य) हैं तथा जिससे दक्षिण की ओर चोड़[6], पांड्य[7], ताम्रपर्णीवाले[8] हैं, प्राप्त

(१) अंतियोकस—देखो टि० ८, प्र० २।

(२) तुरमय—टालेमी फिलाडेलफस, मिस्र का राजा, ई० पू० २८५ से २४७ तक।

(३) अंतकिन—एंटीगोनस गोनटस, मेसिडोनिया का राजा, ई० पू० २७८ से २३९ तक।

(४) मग—मगस, सिरीनी का राजा जो टालेमी का भाई था। यह ई० पू० २८५ में स्वतंत्र हुआ और २५८ में मरा।

(५) असिकसुदर—एलेकजेंडर, एपिरस का राजा, ई० पू० २७२ से २५८ तक।

(६) चोड—चोल देखो टि० ३, प्र० २।

(७) पांड्य—देखो टि० ४, प्र० २।

(८) ताम्रपर्णी—देखो टि० ७, प्र० २।

हुई। यहां विष[1], वृज्जि[1], यवन[2], कंबोज[3], नाभितियों[4], भोजों[5], पैठनिकों[6], अंध्र[7], पुलिंद[8] आदि सब (के) देशों में देवताओं के प्रिय का धर्मानुशासन माना जाता है। जहां देवताओं के प्रिय के दूत नहीं जाते वहाँ के लोग भी देवताओं के प्रिय के धर्मवृत, धर्मविधान और धर्मानुशासन को (अपने राज्य में) सुनकर उसका अनुसरण करते हैं और (बराबर) करेंगे। अब तक (इस प्रकार की) जो विजय प्राप्त हुई है उस प्रेम की विजय से आनंद होता है पर यह आनंद हलका है। देवताओं का प्रिय उस (आनंद) को महा फलदायक मानता है जो परलोक से संबंध रखता है। इसी लिए मैंने यह धर्मलिपि लिखवाई कि जिसमें मेरे पुत्र और प्रपौत्र शस्त्रों द्वारा प्राप्त नई विजय को प्राप्त करने योग्य न मानें। शांति और लघुदंडता में रुचि रक्खें और धर्म की विजय को ही विजय समझें, (क्योंकि) वह इस लोक और परलोक (दोनों) में फलदेनेवाली होती है। उद्यम में रति ही सब प्रकार की जीत है (क्योंकि) वह इस लोक और परलोक (दोनों) में फल देनेवाली है।

---

(१) विष, वृज्जि—ये पुरानी जातियों के नाम हैं।

(२) यवन—देखो टि० ६, प्र० ५।

(३) कंबोज—देखो टि० ६, प्र० ५।

(४) नाभिती—इनका अबतक पता नहीं चला। अर्थशास्त्र में नाभाग नाम के एक प्राचीन राजा का उल्लेख मिलता है।

(५) भोज—भोजों का राज्य, विदर्भ, आधुनिक बरार के इलिचपुर में था।

(६) पैठनिक—देखो टि० ७, प्र० ५।

(७) अंध्र—यह एक अत्यंत प्राचीन जाति है जिसने अशोक की मृत्यु के उपरांत एक प्रभावशाली राज्य स्थापित किया था। यह राज्य ४०० वर्ष से अधिक तक वर्तमान रहा।

(८) पुलिंद—इनसे तात्पर्य जंगली जातियों से जान पड़ता है।

१३—भूपति कवि।

[लेखक—पंडित भागीरथप्रसाद दीक्षित, काशी]

भाद्रपद १९७९ की सम्मेलन पत्रिका, भाग १०, अंक १ में लाला भगवानदीनजी ने भूपति कविकृत भागवत दशम स्कंध का निर्माण-काल तथा कवि का परिचय देने की कृपा की है। इससे पूर्व श्रावण सं० १९६८ की सरस्वती में मुंशी देवीप्रसादजी का इसी संबंध में एक महत्व-पूर्ण लेख निकल चुका है परंतु विद्वन्मंडली ने इसे पर्याप्त न समझा और न इस पर अब तक कोई विचार ही किया।

भूपति कवि के समय आदि के विषय में किस प्रकार भ्रम फैला है उसे दिखाना तथा अब तक जो जो मत प्रकाशित हुए हैं उनपर विचार करना इस लेख का उद्देश है। भूपति-कृत भागवत दशम स्कंध का रचना-काल सं० १३४४ मान लेने के कारण कवि को चंद बरदाई के पश्चात् प्राचीनता के विचार से दूसरा पद प्राप्त होता है।

उक्त ग्रंथ की अब तक तीन प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

(१) बाबू कृष्णप्रसादसिंह रईस, गोरखपुर द्वारा प्राप्त, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा में रक्षित। लि० का० सं० १८५७।

(२) पंडित केदार नाथ पाठक, पुस्तकाध्यक्ष, आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी के पास, सं० १८५८ की लिखी हुई।

(३) मुंशी देवीप्रसादजी, मुंसिफ, जोधपुर के यहाँ की प्रति, सं० १८५५ की लिखी।

इनमें से प्रथम कैथी लिपि में अशुद्ध और अपूर्ण है और शेष दोनों फारसी अक्षरों में पूर्ण और शुद्ध हैं।

नं० ३ की प्रति अन्य प्रतियों की अपेक्षा कुछ प्राचीन है।

(१) नं० १—यह प्रति नागरीप्रचारिणी सभा को सं० १९५९

(सन् १९०२ ई०) की खोज में गोरखपुर से प्राप्त हुई थी। इसको एक काशी-वासी अल्पज्ञ लेखक ने फारसी अक्षरों से कैथी लिपि में लिखा था, जिससे भाषा में इतनी अशुद्धियाँ हो गई कि लोग अठारहवीं शताब्दी की कविता को चौदहवीं शताब्दी की कविता समझने लगे। फारसी अक्षरों में सत्रह और तेरह लिखने में अंतर भी थोड़ा ही होता है अतः प्रतिलिपि-कर्ता के सत्रह को तेरह लिखने ही से भूलों की यह शृंखला प्रारंभ होती है। लेखक के और लिपि के दोष से बाबू श्यामसुंदरदास ने, जिन्होंने उस वर्ष की हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की रिपोर्ट लिखी है, यह धोखा खाया और सं० १९५९ की रिपोर्ट के नोटिस नं० ११५ पर अशुद्ध रूप में ही कुछ पद्यभाग प्रकाशित कर दिया। यहीं से इस भ्रम का आरंभ होता है। सभा का खोज का कार्य बहुत प्रशंसनीय है, उससे प्राचीन हिंदी साहित्य की बहुत रक्षा हुई है। यदि उक्त बाबू साहब भूपति के रचना-काल के साथ ही उसकी भाषा आदि पर भी विचार कर लेते तो लोगों को इतना न भटकना पड़ता। कदाचित् एक अपूर्व पुस्तक की प्राप्ति के उमंग में उन्होंने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया, नहीं तो इतना भ्रम न फैलता।

(२) पंडित केदारनाथ पाठक ने नागरीप्रचारिणी लेखमाला सं० १९६७, भाग १, संख्या ३–४ में वोपदेव पर एक लेख छपवाया था उसमें भी उक्त मत का समर्थन किया गया है।

(३) मिश्र-बंधु-विनोद के पृष्ठ २३६ पर भी खोज की रिपोर्ट से ही कुछ और भी अशुद्धियों के साथ वही कविता उद्धृत की गई। यदि मिश्र-बंधु महोदय चाहते तो मुंशी देवीप्रसादजी के श्रावण सं० १९६८ की सरस्वती के लेख से संशोधन कर सकते थे, क्योंकि मिश्र-बंधु-विनोद उस लेख से दो वर्ष पीछे सं० १९७० में छपा था। कदाचित् उन्हें मुंशीजी के लेख का पता न चला हो इसलिये वे इस संशोधन को न कर सके।

(४) हिंदी फाइनल रीडर के पृ० ३९ पर वही कविता मिश्र-बंधु-विनोद से ली गई है अतः उसमें भी भूल होना अनिवार्य था।

(५) चर्च मिशन, जबलपुर के पादरी मिस्टर एफ़० ई० के, एम० ए० ने भी अपने 'हिंदी लिटरेचर का इतिहास' नामक ग्रंथ में पृष्ठ १८ पर प्रारंभिक कवियों में भूपति को भी खीष्टाब्द १२८७ का ही माना है। पादरी महाशय की अशुद्धि सर्च रिपोर्ट, मिश्र-बंधु-विनोद और कविताकौमुदी आदि के ही आधार पर हुई है परंतु विदेशी होते हुए आपने जो हिंदी की सेवा की है वह बहुत प्रशंसनीय है।

(६) अंतिम भूल लाला भगवानदीनजी से हुई। मिस्टर एफ० ई० के-रचित हिंदी लिटरेचर के इतिहास की समालोचना करते हुए भाद्रपद सं० १९७८ की 'श्रीशारदा' में भूपति कवि के विषय में आप लिखते हैं। "पेज १८' में भूपति का होना तेरहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में लिखा है। यह भूल मिश्रबंधुओं से ली गई है। भूपति कवि अमेठी के राजा थे और ये महाशय अठारहवीं शताब्दी में हुए हैं। इनका नाम गुरुदत्तसिंह था। मिश्रबंधुओं ने अमेठी के राजा और भूपति को पृथक् पृथक व्यक्ति समझकर गलती की है। वही भूल इसमें मौजूद है। यद्यपि ४७ पेज में भूपति उपनाम से राजा गुरुदत्त-सिंह का जिक्र किया है पर दोनों व्यक्ति अलग अलग न थे एक ही थे।"

लाला भगवानदीनजी ने एक भूल के सुधारने का उद्योग तो किया पर दुःख का विषय है कि उस उद्योग में वे स्वयं भ्रम में पड़ गए और दूसरी भूलें कर गए। न तो ये भूपति कवि अमेठी के राजा थे, न राजा गुरुदत्तसिंह उपनाम भूपति और ये भूपति एक ही हैं, और न मिश्रबंधुओं ने ही राजा गुरुदत्तसिंह (भूपति) और इस भूपति को अलग मान कर भूल की है। यदि लालाजी कुछ भी परिश्रम कर दोनों का रचना-काल देख लेते तो ऐसी भूल न होती। राजा गुरुदत्तसिंह (भूपति) का कविता-काल सं० १७९९ और भूपति कवि का सं० १७४४ है। ५५ वर्ष का अंतर भिन्न भिन्न कवि मानने के लिये पर्याप्त है।

सम्मेलन-पत्रिका वाले लेख में लाला भगवानदीनजी ने अपनी भूल

को सुधार दिया है परंतु अपनी पूर्व भूल का कहीं उल्लेख नहीं किया है। अब पाठकों को विदित हो गया होगा कि भूल की शृंखला कहाँ से प्रारंभ होकर कहाँ तक किस प्रकार से पहुँची है।

नं० २ की भागवत में कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

भूपति जिन हरि लीला गाई। परम पुनीत सदा सुखदाई॥
ताहि उनायो कायथ जानो। लेखराज को सुत पहिचानो॥
तिनके पिता हरिहि मन लायो। विट्ठलदास नाम जिन पायो॥
कन्हरदास जो उनके भैया। तिनके मन में बसै कन्हैया॥
जिन गृह करे इटाये माहीं। रहे आप राजन के पाहीं॥
कृष्णदास के सुत जग जाने। जे सब कृष्णदास कर माने॥
कन्हर दास भये बड़ भागी। जिनकी मति कन्हर सों लागी॥
तिनि के वंश जनम धरि आयो। भगत अंश तिनको अब पायो॥
दोहा—गुण निधान के प्रेम तें बानी भई प्रकास।
भव विधान की बुधि दई जानि आपनो दास॥

इससे विदित होता है कि भूपति कवि इटावा-निवासी उनायो कायस्थ लेखराज के पुत्र और विट्ठलदास के पौत्र थे।

कवि ने अपने गुरु का परिचय भी इस प्रकार दिया है—

अब हौं गुरु की महिमा कहौं। जिहि माहीं पूरन पद लहौं॥
जिनको मेघश्याम शुभ नामा। सुमिरत सुनत होत बिसरामा॥
परम प्रवीण पुनीत गुसाईं। भगत रीति प्रगटी सब ठाईं॥
तिनके पिता भगत पद पायो। जिनि दामोदर नाम धरायो॥
कंगल भट्ट प्रसिद्ध बखानी। गुन मंगल सुरगन की जानी॥
तिनिके वंश जनम उन लीनो। वही अंस हरि उनको दीनो॥
प्रथम तिलंग देस के बासी। मथुरा बसि कै भगति प्रगासी॥
हरि नागर को नाँव सुनावै। भवसागर तै पार लगावै॥

अंत में ग्रंथ का निर्माण काल इस प्रकार दिया है—

दो०—संवत् सत्रह सै भये चार अधिक चालीस।
मृगसिर की एकादसी सुद्ध वार रजनीस॥ १॥

दच्छिन देस पुनीत किय, अति पूरन भगवान ।
जो हित सों गावै सुनै, पावै पद निरवान ॥ २ ॥

इससे यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि भूपति कवि दक्षिण तैलंग देश के निवासी कंगल भट्ट के वंशज दामोदर भट्ट के पुत्र गोस्वामी मेघश्याम के शिष्य थे, जो कि मथुरा में रहते थे। दक्षिण देश में रहकर सं० १७४४ में कवि ने भागवत दशम स्कंध भाषा नामक ग्रंथ की रचना की।

नं० ३ की फारसी लिपि वाली प्रति में भी उपरोक्त कविता बहुत थोड़े अंतर से पाई जाती है, नाम स्थान और संवत् आदि में कोई अंतर नहीं है। श्रावण सं० १९६८ की सरस्वती में उपरोक्त कविता उद्धृत की गई है।

नं० १ की प्रति में प्रारंभ के पृष्ठ नष्ट हो जाने से कवि और उसके गुरु के परिचय का वर्णन नहीं मिलता। केवल निर्माणकाल इस प्रकार दिया गया है—

दो० (१) संमत तेरह सै भए चारी अधीक चालीस ।
मरगेसर सुध एकादसी बुध बार रजनीस ॥
(२)........देस पुनीत भे पुरन भाखो पुरान ।
जो हीत सो गावै सुनै पावै पद नीवान ॥

इसके पश्चात् भागवत के उन छंदों को जो सं० १९५९ की रिपोर्ट में नं० १ की कैथी लिपि वाली प्रति से लिए गए हैं देकर उसका शुद्ध रूप नं० २ की प्रति से भी उद्धृत किया जाता है जिससे दोनों का अंतर स्पष्ट प्रतीत हो जायगा।

नं० १ की कैथी प्रति से उद्धृत

(१) ताको तुम कीजो जो जानो। एतनो बचन हमारो मानो ॥
(२) जबइ आवींधी बहनोई कहो। कंस बहीनी मारन ते रहो ॥
(३) करो कोट राखे तव दोऊ। तीन ढीग जान न पावै सोऊ ॥
(४) दुनों के पग वेरी डारी। चौहु दीस बहु चौकी बैठारी ॥

नं० २ की फारसी लिपि वाली प्रति से—

(१) ताको तुम कीजो जानो । इतनो वचन हमारो मानो ॥
(२) जब बहनोई या बिधि कह्यो । कंस बहिन मारन तें रह्यो ॥
(३) करा कोट तब राखे दोऊ । तिन ढिंग जान न पावै कोऊ ॥
(४) दोऊ के पग बेरी डारी । चहुँ दिसि बहु चैाकी बैठारी ॥

अब नं० १ की कैथी प्रति, रिपोर्ट सं० १९५९, मिश्र-बंधु-विनोद, और लालाजी के सम्मेलन-पत्रिका के लेख का पाठांतर दिखाकर इसपर संक्षेपतया विचार करके अपनी सम्मति भी प्रगट कर दी जायगी।

	नं०१ की कैथी प्रति का पाठ ।	रिपोर्ट का पाठ ।	फारसी प्रति नं०२ का पाठ ।
दूसरी पंक्ति—	आवीधी	आवीची	या विधि
,,	मारन ते रहो	मारने रहो	मारन तें रह्यो
चैाथी पंक्ति	चैाहु दीस	चैाहु दीस	चहुँ दिसि
संबत का दोहा	सुध	सुद	सुध
स्थान का दोहा	देस पुनीत भे	दिस पुनीत भे	देस पुनीत
,,	पुरन भाखो पुरान	पुरन लाओ पुरान	अति पूरन भगवान

	रिपोर्ट का पाठ	मिश्र-बंधु-विनोद का पाठ
तीसरी पंक्ति	राखे तव दोऊ	राखे तन दोऊ
,,	तीन ढीग	तिन ढिग
चैाथी पंक्ति	दुनों के पग	दूनों के पग
,,	चैाउ दीस	चैा दुदीस
संवत् का दोहा	चारो अधीक	चार अधिक
,,	वुधवार रजनीस	वृद्धवार रजतीस

नोट—मिश्र बंधु-विनोद का शेष पाठ रिपोर्ट सं० १९५९ के पाठ के समान है।

	लालाजी के लेख का पाठ	नं० २ की फारसी लिपि-वाली प्रति का पाठ
तीसरी पंक्ति	कारा कोटहिं राखे दोऊ	करा कोट तब राखे दोऊ
संवत् का दोहा	सुदी वार रजनीस	सुद्ध वार रजनीस
निर्माण स्थान का दोहा	अति किय पूरण भगवान,	अति पूरन भगवान

पंचांग का निर्णय

मार्गशिर शुक्ल ११ सं० १३४४ को ज्योतिष के गणनानुसार चंद्रवार आता है परंतु नं० १ की प्रति में बुद्धवार दिया है अतः सं० १३४४ को निर्माण काल मानना अशुद्ध है।

इसी प्रकार मार्गशिर शुक्ल ११ सं० १७४४ को ज्योतिष-गणना के विचार से सोमवार ही आता है जैसा कि नं० २ तथा नं० ३ की प्रति में दिया हुआ है। ज्योतिषविद् पंडित बालरुचिजी के उद्योग से सं० १७४४ का पंचांग भी, मुहूर्त चिंतामणिकार के वंशजों के यहाँ से हस्तगत हो गया अतः उसके आधार पर उस तिथि का पूरा पंचांग यहाँ उद्धृत किया जाता है—

मार्गशिर शु०		तिथि		वार	नक्षत्र
,,	,,	१०	२–३६	रवि	अश्विनी ४४–५०
,,	,,	११	५७–२४	,,	
		११	००–२४	चंद्र	
,,	,,	१२	५३–५९	चंद्र	भरणी [illegible]–९

नोट—भूपति कवि ने वैष्णव होने के कारण चंद्रवार को ही एकादशी मानी है क्योंकि वैष्णव लोग द्वादशीविद्धा एकादशी ही मानते हैं।

(१) नं० १ की सभावाली प्रति को ध्यानपूर्वक देखने से प्रतीत होता है कि उसकी भाषा प्राचीन नहीं है बल्कि परिष्कृत

हिंदी है, उसमें जो रूप पाये जाते हैं वे अपभ्रंश भाषा की अपेक्षा आधुनिक व्रज भाषा से अधिक मिलते हैं।

(२) कवि के व्रजवासी कायस्थ होने तथा प्राचीन प्रतियाँ फारसी अक्षरों में मिलने के कारण विदित होता है कि कवि ने अपना ग्रंथ व्रज भाषा और फारसी लिपि में ही लिखा होगा। नं० २ और नं० ५ की प्रतियाँ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। उस समय तक कायस्थों पर मुसलमानी सभ्यता का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। अब भी बहुत से कायस्थ संध्या आदि धर्म-ग्रंथ फ़ारसी अक्षरों में लिखकर ही प्रयोग में लाते हैं। अतः इन बातों से भी उक्त मत का हीं समर्थन होता है।

(३) नं० १ की प्रति के लेखक ने हिंदी के पूर्वी प्रांत काशी का निवासी और अल्पज्ञ होने के कारण व्रजभाषा को अवधी का रूप दे दिया है। आवीधी, जवइ, बहीनी और चारी शब्द ही इस के उदाहरण स्वरूप हैं; अवधी भाषा में उच्चारण की प्रवृत्ति ईकारांत की ओर ही अधिक पाई जाती है। इस प्रति में सर्वत्र ह्रस्व उकार की मात्रा ही पाई जाती है दीर्घ ऊकार की मात्रा का प्रयोग कहीं नहीं पाया जाता। ऊकार मात्रा वाले शब्दों को भी ह्रस्व करके लिखा गया है, और शब्दों में भी ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व करने के उदाहरण बहुतायत से पाये जाते हैं, अतः प्रति को अशुद्ध मानने में कुछ भी संदेह नहीं रहता।

(४) कवि ने इस ग्रंथ में "व्रजभाषा" शब्द का प्रयोग किया है जिसका प्रयोग प्राचीन ग्रंथों में नहीं पाया जाता, सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात् के ग्रंथों में ही दिखाई पड़ता है।

(५) निर्माण-काल के दोहे से भी यही प्रगट होता है कि यह ग्रंथ विक्रम अठारहवीं शताब्दी का ही बना हुआ है। नं० १ की प्रति के प्रतिलिपिकर्ता की भूल से सत्रह को तेरह

पढ़ने के कारण ही साहित्य संसार में यह भ्रांति फैल गई जैसा कि वर्णन किया जा चुका है ।

(६) सन् १९०६-८ की त्रैवार्षिक खोज की रिपोर्ट के नोटिस नं० १३८ पर इन्हीं भूपति कवि कृत 'रामचरित्र रामायण" नामक ग्रंथ और भी बतलाया गया है परंतु उस प्रति में निर्माण-काल तथा लिपि-काल कुछ भी नहीं है । पटियाला: वाले भूपति कृत एक 'रामचरित्र रामायण' का नाम मिश्र-बंधु-विनोद में दिया हुआ है । ये ग्रंथ भी भूपति कवि की प्राचीनता नहीं सिद्ध करते; इसलिये इनके आलोच्य भूपति कृत होने में भी संदेह है ।

(७) उपरोक्त प्रमाणों से पाठकों को यह भली भाँति विदित होगया होगा कि भूपति कवि कृत दशम स्कंध भागवत सं० १७४४ में ही बना था । उसको प्राचीन ग्रंथ मानना भ्रांति मात्र है । प्रति नं० १ के लिपि-कर्ता ने तो अत्यधिक भूलें की ही थीं उससे भी अधिक अशुद्धियाँ सभा की रिपोर्ट में हो गईं और रिपोर्ट से भी अधिक अशुद्धियाँ मिश्र-बंधु-विनोद में पाई जाती हैं ।

इसके विपरीत लालाजी ने कुछ अंश शुद्ध प्रति नं० २ से लेकर और उसको अधिक परिमार्जित करके सम्मेलन-पत्रिका में दे दिया, इस कारण तत्कालीन भाषा का मूल रूप नष्ट हो गया । हमने मूल ग्रंथों के ज्यों के त्यों अवतरण देने का प्रयत्न किया है । आशा है विज्ञ पाठक निष्पक्ष रीति से भूपति कवि के विषय में सम्मति स्थिर करने का प्रयत्न करेंगे ।

(८) गोस्वामी की उपाधि वैष्णवों के चारों संप्रदायों के उत्पत्ति-काल से ही प्रारंभ हुई है अतः गोस्वामी शब्द सोलहवीं शताब्दी के पूर्व व्यवहृत नहीं होता था, इसलिये दशम स्कंध

भागवत भाषा को भूपति कवि द्वारा चौदहवीं शताब्दी में निर्मित मानना नितांत असंगत है।

(९) ज्योतिष कीगणना भी सं० १७४४ के अनुसार ठीक मिलती है और १३४४ के विरुद्ध है।

(१०) श्रीमान् पूज्यपाद गोस्वामी राधाचरण जी से विदित हुआ कि गंगल भट्ट कंगल भट्ट का अपभ्रंश है। विक्रमी सोलहवीं शताब्दी में ये श्रीनिम्बार्क संप्रदाय की गद्दी पर थे। ये श्रीकेशव काश्मीरी के गुरु थे। इन भट्टों की गद्दी पर अब ध्रुवस्थल मथुरा में गौड़ ब्राह्मण और विरक्त वैष्णव पृथक पृथक विराजमान हैं। भूपति कवि अठारहवीं शताब्दी में हो सकते हैं, चौदहवीं में नहीं।

(११) अठारहवीं शताब्दी से पूर्व की लिखी हुई उक्त भागवत की कोई प्रति अब तक प्राप्त नहीं हुई।

इस लेख के लिये सामग्री एकत्र करने में पंडित केदारनाथ जी पाठक से और ज्योतिष संबंधी सहायता ज्योतिर्विद् पंडित बालरुचिजी से प्राप्त हुई है अतः उन सज्जनों का मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ।

१४—मंडलीक काव्य

अर्थात्

सुराष्ट्र के इतिहास पर कुछ नया प्रकाश।

[लेखक—पंडित जयचंद्र विद्यालंकार, लाहौर]

सुप्रसिद्ध प्रबंधचिंतामणि के संपादक श्रीरामचंद्र दीनानाथ शास्त्री ने उक्त पुस्तक के टिप्पणों में गंगाधरकृत मंडलीक नृपचरित्र का उल्लेख किया है। श्री पंडित गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा ने भी अपनी पुस्तिका "भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री" में इस काव्य का नाम और परिचय दिया है। पिछले दिनों हमें अपने श्रद्धेय गुरु श्री ओझाजी के पास इस काव्य की एक हस्तलिखित प्रति देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके सिवाय श्री ओझाजी से इस काव्य के विषय में कुछ नोट भी हमें मिले जो उन्होंने अपनी काठियावाड़ यात्रा में भावनगर के स्वर्गीय (दीवान) विजयशंकर गौरीशंकर ओझा की पुस्तक से लिए थे। यद्यपि ये नोट बड़ी सरसरी तौर पर लिए गए थे तो भी कुछ स्थलों में हमें इनसे अच्छी मदद मिली है।

इस काव्य का नायक मंडलीक जूनागढ़ के यादव चूडासमा वंश का एक राजा है। उसका नाम और उसके पूर्वजों और वंशजों के नाम अन्य स्रोतों से भी मिल चुके हैं। प्रस्तुत काव्य में यद्यपि कोई तिथि नहीं है, तो भी वह इस राजा के ही दरबार में लिखा गया प्रतीत होता है। कवि ने अपने नाम के सिवाय अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया। काव्य के अंत में सिर्फ़ इतना ही लिखा है—इदममृतकलावत्कोमलं...कलियुगकविजेत्राकारिगंगाधरेण।

काव्य की जो प्रति हमारे देखने में आई उसके लिये लैनमन का प्रयोग "अपपाठस्खलितरत्नाकर" बहुत कोमल होगा। पहले, दूसरे

और चौथे सर्गों के सिवाय शेष समूची पुस्तक में शब्दों का ऐसा अंगभंग हुआ है कि इन्हें पहचानना हीं कठिन हो गया है। तौं भी ऐतिहासिक अंश में विशेष चति नहीं हुई।

कथा।

काव्य में कुल दस सर्ग हैं। पहले सर्ग में मंगलाचरण के साथ ही गिरनार पर्वत का मनोहर वर्णन शुरू हो जाता है[1]। तीन चोटियां होने के कारण इस पर्वत के तीन नाम हैं—उज्जयंत, रैवतिक (या रैवत) और कुमुद[2]। रैवत के भिन्न भिन्न भागों में कई देवताओं के स्थान हैं[3]। इसी पर्वत के मस्तक से स्वर्णरेखा[4] नदी नीचे उतरी है (श्लोक ९)।

ग्यारहवें श्लोक के दूसरे पाद से लेकर ३५वें श्लोक के अंत तक का भाग हमारी पुस्तक में नहीं है, किंतु इसमें पर्वत का ही वर्णन है, क्योंकि ३६वें श्लोक से फिर वही जारी है। कहा है कि इसी पर्वत का नाम गिरिनारायण भी है, क्योंकि यह पर्वतों में नारायण के समान है (श्लोक ३७)।

३८ वें श्लोक से जीर्णदुर्ग (जूनागढ़ का) मनोहर वर्णन चलता है, जिसमें नगर की रचना, उसकी रक्षा के प्रबंध और व्यापार आदि का उल्लेख है। किले के वर्णन प्रसंग में कहा है[5] कि वह

(१) अस्ति स्वस्तिकरः श्रीमान् पर्वतः सर्वतः श्रुतः।
त्रिकूटकूटसङ्क्रूढब्रह्मविष्णुशिवात्मकः॥ श्लो० १॥

(२) शिखरत्रयभेदेन नामभेदमगादसौ।
उज्जयन्तो रैवतिकः कुमुदश्चेति भूधरः॥ श्लो० २॥

(३) अम्बिका मस्तकं यस्य ललाटं निमिषेश्वरः।
अभ्यन्तरं भवो बाहू ब्रह्मदामोदरौ स्थितौ॥ श्लो० ८॥

(४) रुद्रदाम के गिरनार के शिलालेख में इस नदी का नाम सुवर्णसिकता आया है, और इसके साथ पलाशिनी का नाम भी है। (एपिग्राफ़िआ इण्डिका, जि० ८, पृ० ४२)

(५) यद्दुर्गमकरीयन्त्र पूपकागुलिदम्भतः।
प्रतिभूपतिसैन्यानि तर्जयत्यतिगर्जितम्॥ श्लो० ४३॥

अपने "मकरीयंत्र" की "पूपकागुलियों"[1] की गर्ज से शत्रु की सेना को मानो डांट देता है।

४६ वें श्लोक से नगर के व्यापार का वर्णन है। चावल, गेहूं, मूंग, माष, घी, दूध, दही और विचित्र वस्त्रों के उल्लेख के बाद मोतियों, जवाहरों की और कुंकुम, कस्तूरी, कर्पूर, अगर और चंदन की दूकानों पर कवि की कल्पना खूब विनोद करती है।

६६ वें श्लोक से ऐतिहासिक वृत्तांत का आरंभ इस प्रकार होता है—उस जीर्ण दुर्ग में यदुकुल का खंगार नामी राजा राज्य करता था (श्लो० ६६)। इस राजा की सीमा में गोहिल से लेकर झल्ल तक ८४ सामंत थे (श्लो० ६८)। प्रभासपत्तन[2] में यवनों को मारकर इसीने सोमनाथ के मंदिर का जीर्णोद्धार किया था[3]। इस राजा का पुत्र जयसिंह था "जिसने युद्ध में यवन राजाओं के हाथियों की घटाओं को छिन्न भिन्न कर डाला था[4]।" जयसिंह का पुत्र मोकलसिंह (श्लो० ८०) और उसका मेलिग (श्लो० ८२) या मेलग (श्लो० ८५) था। इस मेलग ने मुसलमानों के डर से भाग कर आए हुए झल्ल (झाला) कृष्ण को शरण दी थी और सुलतान अहमद के इसके किले को घेरने पर उसे पकड़कर उसका सब कुछ लूट लिया था।[5]

---

(१) प्राचीन काल में पत्थर फेंकने का एक यंत्र युद्ध में काम आता था, जिसे फारसी में मंजनीक और अंग्रेजी में Catapult कहते हैं। यही मकरीयंत्र होगा। पंडित गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा से हमें मालूम हुआ है कि जूनागढ़ के किले में अब भी पत्थर के गोलों के, जिनमें से किसी किसी का वज़न एक मन तक भी है, तहखाने भरे पड़े हैं।

(२) आधुनिक वेरावल पत्तन जहां सोमनाथ का मंदिर है।

(३) प्रभासपत्तने येन हत्वा यवनभूपतीन्।
श्रीसोमनाथप्रासादजीर्णोद्धारः कृतः कलौ ॥ श्लो० ६१ ॥

(४) तस्याभूत्तनयः श्रीमान् जयसिंह इति श्रुतः।
येन यावनराजेभघटा विघटिता रणे ॥ श्लो० ७७ ॥

(५) यवनेन्द्र भयायातझल्लकृष्णस्य रक्षणम्।
कुर्वता येन सहसा मही निर्यवनीकृता ॥ श्लो० ८७ ॥

मेलग का पुत्र महीपाल था (श्लो० ८९), जिसने द्वारिका जानेवाले जूनागढ़ियों के लिये रास्ते में अन्नसत्र खुलवा दिए थे (श्लो० ९३)। महीपाल के बहुत काल तक कोई पुत्र नहीं हुआ, इसलिये एक दिन उसने दामोदर की स्तुति की। भगवान् ने प्रसन्न होकर उसे मनोरथ सिद्ध होने का वर दिया। इस प्रकार "अचलान्वयाभिधान" नामक पहले सर्ग की कथा समाप्त होती है।

कुछ समय पीछे महीपाल के एक पुत्र हुआ जिसका नाम मंडलीक रक्खा गया। बड़ा होने पर चंद्रवंशोचित कर्त्तव्य की शिक्षा के लिये उसके पढ़ने का प्रबंध किया गया। समय पाकर उसकी देह पर जवानी का रंग आया, जिसके वर्णन में कवि ने पूरा कौशल दिखाया है। महीपाल अपने पुत्र के विवाह का विचार करने लगा। मंत्रियों से सलाह माँगने पर उसे उत्तर मिला कि यद्यपि तुम्हारे कुल के ठीक अनुरूप तो हमें कोई क्षत्रिय घराना नहीं दिखाई देता, तो भी गोहिल राजा भीम का पुत्र अर्जुन, जिसने तुर्क तीरंदाज़ों की सेना को अपने तेज से भस्म किया है, कुल में कुछ कुछ तुम्हारे बराबर है।[1] उसकी कुंता नाम की एक सर्वगुणसंपन्ना लड़की है। वह अर्जुन तो तुर्क बादशाह की बहुत सी सेना को मारकर युद्धक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ है, किंतु उसका गोद लिया छोटा भाई डुद (या दूदा) उसके पीछे राज्य करता है[2] जो अपनी भतीजी को पुत्री के समान पालता है और वही लड़की मंडलीक के लिये योग्य बधू होगी।

योऽहम्मदसुरत्राणं निजदुर्गग्रहाग्रहम्
न्यग्रहीद्व्यग्रहीन्नूनं तत्सर्वस्वं समग्रहीत् ॥ श्लो० ८८ ॥

(१) कुलेन किंचित्सदृशो हि राजन् गोहिलभीमक्षितिपालपुत्रः ।
राजार्जुनो योऽर्जुनतुल्यतेजा(स्)तुरुष्कधानुष्कबलान्यधाक्षीत् ॥ ५१ ॥

(२) स चार्जुनक्षोणिपतिस्तुरुष्कनाथस्य सैन्यानि बहूनि हत्वा ।
स्नात्वारिनिस्त्रिंशजलेन देवो दिव्याङ्गनालिङ्गनलालसोऽभूत् ॥ ५२ ॥
तस्यानुजः शास्ति तदीयराज्यं तेनैव पुत्रत्वपदेऽभिषिक्तः ।
..............डुदावनीशः सदुदारचित्तः ॥ पद्यः ५४ ॥
५४ वें पद्य का तीसरा पद स्पष्ट नहीं है, चौथे का पहला अक्षर शायद 'द' है।

महीपाल को यह सलाह पसंद आई और मंडलीक का शीघ्र ही विवाह हो गया। दूसरे सर्ग की कथा यहाँ पूर्ण होती है।

तीसरे सर्ग से पाठ में गड़बड़ शुरू हो जाता है और कहीं कहीं तो भाव मुश्किल से मालूम होता है। कथा का आरंभ मंडलीक के यौवराज्याभिषेक से होता है। दसवें पद्य में आस पास के राजाओं का उसके पास कर रूप में अनेक रत्न लाने का उल्लेख है। ग्यारहवें पद्य से एक घटना का वर्णन चलता है जो कुछ मुश्किल से समझ में आती है। संक्षेप से घटना इस प्रकार प्रतीत होती है—

परले समुद्र का स्वामी राजा संगण कर भेजना बंद कर देता है और मंत्री के भेजे हुए पत्र का निरादर करता है[1]। महीपाल इस बात का पता पाने पर बहुत नाराज़ होता है और मंडलीक उससे संगण पर आक्रमण करने की आज्ञा माँगता है। जल्द ही वह फौज के साथ उस पर जा टूटता है। अचलाधिप (मंडलीक) और जलधीश्वर (संगण) की फौजें टकरा जाती हैं[2]। लड़ाई में संगण घोड़े से गिर पड़ता है और कर देना स्वीकार करता है। मंडलीक विजयलक्ष्मी के साथ लौट आता है।

तेइसवें पद्य में यह वृत्तांत समाप्त होता है और छब्बीसवें से एक नई घटना का वर्णन चल पड़ता है जिसमें और भी अधिक अस्पष्टता है। ऐसा मालूम होता है कि मुसलमान बादशाह का कोई दूत महीपाल के पास आता और दूदा की शिकायत करता है[3]। शिकायत यह है कि तुम्हारे पुत्र का श्वसुर तुम्हारे संबंध के बल पर मेरी भूमि छीनता जाता है जिसका तुम्हें अपने वचन के

(१) न र(स)माहरत्करमुदारकरप्रियहेतवे परसरित्पतिपः (?)।
नृपसंगणो(ऽ)वगणयत्सचिवप्रहितं च पत्रमपरप्रवितः.(?) ॥ पद्य ११॥

(२) अचलाधिपस्य कटकं सहसा जलधीश्वरस्य कटकं च मिथः ॥१७॥

(३) यवनेश्वरेण यवनोद्गवनो (?) महिपालभूपनिकटं प्रहितः।
स गभीरवागकथयन्मथतं (?) दुदभूमिपेन वचनाद्विकुत्तं (?)॥ प० २६ ॥

अनुसार निवारण कराना चाहिए[1]। राजा महीपाल इसका यह उत्तर देता है कि बादशाह के मित्र का जो शत्रु है वह हमारा भी शत्रु है, यवन राजा से कहो कि उसके कष्ट को हम शीघ्र शमन करेंगे[2]। यवन के चले जाने पर महीपाल अपने मंत्री के साथ विचार करता है कि कलियुग में इन यवनों की शक्ति बहुत बढ़ गई है, किन किन राजाओं की भूमि इन्होंने नहीं जीत ली? मेरे पूर्वजों ने यवनों को बुरी तरह सताया था, तब से ये लोग यदुवंश के साथ बैर नहीं करते;[3] अब यवनेश्वर से लड़ना भी उचित नहीं है, और दूदा भी हमारा संबंधी है, इसीसे मेरा मन संशयाकुल है। मंत्री इस पर एकदम उत्तर देता है कि जिस यवन ने इतनी बड़ी घुड़सवारों की फौज से जगत् को जीत लिया है वह तुम्हारी मैत्री चाहता है, इससे अधिक और क्या चाहिए? जिस तरह बने हमें उसका प्रिय करना चाहिए;

---

(१) भवतः सुतश्वसुर एष मदान्मम राजमंडलमदर्संमसा।
प्रसते श्रितः प्रतिपदंतिकतः स निवार्य तां समयवद्भवता ॥ प० २७ ॥
भवतो बलेन मम लोकममी ग्लपयंति भूमिपदुदादिनृपाः।
यम किंकरा इव समेत्य सदा न कदापि दृक्पथमिताः प्रमिताः (?) ॥प० २८।
मम ते पि सौहृदमदः प्रमदाः प्रमदा इव प्रतिहरंति परं (?)।
अपरं कदापि रुप्यं सुखदास्तव वास्तव संसमीमनसि दुष्टधिवो (?) ॥प० २९॥
अठाइसवें पद्य में गोहिल राजा का नाम स्पष्ट रूप में दुद लिखा है, अन्य स्थानों पर डुद या दुद पढ़ा जा सकता है।

(२) तमवीवदन्नरपतिर्यवनं पवनं मुखेन दधत्तं (?) वचने।
यवनेश्वरस्य सुहृदा विमतो विमतो ममापि न हीनौ(न हि नो?)विमतिः।प० ३०।
तदुसुक निष्ट..म(?) स्वसहोदरस्य निकटं सुभटं।
गमयाभियाति च तदीयपुरं परिदग्धुकाम इव दोर्महसा ॥ प० ३१ ॥
प्रज(व्रज) यावनावनिपतिप्रवरं मडु(दु)दीरितं कथय सर्वमिदं।
भवदुद्यमं सुफलतां गमये य(भ)वदापदं दुदकृतां स(श)मये ॥ प० ३२ ॥

(३) कलिकालवर्द्धितबलादचलैर्यवनैर्न विग्रहकथा सुखदा।
कियतामनेन यवनप्रभुणा पृथिवीभृतां न विजिता पृथिवी ॥ प० ३४ ॥
मम पूर्वजैर्यवनराजकुलं विकलीकृतं समरभूमितले।
कलयंति तत्प्रभृति वैरममी न कलौ युगे यदुकुले यवनाः ॥प० ३५॥

किंतु दूदा की बात युवराज से कहते हुए मुझे डर लगता है। यवनों से हारकर जो राजा रोज़ रोज़ तुम्हारी शरण में आया करते हैं, वे तुम्हारी सीमा भूमि को छीनकर अपनी क्यों बनाते जाते हैं[1] ?

महीपाल की संशयवृत्ति दूर हो जाती है, वह एकदम तलवार खैंच लेता और दूदा का सिर फोड़ डालने का प्रण करता है। मंडलीक शीघ्र उपस्थित होकर कहता है कि राजा का जिसपर कोप होगा उसे मैं पृथ्वी पर नहीं रहने दूंगा। वह अपने श्वसुर को शिक्षा देने का प्रण करके उसके देश पर चढ़ाई करता और उसके गाँव जलाना शुरू कर देता है[2] ।

दूदा भी शीघ्र रणक्षेत्र में आ पहुँचता है, और दोनों की सेनाओं का महाघोर युद्ध होने लगता है। दूदा मंडलीक से कहता है कि तुम युद्ध से लौट जाओ, मेरी कन्या तुम्हारे साथ ब्याही है, वह तुमसे पुत्रवती हो, और तुम भी चिरायु हो, मेरे खिंचे हुए धनुष के सामने तुम न खड़े रहो, तुम्हारी विजय हो, मैं तुम्हारे साथ युद्ध न करूँगा। किंतु मंडलीक इन बातों से नहीं टलता। वह कहता है कि युद्ध से लौटना पाप है, मैं तुमसे बढ़कर संसार में किसी को वीर नहीं मानता, इस लिये तुम्हारी आज परीक्षा करना चाहता हूं— इत्यादि। इस पर दोनों अपनी सेनाओं को पीछे हटा कर परस्पर युद्ध शुरू करते हैं, जिसमें दूदा का सिर उतर जाता है और एकदम बड़ा कोलाहल होता है। विजयी मंडलीक जूनागढ़ लौट आता है। उसे राजा बना कर महीपाल रैवत में तपस्या करने चला जाता है।

इस तरह तीसरे सर्ग की रक्तरंजित कथा समाप्त होती है।

---

(१) विजितं जगज्जनबलेन रणे यवनेन येन हयलक्षवता ।
स महि(ही)पते तव सखित्वमितः किमतः परं कुशलमर्थयसे ॥ प० ३८ ॥
प्रियमस्य येन चरितेन भवेद्भवता तदेव करणीयतमं ।
कथयामि चेत् दुदकृतं किमतं युवराजतो भयमुपैनितरां: (मिनितराम्) ।।प० ३९।।
यवनोर्दिताः प्रतिदिनं नृपते शरणागतास्तव सदैव तु ये ।
तवं सीमभूमिमपहृत्य ममेत्यनृतेन ते (ऽ)त्र निवसंति कथं ॥ प० ४० ॥

(२) स दुदावनिं समधिगम्य दहन्विषयानमुष्य परितस्त्वरितः (?)॥४७॥

चौथे सर्ग की कथा बड़ी मनोरंजक है और पाठ भी अधिक शुद्ध है। गद्दी पर बैठने के बाद एक रोज़ मंडलीक अपने मंत्री से कहता है कि कोई रूप, गुण, वय और कुल में सदृश राजपुत्री ढूँढ दो जिससे मैं विवाह करूँ। मंत्री इस पर दूर दूर की राजकन्याओं के गुण दोषों का, जैसा कि उसको दूतों से पता लगा था, वर्णन करने लगता है। भले ही उसके दूत सारे भारतवर्ष के हिंदू राज्यों और ज़मींदारियों में न घूमे हों, कवि की कल्पना सारे देश का चक्कर अवश्य लगाती है। सिंहलद्वीप से शुरू कर कर्णाट, वर्णाट त्रिलिंग, कलिंग और कान्यकुब्ज होती हुई वह कामेश्वरी के उपासक कामरूप (आसाम) तक पहुँचती है, जहाँ की राजकन्या को तंत्र-यंत्र प्रवीण कहके वह डर दिखाती है[1] और वहाँ से एकदम ज्वालामुखी पहुँच कर, मध्यदेश, गोपाचल (ग्वालियर), मेदपाट (मेवाड़), लाट (मही और ताप्ती के बीच का प्रदेश), महाराष्ट्र, गुर्जर राष्ट्र (गुजरात) और बागुल्ल भूमि (बुगलानाँ) की राजकन्याओं का निरीक्षण करती हुई समुद्रतट के राज्य तक चक्कर लगाती है, किंतु कोई भी अनुकूल कन्या उसे नहीं मिलती। फिर मालूम होता है कि पाटलि[2] के महाकुलीन राजा झल्लेश्वर भीम[3] की रानी को पार्वती के बर से एक कन्या मिली थी और सुराष्ट्र के राजा मंडलीक की पत्नी होने का उसे बर भी मिला था। उसीके साथ विवाह करना उचित ठहरता है। इस तरह चौथे सर्ग की कथा समाप्त होती है।

इधर मंडलीक के दरबार में यह विचार हो रहा है, उधर से झल्ल (झाला) का दूत आ पहुँचता है। विवाह की बात पक्की हो जाती है,

---

(१) आसाम मुगलों के जमाने तक तंत्र मंत्र और जादूगरी का घर समझा जाता था।

(२) आधुनिक पाटडी, काठियावाड़ के झालावाड प्रांत में, वीरमगाम तालुके में है।

(३) झल्लेश्वरः पाटलिराळलवाल महीपतिर्भीम इति प्रसिद्धः। सिंधापुरे संप्रति सोऽस्ति वैरिभूपान्धकच्छेसन (कोच्छेदन) भीम भीमः ॥प० २९॥ तस्य, महाकुलीनस्य नृपस्य कन्याम् ॥ प० ३३ ॥

और वह "वरनिश्चयपूग" (सगाई की सुपारी) देकर चला जाता है। शीघ्र ही घोड़ों और ऊँटों पर तथा डोलियों (दोलिका), पालकियों (शिविका) और शकटों में बरात प्रस्थान करती है। सिंधुराज मंडलीक के पीछे पीछे छत्र लिए चलता है[1]। बरात पाटलि पहुँच जाती है और पूरी धूमधाम से राजकुमारी सोमा के साथ मंडलीक का विवाह हो जाता है[2]।

छठे और सातवें सर्ग का पाठ बहुत ही अशुद्ध है, किंतु इनमें ऐतिहासिक सामग्री भी कुछ नहीं है। छठे सर्ग में मंडलीक के राज्यसुखभोग का और ऋतुओं का वर्णन मात्र है। मालूम होता है कि गुर्ज्जर और झल्ल राजाओं की और कन्याओं से भी मंडलीक पुत्र-कामना से विवाह करता है[3]। एक पद्य से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय गोहिल लोग सूर्यवंशी और झल्ल (झाला) चंद्रवंशी माने जाते थे[4]।

सातवें सर्ग में केवल सूर्यास्त और रात्रि का वर्णन है।

आठवें सर्ग से फिर काम की बात शुरू होती है। पाठ वैसा ही खराब है। ऐसा प्रतीत होता है कि मंडलीक अपनी सभा में विजय के विषय में विचार करता है। मंत्री उसे सलाह देता है कि यवन राजा बड़ा बलवान् है, उसकी बड़ी फौज है, फिर भी तुम्हारे बल को जानकर वह तुम पर हमला नहीं करता[5] किंतु परले समुद्र के

---

(१) सिंधुराजविधृतातपवारों वाज(?)वेल्लितसुचामरयुग्मः ॥प० २४॥

(२) ६७वें पद्य में लड़की के पिता को स्पष्टरूप से पाटलिक्षितिभुज् कहा है। लड़की का नाम ७०वें पद्य में आया है।

(३) अपरगुर्ज्जरझल्लमहीभृतां कुलसुताः स सुतार्थमनामकाः (?)
उदवहद्विधिना...................(?) ॥ प० १४ ॥

(४) रविविधूभद्वगोहिलझल्लकैर्व्य जनवानरभा०...॥ २३ ॥

(५) नृपवर यवनेश्वरो बलीयान् गजहयलक्षितसैन्यतो गरीयान्।
तव भुजबलविक्रमं निशम्य श्रित इव तिष्ठति दूरतः प्रणम्य ॥ प० २४ ॥
यदि यदुकुलदीप गोहिलाद्याः रणभुविशूरतया तयातिवाद्याः (?)
तव पदयुगमेयतेद्यवेद्या (?) शरणगता(ना) हि न केनचिद्विभेद्याः ॥ प० २५॥

राजा[1] को यद्यपि तुमने युद्ध में पहले भी जीता है, तो भी उसे बड़ा अभिमान है। तुमने उसे कई बार जीत कर अभयदान दिया, फिर भी वह प्रमत्त हुआ फिरता है। तुम्हारी रानियों के शृंगार के योग्य मोती और रत्न समुद्र से पाकर वह धनी हो रहा है (पद्य २९)। यवन आदि राजा तुम्हारी तलवार से डरते हुए तुमसे वैर नहीं करते[2], पर संगण तुम्हारा शासन नहीं मानता; इस लिये उसे जीत कर उसके नगर में जैत्रयूप (जयस्तम्भ) स्थापित कर आओ।

राजा को यह सलाह ठीक जँचती है। वह शिकार के बहाने कुछ फौज के साथ निकल पड़ता है। जंगल में शिकार करता हुआ "परले समुद्र के तट पर[3]" जा डेरे लगाता है।

नौवें सर्ग में मंडलीक और संगण के युद्ध का वर्णन है। इसमें अचानक संगण के देश का नाम भी दे दिया है, जिसका अभी उल्लेख किया जायगा।

मंडलीक की सेना समुद्र पार करने के लिये झंडियों से सुसज्जित नौकाओं पर सवार हो जाती है। संगण अपने दुर्ग में है[4]। "गिरीश्वर" (मंडलीक) और "जलेश्वर" (संगण) की सेनाएँ एक दूसरे पर हमला करती हैं। स्थलवालों के छोड़े हुए अभिज्वालन बाणों को जलवाले समुद्र में बुझा देते हैं, किंतु जलवालों के फेंके हुए धनंजय बाण को स्थलवाले नहीं बुझा सकते[5]। अंत में शहर में आग लग जाती है, बड़ा कोलाहल होता है और संगण परिवार सहित न जाने कहाँ निकल जाता है।

---

(१) अपरपयोधिभूमिनाथः ॥ प० २६ ॥

(२) भवदसिजनिता यतोऽस्ति भीतिर्भवति न वैरममी समाचरंती। यवनपसहिता नृपाः कृपावानिति भवनिछति संगणोरि वाति (?) ॥प० ३०॥

(३) अपरजलधितीरे ॥ प० ६२ ॥

(४) प० ९। यह बहुत अस्पष्ट है।

(५) प० ११।

मंडलीक शंखोद्धार[1] अधिकार करने के लिये नौका से उतरता है। संगण के द्वीपरक्षकों को अभयदान देकर उसके महल में प्रवेश करता है, जहाँ उसे अनेक रत्नों के अतिरिक्त एक दक्षिणावर्त्त शंख भी मिलता है। शंखोद्धार में विजयस्तंभ की स्थापना और शंखनारायण की पूजा कर, वह समुद्र पार कर वापिस आने लगता है कि संगण उसका रास्ता रोकने को फिर आ पहुँचता है[2]। घुड़सवार, ऊँटसवार, और "वामीवाहों" (?) की फौज लिए हुए सिंध का पारसीक (=मुसलमान) राजा उसकी मदद को आया हुआ था[3]। सौराष्ट्रों (मंडलीक की सेना) का सिंधियों के साथ बाणों की बौछाड़ से घोर युद्ध होता है। शायद सौराष्ट्र ऊँटसवारों की पहले कुछ बुरी दशा होने लगती है, किंतु अंत में मंडलीक विजयी होता है। संगण किसी झाड़ियों के जंगल में जा छिपता है। सिंधुराज का भी कुछ पता नहीं चलता कि वह मारा गया या उसका क्या हुआ[4]। सिंधियों की संपत्ति, घोड़े, सोना, चाँदी, ऊँट आदि सौराष्ट्रों के हाथ लगते हैं। संगण को मंडलीक एक बार अपना रक्षित बना चुका था, उसकी खोज न करके वह विजयलक्ष्मी के साथ वापिस आता है।

अपने किले के उत्तरी छोर पर पहुँच कर वह दुर्गा माता की पूजा और स्तुति करता है। देवी का प्रसादरूप फूल लेकर वह जीर्णदुर्ग में प्रवेश करता है और इस प्रकार नवें सर्ग की घटनामय कथा पूरी होती है।

---

(१) आधुनिक बेट वा शंखोद्धारबेट। यह ओखामंडल में द्वारका के निकट एक छोटा द्वीप है। गुजराती में बेट द्वीप को कहते हैं। मत्स्यावतार ने शंखासुर का वध यहीं किया था।

(२) शंखोद्धारे जैत्रयूपं स धृत्वा कृत्वा पूजां शंखनारायणस्य।
तीर्त्वा सिन्धुं यावदायाति राज्यं मार्गं रोद्धुं संगणस्तावदायात् ॥ प० २० ॥

(३) अश्वारोहैरुष्ट्रवाहैरनीकैर्वामीवाहैः संभृतं सैन्यवेन्द्रं।
आनीयासौ सङ्गणः पारसीकं रुद्ध्वा मार्गं सम्प्रवृत्तो विरोद्धुम् ॥ प० २१ ॥

(४) न ज्ञातासौ सिन्धुराजः किमास्यं(?)के नामेऽस्मिन्संगरे निर्जितः स्यन्?। अंतं यातो हृद्भवाघातपुष्टैः बिठ्ठीबुब्बूकारशाब्दैरसूचि (?) ॥ प० २२ ॥

दसवें सर्ग में केवल मंडलीक की स्तुति ही है, यहाँ तक कि जब म्लेच्छों के नाश के लिये वह घोड़े पर चढ़ कर तलवार चमकाता हुआ युद्ध में जाता था, तब प्रजा उसे साक्षात् कल्कि कहने लगती थी[१]। वह कृष्ण की स्तुति करता है जिससे उसे समूची पृथ्वी का स्वामी होने का वर मिलता है और अपने पुत्र मेलग[२] के साथ राज्य करता हुआ आनंद से समय बिताता है।

यह इस काव्य की कथा का ऐतिहासिक निचोड़ है। इसकी विवेचना अब की जाती है।

विवेचना

सुगमता के लिए हम अपनी विवेचना को अलग अलग हिस्सों में बाँट लेंगे। सब से पहले हम मंडलीक काव्य में आई हुई राजवंशावली की शुद्धता की परीक्षा करेंगे। उसके बाद इन राजाओं का मुसलमानों से जो संबंध हमारे काव्य ने बतलाया है उसकी सत्यता परखेंगे; और अंत में सुराष्ट्र के इतिहास से संबंध रखनेवाली जिन अन्य बातों का पुस्तक में उल्लेख है, उन पर विचार करेंगे।

(१) वंशावली की जाँच और कालनिर्णय

हमारे काव्य में जिन राजाओं के नाम आए हैं वे अपरिचित नहीं हैं। ईसवी सन् की १९वीं सदी के आरंभ में जूनागढ़ के दीवान अमरजी रणछोड़जी द्वारा लिखित "तारीखसोरठ" में और मि० फोर्ब्स की रासमाला में भी इन राजाओं का उल्लेख है। ये जूनागढ़ में दसवीं से पंद्रहवीं शताब्दी तक राज्य करनेवाले चूडासमा (यादव) वंश के राजा हैं। इनके समय के कई शिलालेख भी प्राप्त हो चुके हैं। बर्जेस ने तारीख सोरठ की वंशावली में सन्

---

(१) स्फूर्जत्खड्गे वाजिवर्याधिरूढो (ढे) म्लेच्छान्हन्तुं प्रोद्यते मण्डलीके। भ्रातः कल्किः किं कलेरन्तकारी वेगादित्येवं जनाः संवदन्ते ॥१० ४॥

(२) संतुष्टो(ऽ)सौ वासुदेवप्रसा(सादा)द्युक्तः श्रीमान् मेळगेनात्मजेन ॥ १०४१॥

१८७४-७५ ई० तक के ज्ञान के अनुसार कुछ संशोधन किया था[1]। पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा जी ने अपने संपादित टॉड राजस्थान में तारीख सोरठ के नामों के साथ साथ शिलालेखों से पाए गए नाम भी दिए हैं। साथ की तालिका में ये सब वंशावलियां दी गई हैं। इनके मिलान से पाया जायगा कि हमारे काव्य का खंगार तारीख सोरठ का खंगार तीसरा, और रासमाला का खंगार चौथा; एवं हमारा मंडलीक तारीख सोरठ का मंडलीक चौथा और रासमाला का मंडलीक दूसरा है। दोनों के बीच के नामों के संबंध में भिन्न भिन्न वंशावलियों में भेद प्रतीत होता है। विवादास्पद नामों में से हम एक एक पर क्रम से विचार करेंगे।

(क) **जयसिंह**—खंगार के विषय में किसी तरह का संदेह नहीं है। जयसिंह का नाम भी यद्यपि सभी वंशावलियों में समान है, तो भी फोर्ब्स और बर्जेस को उसके विषय में संदेह है। बर्जेस ने इस संबंध में इस प्रकार लिखा है—"उक्त शिलालेख (जूनागढ़ के नेमिनाथ के मंदिर के लेख) में इस जयसिंह का उल्लेख इस तरह किया गया है[2] जिससे डा० बूलर और किलोक फोर्ब्स को संदेह होता है कि वह बारहवीं शताब्दी (ईसवी) के शुरू के हिस्से का गुजरात का सिद्धराज जयसिंह होगा जिसने नौघण के पुत्र रा खंगार को मारा था। यदि ऐसा ही हो तो अमरजी के संवत् निकम्मे हैं। सिद्धराज जयसिंह (मृत्यु ११४२ ई०) और उसके (जयसिंह चूडा-

(१) आर्किआलाजिकल सर्वे आव इंडिया, रिपोर्ट आन दि ऐंटिकिटीज़ आव काठियावाड़ ऐंड कच्छ; (१८७४-७५,) पृ० १६४-६५।

(२) लेख का मूल पाठ इस प्रकार है—

पं(खं)गारनामा रिपुराज्यवृत्तेष्वंगार एवाजनि भूमिजानिः।
..............॥ १२ ॥

आसीत् श्रीजयसिंहदेवनृपतिस्तत्पट्टभूभामिनी-
भास्वद्भोगरसालसांद्रनयनो न्यायाम्बुधिश्वेतरुक्।
शत्रुत्रासन...(ऐंटिक्विटीज़ आव काठियावाड़ ऐंड कच्छ, पृ० १६०)

समा) उत्तराधिकारी मोकलसिंह वा मुगतसिंह में (१३४५ ई०) २०० साल का अंतर पड़ जायगा[1]।"

अनहिलवाडा के चौलुक्य राजा सिद्धराज जयसिंह का राज्य-काल ११५०-११९९ वि० है[2]। उसका सुराष्ट्र पर आक्रमण बहुत प्रसिद्ध है। प्रबंधचिंतामणि के लेखक ने इस प्रसंग के वर्णन में नवघण और खंगार के नामों में गड़बड़ कर दी है; वस्तुतः जयसिंह का विरोधी खंगार ही था, न कि नवघण, यह प्रबंधचिंतामणि में ही उद्धृत किए हुए प्राकृत पद्यों[3] तथा कीर्त्तिकौमुदी[4] से सिद्ध होता है। जैनमंदिर के उक्त लेख में कोई संवत् नहीं है। विरोधी प्रमाण के अभाव में डा० बूलर का संदेह असंगत न था। किंतु अब इस संदेह की गुंजायश नहीं है। हमारा काव्य ही नहीं, रेवतीकुंड का लेख[5] भी स्पष्ट बतलाता है कि जयसिंह खंगार का पुत्र था। वनथली में धंधूसर के नजदीक हरिवाव के शिलालेख[6] में भी जयसिंह को खंगार का "ता(त)नुभव" कहा है। इस लिए नेमिनाथ के मंदिर के शिला-लेख का जयसिंह खंगार का पुत्र ही है, न कि विजेता। उक्त लेख के संदेहकारक अंश का यही भाव है कि खंगार की भोगी हुई भूमि को जयसिंह ने भोगा।

यह लिखना भी अनुचित न होगा कि पंडित रामचंद्र दीनानाथ शास्त्री

---

(१) वहीं, पृ० १६५। फोर्ब्स-रासमाला, गुजराती अनुवाद, जि० १, पृ० ५७४ टिप्पण।

(२) भगवानलाल इंद्रजी – हिस्टरी आव गुजरात (बांबे गज़ेटियर, जि० १, खं० १,), पृ० १७१ आदि।

(३) ये पद्य ना० प्र० पत्रिका, नये संस्करण, भाग २, पृ० ५०-५२ में प्रकाशित हो चुके हैं।

(४) सर्ग २, श्लोक २५।

(५) बर्जेस लिस्ट आव दि ऐंटिक्वेरियन रिमेंस इन दि बांबे प्रेसि-डेंसी इत्यादि (१८८५), पृ० १७६। इस लेख का मूलपाठ आगे पृ० ३५० टिप्पण (२) देखिए।

(६) वहीं, पृ० १७८।

ने प्रबंधचिंतामणि के सिद्धराज जयसिंह के विरोधी, जिस खंगार के नाम पर प्रकाश डालने के लिये मंडलीक काव्य से श्लोक उद्धृत किए हैं वह मंडलीक काव्य का खंगार नहीं प्रत्युत उसका पूर्वज है।

(ख) **महीपति या महीपाल**—जयसिंह के बाद तारीख सोरठ, जूनागढ़ के नेमिनाथ के जैनमंदिर, रेवतीकुंड के शिलालेख और मंडलीक काव्य, सभी ने मोकलसिंह, मुक्तसिंह वा मुगतसिंह का नाम दिया है, किंतु रासमाला में दोनों के बीच में एक महीपाल का नाम है, और हरिवाव का शिलालेख भी इसकी पुष्टि करता प्रतीत होता है क्योंकि उक्त लेख में मोकलसी को स्पष्ट रूप में जयसिंह का पुत्र कहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि जयसिंह का बड़ा लड़का महीपति था, और उसके बाद महीपति का छोटा भाई मोकलसी गद्दी पर बैठा। सारा संदर्भ[1] अस्पष्ट है। संभवतः इसमें मोकलसी को महीपति का अनुज कहा है। महीपति ने यदि राज्य किया भी होगा तो बहुत थोड़े काल तक। फलतः हमारे काव्य ने जयसिंह के बाद एकदम मोकलसिंह का नाम देने में कोई ग़लती नहीं की।

(ग) **मेलिग या मेलगदेव पहला**—मोकलसिंह वा मुक्तसिंह के नाम पर सब की सहमति है। वास्तव में यदि किसी राजा के विषय में विवाद है तो वह मेलग या मेलिगदेव पहले के विषय में है। तारीख सोरठ और रासमाला में तो उसका नाम है ही नहीं,

---

(१) मूल संदर्भ बर्जेस ने इस प्रकार दिया है—

......विजयी जयसिंहदेवः ॥......

तस्य।[दयस्यकृ]ति[निं]जेप्यविकृतिः प्रापे कृते निःकृति-
र्योग्या यस्य मतिर्द्विजेष्वनुगतिर्दुष्टेपु नो संगतिः ॥
विद्यायां निचितिर्गुरौ परिचितिर्यस्या[गमे] निष्टितिः।
संग्रामे विजितिर्म्महीपतिरिति ख्यातः क्षितौ भूपतिः ॥ ५ ॥
जयसिंहदेवतनुजो ननु यो मनुजोनुजोऽस्य दनुजारिगणे।
जलसीतलः कुलिनि मोकलसील्यलसी भवन् सकल—मलसीतमनक ।६।
(ऐंटिक्वेरियन रिमेंस इन दि बाम्बे प्रेसीडेंसी, १८८५, पृ० १७८)

रेवतीकुंड के शिलालेख में भी वह नहीं है। किंतु रेवतीकुंड के लेख में हमारे खंगार के दादा नवघण का नाम भी नहीं है, यद्यपि जैनमंदिर के लेख में उस (नवघण) का स्पष्ट उल्लेख है। प्रतीत होता है कि रेवतीकुंड के शिलालेख के लेखक ने अपने समकालीन राजा जयसिंह (दूसरे, ता० सो० के अनुसार) के पूर्वजों का दिग्दर्शन मात्र किया है, उसकी पूरी वंशावली देने का यत्न नहीं किया। कुछ ही हो, मोकलसिंह के पुत्र मेलगदेव की ऐतिहासिक सत्ता जूनागढ़ के जैनमंदिर के शिलालेख और मंडलीक काव्य से सिद्ध है, और इस अंश में तारीख सोरठ के लेखक ने ग़लती की है।

(घ) **महीपाल वा मधुप**—हमारे मंडलीक से पहले तारीख सोरठ ने मधुपत का नाम दिया है। हमारे काव्य में और जैनमंदिर के लेख में उसका नाम महिपाल वा महीपाल है। किंतु इस राजा की सत्ता भी विवाद से मुक्त नहीं है। रासमाला इसका उल्लेख नहीं करती, और प्रो० कीलहार्न ने यह समझा है कि रेवतीकुंड का शिलालेख भी नहीं करता। वे उस शिलालेख का संक्षेप करते हुए मंडलीक को मुक्तसिंह का पुत्र ही लिखते हैं[1]। हम समझते हैं कि उस शिलालेख में यद्यपि ऐसा नहीं कहा कि अमुक का पुत्र महीपाल हुआ तो भी सरसरी रीति से उसका उल्लेख किया है[2] और उसका नाम मधुप दिया है। वंशावलियाँ लिखते हुए किसी

---

(१) इंस्क्रप्शंस आव नार्दर्न इंडिया, सं० ९८४।

(२) लेख का मूल पाठ बर्जेस के अनुसार इस प्रकार है—

...१...तत्तनयोवनिभर्त्ता **खंगारो** नाम वेदमुद्धर्त्ता।
द्वीपनवद्वयहर्त्ता सोमेशस्थापनाकर्त्ता ॥ ३ ॥
भूरुक्मदानपरितोषितभूमिदेव-
स्तन्नन्दनः समभवज्जयसिंहदेवः ॥
वर्णाश्रमस्थितिकरो **नृपमुक्तसिंह**-
स्तस्मादरिद्विरदविक्रममुक्तसिंहः ॥ ४ ॥
मधुपनृपति शुद्धेस्तीर्थराडन्यनार्यां
जनितनिजजनित्रीतुल्यबुद्धिर्वदान्यः ॥

राजा का नाम इस तरह कह जाने के दृष्टांत प्राचीन शासनों में अन्यत्र भी मिलते हैं। उदाहरण के लिये हम वल्लभदेव के आसाम से मिले ताम्रपत्र में निःशंकसिंह[1] का नाम पेश कर सकते हैं।

फलतः मंडलीक के पिता महीपाल या मधुप की ऐतिहासिक सत्ता भी निश्चित है।

(ङ) **मेलिगदेव दूसरा**—हमारे काव्य के नायक 'मंडलीक' का नाम सब ग्रंथों और लेखों में समान है। किंतु उसके बाद मेलिगदेव दूसरे के विषय में फिर कुछ विचार की अपेक्षा है। अमरजी ने पहले मेलिग का नाम नहीं दिया परंतु दूसरे का दिया है। बर्जेस ने शायद उसकी और जैनमंदिर के शिलालेख की वंशावलियों की तुलना करने से यह समझा कि अमरजी ने मेलग का नाम मोकलसिंह के बाद रखने के स्थान में मंडलीक के बाद रख दिया है, इसलिये उन्होंने उस नाम को मोकल के बाद रख दिया, और मंडलीक के बाद जयसिंह (दूसरे) का होना मान लिया। असल में मंडलीक के बाद भी एक मेलगदेव हुआ था, यह हमारे काव्य से और रेवतीकुंड के लेख से पाया जाता है। जैनमंदिर का लेख इसका विरोध नहीं करता क्योंकि उसकी वंशावली मंडलीक के साथ समाप्त हो जाती है। तारीख सोरठ, रासमाला और रेवतीकुंड के शिलालेख, तीनों में मेलग को मंडलीक का छोटा भाई

समितिसुभटमुख्यो **मंडलीक**स्तदीयो-
जनि च तमनुजन्मा **मेलिगः** स्थूललक्षः ॥ ४ ॥

(१) इस ताम्रपत्र में इस तरह का पाठ है—

उदय मुदयकर्णः पूर्णचन्द्रः सुमेरौ।
विबुधसमभिरामे राज्ञि रायारिदेवे।
करविभवकलापैर्नन्दयन् सर्व्वलोकान्
दधदिह परमाप क्ष्माभृतां मस्तकेषु ॥
निःशङ्कसिंह नृपतेरिह नारपत्ये
भूमीभुजः स्वभुजवीर्यसमुत्सृतानि
सन्तत्यजुयदि नवा......(ऐपिग्राफ़िया इंडिका, जि० ४, पृ० १८४)

बताया है और जयसिंह को मेलग का पुत्र लिखा है। हमारे काव्य से वह मंडलीक का पुत्र प्रतीत होता है, किंतु आश्चर्य नहीं कि काव्य में असल पाठ "मेलगेनानुजेन" हो जिसके स्थान में प्रतिलिपिकार ने "मेलगेनात्मजेन" लिख दिया हो। उस पद्य में एक गलती और भी है[१]। बहुत संभव है कि मंडलीक के कोई संतान न रही हो। उसकी पहली दो रानियों से तो कम से कम कोई संतान न थी; ऐसा प्रतीत होता है[२]।

इस प्रकार मंडलीक काव्य में दी हुई वंशावली शिलालेखों आदि से मुकाबला करने पर बिलकुल ठीक सिद्ध होती है। न तो काव्य में और न जैनमंदिर के लेख ही में किसी राजा का कोई संवत् दिया है। ये दोनों मंडलीक के समय में लिखे गए प्रतीत होते हैं। किंतु हरिश्राव के लेख में जो मोकलसिंह के समय का है संवत् १४४५ दिया है और रेवतीकुंड का जयसिंह (दूसरे) के समय का लेख संवत् १४७३ का है। अमरजी के दिए हुए संवत् इनसे नहीं मिलते और विश्वसनीय भी नहीं हैं। फलतः मेलिग, महीपाल, मंडलीक और मेलिग (दूसरे) का समय इन संवतों के बीच में ही होना चाहिए।

(२) इन राजाओं का मुसलमान सुलतानों से संबंध

अब हमें काव्य के उस अंश को परखना है जिसमें चूडासमा राजाओं का देहली वा गुजरात की मुसलमान सलतनतों से किसी प्रकार के संबंध वा युद्ध का उल्लेख है।

(क) **खंगार**—सब से पहले खंगार के विषय में हमारा काव्य कहता है कि उसने प्रभासपत्तन (आधुनिक वेरावलपत्तन) में यवनों को हरा कर सोमनाथ के मंदिर का जीर्णोद्धार किया। ये यवन कौन थे?

वेरावलपत्तन में चोरवाड के नजदीक नागनाथ के मंदिर में

(१) देखिए ऊपर पृष्ठ ३४६, टिप्पण २।

(२) देखिए ऊपर पृष्ठ ३४३, टिप्पण ३।

संवत् १४४५ का एक लेख है[1]। यह उपयोगी लेख राजपूत जातियों के प्रवास के संबंध में बड़े महत्व की बातें बतलाता है। इसके आरंभ में मरुस्थली (मारवाड़) के "दशारोहिणि रोहिलादौ" देश में उत्पन्न हुए लूणिग का उल्लेख है, जो सेनापति की हैसियत में सुराष्ट्र चला आता है। इसके वंश में एक राजसिंह होता है जिसका विवाह बघेला वंश की एक कन्या से होता है। इस प्रसंग में बघेला वंश का कुछ वृत्तांत दिया है। मरुस्थली की कर्करपुरी में एक क्षेम-राज था जिसका वंशज वीर सुराष्ट्र में आजाता है। इसी वीर की लड़की राजसिंह से व्याही थी। वीर के दौहित्र "रोहेला[2] मालदे" की स्त्री, पुत्रों, पुत्री, भाई और मामा की लड़की आदि ने मिलकर संवत् १४४५ में शिवालय बनवाया जिसके लिए यह लेख खोदा गया।

वीर बघेला के विषय में यह लेख कहता है कि उसने अभि-मानी बादशाह मुहम्मद के रैवतगिरि और जूनागढ़ घेर लेने पर राजा खंगार का साथ दिया[3]। सो यदि वीर के दौहित्र सं० १४४५ में रा मोकलसिंह के समकालीन थे, तो उसका समकालीन खंगार मोकलसिंह का दादा ही हो सकता है, उसका कोई पूर्वज नहीं, और "महम्मदब्रहन्मदपातसाहि" सुप्रसिद्ध मुहम्मद तुगलक ही है जिसने हि० स० ७५० (वि० सं० १४०६) में गिरनार पर चढ़ाई की थी।

ज़िआउद्दीन बर्नी की तारीख-ए-फीरोजशाही में मुहम्मद तुग़लक

---

(१) बर्जेस—एंटिक्विटियन रिमेंस इन दी बाम्बे प्रेसिडेंसी, पृ० १८३, द्वितीय संस्करण (१८९७) पृ० २४०—११। पहले संस्करण में कुछ अशुद्धि रह गई है।

(२) प्रतीत होता है कि रोहेले पठान ही नहीं, राजपूत भी होते थे।

(३) स श्रीमहम्मदब्रहन्मदपातसाहि-
क्रान्तेपि रैवतगिरावपि जीर्णदुर्गे।
खंगारभूपमुपवाह्य सभीमदेवं।
भ्रातुः सुत(तं) सुभटशल्यमपि प्रमीतः ॥१२॥

के "खंकार" (खंगार) के किले को लेने और खंगार के कैदी होने का जिक्र है[1]। मीरात-ए-अहमदी में "गिरनाल" (गिरनार) के लिये जाने और कच्छ के राजा खंगार के उक्त बादशाह की शरण में उपस्थित होने का वृत्तांत है[2]। फ़रिश्ता "गिरनाल" (गिरनार) के लिये जाने पर संदेह प्रकट करता है, और कहता है कि राजा के संधि का प्रस्ताव करने पर बादशाह ने घेरा उठा लिया, और महमूद बेगड़ा से पहले किसी मुसलमान ने गिरनार का किला नहीं जीता[3]। संभव है कि मुहम्मद तुग़लक ने जूनागढ़ के किले को घेरा हो न कि गिरनार[4] को; किंतु पूर्वोक्त चोरवाड के लेख में रैवतगिरि और जीर्णदुर्ग दोनों के घिरने का उल्लेख है।

जहाँ मुहम्मद तुगलक का खंगार के किले को घेरना निश्चित है, वहाँ कोई भी मुसलमान ऐतिहासिक प्रभासपत्तन पर मुसलमानों और खंगार की किसी लड़ाई का उल्लेख नहीं करता। क्या यह गंगाधर कवि की कोरी कल्पना है, या मुसलमान लेखकों का अपने पक्ष की हार को छिपाने का यत्न है? ज़फ़रखां के गुजरात का नाज़िम बन कर आने पर (हि० स० ७९३-९४ = वि० सं० १४४८) में जूनागढ़ के राव और राजपीपला के राजा, ये दो मुख्य हिंदू राजा गुजरात में थे, जो मुसलमानों को कर नहीं देते थे[5]। फलतः मुहम्मद तुग़लक़ के जाने के कुछ समय बाद जूनागढ़ का स्वतंत्र हो जाना निश्चित है। हमारे काव्य के इस कथन को कि खंगार ने सोमनाथ की पुनः

(१) ईलियट—हिस्ट्री आफ् इंडिया, जि० ३, पृ० २६०–६२। बेले—गुजरात, पृ० ४९। बेले नोट में लिखते हैं कि खंगार शायद गिरनार का "मंडलीक राव" होगा।

(२) बेले—गुजरात, पृ० ४२।

(३) फ़रिश्ता के ग्रंथ का ब्रिग्स कृत अनुवाद—जिल्द १, पृ० ४४१।

(४) बेले—गुजरात पृ० ४५. टिप्पण। हिस्टरी आव गुजरात (बांबे गज़ेटियर, जि० १, खं० १) पृ० २३१, टिप्पण ३।

(५) हिस्टरी आव गुजरात, पृ० २३२।

स्थापना की, रेवतीकुंड का शिलालेख स्पष्ट पुष्ट करता है[1]। इसलिये गंगाधर का यह कथन कि खंगार ने प्रभासपत्तन में यवनों को हराया, निराधार नहीं प्रतीत होता।

(ख) **जयसिंह देव पहला**—खंगार के बाद जयसिंह (पहले) की मुसलमानों से मुठभेड़ों का उल्लेख है। ऊपर की विवेचना से खंगार की संवत् १४०६ वि० में विद्यमानता सिद्ध हो चुकी है। इसलिये जयसिंह पहले का समय वि० सं० १४०७ और १४४५ के बीच में होना चाहिए। किंतु इस समय में मुसलमानों की सोरठ के साथ किसी लड़ाई का पता हमें नहीं मिला।

(ग) **मेलगदेव पहले** की मुसलमानों के साथ लड़ाई का निर्देश वैसे सामान्य शब्दों में नहीं है; उसके बारे में हमारे कवि ने दो घटनाओं का उल्लेख किया है[2]। मेलग का समय वि० सं० १४४५ और १४७३ के बीच में है; हमें देखना है कि इस समय में इन घटनाओं के होने का पता कहीं और से भी मिलता है कि नहीं।

फीरोज़ तुगलक के पिछले समय में फरहतुलमुल्क रस्तीखाँ गुजरात का नाज़िम था। फ़रिश्ता लिखता है कि यह हिंदू धर्म को दबाने के स्थान में उलटा उत्साहित करता था। वि० सं० १४४८ में वाज़िउलमुल्क का लड़का ज़फ़रखां नाज़िम नियुक्त कर के वहाँ भेजा गया जिसने फ़रहतुलमुल्क को मार कर उसका स्थान लिया। ज़फ़रखाँ का पिता वाजिउलमुल्क थानेसर का एक टांक राजपूत था, जो फ़ीरोज़ तुगलक को अपनी बहिन देकर मुसलमान हो गया था। गुजरात की स्वतंत्र सल्तनत का संस्थापक यही ज़फ़रखाँ था।

ज़फ़रखाँ का लड़का तातारखाँ था, जो अपने पिता को आसावल (प्राचीन अहमदाबाद) में कैद कर महम्मदशाह के नाम से वि० सं० १४६० में गुजरात का स्वतंत्र सुलतान बन बैठा था, परंतु

---

(१) देखिए ऊपर, पृष्ठ ३२०, टिप्पण २१।

(२) देखिए ऊपर, पृष्ठ ३३७, टिप्पण ४।

शीघ्र ही उसे विष दे दिया गया और गुजरात का राज्य फिर उसके पिता के हाथ आगया, जो मुज़फ्फ़रशाह के नाम से गुजरात की गद्दी पर बैठा। इसका उत्तराधिकारी इसका पोता अहमदशाह था जिसका राज्यकाल वि० सं० १४६७ से १४९९ तक है।

फलत: मेलिग का विरोधी "अहम्मद सुरत्राण" यही अहमद शाह हो सकता है। संवत् १४६९ के वनथली के एक शिलालेख में मेलगदेव के राज्यकाल में बारड नवघण के लड़के लुंभा के तुर्कों के साथ लड़ मरने का उल्लेख है। वहीं के एक दूसरे स्तंभ-लेख में मोकलसिंह के पुत्र मेलिगदेव के राज्य-समय में पाता नाम के एक वीर का बादशाही फौज के साथ लड़ने और धनथली छोड़कर जूनागढ जा बसने का वर्णन[1] है। इस प्रकार अहमदशाह और मेलिगदेव की फौजों का परस्पर युद्ध हुआ था, यह निश्चित है।

मीरात्-ए-सिकंदरी[2] के अनुसार हि० स० ८१६ (सं० १४७०) उसमान अहमद सरखेजी, शेरमलिक, अहमदशेर मलिक, सुलेमान अफगान और ईसा सालार ने मिलकर अहमदशाह के विरुद्ध षड्यंत्र किया, और मालवा के सुलतान हुशंग को गुजरात में आमंत्रित किया। इस षड्यंत्र में कई हिंदू-जमींदार, तथा **झालावाड़ का राजा कान्हा सतरसाल**, भी शामिल थे। "इस बात की सूचना पाने पर सुलतान अहमद ने अपने भाई शाहज़ादा लतीफखाँ और वज़ीर निज़ामुल्मुल्क को शेख़ (शेर) मलिक और कान्हा को सीधा करने के लिये भेजा।.........लतीफखाँ और निज़ामुल्मुल्क ने शेख़ (शेर) मलिक और कान्हा को सोरठ देश में जहाँ गिरनार के राजा मंडलीक का राज्य था, भगा दिया। वे उन्हें वहाँ छोड़ कर पीछे

---

(१) भावनगर प्राचीन शोध संग्रह, लेख सं० १२०, १२३। इनमें से दूसरे लेख का संवत् १३६९ दिया है, जो कि हम समझते हैं छापे की गलती के कारण है। १३६९ में न तो किसी मोकलसिंह के पुत्र मेलिगदेव का राज्य था और न कोई बादशाही फौज सुराष्ट्र में आई थी। इन लेखों की पूरी नकल मिल सके तो इस विषय पर कुछ अधिक प्रकाश पड़ सकेगा।

(२) बेले—गुजरात, पृ० ९५-९७।

आगए।" तबकात-ए-अकबरी के अनुसार जब लतीफ़ख़ाँ वापिस आने लगा, तब विद्रोहियों ने पीछे फिर कर उस पर छापा मारा जिसमें उन्हीं की हानि हुई[1]।

दूसरे साल (हि० ८१७ = सं० १४७१) "सुलतान अहमद ने सोरठ देश के प्रसिद्ध किले गिरनार के काफिरों पर चढ़ाई की। गिरनार के राजा राव मंडलीक...ने बादशाही फौज का मुकाबला किया, जिसमें उसकी हार हुई। कहते हैं कि काफ़िरों की एक बड़ी संख्या मारी गई। राजा भाग कर अपने किले में चला गया। इस्लाम की रोशनी इस मौके पर देश में अच्छी तरह नहीं चमकी, तो भी काफिरों की ताक़त टूट गई, और वे हर्बी (शत्रु) की दशा से जिम्मी (कर देनेवाले) की दशा में आगए। जूनागढ़ का किला जो कि गिरनार पर्वत की तराई के पास है सुलतान के हाथ आगया[2]

फरिश्ता के वर्णन में थोड़ा अंतर है—"दूसरे साल अहमद शाह झालावाड़ के राजा पर हमला करने गया जिसने मालवा के सुलतान हुशंग से सहायता माँगी।......बादशाह की अनुपस्थिति से फ़ायदा उठाकर अहमद शेर कच्छी और............शेरमलिक ने विद्रोह कर दिया। शाहज़ादा लतीफखाँ ने विद्रोहियों का पीछा किया। जिस लेखक के आधार पर मैं लिख रहा हूँ वह कहता है कि शेर मलिक बचकर गिरनाल के राजा के पास भाग गया...... क्योंकि (गिरनार के) किसी राजा ने अबतक मुसलमानों के सामने सिर न झुकाया था, इसलिए राजा के शेर मलिक को आश्रय देने के अवसर से लाभ उठाकर अहमदशाह ने उसके देश पर चढ़ाई कर दी। सुलतान के पहुँचने पर राजा ने मुकाबला किया जिसमें वह हार गया और उसका.........गिरनार के किले तक, जिसे अब जूनागढ़ कहते हैं, पीछा किया गया। कुछ समय बाद राजा

(१) बेले, पृ० ६७, टिप्पण।

(२) बेले, पृ० ६८।

ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया और एक बड़ी भेंट उसी समय पेश की[1] ।

किंतु महमूद बेगड़ा की गिरनार पर चढ़ाई का वर्णन करते हुए उसी मीरात् ए-सिकंदरी में लिखा है—"अहमदाबाद के संस्थापक सुलतान अहमद ने.....सोरठ के देश को जीतने और इन दो किलों (गिरनार और जूनागढ़) को सर करने के उद्देश से चढ़ाई की थी, पर जब उसने देखा कि वह ऐसा न कर सकेगा तब चारों तरफ़ के देश को लूटकर वापिस चला आया[2] ।"

इससे क्या परिणाम निकाला जाय? गिरनार का न लिया जाना तो निश्चित है, जूनागढ़ भी नहीं लिया जा सका ऐसा प्रतीत होता है। किंतु फरिश्ता कहता है कि राजा ने बहुत सा कर देकर छुटकारा पाया। मंडलीक काव्य कहता है कि उसने अहमद को कैद कर उसका सर्वस्व छीन लिया। किस को सच मानें? मुसलमानी फ़ौज को सफलता न होने पर उसे कर लेकर लौट आया बतलाना मुसलमान लेखकों की चाल है। हम समझते हैं कि दोनों पक्षों ने अपने अपने पक्ष की अच्छी बात दे दी है। वास्तविक घटना यह प्रतीत होती है कि पहाड़ के नीचे की लड़ाई में शायद राव की हार हुई, किंतु उसके किले की शरण लेने पर अहमद की दाल न गली। घिरी हुई फ़ौज समय समय पर निकलकर सुलतान की फ़ौज पर छापे मारती होगी और इस प्रकार किसी अवसर पर राव ने अहमदशाह का बहुत सा सामान लूट लिया हो (=तत्सर्वस्वं समग्रहीत्), और शायद उसे कैद भी कर लिया हो। राव ने यद्यपि किले के अंदर से उसका वीरता से मुकाबला किया तो भी अपने देश से उसे वह न निकाल सका, इसलिए दोनों पक्षों ने थककर संधि कर ली होगी। गोहिल दूदा की शिकायत करने को यवन दूत का महीपाल के पास आना और उस पर मंडलीक का अपने

(१) ब्रिग्स—फ़रिश्ता, जिल्द ४, पृ० १६-१७ ।

(२) बेले—गुजरात, पृ० १८१ ।

श्वसुर को मार डालना हमारे अनुमान को पुष्ट करता है। यदि पहली बार राव की पूरी हार हो चुकी होती तो अहमदशाह दूसरा मौका मिलते ही महमूद बेगड़ा की तरह अपनी "गिरनार का पहाड़ी किला देखने की प्रबल उत्सुकता[1]" को फिर से अवश्य संतुष्ट करता, और यदि राव की असंदिग्ध जीत हुई होती तो मंडलीक यवन के कहने पर अपने श्वसुर की हत्या न करता।

इस घटना के संबंध में एक और समस्या भी है। अहमदशाह का विरोधी राव कौन था? मेलग या मंडलीक[2]? मीरात्-ए-सिकंदरी ने यद्यपि महमूद बेगड़ा के समकालीन (मंडलीक पाँचवें) के बाद होनेवाले गिरनार के सब राजाओं की पदवी राव मंडलीक बना दी है[3] तो भी यहां स्पष्ट रूप में मंडलीक शब्द का व्यक्तिगत नाम की तरह प्रयोग किया गया है, और ऐसा ही फ़रिश्ता ने पाँचवें मंडलीक का उल्लेख करते समय किया है। हो सकता है कि इस समय के राव को मंडलीक कहने में मुसलमान ऐतिहासिक ने ग़लती की हो। यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि ये घटनाएँ एक राज्य में शुरू हुई और दूसरे में समाप्त हुई होंगी। फिर भी मंडलीक ने इस युद्ध में जो हिस्सा लिया वह युवराज रूप में लिया होगा। मेलग और मंडलीक के बीच में महीपाल का राज्य केवल नाम को ही हुआ दीखता है। मंडलीक का राज्यकाल भी बहुत छोटा है क्योंकि सं० १४७३ में जयसिंह दूसरे का राज्य शुरू हो चुका था। मंडलीक के

(१) फ़रिश्ता के अनुसार।

(२) मीरात्-ए-सिकंदरी पर टिप्पणी करते हुए बेले लिखते हैं—'राव मंडलीक जो कि गिरनार के सब राजाओं की पदवी थी। तारीख़ सोरठ के अनुसार इस समय जयसिंह का पुत्र खेंगार राव मंडलीक था।" तारीख सोरठ के संवतों की अविश्वसनीयता हम पहले ही दिखा चुके हैं।

फ़रिश्ता ने महमूदशाह बेगड़ा के हमले के बयान में मंडलीक राजा का नाम लिखा है। ब्रिग्स ने उसका अर्थ मांडलिक किया है। (ब्रिग्स, जि० ४, पृ० ५३)।

(३) बेले—गुजरात, पृ० १८३।

भाई मेलग दूसरे ने मंडलीक के ही शासनकाल में कुछ राजकार्य किया होगा। उसका नाम वंशावली में केवल इसलिए लाया गया प्रतीत होता है कि जयसिंहदेव दूसरा उसका पुत्र था।

रासमाला मेलिग पहले और महीपाल का उल्लेख नहीं करती। उसके अनुसार मेलिगदेव दूसरे का समय १४५६–७२ वि० सं० है, और इसी मेलिग पर अहमदशाह ने चढ़ाई की थी[1]। किंतु पहले मेलिग की ऐतिहासिक सत्ता हम सिद्ध कर चुके हैं, और यदि वस्तुतः दूसरे ही मेलिग पर अहमदशाह ने चढ़ाई की हो और गंगाधर कवि ने उस घटना को पहले मेलिग के साथ जोड़ने में ग़लती की हो, तो न केवल यही मानना पड़ेगा कि गंगाधर कवि मंडलीक से बहुत पीछे हुआ, प्रत्युत मंडलीक के द्वारा गोहिल दूदा के मारे जाने का कोई उचित कारण न रहेगा। दूदा के मंडलीक के हाथों मरने की घटना की सत्यता हम अभी देखेंगे। इस दशा में हम अपने परिणामों को ही ठीक समझने में विवश हैं।

(घ) **जयसिंह दूसरा**—यद्यपि हमारे काव्य के क्षेत्र से बाहर है तो भी चलते प्रसंग में उसके राज्य की एक घटना का निर्देश कर देना उचित ही होगा। रासमाला के अनुसार इसने झांझमेर (झांझरकोट)[2] पर मुसलमानों की फ़ौज को हराया था। यद्यपि किसी भी मुसलमानी इतिहास से इस कथन की पुष्टि नहीं होती, तो भी इसकी सत्यता रेवतीकुंड के शिलालेख से सिद्ध होती है, जिसमें यह लिखा है कि हमला करने आई हुई यवन सेना को जयसिंह ने झिंझरकोट के नज़दीक हराया[3]। इससे अधिक हमें इस युद्ध के बारे में कुछ पता नहीं चला।

---

(१) रासमाला, गुजराती अनुवाद, जि० १, पृ० ६१० के नीचे टिप्पणी (पृ० ६०८ का)।

(२) गोहिलवाड़ के भावनगर राज्य में, तलाजा से १२ मील दक्षिण को समुद्र तट पर एक छोटा गाँव। तलाजा का बंदर यहीं था।

(३) अभिषेणयितुमुपेतं झिंझरकोटस्य परिसरे स[म]रे ॥
यो हत्वा यवनबलं मुमोच धर्माध्वना शेषं ॥ ७ ॥

(३) गोहिल और झल्ल

चूडासमा राजाओं और उनके मुसलमान विपक्षियों के अतिरिक्त हमारा काव्य काठियावाड़ की अन्य दो बड़ी जातियों के पूर्ववृत्त पर भी कुछ प्रकाश डालता है । चूड़ासमा रावों के साथ गोहिलों और झालों के संबंध का उसमें बार बार उल्लेख हुआ है ।

काठियावाड़ में गोहिल राजपूतों के अभी तक कई राज्य और जागीरें हैं । वे दक्षिण में पैठण के राजा शालिवाहन को अपना पूर्वज बतलाते हैं और अपने को चंद्रवंशी कहते हैं । उनका परंपरागत इतिहास बतलाता है कि उनके पूर्वज दक्षिण से मारवाड़ में लूनी नदी के किनारे खेड़ (गुजराती–खेड़गढ़) में जा बसे थे जहाँ से उन्हें राठौड़ों ने निकाल दिया[1] । संवत् १३४७ में इनके नेता सेजकजी ने सुराष्ट्र के रा (राव, राजा) कवाट(= महीपालदेव, हमारे खंगार के पिता) की शरण ली और अपनी लड़की वालम कुँवर बा (बाई) रा के बेटे खंगार को व्याह दी । सेजकजी के तीन पुत्र थे—राणोजी, शाहाजी और सारंगजी, जिन्हें सुराष्ट्र के राजाओं से और जागीरें मिलीं । ये तीनों क्रमशः आधुनिक भावनगर, पालीताना और लाठी के ठाकुरों (गुजराती–ठाकोरों) के पूर्वज हैं । राणोजी के पुत्र मोखरा जी (वा मोखड़ाजी) ने मुहम्मद तुगलक के गुजरात के आक्रमण में घोघा बंदर पर उसके छक्के छुड़ाए थे (सं० १४०४)[2] ।

इन परंपरागत कथाओं में बहुत कुछ गोलमाल दिखाई देता है ।

---

(१) मूता नैणसी की ख्यात में भी "गोहिलां कनांसू राठौड़ां खेड़ लीवी तिणरी बात" (गोहिलों से राठौड़ों ने खेड़ लिया, उसकी बात) है, जहाँ इस घटना का विस्तार से वर्णन है, पर दौर्भाग्य से कोई संवत् नहीं दिया है ।

(२) रासमाला, गुजराती अनुवाद, पहली जिल्द पृ० ५५२–५१ । "काठियावाड़ सर्वसंग्रह" (वाटसन् के "काठियावाड़" का गुजराती अनुवाद), पृ० ६२ । 'रत्नमाला अने गुजरातनां राज्यो तथा राजवंशीओनी तवारीखोनो संग्रह', पृ० ३९७–९८ । मार्कण्ड नंदशंकर मेहता और मनु नंदशंकर मेहताकृत "हिन्द राजस्थान" अंग्रेज़ी संस्करण, खंड १, पृ० ४८७–८८ । हिस्टरी आव गुजरात (बाम्बे गज़ेटियर, जि० १, खं० १), पृ०२३० ।

दक्षिण का राजा शालिवाहन न सूर्यवंश का और न चंद्रवंश का प्रत्युत आंध्रभृत्य वंश का था और उसका वर्णन पुराणों में मिलता है। दंतकथा का स्वभाव प्रायः पूर्वजों के समय को पीछे ले जाने और उनके महत्व को बढ़ा कर दिखाने का होता है, किंतु उपस्थित उदाहरण इसका अपवाद है। इस दंतकथा के अनुसार काठियावाड़ में गोहिलों का आगमन चौदहवीं विक्रम-शताब्दी के मध्य में हुआ किंतु वस्तुतः वे बारहवीं शताब्दी के अंत में वहाँ विद्यमान थे। माँगरोल की सोढडी वाव से वि० सं० १२०२ का एक शिलालेख[1] मिला है जो ठ० श्री मुलुक के द्वारा सहजिगेश्वर के मंदिर के खर्चे का प्रबंध करने के उपलक्ष में खोदा गया था। इस लेख में साहार गूहिल के पोते और सहजिग गूहिल के पुत्र सोमराज द्वारा अपने पिता के नाम पर सहजिगेश्वर नाम के एक शिवालय की स्थापना और सोमराज के बड़े भाई ठ० श्री मूलुक द्वारा उसके खर्चे का प्रबंध किए जाने का उल्लेख है। लेख में सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल, दो चौलुक्य राजाओं के नाम आए हैं। सहजिग को "चालुक्याँगनिगूहक" अर्थात् चौलुक्य राजाओं का शरीररक्षक और उसके बड़े बेटे मूलुक को "सुराष्ट्रनायक" कहा है। मंदिर के प्रबंध में मूलुक ने जो आज्ञाएं दी हैं, उनसे उसका सुराष्ट्र के बंदरगाहों, रास्तों और चुंगीघरों पर अधिकार प्रतीत होता है। इस प्रकार कुमारपाल के राज्य के आरंभ में सुराष्ट्र का शासन मूलुक गूहिल के हाथ में था। सं० १२०२ में उसके पिता के नाम का मंदिर बनकर तैयार हो चुका था, इसलिये उसके पिता सहजिग का देहांत उससे पहले हो चुका होगा। इस दशा में स्पष्ट है कि सहजिग यदि किसी चौलुक्य का शरीर-रक्षक हो सकता है तो सिद्धराज जयसिंह का ही। संभवतः उसी के राज्य काल में साहार गूहिल गुजरात में आया होगा।

(१) भावनगर आर्किआलाजिकल डिपार्टमेंट द्वारा प्रकाशित "ए कलक्शन आव प्राकृत ऐंड संस्कृत इंस्क्रिपशंस" प्लेट ३७।

वलभी संवत् ६११ (वि० सं० १२८७) के एक छोटे शिलालेख में "ठ० मूलुसुतराणकराज्य" का उल्लेख है ।

ये सहजिग और राणक क्या भाटों की दंतकथा के सेजकजी और रानोजी नहीं हैं ? उपर्युक्त दो शिलालेखों के अनुसार सुराष्ट्र में आनेवाले गोहिलों के पूर्वजों की आरंभिक वंशावली इस प्रकार बनती है—

दंतकथा की वंशावली में साहार और मूलुक के नाम नहीं हैं । इसी प्रकार अन्य कई नामों को भुलाकर गोहिलों के सुराष्ट्र में आने का समय १५० साल पीछे लाया गया प्रतीत होता है ।

सुराष्ट्र का विजय करने पर सिद्धराज जयसिंह ने वहाँ का प्रबंध करने के लिए अपनी तरफ़ से प्रथम सज्जन नामक एक शासक नियुक्त किया था, यह प्रबंधचिंतामणि से भी पाया जाता है[1] । यह शासक गोहिल नहीं था । सिद्धराज के उत्तराधिकारी कुमारपाल ने मूलुक को इस काम पर नियुक्त किया, और उसके बाद उसके बेटे राणक के समय तक सुराष्ट्र का शासन गोहिलों के हाथ में रहा, यह उक्त दो शिलालेखों से सिद्ध होता है । चूडासमों की शक्ति के पुनर्जीवित होने पर गोहिल लोग उनके सामंत मात्र रह गए जैसा कि मंडलीक काव्य और दंतकथा से प्रतीत होता है । किंतु सामंतों में भी उनका उच्चतम स्थान था, और वे कुल में चूड़ासमों के बराबर समझे जाते थे, यह भी हमारे काव्य से पाया जाता है ।

(१) रैवतकोद्धारप्रबन्ध, पृ० १५६-६० ।

काठियावाड़ के गोहिल अपने को चंद्रवंशी कहते हैं, पर हमारे काव्य में उन्हें स्पष्ट रूप से सूर्यवंशी कहा है[1], जिससे मालूम होता है कि पंद्रहवीं शताब्दी तक वे अपने को सूर्यवंशी ही मानते थे, और अपने को चंद्रवंशी मानना उन्होंने पीछे से आरंभ किया है। वे शालिवाहन के वंशज हैं यह बात भी ठीक है, पर किस शालिवाहन के, यह वे नहीं जान सके। "उनको इतना तो ज्ञात था कि वे अपने मूलपुरुष गुहिल के नाम से गोहिल कहलाए, वे शालिवाहन के वंशज हैं, उनके पूर्वज पहले जोधपुर राज्य के खेड इलाके के स्वामी थे और उनमें से सेजक (सहजिग) नामक पुरुष ने पहले काठियावाड़ में जागीर पाई, परंतु खेड़ के गोहिल मेवाड़ के राजा शालिवाहन के वंशज थे यह न जानने से ही उन्होंने अपने पूर्वज शालिवाहन को शक संवत् का प्रवर्त्तक पैठण का प्रसिद्ध आंध्रवंशी शालिवाहन मान लिया और उसके चंद्रवंशी न होने पर भी उसे चंद्रवंशी ठहरा दिया[2]।"

मेवाड़ के गुहलवंशी शालिवाहन के पिता नरवाहन की एक प्रशस्ति वि० सं० १०२८ की, और इसके पुत्र शक्तिकुमार का एक शिलालेख वि० सं० १०३४ का मिला है, जिससे शालिवाहन का समय इन दोनों के बीच में अर्थात् सं० १०३०-३२ के करीब ठहरता है। काठियावाड़ के गोहिल वस्तुतः इसी शालिवाहन के वंशज हैं।

क्या गोहिल भीम और उसके बेटे अर्जुन और दूदा का भी कहीं से पता चलेगा? भावनगर और पालीताना की परंपरागत वंशावली में ऐसे कोई नाम नहीं हैं, किंतु सौभाग्य से लाठी की दंतकथा में न केवल इनके नाम, प्रत्युत अर्जुन की पुत्री के मंडलीक के साथ के विवाह और दूदा की मंडलीक के हाथ से मृत्यु की पूरी कहानी ठीक हमारे काव्य के अनुसार संरक्षित है[3]।

---

(१) देखिए ऊपर, पृ० ३४३ टिप्पण ४।

(२) श्री पं० गौ० ही० ओझाजी के अप्रकाशित मेवाड़ के इतिहास से।

(३) रासमाला, गुज० अनु०, जि०, २, पृ० ११५, टिप्पणी। हिंद० राजस्थान, खंड २, पृ० ९६६-६७।

गोहिलों के बाद झल्ल हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। काठियावाड का उत्तर-पूर्वी हिस्सा[1] अब भी झालावाड प्रांत कहलाता है। दंतकथा बतलाती है कि झाला[1] लोगों का पुराना नाम मकवाना था और वे सिंध के पूर्वीय भाग में कीर्त्तिगढ़ वा किरतिगढ़ में रहते थे। वहां से सुमरा लोगों से लड़ाई होने के कारण उन्हें भागना पड़ा और इनका एक सरदार हरपाल गुजरात के राजा कर्ण बाघेला की शरण में आया जिसकी रानी का रोग दूर करने के कारण उसे एक बड़ी जागीर मिली। इस जागीर का केंद्र पाटडी था। धीरे धीरे ये लोग काठियावाड के अन्य स्थानों पर कब्जा करते गए और वढवाण, वांकानेर आदि रियासतें आजतक उन्हीं के हाथ में हैं। मुख्य शाखा पाटडी से उठकर ध्रांगदरा चली गई जहाँ वह अबतक मौजूद है। पीछे से इनकी एक शाखा काठियावाड से राजपूताना में भी आ बसी।

मकवाना लोगों का एक हिस्सा ही झाला कहलाया। दंतकथा के अनुसार हरपाल की पत्नी कोई साधारण मानुषी स्त्री नहीं थी, वह साक्षात् देवी थी। उसके तीन पुत्रों और लड़की को एक बार एक हाथी कुचलने आता था, इतने में देवी ने उन्हें झपट कर उठा लिया (= झाल्यो, झालि लीधो),[2] इस लिए इनका नाम झाला हुआ। हरपाल की दूसरी स्त्री से जो पुत्र उत्पन्न हुए वे मकवाना ही रहे।

झाला लोगों की उत्पत्ति इस तरह हुई या (भगवानलाल इंद्रजी पंडित के मतानुसार) हूण जाति जउल्ल से, जिसमें कि विख्यात तोरमाण हुआ था, हुई[3], यह विवाद इस लेख के विषय

---

(१) रासमाला, गु०अ०, जि०१, पृ०२३७-४६। काठियावाड़ सर्वसंग्रह, पृ०६०। रत्नमाला अने गुजरातनां राज्यो तथा राजवंशीओनी तवारीखोनो संग्रह, पृ०२७४,३४२। हिंदराजस्थान, खं०१, पृ०४२७-६० और २११-१३।

(२) सोढो, मांगो, ने शेखरो, लांबे कर झाली लिया। ओ आपे शक्ति आपणी कुंवर सारव झाली किया। रत्नमाला अने गु०, पृ० २७१।

(३) इस कल्पना के लिये भगवानलाल इंद्रजी और जैकसन कृत हिस्ट्री आव गुजरात (बांबे गज़ेटियर १-१) पृ० १४६ देखिए। परंतु इसमें कोई तत्व नहीं है।

से बहुत संबंध नहीं रखता। टाड ने लिखा है कि[1] झाला न सूर्यवंश के, न चंद्रवंश के और न अग्निकुल के हैं, अतः अवश्य ही विदेशी हैं। ये सब कल्पनाएं निरर्थक हैं क्योंकि झल्ल शब्द, मनुस्मृति में मल्ल और लिच्छिवि शब्दों के साथ, जो कि भगवान् बुद्ध के समय के प्रसिद्ध गणों के नाम हैं, पाया जाता है[2]। और झाला झल्ल का ही भाषा रूप है जैसा कि इस काव्य में पाटड़ि के सामंतों को झल्ल कहने से सिद्ध होता है। हमारे काव्य में जहाँ गोहिलों को सूर्यवंशी कहा है, वहाँ झल्लों को चंद्रवंशी कहा है।

दंतकथा ने झालों के सिंध से काठियावाड़ आने का वृत्तांत कायम तो रक्खा है, किंतु उसमें थोड़ी सी गड़बड़ कर दी है। गुजरात के इतिहास में दो राजा कर्ण हुए हैं—एक सोलंकी सिद्ध-राज जयसिंह का पिता, और दूसरा बाघेला (करण घेला) अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन। दंतकथा के अनुसार (कम से कम एक प्रकार के) झाला लोग कर्ण बघेला के पास आए[3] किंतु वास्तव में वे लोग कर्ण सोलंकी के दरबार में आए प्रतीत होते हैं। प्रबंधचिंतामणि से सिद्धराज जयसिंह के दरबार में मांगू झाला का होना पाया जाता है[4]। परंपरागत वंशावली के अनुसार हरपाल के रेवा से पैदा हुए तीन पुत्रों में से एक का नाम मांगू था, यह निश्चय ही सिद्धराज जयसिंह का दरबारी मांगू झाला ही होगा[5]। खेद है कि किसी शिलालेख में हमें झालों का उल्लेख नहीं मिला।

---

(१) टाड राजस्थान जि० १, पृ० १३५। (विलियम क्रुक का संस्करण)।

(२) अध्याय १०, श्लोक २२, तथा अध्याय १२, श्लोक ४५।

(३) काठियावाड़ सर्वसंग्रह, पृ० ६०। रासमाला (गु० अ०), जि० १, पृ० ५४०।

(४) मांगूझाला प्रबंध (पृ० १७६–८०)।

(५) रासमाला (गु० अ०) जि० १ पृ० ५४५। हिंदराजस्थान भाग १, पृ० ५१३।

(६) रासमाला (गु० अ०) जि० १, पृ० ५४० के टिप्पणों से सिद्ध किया गया है कि झाला लोग कर्ण सोलंकी के दरबार में आए थे, न कि कर्ण बाघेला के।

हमारे काव्य में दो झालों का नाम आया है, एक झल्ल कृष्ण का और दूसरा मंडलीक के श्वसुर पाटडी के भीम का। अहमदशाह के समकालीन झालावाड़ के राजा का नाम वंशावलियों में सतरसाल मिलता है, किंतु मीरात-ए-सिकंदरी में झाला कान्हा सतरसाल लिखा है, वही हमारे काव्य का झल्ल कृष्ण है। झल्ल भीम का नाम हमें कहीं नहीं मिला। झल्ल कृष्ण के समान उसका भी वंशावलियों में कोई दूसरा नाम होगा।

(४) विविध-सिंधुराज

काव्य की गौण बातों पर विचार करके हम इस लेख को समाप्त करेंगे।

चौथे सर्ग का सारा वर्णन कल्पित है। फिर भी उससे तत्का-लीन हिंदू कवियों के सामने हिंदू भारत का जो चित्र था, उसकी एक झलक मिल जाती है। मंडलीक के दूसरे विवाह के समय जिस सिंधुराज के छत्र लेकर चलने का उल्लेख है वह कोई बड़ा हिंदू ज़मींदार ही रहा होगा।

शंखोद्धार के संगण और उसके साथी "पारसीक" सिंधुराज का पता निकालना बाकी है। संगण का कुछ भी पता हमें कहीं से भी नहीं मिल सका। पारसीक सिंधुराज क्या वास्तव में सिंध का कोई राजा हो सकता है ? एक संस्कृत काव्य में आये हुए गुमनाम मुसलमान के नाम का, जो अपने देश से दूर एक छोटे से द्वीप में आकर एक तुच्छ सी लड़ाई में मारा जाता है, पता ढूंढ़ निकालना कठिन प्रतीत होता है; किंतु सौभाग्य से हमें इसमें सफलता हुई है।

महमूद गजनवी के उत्तराधिकारियों से सिंध का राज्य सुमरा राजपूतों ने ले लिया था, और उनके बाद वह सम्मा लोगों के हाथ

हिंद राजस्थान, पृ० ४१३ में दी हुई तिथियाँ ठीक मालूम होती हैं। यदि उसके लेखकों ने रासमाला के टिप्पण के आधार पर संशोधन नहीं किया, प्रत्युत दंतकथा के किसी दूसरे प्रकार के अनुसार बयान दिया है तो कहना होगा कि दंतकथा की कम से कम एक शाखा ने ग़लती नहीं की।

आया। इसी सम्मा जाति के सरदार जाम कहलाते थे। मुहम्मद और फ़ीरोज़ तुग़लक के राज्यकाल की घटनाओं से इन जामों का संबंध प्रसिद्ध है।

फ़ीरोज़ तुग़लक की सिंध पर चढ़ाई ईलियट ने हि० स० ७६२ में रक्खी है[1]; किंतु शम्स-ए-सीराज की तारीख-ए-फ़ीरोज़शाही के अनुसार वह लखनौती से लौटने के चार साल बाद हुई थी[2], और तुहफ़ात्-उल-किराम का लेखक उसे ७७२ हि० में रखता है[3]। तारीख़-ए-फ़ीरोज़शाही का लेखक तुगलक का समकालीन था, और उसका पिता सिंध की चढ़ाई में फ़ीरोज़ के साथ था। इसलिये हमें उसका लिखा हुआ संवत् ठीक प्रतीत होता है। हि० स० ७६१ की वर्षा ऋतु फ़ीरोज़ ने लखनौती से लौट कर जौनपुर में बिताई थी। इसके अनुसार उसकी सिंध पर की चढ़ाई ७६६ हि० (वि० सं० १४२१–२२) से पहले नहीं हो सकती। इस चढ़ाई के समय सिंध पर ज़ाम बाबनिया का राज्य था जिसे फ़ीरोज़शाह कैद करके ले गया। तारीख़-ए-मअसूमी[4] के अनुसार, देहली जाकर "कुछ काल बाद" फ़ीरोज़-शाह ने उसे छोड़ दिया, और वापिस आकर उसने १५ साल राज्य किया। जाम बाबनिया के बाद जाम तमाची ने १३ साल तक और उसके बाद जाम सलाहुद्दीन ने ११ साल और कुछ महीनों तक राज्य किया। उसका लड़का जाम निज़ामुद्दीन था जो नाजिमों के हाथ में राज्य का कारबार छोड़ कर भोगविलास में लग गया। यह अवस्था दखकर उसके चचों ने उसपर हमला करने के विचार से फ़ौज़ तैयार की, जिसका समाचार पाकर वह रात के समय कुछ सेना के साथ निकल कर गुजरात की तरफ़ चला गया। उसके चचों ने उसका पीछा किया, किंतु कुछ समय बाद उन्हें उसकी मृत्यु का समाचार पाकर पीछे लौटना पड़ा।

(१) हिस्टरी आव इंडिया, जि० १, पृ० ४६४।
(२) ईलियट, हिस्टरी आव इंडिया, जिल्द ३, पृ० ३१६।
(३) वहीं, जि० १, पृ० ३४२।
(४) वहीं, जि० १, पृ० २२६ से।

तारीख-ए-मअसूमी के दिए हुए जामों के राज्य काल के वर्षों के अनुसार जाम निज़ामुद्दीन हमारे मंडलीक का समकालीन होता है। उसकी मृत्यु कैसे हुई, इसका कुछ पता मुसलमान ऐतिहासिकों ने नहीं दिया; किंतु मंडलीक काव्य के आधार पर हम अनुमान कर सकते हैं कि शंखोद्धार के युद्ध में मरनेवाला सिंधुराज वही था। जाम निज़ामुद्दीन उसी सम्मा जाति का था जिसमें कि मंडलीक का पूर्वज चूडाचंद्र हुआ था, और उसके पूर्वज कच्छ ही से सिंध जा बसे थे, जहाँ से मंडलीक के पूर्वज काठियावाड गए थे। उसके मुसलमान होने से ही मंडलीक के दरबारी कवि ने उसे "पारसीक" कह डाला है।

१५—शंकर मिश्र ।

[लेखक—पंडित शिवदत्तशर्म्मा, अजमेर]

मिथिला में उच्च ब्राह्मण कुलों में "सिंहासमय" नाम का एक कुल सुप्रसिद्ध है । इस कुल के आदि पुरुष हलायुधमिश्र थे और कालांतर में इस ही कुल में सुरेश्वर नाम के पंडित उत्पन्न हुए जिन्होंने "सोदरपुर" नामक ग्राम उपार्जन किया, तब से यह कुल 'सोदरपुर' नाम ही से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ । सुरेश्वरमिश्र के प्रपौत्र भवनाथमिश्र हुए जिनको दूबे मिश्र भी कहते थे, परंतु उनका अति प्रसिद्ध नाम "अयाची" था और वह यों पड़ा कि उन्होंने कदापि किसीसे किसी प्रकार की भी याचना नहीं की । भवनाथमिश्र सरस्वती के असामान्य उपासक थे जिसके प्रसाद से यों तो कौन सा ऐसा शास्त्र था जिसमें उनकी अच्छी गति न थी परंतु मीमांसा, न्याय, और व्याकरण में उनका पांडित्य असीम था । यद्यपि उनका रचा हुआ एक ही व्याकरण विषय का "प्रयोगपल्लव" नाम का ग्रंथ संप्रति प्राप्त है तथापि उन्होंने अन्य ग्रंथों की भी रचना की यह उनके पुत्र के लिखे हुए ग्रंथों के श्लोकों से, जो नीचे टिप्पण में दिए हैं[1], भले प्रकार प्रतीत होता है । उनके पुत्र का नाम शंकरमिश्र था जिसने विक्रम की सोलहवीं शताब्दी[2] के अंत में

---

[1] (१) याभ्यां वैशेषिके तंत्रे सम्यग्व्युत्पादितोऽस्म्यहम् ।
कणादभवनाथाभ्यां ताभ्यां मम नमः सदा ॥
भवनाथसूक्तिगुम्फनमिह खंडनखाद्यटीकायाम् ।
श्रीशंकरेण विदुषा विदुषामानंदवर्धनं क्रियते ॥
स्वभ्रातुर्जयनाथस्य व्याख्यामाख्यातवान् यतः ।
मत्पिता भवनाथोऽयं तामिहालिखमुज्ज्वलम् ॥

[2] (२) शंकर मिश्र का रचा हुआ रसार्णव नामक एक ग्रंथ है । उसमें निम्नलिखित श्लोक मिलता है—

जन्म लेकर मिथिला-महीमंडल को समलंकृत किया। उन दिनों में वहां श्रीपुरुषोत्तम (अपर नाम गरुडनारायण) नाम के महाराज राज्य करते थे। मैथिलों में यह बात प्रसिद्ध है कि विहारप्रांत के अंतर्गत मिथिला देश के अवयवभूत दर्भंगा नगर से दो योजन पूर्व दिशा में सरिसवा नाम का ग्राम इनका निवासस्थान था। इनके पिता, जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है परम सात्विक वृत्ति के विद्याव्यसनी परंतु निर्धन तपस्वी थे। ऐसा कहते हैं कि जिस समय उनकी प्रसूता पत्नी ने पुत्ररत्न उत्पन्न किया उस समय घर में द्रव्य के अभाव से उनकी उदारहृदय धर्मपत्नी को यह वचन दाई को देना पड़ा था कि "जो कुछ भी इस बालक की प्रथम कमाई होगी वह तेरी ही होगी"।

इस बालक का नाम "शंकर" रक्खा गया और वह बाल्यावस्था में ही चमत्कृत बुद्धिवाला तथा प्रतिभाशाली निकला। मैथिलों में उसके सम्बन्ध की अनेक कथाएँ अद्यावधि सुप्रसृत हैं परंतु उसके नितांत शैशव काल की एक अद्भुत घटना की लौकिक प्रसिद्धि उल्लेखनीय है। वह यह है कि एक दिन उस देश के महाराज की सवारी उस ग्राम के मार्ग से जारही थी परंतु रात्रि हो जाने के कारण वहां ही रह गई। ज्योंही इस बात की चर्चा गांववालों के मुख से बालकों के कानों में पहुँची त्योंही उनमें से अनेक महाराज के दर्शन करने को लपके। कौतुकाविष्ट शंकरमिश्र भी, यद्यपि वह उस समय ५ वर्ष से न्यून ही आयुवाला था बिना कौतुक शमन किए कब शांत रह सकता था? निदान वह भी उस स्थान पर पहुँचा जहां पर छोटे

सभ्याश्चेत्प्रतियंति कामपि कथामावेदयामो वयं
वीर श्रीपुरुषोत्तमक्षितिपते तत्रावधानं कुरु।
त्वत्प्रत्यर्थिमहीभुजाम्मृगदृशो वक्षोजकुम्भद्वया-
वष्टम्भादपि संतरीतुमधुना वांछंति वाराान्निधिम्॥

महामहोपाध्याय श्रीपरमेश्वरशर्मा का मत है कि श्रीपुरुषोत्तम (अपरनाम गरुडनारायण) महाराज ने १५८९ संवत्सर के अनंतर मिथिला देश पर राज्य किया, अतः शंकर मिश्र का समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का अंत भाग होता है।

बड़े बहुत से बालक पंक्ति बाँधे राजा के दर्शनों की बाट देख रहे थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूप सबके नेत्रों को हर लिया करता है। वहां पर राजा के दर्शनों के भिक्षुक अनेक खड़े हुए थे परंतु शिशु शंकरमिश्र के सुचारू रूप ने राजा के नेत्रों को भिक्षुक बना दिया और वह लोभायमान होकर उस वपुष्मान् बटुक के निकट आकर चित्र-खचित सा खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद उसने संस्कृत भाषा में जो उस समय तक उस देश में बोल चाल में थी, कहा, वत्स! कोई पद सुना सकते हो? बालक ने उत्तर दिया कि राजन्! निज निर्मित सुनाऊं अथवा अन्य निर्मित। राजा ने कहा कि क्या तू भी पद रच सकता है। इतना सुनना था कि बालक ने तत्काल उत्तर दिया-

"बालोऽहं जगदानन्द न मे बाला सरस्वती
अपूर्णे पंचमे वर्षे वर्णयामि जगत्त्रयम् ॥"

जिसका अर्थ है कि हे जगदानंद नरेश! मैं बाल हूँ परंतु मेरी सरस्वती (विद्या) बाला नहीं है[1]। अभी मेरा पाँचवां वर्ष पूर्ण नहीं हुआ है परंतु त्रिलोकी का वर्णन कर सकता हूँ। इस उत्तर को सुन कर राजा आश्चर्य्य में मग्न हो गया और कुछ विचारकर थोड़ी देर बाद फिर बोला कि अच्छा वत्स! अपना अथवा किसी और का बनाया हुआ कोई पद सुनाओ। यह आदेश पाते ही अपौरुषेय श्रुति के अतिरिक्त अन्य किसी के भी पद का अपने पद के साथ साहचर्य्य न सहनेवाले बालक ने—

"चलितश्चकितश्छन्नः प्रयाणे तव भूपते।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥"

श्लोक बनाकर कहा जिसका पूर्वभाग उसका बनाया हुआ है और उत्तर भाग पुरुष-सूक्त के एक मंत्र का पूर्वार्ध है। श्लोक का आशय यह है कि राजन्! आपके चलने पर हज़ार सिर, हज़ार आँख और

---

(१) ऐसा जान पड़ता है कि यह जनश्रुति पीछे से प्रचलित हुई और अतिशयोक्ति से खाली नहीं है। [सं०]।

हज़ार पैरवाला पुरुष चलित, चकित और छन्न (स्तब्ध) हो जाता है अर्थात् हज़ारहों पुरुष चलते, चकित होते तथा स्तब्ध होते हैं। राजा इस बालक की विलक्षण बुद्धि को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसको अपने तंबू में ले जा अपनी पेटी खोल उसने कहा कि बच्चे! जितना भी सुवर्ण तुझसे उठाया जा सके इसमें से उठा ले। इधर यह बालक अपने दोनों हाथों को सुवर्ण से भरकर अपने घर को चला और उधर उसके पहुँचने के पहले ही यह शुभ समाचार उस की माता के पास अन्य बालकों द्वारा पहुँच गया। संभव है बालक के चित्त में यह विचार हो कि माता पारितोषिक को देख प्रसन्नचित्त हो मेरा स्वागत करेगी, परंतु घर पर उपचार अन्यथा ही हुआ। ज्योंही ब्राह्मणी ने सोना लिए हुए पुत्र को आया हुआ देखा त्योंही वह सहसा उठकर उससे बोली, "देख, अभी बाहर ही खड़ा रह, अंदर मत आ, सोने को घर में मत ला"। पुत्र से इतना कहकर उसने बालक के प्रसव-समय में सहाय करनेवाली दाई को बुलवाया और उससे कहा कि आज मेरे पुत्र ने यह प्रथम कमाई की है तू मेरे पूर्व दिए हुए बचन के अनुसार इसको ग्रहण करके मुझको कृतार्थ कर। दाई स्वप्न में भी कब ऐसा विचार कर सकती थी कि एक साधारण सेवा के प्रत्युपकार की प्रतिज्ञा थोड़े ही दिनों में इतनी अधिक धन-राशि, जिसकी उस सामान्य सेवा से कुछ भी तुलना नहीं, अर्पण करेगी। उसने उसके ग्रहण करने में संकोच किया परंतु ब्राह्मणी अपनी प्रतिज्ञा के पालन में दृढ़ थी। निदान दाई को वह सोना लेना ही पड़ा और उस धर्मात्मा ने वह समस्त धन लगाकर उस ग्राम के निकट एक जलाशय खुदवाया जो अभी तक श्रीसिद्धेश्वरी देवी के मंदिर के उत्तर भाग में विद्यमान है और 'दाई का तलाव' कहलाता है। यह सिद्धेश्वरी देवी वहाँ ग्राम-देवता के रूप में पूजी जाती है और मंदिर शंकरमिश्र ही ने अपने निवासस्थान के दक्षिण ओर बनवाया था। पास में ही एक विद्यालय भी था जिसमें बड़ी संख्या में विद्यार्थी पढ़ा करते थे और वहीं रहा भी करते थे। भूतपूर्व महाराज लक्ष्मी-

श्वरसिंहजी की ज्येष्ठ धर्मपत्नी ने इस विद्यालय के स्थान में एक संस्कृत पाठशाला तथा एक अंग्रेजी पाठशाला स्थापित की है।

अयाचनव्रतधारी पंडित भवनाथमिश्र, जब पुत्र पौत्रादि-सम्पन्न होकर वृद्धावस्था को प्राप्त हुए तब एक दिवस उनके अनुरागी पुत्र शंकर ने अपने पूज्य पिताजी के हृदय की शेष अभिलाषा जानने की इच्छा से अपने घर की भीति पर निम्नलिखित आधा श्लोक लिख दिया।

अधीतमध्यापितमर्जितं यशो
न शोचनीयं किमपीह भूतले।

अर्थात् पढ़ लिया, पढ़ा लिया, यश उपार्जन कर लिया अब कोई ऐसी बात तो पृथ्वी पर रही हुई नहीं दिखाई देती कि जो शोचनीय हो। जब इस लेख पर भवनाथजी की दृष्टि पड़ी तो वे हँसे और—

अतः परं श्रीभवनाथशर्म्मणो
मनो मनोहारिणि जाह्नवीतटे॥

लिखकर चले गए जिसका आशय यह है कि बस, अब इसके उपरांत मेरा मन मनोहारिणी श्रीगंगाजी के तट पर विचरना चाहता है। तत्पश्चात् वे गंगाजी के तट पर ही चले गए और वहीं पर उन्होंने अपना शरीर त्यागा।

श्रीमान् शंकरमिश्र ने अपने पिताजी से नाना शास्त्र पढ़कर अगाध पांडित्य प्राप्त किया और अपना जीवन साहित्य की सेवा करने तथा विद्यार्थियों को पढ़ाने में लगाया। इनके विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक थी यहाँ तक कि उनमें से इतने तो इस योग्य थे कि किसी विशेष कारणवश उन्होंने मिलकर एक ही रात में हरिवंशपुराण को, जिसमें अनुमान से दश सहस्र श्लोक हैं, नक़ल कर डाला। वह प्रतिलिपि अद्यावधि विद्यमान है और उसके अंत में इस घटना के सूचक शब्द लिखे हुए हैं। इन पंडित-रत्न के रचे हुए कई

ग्रंथ अभी मिलते हैं। उनमें कुछ तो दूसरे ग्रंथों की टीकाएं हैं और कुछ मौलिक ग्रंथ हैं। उनके नाम ये हैं —

(१) वैशेषिकसूत्रोपस्कार।

(२) कणादरहस्य।

(३) वादिविनोद।

(४) खंडनखंडखाद्यटीका।

(५) गौरीप्रहसन।

(६) आमोदनाम्नी कुसुमांजलि की टीका।

(७) आत्मतत्वविवेक टीका।

(८) भेदरत्न।

(९) रसार्णव।

(१०) अनुमानमयूख।

इनमें से पहले पाँच ग्रंथों का मुद्रण भी हो चुका है। ग्रंथों की सूची से ऐसा प्रतीत होता है कि शंकरमिश्र के मन का झुकाव दर्शन ग्रंथों के अध्ययन अध्यापन की ओर ही अधिक था और जिस शैली में सूत्रों की व्याख्या उन्होंने अपने गुरुमुख से सुनी उसी शैली को पोषण करने के लिये उन्होंने उन ग्रंथों की टीकाएँ बनाईं। इस ग्रंथमाला में जो दो बेमेल नाम "गौरीप्रहसन" और "रसार्णव" दिखाई दे रहे हैं उनमें पहला तो एक नाटक है, जो उन्होंने बाल्यावस्था में अपने पिताजी की आज्ञा से रचा, और दूसरा निजनिर्मित सुभाषित-संग्रह है।

---

(१) महामहोपाध्याय श्रीगंगानाथजी ने ग्रंथों की संख्या ११ लिखी है परंतु आठ का अंक नहीं छपा है ७ वाँ ग्रंथ "भेदरत्नम्" लिखा है और ९ वाँ "रसार्णव"। भेदरत्नम् के नीचे निम्नलिखित लेख है—

खंडनखंडखाद्यखंडनपरो ग्रंथः

(अत्रत्यः प्रतिज्ञाश्लोको यथा—

भेदरत्नपरित्राणे तार्किका एव यामिकाः।

अतो वेदान्तिनः स्तेनान् निरस्येत्येष शङ्करः॥ इति)

यदि यह भेदरत्न से भिन्न ग्रंथ है तो कुल मिलाकर ११ ग्रंथ होते हैं।

सुप्रसिद्ध महामहोपाध्याय श्रीगंगानाथ शर्म्मा इस वंश की संतान हैं और इन्हींद्वारा "श्रीश्यामाचरण संस्कृत ग्रंथावलि" में छपाए हुए "वादिविनोद" ग्रंथ के उपोद्घात के आश्रय पर यहाँ तक लिखा गया है। प्रसिद्ध विद्वान् आफ्रेक् महोदय ने अपने 'कैट-लाग्स कैटेलागरम्' नामक अपूर्व ग्रंथ में लिखा है कि शंकरमिश्र भवनाथ के पुत्र तथा जीवानाथ (जयनाथ) के भतीजे थे। उन्होंने अपने 'वैशेषिकसूत्रोपस्कार' में अपने ही रचे हुए कणादरहस्य, मयूख, वादिविनोद तथा अपने चचा जीवानाथ के अतिरिक्त बल्लभाचार्य, वाचस्पतिमित्र और श्रीधराचार्य का उल्लेख किया है। उक्त महोदय ने ऊपर लिखे हुए ग्रंथों के अतिरिक्त नीचे लिखे हुए ग्रंथ भी इन्हीं शंकरमिश्र के बनाए हुए बतलाए हैं—

(१) छांदोगाह्निकोद्धार। (२) न्यायलीलावतीकंठाभरण। (३) प्रायश्चित्तप्रदीप। (४) भेदप्रकाश। (५) श्राद्धपद्धति। (६) क्रोडपत्र। (७) गदाधरी टीका। (८) जागदीशी टीका। (९) अनुमिति टीका। (१०) अवच्छेदकत्वनिरुक्ति टीका। (११) असिद्धपूर्वपक्षग्रंथ टीका। (१२) असिद्धसिद्धांतग्रंथ टीका। (१३) उदाहरणलक्षण टीका। (१४) उपाधिदूषकताबीज टीका। (१५) उपाधिपूर्वपक्ष टीका। (१६) उपाधिसिद्धांतग्रंथ टीका। (१७) कूटघटितलक्षण टीका। (१८) केवलान्वयीग्रंथ टीका। (१९) तर्कग्रंथ टीका। (२०) तृतीयमिश्रलक्षण टीका। (२१) द्वितीयमिश्रलक्षण टीका। (२२) पक्षता टीका। (२३) पक्षतासिद्धांतग्रंथ टीका। (२४) पंचलक्षणी क्रोड। (२५) पंचलक्षणी टीका। (२६) परामर्शपूर्वपक्षग्रंथ टीका। (२७) परामर्शसिद्धांतग्रंथ टीका। (२८) प्रतिज्ञालक्षण टीका। (२९) प्रथमचक्रवर्तीलक्षण टीका। (३०) प्रथममिश्रलक्षण टीका। (३१) बाधपूर्वपक्षग्रंथ टीका। (३२) बाधसिद्धांतग्रंथ टीका। (३३) विरुद्धपूर्वपक्षग्रंथ टीका। (३४) विशेषनिरुक्ति टीका। (३५) सत्प्रति-पक्ष क्रोड। (३६) सत्प्रतिपक्षसिद्धांतग्रंथ टीका। (३७) सव्यभि-चारपूर्वपक्षग्रंथ टीका। (३८) सामान्यनिरुक्ति क्रोड। (३९) सामा-

न्यनिरुक्ति टीका। (४०) सामान्यनिरुक्तिपत्र। (४१) सामान्य-लक्षण टीका। (४२) हेतुलक्षण टीका। (४३) शंकरपत्र। (४४) शंकरभट्टीय। (४५) शांकरी। (४६) तत्वचिंतामणिमयूख।

कल्पलता नाम का एक ग्रंथ इन्हीं का बनाया हुआ माना जाता है। इनके गुरु का नाम रघुदेव मिलता है।

१६—हिंदुस्तान की वर्तमान बोलियों के विभाग और उनका प्राचीन जनपदों से सादृश्य।

[लेखक—श्रीयुत धीरेंद्र वर्मा, एम० ए०, इलाहाबाद]

हिंदुस्तान में निम्न मुख्य बोलियाँ बोली जाती हैं—हिंदुस्तानी, बाँगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली; अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी; भोजपुरी, मैथिली, मघई, मालवी, जयपुरी और मारवाड़ी। ध्यान देने से एक अत्यंत आश्चर्यजनक बात दिखलाई पड़ती है। इन

---

(१) हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग इस लेख में कुछ संकुचित अर्थ में किया गया है। कोई अन्य उपयुक्त शब्द न मिलने के कारण ऐसा करना पड़ा। यहाँ हिंदुस्तान का अर्थ प्रायः भागलपुर तक की गंगा की घाटी से है। अतः हिंदुस्तान में उत्तर भारत के निम्न प्रांत सम्मिलित हैं—देहली का प्रांत, पंजाब के सरहिंद के ज़िले, गढ़वाल तथा कमायूँ के पहाड़ी प्रदेशों को छोड़कर शेष संयुक्त प्रांत, उड़ीसा को छोड़कर बिहार प्रांत, मराठी बोलनेवाले चार ज़िलों को छोड़कर शेष मध्य प्रांत, मध्य भारत और राजस्थान। "हिंदुस्तान का नवीन साहित्य" नाम की पुस्तक में ग्रियर्सन साहब ने भी हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है। पाठक इस लेख में हिंदुस्तान के इस अर्थ पर ध्यान रक्खें।

(२) हिंदुस्तान की बोलियों तथा भाषाओं के पूर्ण विवेचन के लिये देखिये—

लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया, संपादक सर जी० ए० ग्रियर्सन—,

पुस्तक ५, भाग २, बिहारी; उड़िया।

,, ६, पूर्वी हिंदी।

,, ६, भाग १, पश्चिमी हिंदी; पंजाबी।

,, ६, भाग २, राजस्थानी, गुजराती।

ग्रियर्सन साहब ने हिंदी को दो मूल भाषाओं में विभक्त किया है। एक को पश्चिमी हिंदी और दूसरी को पूर्वी हिंदी नाम दिया है। पश्चिमी हिंदी में पाँच बोलियाँ मानी हैं—हिंदुस्तानी, बाँगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली। पूर्वी हिंदी में अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी ये तीन बोलियाँ गिनी हैं। बिहारी

बोलियों के ये वर्तमान विभाग यहाँ के प्राचीन जनपदों[1] के विभागों से बहुत मिलते हैं। प्रत्येक बोली एक प्राचीन जनपद की प्रतिनिधि मालूम पड़ती है। प्रत्येक बोली के विभाग को लेकर मैं यह दिखलाने का यत्न करूँगा कि वह किस प्राचीन जनपद से मिलता है।

हिंदुस्तानी बोली संयुक्त प्रांत के मुरादाबाद, बिजनौर, सहारन-

भाषा 'हिंदी भाषाओं से भिन्न मानी है और उसमें भोजपुरी, मैथिली और मगही को सम्मिलित किया है। राजस्थानी भी एक भिन्न भाषा बतलाई है और उसमें मालवी, जयपुरी और मारवाड़ी इन तीन बोलियों को गिना है।

ग्रियर्सन साहब का कहना है कि बिहारी, पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी का जन्म क्रम से मागधी, अर्धमागधी और शूरसेनी प्राकृतों से हुआ है। अन्य विद्वान भी ऐसा ही मानते हैं। मेरी राय में इन प्राकृतों के वर्तमान रूप मगही, अवधी और ब्रज की बोलियाँ हैं न कि बिहारी, पूर्वी हिंदी तथा पश्चिमी हिंदी भाषाएँ। इस संबंध में पूर्ण रूप से फिर कभी लिखूँगा।

इस लेख में बोलियों की गणनाएँ तथा उनके बोले जानेवाले प्रदेशों की सीमाएँ ग्रियर्सन साहब की इस विस्तृत सर्वे के आधार पर ही मानी गई हैं।

(१) प्राचीन जनपदों के नाम वैदिक साहित्य में बहुत स्थानों पर आए हैं। जनपदों का प्रथम पूर्ण वर्णन महाभारत में मिलता है। महाभारत के अनुसार उस समय हिंदुस्तान में निम्न मुख्य जनपद थे—कुरु, पंचाल, शूरसेन, मत्स्य, कोसल, काशी, विदेह, मगध, अंग, वत्स, दक्षिण कोसल, चेदि और अवंति। इन जनपदों की सीमाओं का ठीक ठीक वर्णन बहुत कम मिलता है किंतु इनकी राजधानियों से इनके क्षेत्रफल का बहुत कुछ ठीक अनुमान किया जा सकता है। इन जनपदों के संक्षिप्त वर्णन के लिये देखिए—

महाभारत मीमांसा (लेखक सी० वी० वैद्य) पृष्ठ ३११–३१४ तथा जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी, १९०८, पृष्ठ ३३२। बुद्ध भगवान् के समय तक जनपदों के ये नाम मौजूद थे। परिशिष्ट १, कोष्ठक 'ख' में ये नाम दिए गए हैं।

(२) हिंदुस्तानी बोली आजकल समस्त हिंदुस्तान में और उसके निकटवर्ती अन्य प्रांतों में भी सुगमता से समझी जाती है। संपूर्ण उर्दू साहित्य और नवीन हिंदी साहित्य की भाषा इसी बोली के व्याकरण के आधार पर ढली है। इस बोली की प्रधानता का कारण इसका देहली के निकट बोला जाना प्रतीत होता है। मुसल्मान शासकों ने देहली को अपनी राजधानी बनाया था अतः वहाँ की बोली स्वभावतः उनके राज्य की राजभाषा हो गई। साहित्य के क्षेत्र में

पुर, मुज़फ्फ़रनगर और मेरठ इन पाँच ज़िलों, रामपुर रियासत और पंजाब के अंबाला ज़िले में बोली जाती है। यह भूमिभाग प्राचीन समय में कुरु जनपद था। यह बात कुतूहलजनक है कि इस बोली का शुद्ध रूप अब भी उसी स्थान के निकट मिलता है जिस स्थान पर कुरुदेश की प्रसिद्ध राजधानी हस्तिनापुर थी। हिंदुस्तानी हरिद्वार से प्रायः सौ मील नीचे तक गंगा के किनारे के लोगों की बोली कही जा सकती है।

बाँगरू बोली हिंदुस्तानी का कुछ बिगड़ा हुआ रूप है। इसमें राजस्थानी और पंजाबी का प्रभाव अधिक देख पड़ता है। यह बोली पंजाब प्रांत के कर्नाल, रोहतक और हिसार के ज़िलों, झींद रियासत और नवीन देहली प्रांत में बोली जाती है। यह कुरुदेश का वह भूमिभाग है जो कौरवों ने पांडवों को दिया था। यह कुरुवन, कुरु जांगल या कुरुक्षेत्र कहलाता था। मनुस्मृति का ब्रह्मावर्त[1] देश यहाँ ही था।

पांडवों की राजधानी इंद्रप्रस्थ, वर्धन वंश की राजधानी स्थाने-

भी इसे मुसलमान कवियों ने ही पहले पहल अपनाया था। उस समय हिंदू कवि प्रायः ब्रजभाषा में कविता लिखते थे। आजकल तो हिंदुस्तान की बोलियों में हिंदुस्तानी ही सर्वप्रधान है। हिंदी और उर्दू हिंदुस्तानी बोली के संस्कृत तथा संवर्धित रूप हैं। उर्दू हिंदुस्तानी बोली का वह रूप है जिसका प्रयोग मुसलमान लोग साहित्य में करते हैं। इसमें स्वभावतः फारसी तथा अरबी शब्दों का मिश्रण अधिक हो गया है और यह फारसी अक्षरों में लिखी जाती है। हिंदी हिंदुस्तानी बोली का वह रूप है जिसका प्रयोग हिंदू लोग आज कल साहित्य में करते हैं। इसमें स्वभावतः संस्कृत शब्दों का बहुत मिश्रण हो गया है और यह देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती है। हिंदुस्तान के पढ़े लिखे लोग बोलचाल में भी प्रायः हिंदुस्तानी बोली का ही प्रयोग करते हैं चाहे उनकी निज की बोली भिन्न हो।

(१) मनुस्मृति, २,१७। "सरस्वती और दृषद्वती इन दो देवनदियों के जो मध्य में है उस देवताओं के रचे देश को ब्रह्मावर्त कहते हैं।" सरस्वती और यमुना के बीच की एक छोटी नदी को दृषवती मानते हैं। इसका वर्तमान नाम घग्घर है।

श्वर, तथा विशाल मुग़ल साम्राज्य की राजधानी दिल्ली इसी प्रदेश में पड़ती हैं । वर्त्तमान अंग्रेज शासकों के भारत साम्राज्य की प्रधान नगरी नवीन देहली भी यहाँ ही बस रही है । पश्चिम से आनेवाले आक्रमणकारियों को हिंदुस्तान का प्रथम जनपद यही मिलता था, अतः हिंदुस्तान के भाग्य का बहुत बार निर्णय करनेवाला प्रसिद्ध पानीपत का युद्धक्षेत्र भी इसी प्रदेश में है ।

बाँगरू सरस्वती और यमुना के बीच में बसे हुए लोगों की बोली कही जा सकती है । उत्तर के कुछ भाग को छोड़कर शेष स्थानों पर बाँगरू और हिंदुस्तानी के प्रदेशों को यमुना की नीली धारा अलग करती है । वास्तव में यह बाँगरू प्रदेश कुरु-जनपद का ही अंश है ।

कन्नौजी बोली पीलीभीत, शाहजहाँपुर, हरदोई, फ़र्रूखाबाद, इटावा और कानपुर के ज़िलों में बोली जाती है । यह भूमिभाग प्राचीन काल में पंचाल जनपद था । व्रज और अवधी के बीच में पड़जाने से कन्नौजी बोली का क्षेत्रफल कुछ संकुचित हो गया है । पंचाल देश का प्राचीन रूप जानने के लिये इन दोनों बोलियों से कुछ ज़िले लेने पड़ेंगे । इस बोली का केंद्र कन्नौज नगरी है जिससे इस बोली का नाम पड़ा है । पंचालों के राजा द्रुपद की राजधानी कांपिल्य कन्नौज से कुछ ही दूर पश्चिम की ओर गंगा के दक्षिण किनारे पर बसी थी ।

प्राचीन पंचाल देश की तरह अब भी गंगा इस प्रदेश के दो टुकड़े करती है । प्राचीन काल में गंगा के उत्तर का भाग उत्तर पंचाल और दक्षिण का भाग दक्षिण पंचाल कहलाता था । उत्तर पंचाल के बहुत से भाग में कुछ काल से व्रज की बोली का प्रभाव हो गया है । उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छेत्र जो बौद्धकाल तक प्रसिद्ध रही थी बरेली ज़िले में पड़ती है । यहाँ आज कल व्रज का एक रूप बोला जाता है ।

गंगा के पार पूरब में बदायूँ और बरेली के जिलों में व्रजभाषा के घुस पड़ने के कुछ कारण हैं । अहिच्छेत्र के नष्ट हो जाने पर इस

प्रदेश की कोई प्रसिद्ध राजधानी नहीं रही, जो यहाँ का केंद्र हो सकती। ऐसे केंद्रों से बोली तथा अन्य प्रादेशिक बातों की रक्षा में बहुत सहायता मिलती है। इसके सिवाय ब्रज का वैष्णव साहित्य जो प्राय: गीतों के रूप में था धीरे धीरे इस ओर फैला और लोग भी तीर्थाटन के लिये ब्रज को बहुत जाते रहे। इन बातों का प्रभाव भी बोली पर बहुत पड़ा।

ब्रज की बोली मध्य काल में साहित्य की उन्नति के कारण ब्रजभाषा कहलाई जाने लगी। इसका शुद्धरूप अलीगढ़, मथुरा और आगरे के ज़िलों तथा धौलपुर रियासत में मिलता है। यह भूमि-भाग प्राचीन काल में शूरसेन जनपद था। ब्रज का मिश्रित रूप उत्तर में बुलंदशहर, बदायूँ और बरेली, पूर्व में एटा और मैनपुरी के ज़िलों में, और पश्चिम तथा दक्षिण में पंजाब के गुड़गाँव के ज़िले, अलवर, भरतपुर, जयपुर रियासत के पूर्व के भाग, करौली, और ग्वालियर के कुछ भाग में बोला जाता है।

जैसा मैं लिख चुका हूँ ब्रज की बोली के इस विस्तीर्ण प्रभाव के मुख्य कारण कृष्णभक्ति और वैष्णव साहित्य प्रतीत होते हैं। सैकड़ों वर्षों से चारों ओर के लोग कृष्णलीला की इस भूमि के दर्शनों को आते रहे हैं। सैकड़ों कवियों ने कृष्णलीला को यहाँ ही की बोली में गाया है। अत: ब्रज की बोली का दूर तक प्रभाव फैलना स्वाभाविक है। हिंदुस्तानी बोली के साहित्य में प्रयोग होने के पूर्व कई सौ वर्ष तक साहित्य की भाषा ब्रज की ही बोली रही है।

प्राकृत काल में भी, यहाँ की बोली 'शौरसेनी प्राकृत' बहुत उन्नत अवस्था में थी। प्राकृत गद्य में इसका विशेष प्रयोग होता था। संभव है ब्रजभाषा के विकास में इस बात का भी कुछ प्रभाव रहा हो।

हिंदुस्तान के सब प्राचीन जनपदों में कोसल अपने व्यक्तित्व को पृथक् रखने में सबसे अधिक सफल हुआ है। मुसलमानों के शासन-काल में जब ये पुराने स्वाभाविक विभाग एक प्रकार से पूर्ण रूप से नष्ट भ्रष्ट हो गए थे तब भी अवध ने नवाबों के शासन में अपने

अस्तित्व को एक बार फिर प्रकट किया था। वर्तमान समय में भी अवध के ज़िले अलग ही से हैं। तालुक़ेदारी प्रथा के कारण अवध का आगरा प्रदेश के साथ मेल नहीं खाता।

आजकल अवधी बोली हरदोई ज़िले को छोड़कर लखनऊ की कमिश्नरी और फ़ैज़ाबाद की संपूर्ण कमिश्नरी में बोली जाती है। प्राचीन काल में यह ही कोसल जनपद कहलाता था, किंतु आजकल का अवध प्राचीन कोसल से पूर्णतया नहीं मिलता है। दोनों का क्षेत्रफल प्रायः बराबर होते हुए भी वर्तमान अवध कुछ पश्चिम और दक्षिण की ओर हट आया है और उसने प्राचीन पंचाल और वत्स के जनपदों की भी कुछ भूमि पर अधिकार कर लिया है। इलाहाबाद और फ़तेहपुर के ज़िलों में, जो गंगा के दक्षिण में हैं, आजकल अवधी का ही एक रूप बोला जाता है। पूरब की ओर से इसने अपना आधिपत्य बहुत कुछ हटा लिया है। एक समय कोसल की पूर्वी सीमा[1] विदेह जनपद से मिली हुई थी। अब तो इन दोनों के बीच में काशी की बोली भोजपुरी का विस्तीर्ण प्रदेश आगया है। कोसल सरयू के किनारे[2] बसा था। अवध को गोमती के किनारे बसा कहना चाहिए। कोसल की प्राचीन राजधानी अयोध्या आजकल अवध की पूर्वी सीमा के निकट पड़ती है।

अवधी प्रदेश के पश्चिम की ओर हट आने के कई कारण थे। मुख्य कारण अयोध्या के बाद अवध की राजधानी का श्रावस्ती को उठ आना था। यह ध्यान रखना चाहिए कि श्रावस्ती कोसल के पश्चिमोत्तर कोने में थी। संपूर्ण बौद्धकाल में श्रावस्ती कोसल की राजधानी रही अतः इस नगरी का यहाँ के लोगों पर अधिक प्रभाव

(१) देखिए शतपथ ब्राह्मण, १, ४, १, १७। "अब भी यह (सदानीरा नदी) कोसल और विदेह की मर्यादा है"। सदानीरा विद्वानों के मत में गंडक नदी है।

(२) देखिए रामायण, १, ५, ५, "सरयू के तीर पर कोसल नाम का जनपद था जो धनधान्य से पूर्ण, सुखी और विशाल था।"

होना स्वाभाविक है। मुसलमान काल में अवध की राजधानी लखनऊ रही। यह भी प्राचीन कोसल के पश्चिमी भाग में पड़ती है। प्राचीन काल में पंचाल और कोसल के बीच में नैमिषारण्य का विस्तृत वन था। दक्षिण में गंगा तक कोसल की सीमा थी। उसके बाद प्रयाग वन था। बाद को जब ये वन कटे तो कोसलवासियों ने इन पर धीरे धीरे अधिकार कर लिया होगा।

वैष्णवकाल में जिस समय ब्रज में कृष्ण-भक्ति का प्रचार हुआ उसी समय विष्णु के दूसरे मुख्य अवतार राम की भक्ति का केंद्र अवध हो गया। यही कारण है कि हिंदुस्तान की बोलियों में ब्रज के बाद अवधी साहित्य का स्थान है। हिंदुस्तान की और कोई भी बोली साहित्य की दृष्टि से इन तक नहीं पहुँचती है। प्राकृतकाल में अवधी अर्धमागधी के नाम से अलग रह चुकी है। जैन धार्म्मिक साहित्य इसी में है। शूरसेनी मागधी और महाराष्ट्री के बीच में पड़ जाने से बाद के प्राकृत साहित्य में अर्धमागधी का स्थान ऊँचा नहीं हो सका।

काशीपुरी बहुत काल से हिंदू धर्म्म की केंद्र रही है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि काशी प्रदेश की बोली भोजपुरी का आधिपत्य चारों ओर दूर तक हो। भोजपुरी गोरखपुर और बनारस की संपूर्ण कमिश्नरियों और बिहार के चंपारन, सारन और शाहाबाद के ज़िलों में बोली जाती है। बिहार में छोटा नागपुर के पालामऊ और रांची के ज़िलों में भी यहाँ के लोग कुछ काल से अधिक पहुँच गए हैं।

भोजपुरी का यह प्रदेश काशी जनपद से बहुत अधिक है, विशेषतया उत्तर में जहाँ कोसल और विदेह का आधिपत्य था। कोसल का प्रभाव धीरे धीरे पश्चिम की ओर हटता गया, विदेह ने अपनी सीमा के बाहर फैलने का कभी प्रयास नहीं किया, अतः हिंदू धर्म्म के नवीन रूप के साथ साथ काशी का व्यक्तित्व चारों ओर दूर तक फैल गया। मथुरा के समान काशी की भी धर्म्मकेंद्र होने के कारण बहुत शक्ति रही।

इस प्रदेश की एक विशेषता यह है कि इसकी राजधानी सदा काशी नगरी रही। वैदिक, बौद्ध, हिंदू, मुसलमान तथा वर्त्तमान काल में भी काशी अपने प्रदेश की अद्वितीय नगरी है। पूरब में इस प्रदेश की सीमा गंडकी और सोन नदियाँ हैं। दक्षिण में भी सोन सीमा है। गंगा और सरयू इस प्रदेश के बीच में होकर बहती हैं।

मिथिला का प्राचीन नाम विदेह था। यद्यपि काशी और नवद्वीप के बीच में रहकर विद्या में यह अपने पुराने गौरव को स्थिर नहीं रख सकी किंतु यह जीवित अब भी है।

मैथिली मुज़फ़्फ़रपुर, दरभंगा, भागलपुर और पुर्निया के जिलों में बोली जाती है। भोजपुरी के धक्के के कारण यह कुछ पूरब की ओर हट गई है। बौद्धकाल में यहाँ स्वतंत्र पौर-राज्य थे, यह मिथिला की विशेषता थी। हिंदू, मुसलमान तथा वर्तमान काल में यह राजनीति से बिलकुल पृथक् रही। तपस्वी ब्राह्मण के समान मिथिला ने राजनैतिक, धार्म्मिक अथवा सामाजिक झगड़ों में कभी भी विशेष भाग नहीं लिया।

मघई बोली गंगा के दक्षिण में मुंगेर, पटना, गया और हज़ारीबाग़ के ज़िलों में बोली जाती है। यह भूमिभाग प्राचीन मगध से बिलकुल मिलता है। बौद्धकाल में मगध बहुत प्रसिद्ध रहा। मगध से ही बौद्धधर्म्म भारतवर्ष तथा उसके बाहर बर्मा, कंबोडिया, जावा, चीन, जापान, तिब्बत, मध्य एशिया और अफगानिस्तान तक फैला। कुछ विद्वानों के मत में यहाँ की मागधी प्राकृत का संस्कृत-मिश्रित रूप पाली था जिसमें बहुत से बौद्ध धर्म्मग्रंथ हैं। बाद के प्राकृत साहित्य में भी मागधी प्राकृत का ऊँचा स्थान रहा। बड़े बड़े साम्राज्यों का भी मगध केंद्र रहा। मौर्य्य तथा गुप्त साम्राज्य मगध ने ही बनाए थे। महाभारत काल में जरासंध की इच्छा मगध साम्राज्य के स्थापित करने की थी किंतु पश्चिमी जनपदों की बढ़ती हुई शक्ति के कारण वह पूर्ण नहीं हो सकी।

वर्तमान सर्वे के अनुसार प्राचीन अंग देश में बोली जानेवाली

कोई भी वर्तमान बोली अलग नहीं है। आशा है कि खोज करने से यहाँ की बोली निकटवर्त्ती बोलियों से पृथक् की जा सकेगी। अंग देश बहुत निकट काल तक बौद्धकाल के चंपा और मुसलमान काल के भागलपुर के केंद्रों में पृथक् रहा है अतः इसका व्यक्तित्व इतना शीघ्र पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हो सकता।

हिंदुस्तान के बिलकुल दक्षिणी प्रदेश में छत्तीसगढ़ी बोली जाती है। छत्तीसगढ़ी के ज़िले मध्यप्रांत में रायपुर, बिलासपुर और दुग हैं। सुरगुजा तथा कोरिया की रियासतों की बोली भी छत्तीसगढ़ी ही है। यह प्रदेश प्राचीन दक्षिण कोसल[1] का द्योतक है। हिंदू काल में यहाँ हैहय[2], वंश की एक शाखा राज करती थी। इनकी राजधानी रतनपुर थी। यहाँ के जंगल के निवासी गोंड कहलाते हैं जिनके नाम से यह प्रदेश मुसलमान काल में गोंडवाना कहलाता था।

बघेली बोली यमुना के दक्षिण में इलाहाबाद और बाँदा के ज़िलों, रींवा रियासत तथा मध्यप्रांत के दमोह, जबलपुर, मंडला और बालाघाट के ज़िलों में बोली जाती है। इस बोली का केंद्र बघेलखंड में बघेल राजपूतों का देश है जिनके नाम से इसका भी नाम पड़ा है। आज कल जहां बघेली और अवधी मिलती है वहां प्राचीन काल में वत्स राज्य था जिसकी राजधानी प्रसिद्ध कौशांबी नगरी थी। चंद्रवंशियों की प्राचीन राजधानी प्रतिष्ठानपुर भी वर्तमान प्रयाग के निकट गंगा के उत्तर किनारे पर बसता था। मुसलमान काल में इलाहाबाद नगर की नींव पड़ी जो अब भी आगरा व अवध के संयुक्त प्रांतों की राजधानी है। बघेली प्रदेश के मध्य में किसी भी प्रसिद्ध जनपद या राजधानी का होना मुझे विदित नहीं है।

बुंदेलखंड प्राचीन चेदि जनपद है जहाँ का राजा शिशुपाल कृष्ण का सहज बैरी था। बुंदेली बोली हमीरपुर, झाँसी और जालौन के ज़िलों में, मध्य भारत के ग्वालियर, दतिया, छत्रपुर और पन्ना राज्यों में तथा मध्य प्रांत के सागर, होशंगाबाद, छिंदवाड़ा और

---

(१) इंपीरियल गजेटियर आव इंडिया, पुस्तक १०, पृष्ठ १२।

२

सेयोनी के ज़िलों में बोली जाती है। हिंदूकाल में कलचूरी जाति के हैहय वंश के राजा यहां राज करते थे। इनकी राजधानी जबलपुर के निकट त्रिपुरी नगरी थी। बाद को महोबा के चंदेल राजा इस प्रदेश पर राज करते थे। बुंदेलखंड के आल्हा ऊदल की कथा आज भी स्थान स्थान पर गाई जाती है। कालिंजर का प्रसिद्ध क़िला बुंदेलखंड में ही है।

मालवी संपूर्ण इंदौर राज्य, ग्वालियर राज्य के दक्षिण भाग तथा मध्य प्रांत के नीमर और बेतुल के ज़िलों में बोली जाती है। यही प्रदेश अवंति कहलाता था।[1] बाद को यह मालवा कहलाने लगा। मालवा बहुत प्राचीन प्रदेश है। मौर्यों के मालवा सूबे की राजधानी विदिशा, विक्रमादित्य की राजधानी उज्जैन तथा राजा भोज की राजधानी धारा नगरी सब मालवा में ही थीं। मुसल्मान काल में मालवा का सूबा बराबर अलग रहा। आजकल इस प्रदेश का मुख्य नगर इंदौर है।

बघेली, बुंदेली और मालवी का विंध्य पर्वत के दक्षिण की ओर विकास कुछ ही काल पूर्व से हुआ है। यहां पहले अधिक घने जंगल थे किंतु जैसे जैसे जंगल कट गए, लोग दक्षिण की ओर फैलते गए।

जयपुरी बोली जयपुर, कोटा और बूंदी के राज्यों में बोली जाती है। यह प्राचीन काल में मत्स्य देश कहलाता था जहाँ के राजा विराट के यहां पांडवों ने अज्ञातवास किया था। जयपुर रियासत में अब भी विराट नगर के चिह्न विद्यमान हैं और राजा अशोक का लेख भी वहां मिल चुका है। कुरु, पंचाल और शूरसेन जनपद के साथ मत्स्य की भी गिनती होती थी और ये चारों मिल कर [2] देश के नाम से पुकारे जाते थे।

(१) इं० ग० आ० इ०, पुस्तक १०, पृष्ठ १२।

(२) मनुस्मृति, २, १९, "कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल और शूरसेन मिलकर ब्रह्मर्षि देश कहलाता था।"

मारवाड़ी अरावली पर्वत के पश्चिम में समस्त मारवाड़ तथा अजमेर के प्रदेश में बोली जाती है। प्राचीन काल में यह जनपद मरुदेश कहलाता था। मुसलमानों के आक्रमणों के कारण जब क्षत्रिय राजाओं को गंगा के हरे भरे मैदान छोड़ने पड़े तब इस मरुभूमि ने ही उन्हें शरण दी थी। जोधपुर का घराना बहुत काल से यहां राज कर रहा है। मेवाड़ में भी मारवाड़ की बोली का ही एक रूप बोला जाता है[1]।

इस लेख में यह दिखाने का यत्न किया गया है कि हिंदुस्तान की वर्तमान बोलियों के विभाग यहां के प्राचीन जनपदों से मिलते हैं। इस बात का भी दिग्दर्शन कराया गया है कि बौद्ध, हिंदू तथा मुसलमान काल में भी यह विभाग किसी न किसी रूप में थोड़े बहुत अलग रहे हैं। वर्तमान बोलियों के विभाग और प्राचीन जनपदों के पूर्णरूप से मेल न खाने के कारणों को भी कहीं कहीं दिखलाया गया है।

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि ये प्राचीन जनपद आज तक जीवित कैसे रह सके तथा अपना स्वतंत्र अस्तित्व किस प्रकार स्थिर रख सके। यदि इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर दिया जाय तो एक स्वतंत्र लेख ही हो जायगा। इस समय मैं थोड़े से मोटे मोटे मुख्य कारणों को गिना कर ही संतोष करूंगा।

जैसा जनपद शब्द के अर्थ से विदित होता है, ये प्राचीन आर्य्य जातियों की भिन्न भिन्न बस्तियाँ थीं। बड़ी बड़ी नदियों के किनारे थोड़ी थोड़ी दूर पर इन लोगों ने जंगलों को काटकर एक एक मुख्य नगर या पुर बसाया था और उसके चारों ओर अपनी बस्तियाँ बनाई थीं। प्रत्येक ऐसा समुदाय जनपद कहलाता था और उसका केंद्र उसका पुर या नगर होता था। जनपदों के दीर्घ जीवन का मुख्य कारण इनके इन स्वतंत्र तथा पृथक् पुरों का होना प्रतीत होता

---

(१) मेवाड़ की बोली में मारवाड़ी बोली से बहुत कुछ अंतर है। [सं०]

है। इन विभागों के ये केंद्र आजतक बने हैं यद्यपि ये विशेष स्थान आवश्यकतानुसार कई बार बदले गए हैं। युधिष्ठिर की राजधानी इंद्रप्रस्थ का स्थान स्थानेश्वर और देहली ने क्रम से लिया। यदि अहिच्छेत्र और कांपिल्य नष्ट हो गए तो उनकी पूर्त्ति हर्षवर्धन के साम्राज्य की राजधानी कान्यकुब्ज ने की। अयोध्या और श्रावस्ती के समान लखनऊ अवध का आज भी अद्वितीय केंद्र है। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह का स्थान पाटलिपुत्र ने लिया जो आज भी पटना के रूप में बिहार प्रांत की राजधानी है। इन्हीं विभागों में ये स्थान सदा से एक ही रहे जैसे मथुरा और काशी के उदाहरणों से विदित होगा।

परिवर्त्तन न होने का दूसरा कारण हिंदुस्तान के ग्रामीण जीवन का संगठन मालूम होता है। प्रत्येक गाँव अपने में पूर्ण रहता है और उसे बाहर की सहायता की बहुत कम आवश्यता पड़ती है। मुसलमान काल में जब हिंदुस्तान के हिंदू नगर नष्ट हो गए थे तब ग्रामों के इस संगठन के कारण ही प्रदेशों के व्यक्तित्व की रक्षा हो सकी थी।

तीसरे, लोगों के एक ही स्थान पर रहने के स्वभाव ने भी बहुत सहायता की। हिंदुस्तान धन धान्य से पूर्ण था। घर ही पर पर्याप्त सुख था, अतः लोगों को मारे मारे फिरने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसमें संदेह नहीं कि बाद के समय में हिंदुस्तान पर बड़े बड़े आक्रमण हुए थे और एक प्रवल प्रवाह की तरह बाहर से लोग बढ़ आते थे। इस अवस्था में यहाँ के लोग अपना सिर नीचा करके अपनी जन्म-भूमि को पकड़ कर बैठ जाते थे, बहुत से लोग बह जाते होंगे, बहुतों के प्राण घुटकर निकल जाते होंगे, बाहर से भी रेत, पत्थर और कीच काँद ऊपर जम जाती होगी लेकिन बहाव निकल जाने पर लोग फिर खड़े हो जाते थे और अपने अपने पुरों के चारों ओर—चाहे यह पुर अयोध्या हो, श्रावस्ती हो या लखनऊ हो—ये लोग फिर अपने पुराने ढंग का जीवन बिताने लगते थे।

ये ही मुख्य कारण हैं जिनसे कि कुरु, पंचाल, शूरसेन, मत्स्य, कोसल, काशी, विदेह, मगध, वत्स, दक्षिण कोसल, तथा चेदि, अवंति आदि के प्राचीन जनपद आज कम से कम तीन सहस्र वर्ष बाद भी प्रायः ज्यों के त्यों जीवित हैं। यदि किसी को संदेह हो तो बोलियों के वर्तमान मानचित्र को उठाकर देख ले जो इस बीसवीं शताब्दी के प्रमाणों के आधार पर बनाया गया है, किंतु जो उस प्राचीन काल के भारत के मध्यदेश का मानचित्र मालूम होता है जब कुरुक्षेत्र पर भारत के भाग्य का निपटारा हुआ था।

टिप्पण १—भारतवर्ष के अन्य भागों के प्राचीन देशों और वर्तमान भाषाओं का संबंध स्पष्ट ही है। भाषाओं के आधार पर कांग्रेस सभा भारत के इतने संतोषजनक राजनैतिक विभाग कर सकी यह इस बात का बहुत बड़ा प्रमाण है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिंदुस्तान के विभाग बिलकुल संतोषजनक नहीं हो सके हैं इसका मुख्य कारण बोलियों के इन उपविभागों और उनके प्राचीन रूप के संबंध को ठीक ठीक न समझना है। यहाँ के लोग भी अपने देश के प्राचीन रूपों को प्रायः भूलसा गए हैं। आशा है कि भविष्य में यदि यह प्रश्न उठा तो वर्तमान लेख से इस संबंध में भी कुछ सहायता मिल सकेगी।

टिप्पण २—हिंदुस्तान की बोलियों का एक मानचित्र, जो ग्रियर्सन साहब की सर्वे के आधार पर बनाया गया है, अन्यत्र दिया है (देखिए परिशिष्ट २)। बोलियों के विभागों के नीचे प्राचीन जनपदों के नाम भी लिख दिए हैं जिन से ये मिलते हैं।

इन जनपदों का बौद्ध, हिंदू तथा मुसलमान कालों में क्या रूप रहा यह दिखाने को एक दूसरा चित्र दिया है (देखिए परिशिष्ट १)। आशा है कि पाठकों को इन दोनों से इस लेख के समझने में बहुत सहायता मिलेगी।

परिशिष्ट (१)

मुख्य मुख्य कालों में जनपदों के नए नए रूप।

	क—१०५० पू० वि० प्राचीन जनपद महाभारत के आधार पर ।	ख—५५० पू० वि० बुद्ध भगवान के समय में हिंदुस्तान के महाजनपद, विनयपिटक २. १४६	ग—६५० वि० चीनी यात्री ह्वेन्तसांग के आधार पर हिंदुकाल के मुख्य राज्य व नगर ।	घ—१६५० वि० मुसलमान काल में अकबर के सूबे और कुछ हिंदू राज्य ।	ङ—१९७१ वि० वर्तमान बोलियों के विभाग	
१	कुरु	कुरू	स्थानेस्वर	दिल्ली	हिंदुस्तानी, बाँगरू	१
२	पंचाल	पंचाला	अहिछत्र, कन्नोज	...	कन्नौजी	२
३	शूरसेन	सूरसेना	मथुरा	आगरा	ब्रज	३
४	कोसल	कोसला	साकेत	अवध	अवधी	४
५	काशी	कासी	वाराणसी	...	भोजपुरी	५
६	विदेह	वज्जी (मल्ला)	वैसालि	...	मैथिली	६
७	मगध	मगधा	मगध	बिहार	मघई	७
८	अंग	अंगा	चंपा	...	...	८
९	दक्षिण कोसल	...	महाकोसल	...	छत्तीसगढ़ी	९
१०	वत्स	वंसा	कौशांबी	इलाहाबाद	बघेली	१०
११	चेदि	चेती	जेजाकभुक्ति	...	बुंदेली	११
१२	अवंति	अवंती	उज्जयनी	मालवा	मालवी	१२
१३	मत्स्य	मच्छा	पारियात्र	जयपुर राज्य	जयपुरी	१३
१४	...	...	...	जोधपुर राज्य	मारवाड़ी	१४

१७—अशोक की धर्मलिपियाँ ।

[लेखक—रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए० और पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बी० ए०]

[क १४—चौदहवाँ प्रज्ञापन]

[पत्रिका भाग ३ पृष्ठ ३२२ के आगे]

कालसी	१	इयं	धंमलिपि	देवानं	पियेना	पियदषिना	लजिना
गिरनार	२	अयं	धंमलिपी	देवानं	प्रियेन	प्रियदसिना	राञा
धौली	३	इयं	धंमलिपी	देवानं	पियेन	पियदसिना	लाज
जौगड़	४	. .	. . . .	. . .	. . .	. . . . .	. . .
शहबाज़गढ़ी	५	अयो	ध्रमदिपि	देवनं	प्रियेन	प्रिशिन	रञ
संस्कृत-अनुवाद		इयं	धर्मलिपि:	देवानां	प्रियेण	प्रियदर्शिना	राज्ञा
हिंदी-अनुवाद		यह	धर्मलिपि	देवताओं के	प्रिय (ने)	प्रियदर्शी (ने)	राजा ने

कालसी	६	लिखापिता	अथि	येवा	सुखि[१८]तेना ।	अथि	मझिमेना
गिरनार	७	लेखापिता	अस्ति	एव[१०६]	संखितेन	अस्ति	मझमेन
धौली	८	लिख . .	. .	. .	. . . . .	अथि	. मझिमेन
जौगड	६	. . . .	. .	. .	. . . . .	. .	. झिमेन
शहबाजगढ़ी	१०	दिपपितो	अस्ति	वो	संखितेन		
संस्कृत-अनुवाद		लेखिता ।	अस्ति	एव वा	संक्षिप्तेन	अस्ति	मध्यमेन
हिंदी-अनुवाद		लिखाई ।	है	या	संक्षिप्त से	है	मध्यम से

कालसी	११	अथि		वियटेना	नो	हि	सवता	सवे	घटिते
गिरनार	१२	अस्ति		विस्ततन	न	च	सर्व	सर्वत	घटित (११०)
धौली	१३	. .		. . . .	नो	हि	सब	सवत	घटिते (४१)
जौगड़	१४	अथि		वियटेन	नो	हि	सवे	सवत	घटिते
शहबाजगढ़ी	१५	अस्ति	यो	विस्त्रिटेन	न	हि	सब्रत्र	सो सब्रे	घटिति
संस्कृत-अनुवाद		अस्ति	यत्	विस्तृतेन ।	न	हि	सर्वत्र	सर्वं	घटितं । घटति ।
हिंदी-अनुवाद		है	जो	विस्तृत से ।	न	ही	सर्वत्र	सब	घटित होता है ।

काळसी	१६	महालके	हि	वि[२६]जिते	बहु	च	लिखिते	लेखापेशामि
गिरनार	१७	महालके	हि	विजितं	बहु	च	लिखितं	लिखापयिसं
धौली	१८	महंते	हि	विजये	बहुके	च	लिखिते	लिखियिसा
जौगड़	१९	महंते	हि	विजये[२४]	...	.	...	....
शहबाज़गढ़ी	२०	महलके	हि	विजते	बहु	च	लिखिते	लिखपेशमि
संस्कृत-अनुवाद		महान् महालकः	हि	विजयः विजितः	बहु	च	लिखितं	लेखयिष्यामि
हिंदी-अनुवाद		बहुत	ही	जीता गया	बहुत	और	लिखा गया	लिखवाऊँगा

कालसी	२१	चेव	निक्य	अथि	चा	हेता	पुनंपुन	लपि[६०]ते
गिरनार	२२	चेव		अस्ति	च	एतकं[१११]	पुनपुन	वुत
धौली	२३	चेव		अथि	च	हे ..	....	..
जौगड़	२४	..		..	.	...	....	..
शहबाजगढ़ी	२५	चेव		अस्ति	च	अत्र	पुनपुन.	लपित
संस्कृत-अनुवाद		चैव	नित्य	अस्ति	च	अत्र एतत्	पुनःपुनः	लपितं उक्तं
हिंदी-अनुवाद		और ही	लगातार।	है	और	यहाँ यह	बारंबार	कहा गया

कालसी	२६	तष	तषा	अथषा	मधुलियाये		येन	जने
गिरनार	२७	तसे	तस	अथस	माधूरताय	किंति		जनो
धौली	२८	..	..	...	..दाये(१२)	किंतिच		जने
जौगड़	२९	..	..	..स	माधुलियाये	किंतिच		जने
शहबाज़गढ़ी	३०	तस	तस	अठस	माधुरियये		येन	जन
संस्कृत-अनुवाद		तस्य	तस्य	अर्थस्य	माधुर्याय मधुरतायै	किमिति	येन	जनः
हिंदी-अनुवाद		उस(के)	उस(के)	अर्थ के	माधुर्य के लिये	क्यों? यह(-=कि)	जिससे	लोग

कालसी	३१	तथा	पटिपजेया		षे	षिया			
गिरनार	३२	तथा	पटिपजेय(११२)						
धौली	३३	तथा	पटिपजेया	ति			ए	पि	चु
जौगड़	३४	तथा	पटिपजेया	ति			ए	पि	चु
शहबाज़गढ़ी	३५	तथ(४७)	प्रटिपजेय	ति	सो	सिय		व	
संस्कृत-अनुवाद		तथा	प्रतिपद्येत	इति।	तत्	स्यात्	एतत्	वा	अपि तु
हिंदी-अनुवाद		वैसे	बरताव करें	ऐसा।	यह	होवे	या	यह	भी तो

कालसी	३६	अत	किछि	अ(६१)समति	लिखिते	दिषा	वा
गिरनार	३७	तत्र	एकदा	असमात	लिखित	अस्वदेस	व
धौली	३८	हेत	...	असमति	लिखिते	... स	.
जौगड़	३९	हेत(५५)	...	....	...	....	.
शहबाज़गढ़ी	४०	अत्र	किचि	असमत	लिखित	देश	व
संस्कृत-अनुवाद		अत्र तत्र इत:	किंचित् एकदा	असमाप्त	लिखित	दिशा अस्य देशं देशं	वा
हिंदी-अनुवाद		यहाँ वहाँ इधर	कुछ एक[आध]वार	असमाप्त	लिखा [हो]	संकेत से इसके अंशमात्र को अंशमात्र को	या

कालसी	४१	षंखेयेकालनं	वा	अलोचयितु	लिपिकलपलाधेन	वा[६२]
गिरनार	४२	सङ्खायकारणं	व[११३]	अलोचेत्पा	लिपिकरापरधेन	व[११४]
धौली	४३	स	.	. लोचयितु	. . कल	ति[५३]
जौगड़	४४	. . . .	.	. . . .	. . . .	. (५६)
शहबाजगढ़ी	४५	संखयेकरण	व	अलोचेति	दिपिकरस व अपरधेन[४८]	
संस्कृत-अनुवाद		संख्येयकारणं	वा	आलोचयन्तु आलोचयित्वा	लिपिकरापराधेन लिपिकरस्य वा अपराधेन	वा। इति।
हिंदी-अनुवाद		विचारने योग्य कारणवाले को	या	समझें समझकर	लिखनेवाले के अपराध से	या। ऐसा।

[हिंदी अनुवाद]

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह धर्मलिपि लिखाई। [इनमें से] कोई संक्षिप्त है कोई मध्यम है [और] कोई विस्तृत है, क्योंकि सब जगह एकसी नहीं ठीक होती। बड़े बड़े लोक [देश] जीते, और बहुत कुछ लिखाया तथा निरंतर लिखवाऊँगा। इनमें [कहीं कहीं एकही बात] फिर फिर लिखी गई है। [इसका कारण] उसके अर्थ की मधुरता है जिसमें लोग उसका प्रतिपादन करें। यह हो सकता है कि कुछ अंश को विचारने योग्य समझकर कुछ अधूरा लिखा गया हो। इसमें लिपिकर का [भी] दोष [हो सकता है]।

१८--आमेर के महाराजा सवाई जय-सिंह के ग्रंथ और वेधशालाएँ।

[लेखक—पंडित केदारनाथ शर्मा, साहित्यभूषण, एम० आर० ए० एस०, राजपंडित जयपुर, संपादक काव्यमाला]

जयपुर नगर के बसानेवाले महाराज सवाई जयसिंहजी का नाम ज्यौतिष विज्ञान के संबंध में बहुत प्रसिद्ध है। सवाई जयसिंहजी के समय में बहुत से ग्रंथों की रचना हुई, कई ग्रंथों का अनुवाद हुआ, कई जगह ज्यौतिष यंत्र-शालाएँ बनवाई गईं, और उक्त महाराजा ने स्वयं भी ग्रंथ-रचना तथा यंत्र-रचना कर अपने विद्या-प्रेम का प्रमाण दिया।

"सवाई जयसिंहजी[1] सन् १६९९ में आँबेर राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुए। उस समय उनकी अवस्था केवल १३ वर्ष की थी। भारत-वर्ष में यवनों का राज्याधिकार प्रायः सब तरफ़ हो चुका था। औरंगज़ेब का शासन-काल था। इधर उधर अत्याचार विशेष हो रहे थे। औरंगज़ेब से प्रथम मुलाक़ात के लिये बाल्यावस्था में सवाई जयसिंह जिस समय रवाना होने लगे उस समय राजमाता तथा मंत्रियों ने सिखलाना चाहा कि यदि बादशाह यह प्रश्न करें तो यह उत्तर देना और यह प्रश्न करें तो यह। किंतु सवाई जयसिंह ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि इन प्रश्नों में से एक भी प्रश्न न किया तो क्या उत्तर दूंगा। इस पर सवाई जयसिंह की माता ने कहलाया कि 'ईश्वर का और गुरु का स्मरण कर प्रश्न का जो उत्तर पहले फुरे वह ही कहना।' अपनी माता की यह आज्ञा लेकर सवाई जयसिंह दिल्ली को रवाना हुए। शाह औरंगज़ेब के दरबार में उपस्थित होते ही औरंगज़ेब ने

(१) लेफ्टिनेंट ए० एफ़० गैरट और पं० चंद्रधरशर्मा गुलेरी कृत 'The Jaipur Observatory & its Builder, पृ० ६।

अपने राज्यसिंहासन से उठकर सवाई जयसिंह के दोनों हाथ पकड़ लिए और क्रोध से कहा कि तुम्हारे पिता और पितामह ने हमको बहुत कष्ट पहुँचाए, बतलाओ अब तुमारे साथ मैं क्या सुलूक करूँ। इसके उत्तर में कुमारावस्था के कारण कोमल शब्दों में सवाई जयसिंह ने उत्तर दिया कि 'जहाँपनाह, शादी के वक्त पुरुष स्त्री का एक हाथ पकड़ता है, इस वक्त दिल्ली के बादशाह ने मेरे दोनों हाथ पकड़े हैं अब मैं किससे डरूँ और इससे ज्यादा अब और मेरे लिये क्या हो सकता है।' यह उत्तर सुनकर औरंगज़ेब बहुत प्रसन्न हुआ और सवाई जयसिंह के राजच्युत करने के विचार को बदलकर कहने लगा कि वास्तव में तुम्हारी योग्यता बहुत अच्छी है और जयसिंह प्रथम से तुम कहीं बढ़े हुए हो, इस कारण मैं संतुष्ट होकर तुमको 'सवाई' की उपाधि देता हूँ। सवाई का अर्थ एक और एक से अधिक एक का चतुर्थांश अर्थात् सपाद है। यह उपाधि जयपुरनरेश के नाम के साथ अब भी लगाई जाती है।

ऊपर लिखी बात किंवदंती के आधार पर ही प्रसिद्ध है, इससे सवाई जयसिंह की बुद्धिमत्ता का अनुमान हो सकता है। यहाँ पर सवाई जयसिंह के चरित्र लिखने का विचार छोड़कर केवल ज्यौतिष तथा अन्य विद्यासंबंधी बातों ही का विशेषतः उल्लेख किया जाता है।

सवाई जयसिंह ने आँबेर राज्य का शासन करते हुए दिल्ली, काशी, जयपुर, उज्जैन, और मथुरा में ज्यौतिष के यंत्रों की वेधशालाएँ बनवाईं और जयसिंहकल्पद्रुम नामक धर्मशास्त्र का ग्रंथ तथा जयविनोदसारणी, सम्राट्सिद्धांत आदि ज्यौतिष शास्त्र के ग्रंथ बनवाए और जयसिंहकारिका नामक ज्यौतिष के यंत्रराज्य नाम के यंत्र के विषय में स्वयं ग्रंथ-रचना की।

(१) नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ३ संख्या १ में 'सवाई' के संबंध में प० चंद्रधरजी गुलेरी का नोट।

ग्रंथों की सूची यों है—

(१) जयसिंहकल्पद्रुम, पौंडरीक रत्नाकर विरचित।

(२) सम्राट्सिद्धांत, सम्राट् जगन्नाथ विरचित।

(३) सिद्धांतसारकौस्तुभ, सम्राट् जगन्नाथ कृत, टालमी के अल-मजेस्टी का संस्कृत अनुवाद।

(४) रेखागणित, सम्राट् जगन्नाथ कृत, यूक्लिड के अरबी ग्रंथ का अनुवाद।

(५) जयविनोदसारणी, पंडित केवलराम ज्यौतिषराय विरचित, पंचांग के तिथि, नक्षत्र, योग और करण के गणित का सारणी ग्रंथ।

(६) (७) दृक्पक्ष सारणी और दृक्पक्ष ग्रंथ, पंडित केवलराम विरचित, डि ला हायर नाम की फ्रेंच सारणी-लैयर नाम के ग्रंथ का जयपुर के रेखांश पर परिणत किया हुआ ग्रह-गणित का सारणी ग्रंथ।

(८) उकर, नयनसुखोपाध्याय रचित।
यह ग्रंथ अरबी भाषा के ऊकर नाम के बतल मयूस के ग्रंथ का अनुवाद है। इसके रेखागणित संबंधी ३ अध्याय हैं।

(९) मिथ्याजीवाछायासारणी, ज्यौतिषराय केवलराम कृत। यह प्रघातमापक (लागरथम) सारणियों का ज्याचाप-गणित के भाग का अनुवाद है और फ्रेंच ग्रंथ से किया गया है। देखने में इसमें बड़े बड़े अंक होने और उनके मूलांक वास्तव में छोटे होने के कारण इसका नाम मिथ्याजीवा-छायासारणी रक्खा गया हो ऐसा अनुमान होता है।

(१०) विभागसारणी, ज्यौतिषराय केवलराम कृत, यह लागरथम के अंक सारणी के अंश का अनुवाद है।

(११) तारासारणी, ज्यौतिषराय केवलराम विरचित, यह जीर्च उलुक बेगी नामक तैमूरलंग के पौत्र उलुक बेग के ग्रंथ

के तारागणित अंश का अंकों में कालांतर संस्कार दिया हुआ अनुवाद है।

(१२) जीच महम्मदशाही, यह दिल्ली के अंतिम बादशाह महम्मदशाह के नाम पर ग्रहगणित का फारसी भाषात्मक ग्रंथ है।

(१३) जयसिंहकारिका, महाराज सवाई जयसिंह रचित यंत्रराज की रचना करने का प्रकार और उपयोग। इस विषय पर स्वयं सवाई जयसिंह का बनाया यह छोटासा किंतु सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है।

(१४) जयसिंहकल्पलता, ज्योतिषराय केवलराम रचित। यह ग्रहगणित का अधूरा ग्रंथ है। इसका आरंभ मात्र किया गया फिर दुर्दैववश यह पूरा न हो सका। इस प्रकार के गणित के कुछ पत्र देखने में आए हैं।

इन चौदह ग्रंथों के अतिरिक्त कई संस्कृत के राजतरंगिणी आदि ग्रंथ उस समय रचना किए गए थे किंतु उनका अभी कोई पता नहीं लगा है।

इन ग्रंथों में से पहले जीच महम्मदशाही नामक फारसी ग्रंथ की भूमिका का अनुवाद यहाँ लिखा जाता है।

(जीच महम्मद शाही नाम के फारसी भाषात्मक ग्रहगणित ग्रंथ की भूमिका का अनुवाद[1])

(१) परमेश्वर को धन्य है कि बड़े बड़े रेखागणित के जानने वाले अपनी सूक्ष्म से सूक्ष्म बात ढूँढ निकालने की शक्ति रहते हुए भी उसकी थोड़ी सी प्रशंसा के करने में मुँह बा देते हैं और अपनी असामर्थ्य स्वीकार करते हैं, और ज्योतिषियों का अभ्यास और निश्चय इस विषय में कुछ कहने के पहले ही अचंभा और निरी हीनता स्वीकार करता है। उसकी प्रशंसा में अपने राजाओं के राजा

(१)—'एशियाटिक रिसर्चेज' वाल्यूम ४ हंटर साहब के जयसिंह आबजरवेटरी शीर्षक लेख से उद्धृत।

के मंदिर में प्रार्थना करते हैं कि 'उसके नाम की जय हो।' उसकी शक्तिशाली पुस्तक में ऊँची ऊँची आकाशीय वस्तुएँ कुछ थोड़े से पत्रे हैं, और वे आकाशीय पथिक सूर्य आदि ग्रह उसके सबसे बड़े ख़ज़ाने के कुछ सिक्के हैं।

(२) यदि उसने पृथ्वी को ऋतु रूपी पत्र और नदियों की धारा रूपी रेखाओं और घास तथा झाड़ रूपी अक्षरों से न सजाया होता तो कोई भी गणितज्ञ तरह.तरह की चीज़ों और फूलों के चित्र जिनसे कि यह पृथ्वीतल विभूषित है न लिख सका होता। यदि उसने तत्वों के अँधेरे मार्ग को स्थिर तारों और ज्योतिर्मय सूर्य और चाँद की मशालों से दृष्टिगोचर नहीं किया होता तो अपनी इच्छा को पूर्ण करना उसके लिये कैसे संभव हो सकता था अथवा अज्ञान की भूलभुलैयाँ और ढालू पहाड़ से वह कैसे बच सकता था।

(३) अशक्ति से उसकी सर्वव्यापक शक्ति का उपयोग प्राप्त करने में हिपार्कस एक मूर्ख मसखरा है जो दबाव के कारण अपने हाथ मलता है, और उस ईश्वर के सब से बड़े होने के विचार करने में टालमी एक चमगीदड़ के समान है जो कि सत्य के सूर्य के निकट नहीं पहुँच सका, और रेखागणित के हिसाब किताव (साध्य) उसकी रचना के अधूरे हिसाब हैं जिनमें हज़ारों जमशेद कुशी और नसीरअलतुशी आदि विद्वान् इस विषय में व्यर्थ परिश्रम करते रहे।

(४) परंतु सांसारिक उत्पत्ति के कामों में रुचि रखने-वाला और सर्वव्यापक अनंत ज्ञान के नाटकों को अचंभे की दृष्टि से देखनेवाला सवाई जयसिंह अपने मन में ज्ञान के पहले ही प्रकाश से और युवावस्था को प्राप्त होते हुए चढ़ते ज्ञान से स्वभाव से ही संपूर्ण गणितविद्या में लिप्त था, और उसका मन सर्वदा इस विषय के कठिन से कठिन प्रश्नों को हल करने की ओर झुका हुआ था। उस सर्व-शक्तिमान् की कृपा से उसने उसके नियम और उपनियमों का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया और इस बात का पता लगाया कि तारों के स्थान का ज्ञान जो कि सर्वदा काम में आनेवाली गणित सारणियों से जाना

जाता था, जैसे 'सैयद गुरगानी' और 'खाखानी' की सारणियाँ, 'मूलाचाँद अकबर शाही' की सारणियाँ और हिंदुओं की पुस्तकें तथा यूरोपवालों की सारणियाँ से, अपने निजी ज्ञान से बहुत कुछ भिन्न हैं, विशेष कर नवीन चंद्रमा का उदय होना जिसका गणित निजी ज्ञान के हिसाब से नहीं मिलता।

(५) यह देखकर कि बड़े बड़े मुख्य कार्य, धार्मिक और राजनैतिक दोनों प्रकार के, इन बातों पर अवलंबित होते हैं और ग्रहों के उदय होने तथा अस्त होने में, सूर्यग्रहण तथा चंद्रग्रहण के समय में और ऐसी ही कई बातों में (जो कि मालूम हैं) एकसा हिसाब नहीं बैठता, उसने गौरव प्रतापशाली राजराजेश्वर को, जो कि आनंद और राज्य के स्वर्ग का सूर्य था, जो कि शाही गौरव रूपी मस्तक का तिलक था, जो कि शाही समुद्र का अकेला मोती था, जो कि राज्य भर के उस स्वर्ग का सबसे अधिक चमकीला सितारा था जिसकी किसी से तुलना नहीं हो सकती और जिसकी ध्वजा सूर्य है, जिसका सिपाही चंद्र है, जिसका भाला मंगल है, जिसकी कलम बुध है, जिसके शुक्र सरीखे सेवक हैं, जिसके ठहरने का स्थान आकाश है, जिसकी मुहर बृहस्पति है, जिसका पहरेवाला (संतरी) शनैश्चर है, ऐसा शाहानशाह जो कि राजाओं के बड़े खानदान में उत्पन्न हुआ, जो कि गौरव में सिकंदर के बराबर है, जो कि परमेश्वर की ज्योति है, ऐसा विजयी राजा मुहम्मदशाह सर्वदा लड़ाइयों में विजय पावै, उसे सब बातें बताईं।

(६) वह उत्तर देने में बहुत प्रसन्न हुआ और बोला 'चूँकि आप ज्योतिष विद्या में इतने विद्वान् हैं, जिनको कि इस विषय का पूर्ण ज्ञान है, जिन्होंने कि मुसलमानों, ब्राह्मणों, और पंडितों को जो कि ज्योतिष और रेखागणित के जाननेवाले हैं, और यूरोप के ज्योतिषियों को बुला कर इकट्ठा किया है तथा यंत्रालय के सब यंत्र तैयार कराए हैं, क्या आप इस विषय में इतना परिश्रम करते हैं कि समय

जो कि आपकी जानकारी से मालूम होता है और पुराने हिसाब से मालूम करने पर नहीं मिलता है, ठीक हो सकता है।

(७) यद्यपि यह एक ऐसा बड़ा कार्य था जिसको कई वर्षों से किसी भी बड़े राजा ने अपने हाथ में नहीं लिया था और न मिर्ज़ा उलुक बेग (जिसके सब पाप क्षमा कर दिए गए थे) के समय से मुसलमानों के राज-घराने वालों में से आज तक करीब ३०० वर्ष हुए किसी में ऐसी शक्ति भी न थी जो अपना ध्यान इस ओर झुकाता, तथापि शाही हुकुम से जो कि जयसिंह ने पाया था, उसने अपनी आत्मिक शक्ति का दृढ़ विचार कर यहाँ दिल्ली में यंत्रालय के यंत्र बनवाए जैसे कि समरकंद में बने थे और जो मुसलमानों की पुस्तकों के अनुसार थे; जैसे कि जातउल-हलक जो कि पीतल का है और जिस का व्यास आज कल के गज में ३ गज़ लंबा है (जो गज़ कुरान के २ हाथ के बराबर है) और जातउल-शोबतेन, जातउल शुकैतैन, सुद्सफकरी और शमलाद नामक यंत्र। परंतु यह देख कर कि पीतल के यंत्र उसकी जाँच के अनुसार उपयोगी नहीं पड़े क्योंकि वे बहुत छोटे थे, और उनमें 'कला' के विभाग भी नहीं थे, और उनके व्यास पुराने टीले थे, वृत्तों के केंद्र उचित स्थान पर नहीं थे, और यंत्रों के तख्ते हिलते थे, उसने विचार किया कि पुराने गणित जैसे हिपार्कस और टालमी के समय के, अवश्य ही किसी ऐसे कारण से हुए होंगे; इसी कारण उसने 'दारउल खिलाफत शाहजहानाबाद' में जो कि राज्य की और गौरव की राजधानी है अपने निज के यंत्रालय स्थापित किए, जैसे जयप्रकाश, रामयंत्र, और सम्राट्यंत्र जिसका व्यास १८ हाथ है और एक कला एक या डेढ़ जौ के बराबर है और जो नरम चूने का बना हुआ है और बहुत मज़बूत है और जिसके बनाने में रेखागणित से अक्षांश और रेखांश का पूरा हिसाब किया गया है ताकि गलती जो वृत्तों के केंद्रों के उचित स्थान पर न रहने से, वृत्तों के सरकने से और कीलों के घिस जाने से होती थी और कला के विभाग बराबर न होने से होती थी, ठीक हो जाय।

(८) इस प्रकार यंत्रालय तैय्यार करने की एक सही रीति स्थापित की गई, और ऐसे यंत्रों से ग्रहों की गति के हिसाब का अंतर जो कि गणित में और अनुमान करने में पड़ता था हट गया। इन गणितों का ठीक ठीक ज्ञान होने के अर्थ उसने जयपुर, मथुरा और उज्जैन में भी इसी प्रकार के यंत्र स्थापित किए। जब उसने स्थान स्थान के देशांतरों का विचार रखकर इन यंत्रालयों से हिसाब लगाया तो उसने सब गणित ठीक पाया। इस प्रकार उसने प्रण कर लिया कि मैं अन्यान्य बड़े शहरों में ऐसे ही यंत्रालय स्थापित करूँगा कि जिससे जो मनुष्य इस विद्या में लीन हो वह इन यंत्रों के सहारे से ग्रहों और पृथ्वी और उनके परस्पर संबंध का पता आसानी से लगा सके। जिस भाँति भूतकाल के रेखागणित तथा ज्योतिष जाननेवालों ने अपने कई वर्ष इसकी परीक्षा करने में व्यतीत किए उसी भांति ऐसे यंत्र तैय्यार कर लेने के पश्चात् कुछ रीतियाँ स्थिर करने की गरज से ग्रहों का स्थान प्रति दिन जाँचा जाता था।

(९) जब ऐसे कार्य में ७ वर्ष व्यतीत हो गए तब खबर मिली कि इसी समय में यूरोप में भी यंत्रालय तैय्यार हो गए हैं और वहाँ के विद्वान इस मुख्य विषय के अभ्यास में लगे हुए हैं, और यह भी खबर मिली कि यंत्रालय का कार्य अभी भी वहाँ हो रहा है और वे लोग सर्वदा इस विद्या की बारीक बारीक खोज में लगे हुए हैं। तब उसने उस देश में अपने निज देश के बहुत से विद्वान् पादरी साहब मान्युएल के साथ भेजकर वहाँ से नई नई सारणियाँ मँगाईं कि जो वहाँ ३० वर्ष पहले बन चुकी थीं और लैयर के नाम से प्रकाशित हो चुकी थीं। उनके बीच बीच में यूरोप की पहले की सारणियाँ भी प्रकाशित थीं। इन सारणियों से जो गणित की जाती थी उसकी जाँच वा तुलना असली गणित से करने पर पिछली बातों में ग़लती मालूम पड़ी। चंद्रमा का स्थान बताने में तीस कला का अंतर पड़ा। यद्यपि और ग्रहों के गणित में यह ग़लती इतनी अधिक नहीं थी, तिस पर भी सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण में कुछ पहले वा पश्चात् (अर्थात् १ घड़ी के चतुर्थांश

वा १५ पल) का अंतर निकलता था। इसका कारण यह जाना गया कि यूरोप में ज्योतिष के यंत्र इतने बड़े और इतने बड़े व्यास के नहीं बने हैं। इससे उनके द्वारा जो हिसाब लगाया जाता है वह सच्चे गणित से थोड़ा बहुत घट बढ़ सकता है। क्योंकि यहाँ पर (यंत्र) गलती न करनेवाले मनुष्यों की सहायता से इच्छा को पूर्णतया शांत करने की पहुँच तक बनाए गए हैं और इनकी ही सहायता से ग्रहों के बेध बहुत काल तक किए गए हैं, और ग्रहों के फल तथा उनकी मध्य गति स्थिर की गई। ये सब गुणित अपने वेध के अनुसार सर्वथा मिलते हुए पाए गए। आज तक यंत्रालय का कार्य जारी है और उस शाहानशाह के नाम पर, जो कि ईश्वरी पर-छाईं था एक सारणी ग्रहों के गणित करने की रीति की तैय्यार कराई गई। इस प्रकार से जब कि ग्रहों के स्थान और नये चंद्रमा का उदय और सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण, आकाशीय तारों के आपस में योग इत्यादि का समय इस सारणी से गणित किया जाय तो वह इतना सही निकलेगा जैसे कि प्रति दिन यंत्रालय में पाया जाता है।

(१०) इस कारण जो इस विद्या में उन्नति करना चाहते हैं उनका कर्तव्य है कि ऐसे बड़े लाभ के बदले उस सर्व सामर्थ्यवान् राजा के और उसके वैभव के चिरस्थायी होने की प्रार्थना करें जो कि इस दुनिया का रक्षक है, और इस प्रकार यहाँ का वा परलोक का सुख प्राप्त करें।"

यह जीचमहम्मदशाही की भूमिका का अनुवाद है जो फारसी के अंग्रेज़ी अनुवाद के आधार पर किया गया है।

[क्रमशः]

१६—बुंदेलों का इतिहास।

[लेखक—बाबू व्रजरत्नदास, काशी]

वीरसिंह-चरित्र[1] और छत्रप्रकाश[2] से मालूम होता है कि सूर्यवंशावतंस महाराज रामचंद्रजी के पुत्र कुश के वंश के कोई राजकुमार अयोध्या राज्य के नष्ट भ्रष्ट होने पर काशी में आ बसे थे और वहाँ की प्रजा ने उन्हें अपना राजा मान लिया था। इन राजकुमार का क्या नाम था और काशी का यह राज्य कब स्थापित हुआ, इसका उनमें कोई उल्लेख नहीं है। छत्रप्रकाश के रचयिता ने इनका नाम 'कासिराज' लिख दिया है और लिखा है कि 'गहिरदेव नंदन तिन पाए। भुव पर प्रगट सुजस बगराए॥ तिनके बंस भए नृप जेते। गहिरवार कहियत सब तेते॥' इस प्रकार छत्रप्रकाश के अनुसार इस घटना के अनंतर काशी के सभी राजा काशिराज और गहिरवार[3] कहलाए।

---

(१) वीरसिंहचरित्र पृ० १४, श्रीरामनेत तैलंग द्वारा प्रकाशित। इसके प्रणेता महाकवि केशवदास थे जिनके पितामह कृष्णदत्त मधुकरसाह के राज-पंडित और जो स्वयं वीरसिंहदेव के राजकवि थे। यह ग्रंथ सं० १६६३-४ में तैयार हो चुका था।

(२) छत्रप्रकाश पृ० ४ काशी ना०प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित और पृ० ६-७ पब्लिक इंस्टक्शन द्वारा सन् १८२९ ई० में प्रकाशित। यह ग्रंथ सं० १७६४ के लगभग तैयार हुआ होगा क्योंकि उसमें उसी समय तक की घटना का समावेश है।

(३) बुंदेले गहिरवार राजपूतों के वंशज माने जाते हैं; परंतु राजपूताना, मालवा, बघेलखंड आदि के राजपूतों का उनके साथ विवाह आदि संबंध नहीं है। मुगलों के समय में बुंदेलों के बड़े बड़े राज्य थे; परंतु उक्त राजपूतों का उस समय भी उनके साथ विवाह आदि का संबंध न हुआ और अब भी नहीं होता। कुछ परमार और धंधेले, जो अपने को चौहान बतलाते हैं, बुंदेलों में मिल गए हैं जिनका विवाह आदि संबंध भी राजपूतों के साथ नहीं होता। कर्नल टाड ने विंध्यवासिनी देवी के स्थान पर यज्ञ करने के कारण राजा जेसंद की संतति का बुंदेला कहलाना माना है और बुंदेले भी अपनी उत्पत्ति का

कन्नौज का गहिरवार राजवंश ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी के आरंभ में स्थापित हुआ था। इस वंश के प्रसिद्ध सम्राट् महाराज जयचंद थे। इनके साम्राज्य में काशी भी सम्मिलित था और मुसलमानों के लिखे इतिहासों में वह कन्नौज और काशी के राजा की पदवी से ही प्रख्यात हैं। दो एक इतिहासों से यहाँ कुछ अंश उद्धृत किया जाता है जिससे पूर्वोक्त बात का समर्थन हो जाता है। 'ताजुल्-मआसिर'[1] में लिखा है कि 'बनारस के राय जयचंद जो मूर्तिपूजा और गारखंड के मुखिया हैं, शाही सेना का सामना करने के लिए आगे बढ़े। फरिश्ता[2] लिखता है कि राय जयचंद कन्नौज और बनारस का राजा था।......फिर वहाँ से (मुहम्मद गोरी) बनारस गया जहाँ उसने लगभग एक सहस्र मंदिरों को भ्रष्ट किया। यह गहिरवार राजवंश सूर्यवंशीय राष्ट्रवर या राष्ट्रकूट या राठौर ही था और किसी प्रतापी राजा के नाम पर उस वंश का यह नाम भी प्रसिद्ध हो गया है। सन् ९७३ ई० में दक्षिण राष्ट्रकूटों के अंतिम राजा को मारकर जब चालुक्य-नरेश तैलप द्वितीय ने वहाँ चालुक्यों का राज्य स्थापित किया, तब राष्ट्रकूट गण अपने मुखिया यशोविग्रह के साथ कन्नौज चले आए और वहाँ कुछ दिन बाद उनके पौत्र श्रीचंद अपने शरणदाता को गद्दी से हटाकर राजा बन बैठे। श्रीचंद के पौत्र गोविंदचंद्र थे जिनके पौत्र राजा जयचंद हुए। सन् ११९४ ई० में

संबंध विंध्यवासिनी से बतलाते हैं। परंतु राजपूत लोग उनके इस कथन को स्वीकार नहीं करते। देखो खड्गविलास प्रेस का छपा हुआ टाड राजस्थान, खंड १ पृ० ४७९ (सं०)।

(१) इलिअट और डौउसन, जि० २, पृ० २२३। ताजुल्-मआसिर का लेखक हसन निज़ामी अपने देश खुरासान से कष्ट के कारण दिल्ली आकर बस गया। वहीं सन् १२०१ ई० में, जिस वर्ष मुहम्मद गोरी की मृत्यु हुई, उसने इस पुस्तक को लिखना आरंभ किया। इसमें सन् ११९१ से १२१७ ई० तक का वृत्तांत दिया गया है। एक अन्य प्रति में सन् १२२९ तक का इतिहास लिखा हुआ मिला है।

(२) नवलकिशोर प्रेस द्वारा प्रकाशित (उर्दू) जि-१ पृ० ६०।

यह मारे गए। इस समय तक काशी इन्हीं की राजधानी थी। उस समय और उसके अनंतर मुसलमानों के आक्रमणों से राजपूत जातियाँ अन्य प्रांतों में जाकर बसने तथा राज्य स्थापन करने लगी थीं। इसी वंश का स्थापित मारवाड़ का राज्य है और इसी वंश के किसी पुरुष ने काशी का छोटा सा राज्य अलग स्थापित कर लिया होगा।

मुहम्मद गोरी का एक सरदार बख्तिआर खिलजी अवध के सूबेदार मलिक हिसामुद्दीन उलुगबेग के यहाँ आया। इसने पहले बिहार पर चढ़ाई करके बहुत लूटा खसोटा जिस पर मुहम्मद गोरी के भारतीय राज्य के सूबेदार कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसे सुलतान की पदवी देकर बिहार की सूबेदारी दी। इसीने सन् ११९९ ई० में नदिया विजय किया था[1]। सन् ११९२ ई० में महाराज पृथ्वीराज मारे गए थे। इससे सन् ११९२ और ११९९ के बीच में अवध पर मुसलमानों का अधिकार हुआ होगा। यदि छत्रप्रकाश और वीर-सिंह-चरित्र के अनुसार अयोध्या राज्य नष्ट होने पर वहाँ का राजा काशी जा बसा था, तो वह इन्हीं दोनों वर्षों के बीच की घटना है। उस समय राजा जयचंद के मारे जाने के कारण काशी में कोई राजा नहीं था और यह अयोध्या का राजा भी गहिरवार सूर्यवंशी था; इससे वहाँ की प्रजा ने उसे अपना राजा बना लिया होगा।

सन् ११९४ ई० तक काशी में कन्नौज के प्रतापी गहिरवार वंश का राज्य था जिसके अनंतर वहाँ उसी वंश का छोटा पर स्वतंत्र राज्य स्थापित हुआ था। इस राज्य के स्थापन करनेवाले का नाम

---

(१) इलिअट डाउसन जि० २, पृ० ३०४। यह वृत्तांत तबकाते-नासिरी से लिया गया है जिसका लेखक अबूउमर मिनहाजुद्दीन सन् १२२७ ई० में गोर से मुलतान आया था। इसमें मुसलमानी इतिहास के आरंभ से सन् १२५८ ई० तक का हाल दिया है। यह अच्छा विद्वान् था जैसा कि उसके फीरोज़ी मदरसा और नासिरी मदरसा के प्रधान मौलवी नियुक्त किए जाने से मालूम होता है।

छत्रप्रकाश ने काशिराज पदवी को रूढ़ि करके लिखा है। इनके पुत्र का नाम भी गहिरदेव लिखकर लिखा है कि उसके वंशवाले गहिरवार कहलाए। यह भी ठीक नहीं जँचता क्योंकि गहिरवार की पदवी इसके बहुत पहले प्रसिद्ध हो चुकी थी। इसके अनंतर क्रम से विमलचंद्र, नाहुचंद, गोपचंद्र, गोविंदचंद, टिहनपाल, विंध्यराज, सोनिकदेव, बीभलदेव, अर्जुनवर्म, वीरभद्र और वीर नाम दिए हैं जिनमें प्रत्येक अपने से पहले का पुत्र है। वीरसिंहचरित्र में, जो छत्रप्रकाश से एक शताब्दी पहले लिखा गया था, वीरभद्र से ही वंशवर्णन आरंभ किया गया है। इसलिए छत्रप्रकाश की वंश-परंपरा का समर्थक उससे प्राचीनतर कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इन कारणों से वीरभद्र के पहले के नाम संशयात्मक ही माने जायँगे। ओड़छा बसानेवाले रुद्रप्रताप सन् १५०१ ई० में गद्दी पर बैठे थे। इनके समय तक पचीस राजाओं का नाम काशिराज से गिनाया गया है। इन राजाओं के लिए तीन शताब्दी का समय मिलता है जो किसी प्रकार अधिक या कम नहीं माना जा सकता। इस विचार से भी काशी के राज्यसंस्थापन का समय सन् ११९४—९९ के बीच में पड़ता है।

इन्हीं काशीनरेशों के वंश का कोई वीर बुंदेलखंड के राज्यों का संस्थापक था। इस विषय पर लिखने के पहले बुंदेला शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार कर लेना आवश्यक है; क्योंकि वीरभद्र के पुत्र वीर के नाम के साथ ही पहले पहल बुंदेला शब्द का प्रयोग पाया जाता है।

बुंदेलों की उत्पत्ति

बुंदेले गहिरवार हैं और थे, इसमें कोई शंका नहीं, पर किस कारण वे आधुनिक नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, इसके लिये कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। वीरसिंह-चरित्र में इस शब्द की उत्पत्ति के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है, यद्यपि पहले ही कवित्त में वीरसिंहदेव को बुंदेलाराज और गहिरवार-कुलकलस की पदवियाँ दी हैं। नीचे अन्य

पुस्तकों में इस शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में जो कुछ लिखा पाया गया है, वह दिया जाता है।

(१) छत्रप्रकाश में लिखा है कि वीरभद्र के पाँच पुत्र थे जिनमें चार पुत्र पटरानी से थे और एक छोटी रानी से। छोटी रानी के पुत्र का नाम पंचम लिखा है। यह सब से छोटा था, इससे चारों भाइयों ने राज्य के लोभ-वश इसे निकाल दिया और राज्य आपस में बाँट लिया। वह दुःखित होकर विंध्यवासिनी देवी की आराधना करने की इच्छा से विंध्यक्षेत्र गया और अर्चन पूजन में लगा। अंत में उसने तलवार लेकर सिर को देवी के चरणों पर चढ़ाकर सांसारिक कष्टों से छुटकारा पाने की इच्छा से उसे काट डालना चाहा, पर देवी ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे मनमाना वरदान दिया। तलवार की कुछ चोट लग जाने से केवल एक बूँद रक्त पृथ्वी पर पड़ा जिससे देवी की कृपादृष्टि होने के कारण एक कुमार उत्पन्न हुआ। इसी बूँद से पैदा होने के कारण वह बुंदेला कहलाया।

इतिहास बुंदेलखंड हिंदी[1] में यही कथा दी है; पर उस रक्त की बूँद से किसी कुमार की उत्पत्ति होना न लिखकर यही लिखा है कि देवी ने कहा कि तुम्हारे खून की बूँद हमारे मंदिर में गिरी, इससे तुम्हारा वंश बुंदेला कहलावेगा।

तवारीख़ बुंदेलखंड उर्दू[2] में भी यही लिखा है; पर भिन्नता इतनी है कि उसमें पंचम का नाम हेमकर्ण दिया है और लिखा है कि इस पर पिता का बहुत प्रेम था तथा इसी को वह राज्य दे गया था। पर उसकी मृत्यु पर चारों भाइयों ने इससे झगड़ा कर इसे निकाल दिया। इसमें भी बूँद गिरने के कारण उसको बुंदेला कहा जाना लिखा है।

---

(१) महाराजसिंह कृत पृ० १। यह पुस्तक राव पंडित कृष्णनारायन के बनाए इतिहास बुंदेलखंड उर्दू के आधार पर जो सन् १८८३ में तैयार हुई थी लिखी गई है।

(२) मुंशी श्यामलाल दिल्लीवाले की रचित, भाग २ पृ० ३।

वीरसिंहचरित्र में केवल यही लिखा है कि 'राजा वीरभद्र गंभीर। तिनके प्रगटे राजा वीर।' अर्थात् वीरभद्र का वीर पुत्र था।

छत्रप्रकाश के लेखक ने लिखा है कि 'चारि पुत्र को नाम न जानौं। पंचम नृप को बंस बखानौं।' वस्तुत: वे किसी का नाम नहीं जानते थे, केवल पंचम पुत्र का पंचम शब्द रूढ़ि कर उन्होंने उसका नामकरण कर दिया है। बुंदेलों की उत्पत्ति को कथानक का रूप देने के लिए यह सब रचना की गई है, नहीं तो महाकवि केशवदास क्या अन्य पुत्रों का नाम या संख्या मात्र भी नहीं दे सकते थे। बाद के इतिहास-लेखकों ने उसी कथा को कुछ घटा बढ़ाकर अपनी पुस्तकों में स्थान दिया है।

(२) हकीकतुल-अकालीम[1] में लिखा है कि हरदेव नामक कोई पुरुष एक दासी को लेकर खैरागढ़ से ओड़छा के पास आकर बस गया था। करार के खंगार राजा ने उसकी पुत्री को विवाह में माँगा जिस पर उसने उसे भोजन का निमंत्रण दिया कि पहले खानपान की रुकावट मिट जानी चाहिए। राजा मान गया। तब विष मिला हुआ भोजन खिलाकर उसने उसे साथियों सहित मार डाला और उसके राज्य पर जो बेतवा और धसान के बीच में था, अधिकार कर लिया। उसके दासी पुत्र को बाँदेला या बुंदेला की पदवी मिली जो फ़ारसी के बंदी शब्द से निकला है। इसका अर्थ कैदी या दासी है।

खंगार राजधानी कुंडारगढ़ का विजेता छत्रप्रकाश और वीरसिंह-चरित्र के अनुसार सोहनपाल था जिसके पिता अर्जुनपाल काशी से मुहैानी में आ बसे थे। इसमें हरदेव नाम दिया है जिससे उन नामों से कोई समानता नहीं है। साथ ही कुंडारगढ़-विजय के कई पीढ़ी पहले ही बुंदेला शब्द वीरभद्र के पुत्र के साथ प्रयुक्त हो चुका था। फ़ारसी भाषा को भारत में आए हुए इतना समय नहीं

(१) एन. डब्ल्यू. पी. गजेटिअर, जि० १ पृ० २०। इलि. डाउ० जि. १ पृ० ४५।

व्यतीत हो चुका था कि उसके शब्द जंगली प्रांतों में प्रचलित हो गए हों। यदि वे दासी के पुत्र थे तो उन्होंने फारसी के बाँदी शब्द से बुंदेला शब्द गढ़ना क्यों अच्छा समझा ? क्या वे दासी शब्द से कोई शब्द नहीं बना सकते थे ? इन सब विचारों से केवल यही समझ पड़ता है कि हक़ीक़तुल्-अक़ालीम के रचयिता ने द्वेष से या अनजान में ये बातें लिख डाली हैं; उनमें कोई सार नहीं है।

मिस्टर थार्नटन और इलिअट ने अपनी पुस्तकों[1] में इसी कहानी पर ज़ोर दिया है।

छत्रप्रकाश और हक़ीक़तुल्-अक़ालीम की घटनावली को मिलाकर एक यह भी कहानी बना ली गई है कि 'देवदास नामक एक गहिरवार क्षत्री की विवाहिता स्त्री से चार लड़के थे जिनके नाम ईश्वरीसिंह, राजसिंह, मोहनसिंह और मानसिंह थे। दासी से उसे हेमकर्ण नामक एक पुत्र था। देवदास ने वंशपरंपरा के अनुसार बड़े पुत्र ईश्वरीसिंह को राज्य दिया और अन्य तीन असली पुत्रों के लिये जागीर नियत कर दी, पर हेमकर्ण को कुछ नहीं दिया। इसने दुःखित हो विंध्याचल जाकर देवी से उसी प्रकार वरदान पाया।

(३) टाड ने राजस्थान[2] में लिखा है कि जेसंद विंध्यवासिनी देवी के सामने भारी तप करके अपने वंशधरों के लिये बुंदेला पदवी छोड़ गया। वह काशी के गहिरवार राजा के वंश से था।

टॉड साहब की सम्मति है कि विंध्यवासिनी देवी की पूजा करने के कारण ये बुंदेला कहलाए।

(४) मआसिरुल्-उमरा[3] में लिखा है कि 'बहुत दिन हुए काशीराज नामक राजा, जो राव दलपत का २४ वाँ पूर्वज था, उस प्रांत में,'

(१) थार्नटन कृत एरियन गज़ेट और इलियट की 'मेमोयर्स आव द एन. डबल्य्. पी', जिसे बीम्स ने संपादित किया है।

(२) जि० १ पृ० १२१।

(३) जि० १, पृ० ३१७।

जिसे अब बुंदेलखंड कहते हैं, बसकर विंध्यवासिनी का पूजन करता था जिस कारण वह बुंदेला कहलाया।'

छत्रप्रकाश के वंशवृक्ष के अनुसार राव दलपत का २४ वाँ पूर्वज विंध्यराज होता है और काशी के प्रत्येक राजा काशीराज या काशीश्वर कहलाते थे। उसका नाम भी विंध्यराज था और वह विंध्य-क्षेत्र पर विंध्यवासिनी देवी की पूजा भी करता था। इस प्रकार मआ-सिरुल्-उमरा के लेखक के अनुसार वीर के कई पीढ़ी पहले विंध्यराज ने अपनी इष्टदेवी के नाम पर अपनी जाति का नाम चलाया है। मआसिरुल्-उमरा सन १७४२-४७ के बीच में लिखा गया है; अर्थात् वह छत्रप्रकाश से बीस पचीस वर्ष बाद लिखा गया है, इसलिये उसीके आधार पर स्थित नहीं है। उसका आधार फ़ारसी का कोई इतिहास और वृद्ध बुंदेलों से पूछताछ हो सकता है।

बुंदेलों की उत्पत्ति के जो कुछ कारण पाए जाते थे, वे दे दिए गए। उनमें केवल एक बाँदीवाला कारण दूसरों से किसी प्रकार मिलता जुलता नहीं है; और जैसा कि लिखा जा चुका है, वह सर्वथा त्याज्य है। अन्य तीनों से एक ही प्रकार की ध्वनि निकलती है अर्थात् विंध्य देवी का पूजन करने के कारण वे बुंदेले कहलाए। काशी में गहिरवारों का स्वतंत्र पर छोटा राज्य स्थापित होने पर वे स्वभावतः देवी देवताओं का पूजन करते रहे होंगे। विंध्यक्षेत्र की देवी भी प्रसिद्ध थीं; इसलिये कभी कभी उनका भी पूजन होता था और वे कई पीढ़ी बाद संभवतः विंध्यराज के समय, इष्टदेवी मान ली गईं। गहिरवारों की अन्य शाखाएँ दूर चली गई थीं। इस कारण इन लोगों को नए नाम की इच्छा हुई और अपनी इष्टदेवी के नाम पर उन्होंने विंध्येला या बुंदेला नामकरण कर लिया होगा जो वीर के समय अधिक प्रसिद्ध होकर उनकी शाखा का नाम बन गया। इसी विषय को लेकर उसे पवित्र और पौराणिक रूप देने के लिए छत्रप्रकाश के लेखक ने अपनी कविकल्पना की शक्ति का परिचय दिया है।

तवारीख बुंदेलखंड में लिखा है कि इस घटना का सन् नहीं

मालूम हुआ। पर किसी काव्य के कुछ पृष्ठों से जो मिल गए थे पता लगा कि यह विक्रम सं० १३१३ की सावन सु० ५ बुधवार को घटित हुआ।

वीर से मलखान तक का वृत्तांत

वीर के बारे में छत्रप्रकाश लिखता है कि राज्यप्राप्ति पर उसने पूर्व और पश्चिम दोनों ओर चढ़ाइयाँ कीं; सत्तर खाँ[1], सौ बीर तथा बहत्तर उमरावों को परास्त किया, कालिंजर और कालपी को विजय किया तथा मुहैानी को राजधानी बनाया। पर वीरसिंहचरित्र में लिखा है कि वीर का पौत्र अर्जुनपाल अपने पिता से क्रुद्ध होकर मुहैानी गया और उसे बसाकर वहीं रह गया। कालिंजर[2] को सन् १२०२ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने विजय किया। सन् १२३४ ई० में मलिक नसरतुद्दीन तबसी ने, १२४७ में सुलतान नसीरुद्दीन महमूद ने और सन् १२५१ में उसी ने फिर दोबारा कालिंजर पर चढ़ाई की। इसके बाद सन् १२५५ में अवध का सूबेदार कतलगख़ाँ भागकर कालिंजर आया जिसे उलुग़ख़ाँ ने वहाँ से भगा दिया। इसके बाद कुछ समय तक मुसलमानों का वहाँ अधिकार था जिनसे वीर ने इस दुर्ग को छीना होगा; क्योंकि इस अंतिम घटना के बाद मुसलमानी इतिहास में कालिंजर का उल्लेख सन् १५३० ई० में हुआ है जब हुमायूँ ने उस पर चढ़ाई की थी।

---

(१) छत्रप्रकाश में चौपाई इस प्रकार है—

सत्तर खान बीर सौ हारे। और उमराव बहत्तर मारे॥ इसमें तीनों शब्द संख्यावाचक हैं या सौ के स्थान पर सों हो सकता है। पर मिस्टर पौगसन ने सत्तर खान को सत्तार खाँ माना है जो ठीक नहीं है। अन्य इतिहास-लेखकों ने भी उस अशुद्धि का प्रचार करने में सहायता की है। कवि को सत्तार का सत्तर करने की कोई आवश्यकता न थी और वे 'खाँ सत्तार बीर सौ हारे' लिख सकते थे। उस समय ऐसे कोई सत्तार खाँ थे भी नहीं जिनके पास बहत्तर उमराव रहते थे।

(२) इलियट जि० २, पृ० ४६४, ६७ और २३१।

वीर के पुत्र कर्ण[1] हुए जो बड़े दानी थे और जिन्होंने काशी में कर्णघंटा तीर्थ स्थापित किया था। इनके पुत्र अर्जुनपाल थे जो पिता से रूठकर काशी से चले आए और उन्होंने मऊ मुहौनी को अपनी राजधानी बनाया[2]। यह अभी तक बड़ी गद्दी के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि यहीं पहले पहल बुंदेलों ने अपनी गद्दी स्थापित की थी। इनके पुत्र साहनपाल हुए जिन्होंने गढ़ कुंडार और जतहरा विजय किया। गढ़-कुंडार खंगारों की राजधानी थी जिसे साहनपाल ने विजय कर बुंदेलों का राज्य बेतवा नदी तक स्थापित कर दिया। इस घटना का वर्णन यों है कि चंदेलों के प्रभाव के नष्ट होने पर इस जंगल के प्राचीन निवासी खंगारों (शंगार) ने गढ़कुंडार और आसपास की भूमि पर अधिकार कर लिया और वे पड़ोस के क्षत्रिय राजाओं से (प्रमार और धंधेरे) कन्या माँगने लगे। जब साहनपाल इधर आकर बसे, तब उनसे भी उस समय के खंगार-नरेश ने विवाह के लिये पुत्री माँगी जिस पर उन्होंने प्रमारों और धंधेरों से मिलकर उसे परास्त किया तथा उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। इसके अनंतर अपनी पुत्री का विवाह पँवारों के सरदार से कर दिया और बुंदेला, पँवार और धँधेरों का एक भिन्न जाति-समूह हो गया, जिनसे अन्य क्षत्रिय जातियाँ विवाहादि का संबंध नहीं रखतीं। इसका कारण इस प्रकार कहा जाता है कि साहनपाल ने पुत्री देने का वचन देकर और खंगार-नरेश को बुलाकर धोखे से मरवा डाला था। इसलिये वाग्दत्ता कन्या का ग्रहण करने, देने और संबंध रखने से तीनों जाति से अलग किए

---

(१) छत्रप्रकाश पृ० १० पर इनके बारे में यह दोहा लिखा है—

बीर बुँदेला के भए, करन भूप बलवंत।
दान जूझ को करन सौ, भुवन-दलन दलवंत॥

आश्चर्य है कि मि० पोगसन ने केवल बलवंत को ही करन की पदवी माना है, दलवंत आदि को छोड़ दिया है।

(२) जौनपुर को फ़ीरोज़ तुग़लक ने बसाया जो सन् १३९९ ई० में स्वतंत्र हो गया। शायद पास ही के काशी के राज्य के उसके अधिकार में चले जाने से ये वहाँ से चले गए।

गए। अर्जुनपाल तक बुंदेलों का अन्य क्षत्रिय जातियों से संबंध होता रहा था। पिता की मृत्यु पर इन्हें मुहौनी राज्य भी मिल गया, पर इन्होंने कुंडारगढ़ को ही अपनी राजधानी बनाया।[1]

साहनपाल के पुत्र सहजेंद्र, उनके पुत्र नौनिकदेव और उनके पृथु हुए। ये तीनों भी अपने राज्यों को दृढ़ करते रहे।[1] इसके बाद छत्रप्रकाश में दो नाम पृथु के पुत्र रामसिंह और उनके पुत्र रामचंद्र के दिए हैं। वीरसिंहचरित्र में ये दोनों नाम नहीं हैं। उसमें पृथु के पुत्र मेदिनीमल्ल और एक पुत्र पूरणमल का उल्लेख है। शायद बीच की एक चौपाई के दो चरण ही नहीं हैं क्योंकि प्रत्येक चौपाई के चार चरण होने चाहिएँ सो इसमें नहीं हैं[2]। मेदिनीमल्ल के पुत्र अर्जुनदेव हुए जिनके पुत्र मल्खान थे। यह बड़े वीर थे और इन्हीं के पुत्र प्रतापी प्रतापरुद्र हुए।

प्रतापरुद्र

'सन् १५०१ ई० में ये गद्दी पर बैठे। ये बड़े प्रतापी और वीर सेनापति थे। यद्यपि इनसे बहलोल लोदी और सिकंदर लोदी से कई बार सामना हुआ, पर बाबर की चढ़ाई के कारण मची हुई गड़बड़ी में इन्होंने अपना राज्य खूब बढ़ाया[3]।' 'जब प्रताप राजा हुआ, जिसने ओड़छे की नींव डाली थी, तब उसने प्रभाव और ऐश्वर्य अर्जित कर दो बार शेरशाह औ सलीमशाह से युद्ध किया[4]।

बहलोल लोदी की मृत्यु सन् १४८८ ई० में हुई थी और यदि प्रथम उद्धृत अंश के अनुसार प्रतापरुद्र सन् १५०१ ई० में गद्दी पर बैठे तो वे बहलोल के प्रतिद्वंद्वी नहीं हो सकते थे। इस अंश की ये दोनों बातें एक दूसरे को काटती हैं। बहलोल लोदी की मृत्यु का वर्ष

(१) इंपी० गजे०, जि० ११ पृ० २४२।

(२) ऐसा होना ठीक है; क्योंकि कविप्रिया के वंश वर्णन में ये दोनों नाम आए हैं।

(३) इंपी० गजे० जि० ११ पृ० २४३।

(४) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० १३१।

निश्चित है और यह भी निश्चित है कि वह जौनपुर के शर्की सुलतान मुहम्मदशाह से कई बार युद्ध करने और अंत में उस राज्य पर अधिकार करने गया था। 'तारीखे खानेजहाँ लोदी' में एक राय प्रताप का उल्लेख है जो कभी सुलतान बहलोल लोदी और कभी मुहम्मदशाह शर्की की ओर होता था, पर दिल्ली के सुलतान का अधिक पक्ष लेता था। इनके एक पुत्र नरसिंहदेव का भी जिक्र है जो दरियांखाँ लोदी के हाथ से मारा गया था। सन् १४७६ ई० में सुलतान हुसेन शर्की सुलतान बहलोल के सामने से भागकर पन्ना आया जहाँ के राजा ने उसकी सहायता कर उसे जौनपुर पहुँचा दिया। पर राय प्रताप कहाँ का राजा था और पन्ना का राजा कौन था, इसका उल्लेख कहीं नहीं है। बुंदेलों का राज्य और प्रभाव कम से कम उस समय इतना अवश्य फैल गया होगा कि वे उन युद्धों में योग दे सकते थे और सहायता कर सकते थे।

सन् १३६० ई० में जौनपुर नगर को फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने बसाया। सन् १३९४-९९ के बीच ख्वाजाजहाँ ने वहाँ स्वतंत्र राज्य स्थापित किया जिसमें 'कन्नौज, कड़ा, अवध, शादीदा, डालमऊ, बहराइच, बिहार और तिरहुत' सम्मिलित थे[1]। काशी का राज्य, जो जौनपुर के पास ही था, स्वतंत्र बच गया हो और वह भी एक हिंदू राजा की अधीनता में हो, यह असंभव ज्ञात होता है। सन् १३६०-९९ के बीच में अर्जुनपाल अपने पिता से रूठकर, स्यात् उसके मुसलमानों की अधीनता स्वीकार कर लेने पर, मुहौनी चला गया। अर्जुनपाल और प्रतापरुद्र के बीच वीरचरित्र के अनुसार ७, राजे और छत्रप्रकाश के अनुसार ९ राजे हुए, जिनके लिये सौ वर्ष का समय कम नहीं है। इन बिचारों से प्रतापरुद्र का बहलोल लोदी के अंतिम वर्षों में राजा होना संभव है।

मुआसिरुल्-उमरा के उद्धृत अंश में इनका शेरशाह और सलीम शाह से युद्ध करना लिखा है; पर यह ठीक नहीं है। यह भारतीचंद के

(१) इलि० डाउ० जि० ४ पृ० २९।

समय की घटना है। वीरसिंह-चरित्र[1] में लिखा है कि 'तुरकनि सिर न नवायो नेमु। पचिहारे सेरनु अलमेमु।' इसमें शंका व्यर्थ है क्योंकि यह इन कवि के कुछ समय पहले की घटना है।

सिकंदर लोदी सन् १४८६ से १५१७ तक और इब्राहीम लोदी सन् १५१७ से २६ तक सुलतान रहा। सिकंदर बराबर बुंदेलखंड की सीमा पर कालिंजर, कालपी और जौनपुर के विद्रोहों को दमन करने के लिये आता था और एक बार पन्ना के राजा भयददेव बघेला पर चढ़ाई कर पन्ना के पास तक गया था, पर संधि हो जाने पर लौट गया था। बुंदेलों से किसी खास लड़ाई का पता मुसलमानी इतिहासों में नहीं लगता।

सिकंदर की मृत्यु पर इब्राहीम को अपने सरदारों के दमन करने और मुगल अर्थात् तुर्की आक्रमण रोकने से इतना समय नहीं मिला कि इस ओर ध्यान दे। इस सुअवसर में बुंदेलानरेश रुद्रप्रताप ने अपना राज्य बहुत बढ़ा लिया। महोबा को जो पठान सुलतानों की एक सरकार था, विजय कर उन्होंने अपने पुत्र उदयाजीत को दिया।

कन्हवा युद्ध के अनंतर बाबर ने राणा साँगा के दुर्गाध्यक्ष मेदिनी राव से चंदेरी दुर्ग ले लिया जिसके बाद उसने 'रायसेन, भिलसा और सारंगपुर पर चढ़ाई करने की इच्छा की जो काफिरों का स्थान था[2]।' पर वह ऐसा नहीं कर सका। प्रतापरुद्र ने वैशाख कृष्ण ३ सं० १५८७ वि० (१५३० ई०) रविवार को ओड़छे की नींव डाली जो कुंडारगढ़ के पास ही बेतवा नदी की दो धाराओं के बीच का पथरीला टापू है। नींव डालने के एक वर्ष बाद ही इनकी मृत्यु हो गई; इससे इनके पुत्र भारतीचंद्र ने इसे बसाया।

प्रतापरुद्र अपने बड़े पुत्र को ओड़छे में छोड़कर कुंडारगढ़ जा रहे थे। रास्ते में बन के भीतर आखेट करते समय इन्हें किसी गाय के चिल्लाने का शब्द सुन पड़ा जिसपर यह उधर झुक पड़े। एक शेर

(१) पृ० १६।

(२) इलि० जि० ४, पृ० २७७।

ने उस गाय को पकड़ा था। वह इनकी ललकार सुनकर इन पर झपटा। युद्ध में दोनों प्रतिद्वंदियों के प्राण निकल गए[1]।

इनके बारह पुत्र थे जिनके नाम क्रम से—भारतीचंद्र, मधुकर साह, उदयाजीत, कीर्तिसाह, भूपतिसाह, अमनदास, चंदनदास, दुर्गादास, घनश्याम, प्रयागदास, भैरोदास, और खांडेराय—थे। पहले दो ओड़छा के राजा थे और तृतीय ने महोबा राज्य स्थापित किया[2]।

राजा भारतीचंद्र

यह राजा प्रतापरुद्र के सबसे बड़े पुत्र थे और सन् १५३१ ई० में ओड़छे की गद्दी पर बैठे। इन्होंने तेईस वर्ष अर्थात् सन् १५५४ ई० तक राज्य किया। इनके राजत्वकाल में दिल्ली के तख्त पर हुमायूँ, शेरशाह और सलीम शाह बैठे थे। बाबर २६ दिसंबर सन् १५३० ई० को मरा था। इससे उसके नए राज्य में गड़बड़ी मची हुई थी और शेरशाह की अध्यक्षता में अफ़गानों ने सिर उठाया था। इन अफ़गानों से सन् १५४० में परास्त होकर हुमायूँ को अंत में फ़ारस भागना पड़ा। इस कारण लगभग दस वर्ष तक भारतीचंद्र को ओड़छा नगर के बसाने और अपना राज्य तथा ऐश्वर्य बढ़ाने का अच्छा अवसर मिला। शेरशाह ने सन् १५४० ई० के बाद राजपूताना, मालवा और बुंदेलखंड को दमन करने का बहुत प्रयत्न किया पर अधिक सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। प्राणरक्षा का वचन देकर रायसेन दुर्ग के अध्यक्ष भैया पूर्णमल को दुर्ग के बाहर निकाल कर उन्होंने उस पर अधिकार कर लिया और उसे धोखा देकर सेना सहित मरवा डाला। इसके अनंतर कालिंजर दुर्ग घेरा। इसके अध्यक्ष का नाम तारीखे शेरशाही में राजा कीर्तिसिंह लिखा है। यह कीर्तिसिंह भारतीचंद्र के भाई कीर्तिसाह होंगे; क्योंकि अहमद यादगार[3] लिखता है कि

---

(१) तवारीख बुंदेलखंड भाग २, पृ० ८। इसमें इसका गढ़कुंडार विजय करने को आना लिखा है, पर यह ठीक नहीं है। वह इन्हीं के अधिकार में था।

(२) छत्रप्रकाश पृ० ११।

(३) हस्तलिखित प्रति, पृ० ३१३। इलि० डाउ०। जि० ४, पृ० ४०७।

'यह चढ़ाई इसलिये हुई थी कि उसने वीरसिंहदेव बुंदेला को शरण दी थी जिसे दरबार में हाज़िर होने की आज्ञा मिली थी।' सन् १५४५ ई० में कालिंजर जीता गया पर शेरशाह की भी इसी में मृत्यु हो गई। इसलाम शाह ने गद्दी पर बैठते ही पहली आज्ञा कीर्तिसिंह और उनके साथ के कैदियों को मार डालने की दी। इसी कारण कीर्तिसिंह के वंशजों का अब पता नहीं चलता।

शेरशाह की मृत्यु पर उसका दूसरा पुत्र जलालखाँ इसलाम शाह के नाम से गद्दी पर बैठा और आठ वर्ष राज्य करने पर मरा। इसे भाइयों से युद्ध करने और सरदारों के विद्रोह दमन से समय न मिला कि सीमा पर के राज्यों से युद्ध करता।

राजा भारतीचंद्र को एक पुत्र और एक कन्या थी। पर पुत्र उनकी जीवित अवस्था ही में निस्संतान मर गया जिस कारण इनकी मृत्यु पर सन् १५५४ ई० में इनके भाई मधुकरसाह ओड़छा की गद्दी पर बैठे।

मधुकरसाह

'ये अपने उपायों, नीति, साहस और वीरता से प्रसिद्धि प्राप्त कर अपने सभी पूर्वजों से बढ़ गए।' वीरसिंहचरित्र में लिखा है कि इन्होंने नेआमतखाँ, अलीकुली खाँ, जामकुली खाँ, शाहकुली खाँ, सैदखाँ, और अब्दुल्ला खाँ को पराजित किया और लूटा।

सन् १५५६ ई० में अकबर बादशाह हुआ और सन् १५६० ई० में उसने बैराम खाँ से राज्यप्रबंध अपने हाथ में लिया। पूर्वोक्त मुसलमान सरदारों में अबदुल्ला खाँ मालवा का सूबेदार था; पर विद्रोह करने पर कई वार परास्त हो मालवा में लूटमार कर वहाँ से जौनपुर अलीकुली खाँ के यहाँ भाग गया जो उजबेग सर्दारों का मुखिया था जो बराबर विद्रोह मचाए रहता था। अकबर ने इसे जौनपुर की सूबेदारी दी थी

इंपी० गजे० जि० ९ पृ० ७० में इन्हें अंतिम चंदेल राजा लिखा है। पर कालिंजर पर बुंदेलों का बहुत पहले से अधिकार हो गया था।

(१) तवारीख बुंदेलखंड भाग २ पृ० ८।

और अंत में वे सब अपने विद्रोह के कारण मारे गए। इन्हीं विद्रोही सरदारों को इन्होंने आरंभ में पराजित किया होगा।

सन् १५७४ ई० के आरंभ में मधुकरसाह ने सिरोंज और ग्वालिअर तक चढ़ाई कर बादशाही सरकार पर अधिकार कर लिया। तब सैयद महमूद बारह और अमरोहा के सैयद मुहम्मद को अकबर ने भारी सेना सहित भेजा। इन सरदारों ने इन्हें परास्त कर हटा दिया। सन् १५७८ में अकबर ने दूसरी सेना इन पर भेजी जो सादिक़ खाँ, जोधपुर-नरेश राजा उदयसिंह राठौर (प्रसिद्ध नाम मोटा राजा), राजा आसकरण कछवाहा, उलुग़बेग हब्शी आदि सरदारों की अधीनता में थी। सादिक़ खाँ हर्वी ने उस प्रांत में पहुँचने पर पहले चाहा कि मधुकरसाह से मिलकर उन्हें समझावे जिससे बिना युद्ध ही काम निपट जाय, पर वह उस कार्य में सफल न हो सका। तब उसने नरवर के रास्ते से कूचकर पहले दुर्ग करहरा पर अधिकार कर लिया। रास्ता जंगली था और वृक्ष बहुत घने थे, इसलिये उसने जंगल काटना आरंभ किया। कई दिन जंगल साफ़ करने में लग गए। अंत में वह सवा नदी पर पहुँचा जो बेतवा नदी की एक सहायक नदी है। यह सतधार, बीसधारा और दस्थरा के नाम से भी फारसी इतिहासों में लिखी गई है और ओड़छा के उत्तर में है।

मधुकरसाह अपनी सेना सहित उसी नदी के तट पर पहुँचे। घोर युद्ध के अनंतर बुंदेला सेना ने मुसलमानी सेना को दबा लिया, पर मधुकरसाह स्वयं घायल होकर अपने बड़े पुत्र रामसाह के साथ पीछे हट गए जिस पर बुंदेलों के पैर उखड़ गए। मधुकरसाह का द्वितीय पुत्र होरिल राय इसी युद्ध में गोले के लगने से मारा गया। इस पराजय के अनंतर सादिक़ खाँ उसी स्थान पर ठहर गया। मधुकरसाह ने अंत में निरुपाय होकर अपने भतीजे रामचंद्र को दरबार में क्षमा माँगने के लिये भेजा। क्षमा मिलने पर दूसरे वर्ष सादिक़ खाँ के साथ वह दरबार तक गए।

सन् १५८५ ई० में जब मालवा का सेनापति शहाबुद्दीन अहमद

ख़ाँ ख़ानेआज़म, मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ, तब मधुकरसाह भी इस सेना में नियुक्त हुए थे, पर इन्होंने साथ नहीं दिया। शहाबुद्दीन और मुग़ल सेनानियों के द्वेष के कारण दक्षिण की चढ़ाई का कुछ फल न निकला और मिर्ज़ा अज़ीज़ बरार होता हुआ गुजरात चला गया। सन् १५८७ ई० में शहाबुद्दीन अहमद, राजा आसकरण आदि सरदारों ने राजा मधुकरसाह पर आज्ञा न मानने के कारण चढ़ाई की। जब सेना ओड़छे से चार कोस पर रह गई, तब राजा आसकरण के मध्यस्थ होने पर मधुकरसाह ने अधीनता स्वीकार कर ली। पर जब शत्रु की सजी सजाई सेना देखी, तब वे कुछ विचार कर वहाँ से हट गए। इनके पुत्र इंद्रजीतसिंह ने खजोह: या कछौवा दुर्ग में युद्ध की तैयारी की पर अंत में शहाबुद्दीन कुछ न कर सका और शांति स्थापित हो गई।

सन् १५९१ ई० में मालवा के सूबेदार शहाबुद्दीन अहमद की मृत्यु पर सुलतान मुराद वहाँ की सूबेदारी पर नियुक्त हुआ। उसके वहाँ पहुँचने पर अड़ोस पड़ोस के सभी सरदार मिलने गए, पर मधुकरसाह ने बहाना कर टाल दिया और मिलने नहीं गए। इस कारण क्रुद्ध होकर शाहज़ादे ने इन पर चढ़ाई की। पर जब अकबर बादशाह को इस बात का पता लगा, तब उस जंगली प्रांत के कष्ट आदि को समझ कर उन्होंने सुलतान मुराद को लौट आने की आज्ञा भेजी[1]। शाहज़ाद: सैयद राजू बारह: की अधीनता में सेना छोड़कर अपनी सूबेदारी पर लौट गया और यह सेना भी किसी प्रकार की सफलता न प्राप्त कर लौट गई। इसके अनंतर राजा मधुकरसाह ने सादिक मुहम्मदख़ाँ के साथ जाकर शाहज़ादे से भेंट की[2]।

सन् १५९२ ई० में मधुकरसाह की मृत्यु हो गई और इनके बड़े पुत्र रामसाह सादिक ख़ाँ के साथ अकबर से मिलने गए, जो उस समय काशमीर से लौट रहे थे। राजा मधुकरसाह वीर और

(१) मआसिरुल्-उमरा जि० २ पृ० १२३।
(२) आईन अकबरी, ब्लौकमैन पृ० ४१२।

साहसी पुरुष थे, राजनीति अच्छी तरह समझते थे कि कब दबना और कब लड़ना चाहिए। यह उन्हीं की राजनीति-कुशलता थी कि अकबर के समान ऐश्वर्यशाली शत्रु, सम्राट् और पड़ोसी के रहते भी उन्होंने लड़ भिड़कर अपने राज्य की श्रीवृद्धि की।

मधुकरसाह की रानी का नाम गणेशदेवी था। इनके आठ कुमार थे जिनके नाम क्रम से रामसाह या रामचंद, होरिलराय, नरसिंहदेव, रत्नसेन, इंद्रजीतसिंह, साहिराम, प्रतापराव, और वीरसिंहदेव थे। प्रथम और अंतिम पुत्र का जीवन-वृत्तांत आगे दिया जायगा। इससे केवल अन्य छः पुत्रों में से जिनका कुछ विशेष हाल ज्ञात हो सका, वह यहीं दे दिया जाता है।

द्वितीय पुत्र होरिलराय बड़े वीर थे। सन् १५७८ ई० में जब सादिक़ ख़ाँ की लड़ाई से इनके पिता घायल होकर युद्धस्थल से हट गए, तब इन्होंने वीरता से लड़कर वीरगति प्राप्त की। फारसी इतिहासों में इनका नाम हैादलराय भी लिखा मिलता है।

रत्नसेन के बारे में वीरसिंहचरित्र में लिखा है कि 'बादशाह अकबर ने अपने हाथ से इनके माथे पर पगड़ी बाँधी थी और इन्होंने गौड़ देश विजय करके अकबर को सौंपा तथा वहीं युद्ध के बहाने स्वर्ग गए।' इनके पिता ने जब बादशाह की अधीनता मान ली, तभी रत्नसेन दरबार में गए और प्रसिद्ध वीर तथा ऐश्वर्यशाली राजा के पुत्र होने के कारण बादशाह ने अपने हाथ से पगड़ी बाँधकर इन्हें सम्मानित किया होगा। बंगाल में अफ़ग़ानों का विद्रोह दमन करने के लिये सन् १५८२ ई० में मुनइम खाँ ख़ानख़ाना और राजा टोडरमल की अधीनता में सेना भेजी गई थी। यह घटना मधुकरसाह के बादशाही सेना के प्रथम पराजय के चार वर्ष बाद पड़ती है। इसी चढ़ाई में रत्नसेन भी साथ गए होंगे। गौड़-विजय के अनंतर वहाँ की दलदली हवा के कारण ज्वर का बड़ा वेग था जिससे बहुत सेना नष्ट हुई थी। इसी चढ़ाई में यह मारे गए या रोग से मरे होंगे। इनके पुत्र का नाम राव भूपाल था।

इंद्रजीतसिंह महाकवि केशवदास के आश्रयदाता होने के कारण अच्छी तरह प्रसिद्ध हैं। इनके वंशधर अभी तक खजोहः या कछौवा में रहते हैं। यह बड़े गुणग्राहक थे और कविता, गायन आदि के बड़े रसिक थे। इनके यहाँ अनेक प्रसिद्ध गायिकाएँ थीं जिनमें प्रवीणराय भी थी। इसकी प्रसिद्धि सुनकर अकबर ने इसे बुलाया था।

साहिराम के पुत्र उग्रसेन हुए जिन्होंने धंधेरों को परास्त किया था। तवारीख़ बुंदेलखंड में कुछ विचित्र नाम दिए हैं जैसे खानजान, जनखंडन आदि और इन्हें मधुकरसाह का पुत्र बतलाया है। इन सब को अशुद्ध मानना चाहिए क्योंकि सम-सामयिक ग्रंथ वीरसिंह-चरित्र के नाम आदि मान्य हैं।

रामसाह या रामचंद

सन् १५९२ में ये ओड़छा की गद्दी पर बैठे। इन्होंने बारह वर्ष राज्य किया। पर ये अपने पिता के समान शक्तिशाली नहीं थे, इससे इनके भाई इंद्रजीत, प्रतापसिंह और वीरसिंह की लूटमार के कारण राज्य में अशांति थी। अबुलफ़ज़ल के मारे जाने पर बादशाही सेना ने ओड़छा विजय किया, पर वीरसिंह जंगलों में निकल गए। अकबर की मृत्यु पर जब सलीम बादशाह हुआ, तब अपने छोटे भाई वीरसिंह पर बादशाही कृपा अधिक देखकर रामसाह ने विद्रोह किया। तब जहाँगीर ने अब्दुल्ला ख़ाँ फीरोज़ जंग की अधीनता में सेना भेजी। अपनी जागीर कालपी से चलकर अब्दुल्ला ने इस पर चढ़ाई की और सन् १६०७ ई० में रामचंद को लेकर वह दरबार में पहुँचा। जहाँ-गीर ने बहुत प्रसन्न होकर इन्हें खिलअत दी और राजा बासू की रक्षा में कुछ दिन दिल्ली में रखा। ओड़छा का राज्य वीरसिंहदेव को दे दिया गया। रामचंद ने छुटकारा पाने पर चँदेरी जाकर उस पर अधिकार लिया। सन् १६०९ ई० में इन्होंने अपनी पुत्री जहाँगीर को ब्याह दी। इनकी मृत्यु सन् १६१२ के लगभग हुई। इनके वंशधरों का वृत्तांत अलग दिया जायगा।

वीरसिंहदेव

यह मधुकरसाह के सब से छोटे पुत्र थे । यह बड़े साहसी, वीर और उद्धत स्वभाव के थे । पिता की मृत्यु पर इंद्रजीत सिंह, प्रतापसिंह और वीरसिंहदेव एकमत हो गए और मुसलमानों की अधीनता इन्हें अखरने लगी । इसलिये इन लोगों ने निज की सेना भरती की और खजोहा, बड़ौनी आदि दुर्गों को सुसज्जित कर सीमांत प्रदेशों पर ये लूटमार मचाने लगे। वीरसिंहचरित्र में कई सरदारों का नाम लिखा है जो बादशाह की ओर से वीरसिंहदेव आदि को दमन करने में रामसाह की सहायता करने के लिये भेजे गए थे । पर वे इस कार्य में सफल-प्रयत्न नहीं हुए । अंत में जब अकबर बादशाह दक्षिण को गए और इलाहाबाद में जहाँगीर ने पिता के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया, तब इन लोगों ने भी निरंतर की लड़ाई से उकताकर जहाँगीर की शरण लेना निश्चित किया । वीरसिंह स्वयं प्रयाग गए और सैयद मुजफ्फर तथा शरीफ़ खाँ द्वारा जहाँगीर से भेंट की । जब बादशाह पुत्र के विद्रोह के कारण दक्षिण से लौट आए और शेख़ अबुलफ़ज़ल को भी चले आने की आज्ञा भेजी, तब जहाँगीर ने वीरसिंहदेव को बहुत कुछ कह सुनकर स्वदेश भेजा कि वे किसी प्रकार अबुलफ़ज़ल को पकड़ लें या मार डालें ।

जब अबुलफ़ज़ल सिरौंज पहुँचे तब, उन्होंने दक्षिण से साथ आए हुए सैनिकों को असद बेग की अध्यक्षता में वहीं इंद्रजीत बुंदेला से युद्ध करने के लिये छोड़ा और गोपालदास नकटा की नई सेना के साथ, जो २०० सवार थे, वे आगे चले। जब वे सराय बरार में पहुँचे तब एक साधु ने आकर सब वृत्तांत कहा कि कल किस प्रकार वीरसिंह बुंदेला आप पर चोट करना चाहते हैं । पर उन्होंने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। दूसरे दिन उन्होंने शुक्रवार को सुबह चलने की तैयारी की और मिर्ज़ा रुस्तम, शेख मुस्तफ़ा आदि जागीरदारों को, जो आस पास से शेख से मिलने आए थे, बिदा किया । अबुलफ़ज़ल

याकूब खाँ के साथ आगे बढ़े। साथवाले डंका सुनकर चलने की तैयारी कर रहे थे और शेख़ का खेमा खड़ा ही था कि बुंदेलों की सेना उनपर आ पड़ी। बहुत से साथवाले तो घोड़ों पर सवार होकर भाग गए। मिर्ज़ा मुहसिन बदख्शी ऊँचे चढ़कर शत्रु की सैन्य संख्या समझकर अबुलफ़ज़ल के पास अपने लिए रास्ता काटता हुआ पहुँचा और सब हाल कहा। तब उन्होंने घोड़े को बढ़ाया; पर शत्रु आ पहुँचे और उन्होंने डंका निशानवाले हाथी को पकड़ लिया। जब युद्ध होने लगा तब शेख भी लौट पड़े। उसी समय वीरसिंहदेव की सेना के, जिसमें पाँच सौ सवार कवचधारी थे, पहुँचने का शोर हुआ। गदाई खाँ अफ़ग़ान शेख़ को भागने की राय देकर अपने पुत्र आदि के साथ शत्रु पर टूट पड़ा और मारा गया। कई आदमियों ने अबुलफ़ज़ल के घोड़े की बाग पकड़ ली और घूमकर भाग चले। पर उसी समय एक राजपूत ने पहुँचकर पीठ पर ऐसा भाला चलाया कि वह छाती की ओर से बाहर निकल आया। छोटी सी एक नदी थी जिसपर से शेख़ ने घोड़े को कुदाना चाहा, पर वह गिर पड़े। जब्बार खासखेल ने उस राजपूत को मार डाला और उतरकर शेख़ को घोड़े के नीचे से निकालकर सड़क के किनारे ले गया; पर घातक चोट लगने के कारण वे गिर पड़े। इसी समय वीरसिंहदेव अन्य राजपूतों के साथ वहाँ पहुँच गए। इससे जब्बार एक पेड़ की आड़ में छिप गया। शेख़ के घोड़ों को वहाँ देखकर वे लोग वहीं ठहर गए। तब अबुलफ़ज़ल की हथिनी के महावत ने शेख़ को दिखला दिया। वीरसिंहदेव यह देखते ही घोड़े से उतरकर शेख़ के सिर को गोद में लेकर अपने कपड़े से उनका मुँह साफ़ करने लगे। जब्बार यह देखकर सामने आया और सलाम कर खड़ा हो गया। उसी समय शेख़ ने आँखें खोलीं, तब वीरसिंहदेव ने उन्हें सलाम किया और कहा कि जहाँगीर ने आपको बुलाया है और उन्हीं के पास हम आपको ले चलेंगे। इस पर शेख़ क्रुद्ध हो गाली देने लगे। जब्बार यह देख राजपूतों पर टूट पड़ा और मारा गया। वीरसिंहदेव उठ खड़े

हुए और साथवालों ने शेख़ का सिर काट लिया। इसके बाद कैदियों को छोड़ते हुए वे चले गए।[1]

असदबेग ने नरसिंहदेव नाम लिखा है और इलियट साहब ने भी इसे ही ठीक माना है। पर तकमीनः अकबरनामा आदि अन्य फ़ारसी इतिहासों में बरसिंहदेव लिखा है। फ़ारसी में ये दोनों नाम एक-से लिखे जायँगे। केवल पहले बिंदु को ऊपर नीचे करने की भिन्नता मात्र है। अबुलफ़ज़ल को मारनेवाले वीरसिंहदेव ही हैं।

जब अबुलफ़ज़ल के साथवालों ने ख़तरे की बात कहकर सम्मति दी कि यहाँ से दो कोस पर अंतारी में रायरायान और राजा रायसिंह दो हज़ार सवारों के साथ टिके हुए हैं, वहीं चलना चाहिए, तब शेख़ ने उत्तर दिया कि 'मृत्यु से डरना व्यर्थ है; क्योंकि समय टल नहीं सकता। हम अपनी वीरता से दर्वेश के पुत्र होने पर भी उमराव हुए, अब दूसरों की शरण में रक्षार्थ क्या जाऊँ।' इसके बाद राजपूतों ने उन्हें मार डाला और वीरसिंहदेव ने उनका सिर जहाँगीर के पास भेज दिया। अकबर इस घटना को सुनकर बड़े दुःखित हुए और उन्होंने वीरसिंह को दंड देने के लिये आज्ञा दी[2]।

जहाँगीर अपने आत्मचरित्र[3] में इस घटना का यों वर्णन देते हैं कि 'कुछ दुष्टों ने हमारे पिता के और हमारे बीच में मनोमालिन्य पैदा कर दिया था। शेख़ के व्यवहार से मालूम होता था कि यदि वे दरबार तक पहुँचने पाते, तो अपनी शक्ति भर वे हमारे पिता को हमारे प्रतिकूल उभाड़ते और अंत में हमें उनके सामने तक जाने का अवसर न देते। इस शंका के मारे हमने वीरसिंहदेव से बातचीत की; क्योंकि उसका देश दक्षिण से आने के राजमार्ग पर था और वह उस समय

(१) वक़ाय असद बेग, इलियट डाउसन जि० ६, पृ० १५८—६०। यह शेख़ के ख़ास नौकर और साथी थे।

(२) इलि० डा० जि० ६ पृ० १०७।

(३) इलि० डा० जि० ६ पृ० २८८—८९। यहाँ भी नरसिंहदेव नाम लिखा है; पर मेरे पास जो प्राचीन हस्तलिखित प्रति है, उसमें बरसिंहदेव ही लिखा है।

उधर लूट मार में लगा हुआ था। हमने उसे पत्र लिखा कि वह शेख़ अबुलफ़ज़ल को रास्ते ही में ख़त्म कर दे; जिसके साथ ही हमने उसे बहुत कुछ पुरस्कार आदि देने की प्रतिज्ञा भी की थी। वीरसिंहदेव ने मान लिया और ईश्वर की कृपा से वह सफल भी हुआ। जब शेख़ उसके राज्य से होकर निकला तब राजा ने उसे घेर लिया। उसके साथवाले भगा दिए गए और वह मारा गया। उसका सिर हमारे पास इलाहाबाद भेजा गया। यद्यपि पहले पिता इस घटना पर बड़े ख़फ़ा हुए, पर अंत में हम उनसे भेंट कर सके और उनका भी दुःख धीरे धीरे कम हो गया।'

वीरसिंहचरित्र में[1] भी यह घटना इसी प्रकार लिखी गई है। भिन्नता यही है कि उसमें लिखा है कि अबुलफ़ज़ल की मृत्यु गोले के लगने से हुई थी और उसके सिर को ले आनेवाले का नाम चंपतराय (अन्य) था। जहाँगीर ने डंका निशान आदि भिजवाया जिसे पाकर वीरसिंहदेव ने राजा की पदवी धारण कर ली।

अकबर ने राजा विक्रमाजीत, रायरायान, जिआउलमुल्क कासी और राजा राजसिंह कछवाहा आदि सरदारों के अधीन सेना वीरसिंहदेव पर भेजी और साथ ही आज्ञा दी कि जब तक वह मारा न जाय या जीवित न पकड़ लिया जाय, प्रयत्न में किसी प्रकार की कमी न की जाय। अबुलफ़ज़ल के पुत्र अब्दुर्रहमान भी इसी लिये पहले ही भेजे गए थे कि वह बदला लेने की इच्छा से कुछ उठा न रखेगा। रायरायान ने आँतरी में सेना सज्जित कर वीरसिंहदेव के दुर्गों पर चढ़ाई की और कई युद्धों में विजय भी प्राप्त की। अंत में बादशाही सेना ने वीरसिंहदेव को ऐरिछ[2] में घेर लिया जिसमें केवल चार सौ राजपूत सैनिक थे। यह दुर्ग नदी पर बना हुआ है। रायरायान स्वयं नदी की ओर ठहरे और अन्य सरदारों को ज़मीन की तरफ़ तीनों ओर

(१) पृ० ४०।

(२) इलि० डाउ० जि० ६, पृ० ११२ में ओड़छा लिखा है पर वह ठीक नहीं है। उस समय वहाँ रामचंद्र राजा थे जो बादशाह के अधीन थे।

नियुक्त किया। दिन भर युद्ध होता रहा। अर्द्धरात्रि के समय वीरसिंहदेव नदी की ओर की दीवार को तोड़कर सेना सहित निकल पड़े और रायरायान की हाथीशाला के बीच से होते हुए नदी के उतार से पार हो गए। रायरायान ने बादशाह को लिखा कि ग्वालियर के राजा के मोर्चे से वीरसिंहदेव भागे; ग्वालियर के राजा ने रायरायान के मोर्चे से भागना लिखा; और द्वितीय सेनापति ख़्वाजाउलमुल्क ने लिखा कि शत्रु अच्छी तरह घिर गया था, पर कहीं कपटाचरण हुआ है। इस पर बादशाह ने असदबेग को जाँच करने के लिए घटनास्थल पर भेजा था। उसने दुर्ग और मोर्चों का मानचित्र बनाया और जहाँ से वीरसिंहदेव भागे थे, चिन्ह बना कर उसे बादशाह के यहाँ ले गया और अपनी रिपोर्ट दी कि अनजान में ऐसा हो गया था[1]।

इसके अनंतर बादशाही सेना ने एरिछ पर अधिकार कर लिया; पर आसपास के सभी कुँओं का जल विषाक्त कर दिया गया था। इससे लगभग एक सहस्र मनुष्य ज्वर से मर गए। तब उस स्थान को छोड़कर बादशाही सेना वीरसिंहदेव का पीछा करने लगी। अनेक युद्धों के बाद वे गोंडवाने के जंगलों में छिप गए जहाँ राजा जयसिंह ने उनका पीछा करके उन्हें घायल किया था। इसी समय सन् १६०५ ई० के १३ अक्तूबर को अकबर बादशाह की मृत्यु हो गई जिससे इस युद्ध का अंत हो गया।

जहाँगीर के बादशाह होते ही वीरसिंह आगरे पहुँचे और उन्हें तीनहजारी मनसब मिला। जब राजा रामचंद ने अपने छोटे भाई पर जहाँगीर की विशेष कृपा देखी, तब उन्होंने विद्रोह करना निश्चित किया। इनके पुत्र संग्रामसाह की मृत्यु हो चुकी थी और पौत्र भारथसाहि अल्पवयस्क थे। वीरसिंहदेव ने अपने भाई को विद्रोह करने से रोकने के लिये बहुत प्रयत्न किया तथा उनके पौत्र भारथसाहि और भाई इंद्रजीतसिंह को आगरे ले जाकर जहाँगीर से भेंट

(१) इलि० डाउ० जि० ६ पृ० १६०-२।

कराई । वहाँ से लौटने पर रामसाहि ओड़छे से ऐरिछ आए । उस समय वीरसिंहदेव ने ऐरिछ को ही अपनी राजधानी बना रखा था । यहाँ भाइयों में बातों ही बात में कुछ मनोमालिन्य हो गया । इंद्रजीतसिंह ने आगरे से लौटकर रामसाहि को बहुत समझाकर एक प्रकार शांति स्थापित कर ली थी और आपस में दूतों द्वारा तै हुआ था कि जब तक वे जीवित रहें वही राजा रहेंगे और उनके अनंतर भारथसाहि के बहुत छोटे होने के कारण वीरसिंहदेव राज्य करेंगे। पर भारतसाहि की माता कल्याणी देवी ने इस बात को नहीं माना जिससे विद्रोह आरंभ हो गया ।

जहाँगीर के आज्ञानुसार अपनी जागीर कराची से अब्दुल्ला खाँ ने चढ़ाई कर वीरसिंहदेव को ओड़छा लेने में सहायता दी और वह रामसाहि को कैद कर दिल्ली ले गया । उस समय से वीरसिंहदेव मधुकरसाह के समग्र राज्य के स्वामी हो गए ।

सन् १६०८ ई० में जब जहाँगीर ने मेवाड़ पर महावत खाँ को चढ़ाई करने के लिए भेजा, तब उस सेना में वीरसिंहदेव भी नियुक्त थे । इसी वर्ष मेवाड़ जाने के पहले इन्होंने एक सफेद चीता जहाँगीर को भेंट दिया था ।

सन् १६०९ ई० में खानेजहाँ के साथ वे दक्षिण गए थे । सन् १६१२ ई० में इनका मनसब चारहजारी २२०० सवार का हो गया; और दूसरे वर्ष जब शाहजादा खुर्रम अर्थात् शाहजहाँ महाराणा उदयपुर पर चढ़ाई करने के लिए नियत हुआ, तब वीरसिंहदेव दक्षिण से बुलाए जाकर उसके साथ किए गए । मेवाड़ के अधीनता स्वीकार कर लेने पर ये फिर दक्षिण गए और इन्होंने तीन हजार सवार तथा पाँच हजार पैदल सेना के साथ शाहजहाँ की अधीनता में बड़ी वीरता दिखलाई । जब जहाँगीर और शाहजहाँ में वैमनस्य हो गया और पुत्र ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया, तब सन् १६२२ ई० में वीरसिंहदेव सुलतान पर्वेज के साथ शाहजहाँ का पीछा करने पर नियुक्त हुए । जहाँगीर के राजत्व काल के अंतिम वर्षों में जब राज्यप्रबंध की बाग-

डोर नूरजहाँ के हाथ में चली गई, तब इन्होंने आसपास के रजवाड़ों से खूब रुपए वसूल किए, छोटे मोटे ज़मींदारों के इलाके छीन लिए और अपने राज्य का विस्तार खूब बढ़ाया। इन्होंने ऐसा ऐश्वर्य और प्रताप प्राप्त कर लिया था जो उस समय के किसी हिंदुस्तानी राजा को नहीं प्राप्त हो सका था। जहाँगीर के राजत्व काल के बाईसवें वर्ष सन् १६२७ ई० में वीरसिंहदेव की मृत्यु हुई।

महाराज वीरसिंहदेव केवल बड़े वीर, साहसी और युद्धप्रिय ही नहीं थे किंतु बड़ी बड़ी इमारतों, मंदिरों और महलों के बनवाने में भी एक ही हो गए हैं। ओड़छा के पास वेत्रवती नदी दो धाराओं में विभक्त होकर एक मील लंबा एक पथरीला टापू छोड़ देती है जिस पर महाराज ने दुर्ग बनवाया। पत्थर की दृढ़ दीवार से वह टापू घेर दिया गया और नगर से उसपर जाने के लिये चौदह मेहराबों का एक पुल तैयार किया गया। इसके भीतर कई महल हैं जिनमें राजमंदिर और जहाँगीर महल सबसे अच्छे हैं। राजमंदिर चौकोर बना हुआ है और बाहर से बिलकुल सादा है; पर कहीं कहीं खिड़कियाँ आदि निकली हैं तथा ऊपर मुँडेरों पर कलशों की पंक्ति सी बनी है। इसका दरबार हाल भी बड़ा विशद और विस्तीर्ण है। दीवारों और छतों पर अच्छी चित्रकारी हुई है। जहाँगीर महल का यह नाम उस समय से पड़ा जब जहाँगीर अपने मित्र के यहाँ आकर इसी महल में टिके थे। इसके पहले यह शायद शीशभवन कहलाता था। यह राजमंदिर से अधिक विस्तृत और सुंदर तथा वर्गक्षेत्र के आकार का बना हुआ है जिसके चारों कोनों पर गोल गुमटियाँ गुंबज सहित बनी हुई हैं। यह तीन खंड का है जिनमें से बीचवाले खंड में झरोखों की दो पंक्तियाँ छज्जों पर बनी हैं जिनमें पत्थर की कटी हुई जालियाँ लगी हैं। प्रत्येक खंड में चौड़ी छत्तें खुली हुई हैं। ऊपर की छत पर आठ बड़े गुंबज और उनके बीच में छोटे कलश दिए गए हैं जो आपस में मिला दिए गए हैं। इन पर

(१) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० १६७-८।

मीनाकारी का काम भी बहुत अच्छा है। यह महल दृढ़ता और बनावट में हिंदू स्थापत्यकला का एक अच्छा नमूना है। महाराज वीरसिंहदेव ने ओड़छे में अनेक मंदिर भी बनवाए थे जिनमें चतुर्भुजजी का मंदिर सबसे अच्छा है। यह ऊँची कुर्सी पर बनाया गया है और वर्गक्षेत्र के आकार सा है। यह बाहर और भीतर दोनों ओर सादा है और छत बड़ी ऊँची दी गई है। इसमें दो बड़े और चार छोटे कलश हैं। कम से कम बुंदेलखंड में यह मंदिर अद्वितीय है। बेतवा नदी के तट पर कितने ही ओड़छा-नरेशों के समाधिमंदिर हैं पर उन सब में वीरसिंहदेव का समाधिमंदिर सबसे अधिक विस्तीर्ण और विशद है; पर उसपर के गुंबज आज तक नहीं बन सके। इन्होंने अपने राज्य में बावन तालाब बनवाए थे जिनमें शेरसागर साढ़े पाँच कोस के घेरे में और समुद्रसागर बीस कोस के घेरे में है।

दतिया का राजमहल भी इन्हीं का बनवाया है जिसके चारों ओर चौंतीस फुट ऊँची दृढ़ दीवार दी गई है। इसके बनने में लगभग नौ वर्ष लगे थे और पैंतीस लाख से अधिक रुपए व्यय हुए थे। मथुरा जिले के अंतर्गत वृंदाबन में इन्होंने बहुत बड़ा मंदिर बनवाया जिसमें तेंतीस लाख रुपए व्यय हुए थे। यह मंदिर बहुत दृढ़ बना था और इसकी सजावट तथा पच्चीकारी में ही अधिक व्यय हुआ था। इस मंदिर पर औरंगजेब ने मसजिद बनवा डाली।

वीरसिंहदेव दानी भी पूरे थे। इन्होंने अपने भाई का राज्य छीन लिया था, इसलिये उसके प्रायश्चित्त के लिये केवल वृंदाबन में, कहा जाता है कि, इक्यासी मन पक्का सोना दान किया था। इन्होंने तीर्थाटन बहुत किया, चांद्रायण व्रत रखे और सप्ताह सुने। यह बड़े न्यायी भी थे। कहते हैं कि इनके बड़े पुत्र जगतदेव ने अहेर में एक ब्रह्मचारी को शिकारी कुत्तों द्वारा मरवा डाला था जिसको सुनकर महाराज ने उसे कुत्तों ही द्वारा मारे जाने का दंड दिया था।

वीरसिंहदेव जब बुंदेलखंड के राजा हुए, तब उन्होंने विद्रोही

जागीरदारों आदि का दमन कर राज्यप्रबंध ठीक किया जिससे इनकी वार्षिक आय दो करोड़ रुपए के लगभग हो गई।

ओड़छाधीश राजा जुझारसिंह बुंदेला

ओड़छानरेश महाराज वीरसिंहदेव की मृत्यु सं० १६२४ वि० में हुई थी और यद्यपि इन्होंने बहुत से मंदिर, महल, दुर्ग, घाट इत्यादि बनवाए थे तिसपर भी वे अपने पुत्रों के लिए लगभग दो करोड़ रुपए और अमूल्य रत्न आदि छोड़ गए थे। इनके ग्यारह पुत्र थे जिनके नाम वीरसिंहचरित्र में क्रम से जुझारसिंह, हरधीरसिंह, (हरदौली) पहाड़सिंह, दुर्जनसाल, चंद्रभानु, भगवानराय, हरीदास, कृष्णदास, माधोदास, तुलसीदास और हरीसिंह दिए हैं। सब से बड़े पुत्र जुझारसिंह का जन्म सं० १६४५ वि० में[1] हुआ था और अपने पिता की मृत्यु के समय ये लगभग चालीस वर्ष के थे। इनके पिता बादशाह जहाँगीर के कृपापात्र थे, इसलिए उनके अंतिम समय में यह चारहजारी मंसबदार के पद तक पहुँच चुके थे। पिता की मृत्यु पर और शाहजहाँ की बादशाही के पहले वर्ष में जब यह दरबार में गए तब इन्हें खिलअत, फूलकटार सहित जड़ाऊ जमधर, डंका और झंडा मिला था[2]। इनके भाई पहाड़सिंह[3] और चंद्रभानु[4] को भी जहाँगीर ने अच्छे मंसब दिए थे।

शाहजहाँ के राजत्व काल के प्रथम वर्ष ही में जुझारसिंह ने भागने की इच्छा दृढ़ करके अर्द्धरात्रि के समय आगरे से रास्ता लिया और ओड़छे[5] पहुँचकर वे अपने राज्य के दुर्गों को दृढ़ करने और सामान से सुसज्जित करने तथा सेना एकत्र करने में लग गए। बिना आज्ञा

(१) नागरीप्रचारिणी पत्रिका सं० १६७७, पृ० ११६।

(२) मआसिरुल्-उमरा फारसी जिल्द २ पृ० २१४।

(३) मआसिरुल्-उमरा फारसी जिल्द २, पृ० २५६।

(४) नौर्थवेस्टर्न प्राविंसेज़ गज़ेटियर जि० १, पृ० ५५७।

(५) बेतवा नदी के दोनों तटों पर प्राचीन ओड़छा बसा है। यह ललितपुर जिले के पश्चिम में है। आधुनिक राजधानी टेहरी या टीकमगढ़ है।

के चले आने के कारण शाहजहाँ ने इन्हें विद्रोही समझ कर दंड देने के लिए सेना नियुक्त की[1]। इनके भागने का कारण कई पुस्तकों में भिन्न भिन्न लिखा गया है। मआसिरुल्-उमरा[2] में लिखा है कि 'जब शाहजहाँ के समय में राज-कार्यों की अधिक जाँच होने लगी, तब यह (जिन्हें बिना परिश्रम के अपने पिता का बहुतसा संचित धन मिल गया था) शंका के कारण अपने दृढ़ दुर्गों और जंगलों (जो उसके राज्य में थे) का विश्वास करके कुछ दिनों बाद अर्द्धरात्रि को आगरे से भागकर ओड़छे चला गया।' खफी खाँ[3] (खवाफी खाँ) लिखता है कि जुझार ने यह जानकर कि शाहजहाँ अपने पिता जहाँगीर के अंतिम वर्षों में मेरे पिता को उसके लूटमार करने के लिए मार डालना चाहता था, डर गया और इसी से बिना आज्ञा के भाग गया। वह[4] लिखता है कि आगरे आने पर उसे पता लगा कि वह कर, जो उसके पूर्वज तैमूरी वंश को देते आते थे, बढ़ा दिया गया है। उस कर को घटाने के लिए प्रार्थना-पत्र न देकर वह बिना आज्ञा के भाग गया। जो कुछ कारण रहा हो, पर उसके भाग जाने पर शाहजहाँ ने महावतखाँ, खानखाना और अन्य सरदारों के अधीन उस पर सेना भेजी। बादशाह ने मालवे के सूबेदार खानजहाँ लोदी को आज्ञा भेजी कि उस प्रांत की सेना के साथ चँदेरी[5] के रास्ते से, जो ओड़छा के उत्तर ओर है, उस राज्य पर चढ़ाई करे। कालपी[6] के सूबेदार अब्दुल्ला खाँ बहादुर फ़ीरोज़ जंग को भी आज्ञा-पत्र भेजा गया कि वह बहादुर खाँ रुहेला आदि सरदारों के साथ अपनी जागीर से ओड़छा राज्य पर पश्चिम से धावा करे[7]। इस प्रकार तीन ओर से

(१) अबुलहामिद कृत बादशाहनामा जि० १, पृ० २४०-२।
(२) जि० २, पृ० २१४।
(३) जि० १, पृ० ४०६।
(४) जि० १, पृ० १०८।
(५) मालवा प्रांत में बेतवा नदी के पास है।
(६) मआसिरुल-उमरा बेवरिज कृत अनु०, पृ० १०१।
(७) औरंगज़ेब जि० १, पृ० १७।

तीन सेनाओं ने मुग़ल साम्राज्य के तीन प्रसिद्ध सेनापतियों की अधीनता में ओड़छा पर चढ़ाई की। इनकी संख्या प्रोफ़ेसर सरकार ने साढ़े चौंतीस हज़ार लिखी है। जब जुझारसिंह युद्ध में पराजित होकर लड़ने का साहस न कर सके, तब निरुपाय होकर महावत खाँ के पास चले आए और उसके द्वारा बादशाह से क्षमाप्रार्थी हुए। इधर अब्दुल्ला खाँ, बहादुर खाँ और पहाड़सिंह बुंदेला (जुझारसिंह के छोटे भाई) ने ६००० सवारों के साथ एरिछ दुर्ग पर धावा कर दिया और उस पर अधिकार कर लिया[1]। उस दुर्ग के दो सहस्र मनुष्य, छोटे बड़े सब मार डाले गए। बादशाह ने जुझारसिंह की प्रार्थना मान ली थी इसलिए वह महावत खाँ के साथ सं० १६८५ में दरबार में गया। खाँ इनके गले के दुपट्टे का दोनों सिरा पकड़कर साथ लिवा गया था। इन्होंने एक हजार अशरफ़ी भेंट में और पंद्रह लाख रुपया तथा चालीस हाथी दंड के रूप में दिए[2]। साथ ही खिराज और दक्षिण के युद्ध में सेना सहित बादशाही सेना में सम्मिलित होने का वचन देने पर इन्हें क्षमा दी गई।

सं० १६८६ वि० में अफ़गान सरदारों के मुखिया खानजहाँ लोदी बलवा करके दक्षिण के अहमदनगर के सुलतान निजामुल्मुल्क की शरण में चला गया। तब शाहजहाँ उसे दंड देने और निजामुल्मुल्क पर चढ़ाई करने के लिए स्वयं बुरहानपुर पहुँचा और वहाँ से तीन सेनाएँ तीन ओर से उस राज्य पर भेजीं। उसने जुझारसिंह को राजा की पदवी देकर दक्षिण के सूबेदार आजम खाँ के साथ नियुक्त किया[1]। खानजहाँ कई युद्धों में परास्त हुआ। इसके अनंतर जब यह यमीनुद्दौला के साथ नियुक्त हुआ तब अन्य मंसबदारों के

(१) एरिछ बेतवा नदी के उस झुकाव पर है जो झाँसी जिले की उत्तरी सीमा पर पूर्व की ओर घूमा है। यह ओड़छा से बीस कोस और झांसी से अठारह कोस उत्तर और कुछ पूर्व में है।

(२) बादशाहनामा जि० १, पृ० २४६–८ और मआसिरुल-उमरा, बेवरिज, पृ० १०२।

साथ सेना के चंदावल में नियत किया गया[1]। जब खानजहाँ लोदी और दरिया खाँ दौलताबाद से मालवे की ओर भागे तब अब्दुल्ला खाँ आदि उसके पीछे भेजे गए। सिरौंज[2] के पास खानजहाँ ने बादशाही पचास हाथी छीन लिए और वह बुंदेलखंड में पहुँचा। जब खानजहाँ आगरे से दक्षिण जाते समय बुंदेलखंड से होकर गया था जुझारसिंह के पुत्र विक्रमाजीत ने उसे नहीं छेड़ा था[3], इसलिए उस दोष को मिटाने के लिए वह इस बार प्रयत्न कर कालपी के पास दरिया खाँ रुहेला के सिर पर जा पहुँचा और उसने युद्ध में उसे मार डाला[4]। इस विद्रोह का अंत सं० १६८७ वि० में खानजहाँ लोदी की मृत्यु पर हुआ। इसके अनंतर महाबत खाँ खानखाना को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त कर शाहजहाँ राजधानी को लौट गया और जुझारसिंह भी कुछ दिनों तक खानखाना के साथ रहने के बाद छुट्टी लेकर देश चले गए तथा अपने पुत्र विक्रमाजीत को सेना सहित वहीं छोड़ गए।

जब जुझारसिंह अपने राज्य से दूर दिल्ली या दक्षिण में रहने लगे तब इन्होंने राज्य का कुल प्रबंध अपने छोटे भाई हरधीरसिंह[5] पर छोड़ दिया था। यह दत्तचित्त होकर उस कार्य को करते रहे जिससे राज्य के अन्य घूसखोर कर्मचारियों की दाल नहीं गलने पाती थी और इस कारण वे राजकुमार हरिधीरसिंह से बुरा मानते थे।

(१) मआसिरुल्-उमरा, बेवरिज पृ० १०२।

(२) सिरौंज भूपाल राज्य में २४° ७०'' पर है।

(३) इंपी० गजे० जि० १६, पृ० २४३ में स्पष्ट लिखा है कि सन् १६२८ में खानजहाँ लोदी को अपने देश में से होकर भागने में सहायता देने के कारण यह दरबार की नजरों में गिर गया।

(४) मआसिरुल्-उमरा, फ़ारसी, जि० १, पृ० ७२६।

(५) यह घटना बा० कृष्णबलदेव वर्मा के बुंदेलखंड पर्यटन नामक लेख के आधार पर लिखी गई है जिसमें हरिधीरसिंह के स्थान पर हरदेव सिंह लिखा है। पर वीरसिंहचरित्र में यही नाम दिया है—जेठ जुझार राय रनधीर। पुनि हरिधीर बुद्धि गंभीर। (पृ० १७) इंपी० गजे० जि० १६ पृ० २४१ में हरदौल नाम लिखा है।

जुझारसिंह की स्त्री अपने देवर पर पुत्रवत् स्नेह रखती थी और हरिधीरसिंह भी उन्हें माता के समान मानते थे। दोनों के इस विशुद्ध प्रेम को देखकर प्रतीतराय नामक एक विश्वासघाती कर्मचारी ने दोनों भाइयों में वैमनस्य उत्पन्न कराने के लिए जुझारसिंह को एक पत्र लिख भेजा कि राजकुमार का राजमहिषी से अनुचित संबंध है। "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" के अनुसार उन्होंने बिना कुछ विचार किए अपनी रानी के सतीत्व की परीक्षा करने के लिए उससे कहा कि यदि तुम्हारा सतीत्व सुरक्षित है और तुम्हें हरिधीरसिंह से घृणित प्रेम नहीं है तो अपने हाथ से उसे विष दे दो। रानी ने बड़े दुःख के साथ धर्मरक्षार्थ विषपूरित भोजन प्रस्तुत किए, पर जब वह देवर को भोजन परोसने लगीं तब अश्रुधारा रोक न सकीं। जब हरिधीरसिंह ने यह देखकर दुःखित होकर रोने का कारण पूछा और कहा कि क्या आज तुममें मातृस्नेह कुछ कम हो गया है जो रोती हो, तब वह चीख मारकर रो उठीं और बहुत कुछ समझाने पर शांत होकर उन्होंने सब हाल कह दिया। हरिधीरसिंह यह बात सुनकर बड़े प्रेम से जल्दी जल्दी भोजन करने लगे और बोले कि माता! तुम्हारी इस सतीत्व-परीक्षा से मेरी सुकीर्ति अमर हो गई। राजमहिषी इस वाक्य को सुनकर और भी कातर हो गईं। जुझारसिंह यह धर्मभक्ति और सतीत्वपरीक्षा देखकर पागल हो रोने लगे पर तीर छूट चुका था। इनके मित्रों और अनुरक्त कर्मचारियों में से बहुतों ने उसी विषाक्त भोजन को खाकर उनका साथ दिया। जब विष का असर होने लगा तब वह रघुनाथजी[1] के मंदिर के पास मूर्ति के ठीक सामने हाथ जोड़कर जा बैठे और प्रेमपूर्ण वचनों से उस मर्यादापुरुषोत्तम की स्तुति करते हुए उसी लीलामय भगवान की अनंत सृष्टि में विलीन हो गए। इस जघन्य कर्म से जुझारसिंह अपने

---

(१) मधुकरसाह की स्त्री गणेशदेवी को यह मूर्ति अयोध्याजी में मिली थी जिसका इन्हें स्वप्न में प्राप्त होने का भविष्य-ज्ञान हो चुका था। मधुकरसाह ने अपना महल इस मूर्ति को स्थापित करने के लिये दे दिया था।

स्वजातियों में निंदित होगए और हरिधौरसिंह अभी तक वहाँ पूजे जाते हैं।

जुझारसिंह छुट्टी लेकर अपने देश किस लिए चले आए थे, इसके कारण का इस घटना से अवश्य ही घनिष्ठ संबंध मालूम होता है। यहाँ आने के कुछ ही दिन बाद अपने नाम के अर्थानुसार इन्हें फिर युद्ध करने[1] की इच्छा हुई और बादशाह की आज्ञा बिना लिए ही इन्होंने गढ़ प्रांत की राजधानी चौरागढ़[2] पर चढ़ाई कर दी और वहाँ के गोंड़ राजा भीम नारायण[3] को प्राणरक्षा का वचन देकर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। पर अपने वचन को तोड़कर उसे उसके साथवालों सहित मार डाला और उसका पैतृक कोष जिसमें दस लाख रुपए थे, ले लिया। जब उसके पुत्र हृदयराम ने बादशाह से अपना वृत्तांत अवगत करके न्याय चाहा, तब बादशाह ने जुझारसिंह को आज्ञा-पत्र लिखा जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—'भीमनारायण और उसके परिवार का तुमने रक्त बहाया है और हमारी आज्ञा के बिना गढ़ प्रांत पर अधिकार कर लिया है। इसलिए तुम्हारी इसीमें भलाई है कि उस देश को तुम हमारे अफसरों को सौंप दो। यदि तुम उस पर बहाल रहना चाहते हो तो अपने वासस्थान के पास की जागीर उसके बदले में दो और

---

(१) चौरागढ़ की चढ़ाई का कारण एक कवित्त में यह दिया है—
पड़ी हैं पिसाचत बंध, ओतत हैं आठों जाम, सुधहू न लेत पापी तृनहू के खाने की। रोज उठ करत अरज भोर भानुजू सों फौज चढ़ि आवे केसोराय के घराने की। वीरसिंहजू के बंस प्रबल जुझारसिंह, तेरी बाट हेरती हैं गौएँ गोंडवाने की। इतिहास बुंदेलखंड में येही तीन पंक्तियां दी हुई हैं, पृ० १३।

(२) विंध्याचल और नर्मदा नदी के दक्षिण नरसिंहपुर ज़िले में, जो मध्यप्रदेश प्रांत में है, गहरवार स्टेशन से पाँच कोस दक्षिण और पूर्व यह स्थान है। यह गोंढ़वाने के गढ़मांडल प्रांत की राजधानी था।

(३) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० २१४ और बादशाहनामा जि० १, पृ० ६९ में यही नाम लिखा है। पर इंपीरियल गजे० जि० १८ पृ० ३८१ में प्रेमनारायण नाम दिया है।

भीमनारायण से लिए गए सिक्कों में से दस लाख रुपया भेज दो'।' पर बुंदेला वीर जिसने अपने परिश्रम और भुजबल से उस प्रांत को विजय किया था, इस आज्ञा के मानने पर राजी नहीं हुआ और अपने वकील द्वारा इन बातों का पहले ही पता पाकर अपने पुत्र जोगराज उपनाम विक्रमाजीत को, जो उस समय दक्षिण में बालाघाट के पास बादशाही सेना के साथ था, लिख भेजा कि फुर्ती से स्वदेश लौट आओ। वह अपने पिता की सेना के साथ खानजमाँ अमानुल्लाह से बिना आज्ञा लिए, जिसके अधीन वह नियुक्त था, गुप्त रीति से भाग निकला पर खान दौराँ खाँ नसरतजंग को इस बात का पता लग गया। उसने बुरहानपुर से इसका पीछा करते हुए पाँचवें दिन मालवा के पास आष्टा[२] नामक स्थान में इसको आ लिया और वह पराजित तथा घायल होकर जंगलों में होता हुआ धामुनी[३] में पिता के पास पहुँच गया।

उत्तरी भारत और दक्षिण के आने जाने के मार्ग पर विद्रोही और प्रबल सरदार को बिना दमन किए छोड़ देना नीतियुक्त नहीं था; इसलिए शाहजहाँ ने उस प्रदेश पर चढ़ाई करने का प्रबंध किया। तीन सेना

---

(१) यह शाहजहाँ की आज्ञा थी जिसमें भीमनारायण के पुत्र के साथ न्याय किया गया था। मआसिरुल-उमरा में भी आज्ञापत्र का यही आशय दिया है। पर खफी खाँ लिखता है कि 'शाहजहाँ ने कई बार जुझार को लिखा कि भीमनारायण की मिलकियत उसके वारिसों को देदो पर सब व्यर्थ हुआ। जि० १, पृ० ५०७। जो हो यदि जुझारसिंह लूट में बादशाह को साझा दे देते तो बाकी सब उन्हें पच जाता।

(२) वार्धा नदी के तट पर मध्य प्रदेश में नागपुर नगर के ठीक पश्चिम ३० कोस पर है। पर यह आष्टी के नाम से प्रसिद्ध है। आष्टा उसी प्रांत में २२°८०' पर एक स्थान है।

(३) दुहसन नदी के तट पर मध्यप्रदेश के सागर नगर के ठीक १२ कोस उत्तर है।

तीन ओर से उस राज्य पर भेजी गई। सैयद खानजहाँ[1] बारह: साढ़े दस हजार सैनिकों के साथ बदायूँ की ओर से, अब्दुल्ला खाँ बहादुर फ़ीरोज़ज़ंग छः हजार सेना के साथ उत्तर से और खानदौराँ खाँ नसरतजंग छः हजार सेना के साथ दक्षिण की ओर मालवे से बुंदेलखंड पर चढ़ दौड़े। बुंदेलों की सेना पंद्रह सहस्र से भी कम थी।

मुगल सेना के हिंदू सैनिकों में एक बुंदेला सरदार था जो ओड़छा की गद्दी का हक़दार था। राजा मधुकरसाह के सबसे बड़े पुत्र रामचंद्र से जब जहाँगीर ने ओड़छा लेकर वीरसिंहदेव को दे दिया था तबसे वह और उसके वंशधर बादशाही सेवा में रहते थे। राजा भारथ का पुत्र देवीसिंह उसी शाखा का था और यद्यपि जुझारसिंह अपने पिता की गद्दी पर बैठे थे, पर वह अपने ही को उसका अधिकारी समझता था। यह भी बादशाही मंसबदारों में था और अपना अवसर ढूँढ़ रहा था। शाहजहाँ ने भी इसे ओड़छा की राजगद्दी देने का वचन दे दिया जिससे मुगल सेना को उस जंगली प्रांत के रास्ते आदि दिखलाने के लिए बुंदेली सेना पर्याप्त हो गई।

तीनों मुगल सेनानी एक ही ओहदे के थे। चढ़ाई के समय उनका आपस में सैन्यसंचालन में एकता रखना तथा मिलकर काम करना कठिन होता; इसलिए शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरंगजेब को जिसकी अवस्था उस समय सोलह वर्ष की थी, शायस्ता खाँ आदि सरदारों, एक सहस्र धनुर्धारी शरीररक्षकों और एक सहस्र सवारों के साथ प्रधान सेनापति बनाकर भेजा। इन्हें यह पद नाम के लिए मिला था और इन्हें युद्धस्थल से दूर रहने की आज्ञा थी। अधीनस्थ सेनापति इन्हें अपनी अपनी सम्मतियाँ दे देते थे, पर औरंगजेब की आज्ञा सर्वोपरि समझी जाती थी और इनकी आज्ञा के बिना वे कुछ नहीं कर

(१) जर्नल एशियाटिक सोसाइटी सन् १८०२ में मिस्टर सिलबेराड ने टिप्पणी की है कि 'केवल एक खानजहाँ उस समय ज्ञात थे जो विद्रोह के कारण सन १६३१ में मारे गए'।

सकते थे। औरंगजेब को उस समय तक दस हजारी मंसब मिल चुका था[1]।

इधर यह तैयारी हो रही थी और साथ ही जुझारसिंह को अंतिम पत्र भेजा गया कि वह अधीनता स्वीकार करे, तीस लाख रुपया दंड दे और एक जिला बादशाह को सौंप दे। पर उसने इसे नहीं माना। वर्षा के अनंतर तीनों सेनाएँ झाँसी के उत्तर और कुछ पूर्व पर पाहुज नदी के तटस्थ भांडेर नामक स्थान में सम्मिलित हुईं तथा वहीं से उन्होंने ओड़छा पर जो वहाँ से चौदह कोस पर है, कूच किया। जंगल काटकर सेना के लिए मार्ग विस्तीर्ण किया जाता था और वृक्षों की आड़ लेकर बुंदेले गोलियाँ चलाते थे। पर उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। संवत् १६९२ वि० (२ अक्तूबर १६३५) में जब बादशाही सेना ओड़छा से कोस भर पर पहुँची और देवीसिंह ने एक पहाड़ी पर, जिसपर बुंदेलों की सेना राह रोकने को डटी हुई थी, धावा करके बहुतों को पकड़ लिया, तब से जुझारसिंह का साहस टूट गया और अपने परिवार तथा कोष को उन्होंने धामुनी भेज दिया। उसके बाद कुछ सेना ओड़छा में छोड़कर वे स्वयं भी वहीं चले गए। ४ अक्तूबर को मुगल सेना एक ओर से सीढ़ी लगाकर दुर्ग में घुसी और दूसरी ओर से जुझारसिंह की सेना निकलकर चली गई।

नगर पर अधिकार करने और देवीसिंह को वहाँ की राजगद्दी देने में पूरा एक दिन व्यतीत हो गया। इसके अनंतर बेतवा नदी उतरकर बादशाही सेना धामुनी की ओर दक्षिण को चली जो वहाँ

(१) बादशाहनामा पृ० ९९-१०० । डो का वर्णन भी पढ़ने योग्य है। वह लिखता है कि 'औरंगजेब उस पर भेजा गया। यह पहला अवसर उस युवा शेर को रक्तक्रीड़ा करने का दिया गया। यह युद्ध दो वर्ष तक चलता रहा... ...यद्यपि औरंगजेब तेरह वर्ष का था पर उसने युद्धीय साहस दिखाया... जो रोका नहीं जा सकता। यह हर खतरे में मौजूद रहता था।' जि० ३ पृ० १३२। मआसिरुल्-उमरा में लिखा है कि 'इन लोगों के सहायतार्थ सुलतान औरंगजेब बहादुर शायस्ता खाँ आदि के साथ भेजे गए। जि० २ पृ० २१९।

से लगभग चालीस कोस दूर पर था। जब धामुनी से तीन कोस पर सेना पहुँची तब पता लगा कि शिकार हाथ से निकल गया। जुझारसिंह धामुनी पहुँचकर उसमें ठहरने का साहस न कर सके और विंध्याचल पर्वतमाला तथा नर्मदा नदी पारकर गोंडवाने में चौरागढ़ चले गए। यह दुर्ग घेरे के लिए सज्जित किया गया था, आस पास के मकान गिरा दिए गए थे और रत्न नामक राजपूत की अध्यक्षता में रखा गया था। १८ अक्तूबर को बादशाही सेना ने दुर्ग को घेर लिया और युद्ध अर्द्धरात्रि तक होता रहा जिसके अनंतर दुर्ग की सेना ने एक मनुष्य खानदौराँ के पास अधीनता स्वीकार करने के लिये भेजा। पर रुहेलों की एक टुकड़ी खाई खोदकर दुर्ग की पूर्वी दीवार के पास की बाँस की कोठियों तक पहुँच गई थी और रात्रि के अंधकार में उधर के जंगल पर भी अधिकार कर चुकी थी। आधी रात के बाद वे दुर्ग में भी घुस गए और लूट मार मचाने लगे। खानदौराँ वहाँ पहुँचकर राव अमरसिंह राठौर आदि कुछ सरदारों को बाहर रक्षार्थ छोड़कर भीतर का प्रबंध ठीक करने के लिए दुर्ग में चला गया। मुगल सेना भीतर घुसकर लूटमार मचा रही थी कि किसी लुटेरे की मशाल के लग जाने से बारूद की मैगज़ीन में आग लग गई जिसके उड़ने से भयानक धड़ाका हुआ, अस्सी गज तक की वह मोटी दीवार उड़ गई और दीवार के पास खड़े तीन सौ राजपूत मर गए, क्योंकि उड़े हुए पत्थर अधिकतर बाहर ही की ओर गिरे थे।[1]

इसके अनंतर जुझारसिंह के भागने के ठीक रास्ते का पता लगने पर २७ अक्तूबर को बादशाही सेना ने वहाँ से कूच किया और वह चौरागढ़ पहुँची। यहाँ पता लगा कि जुझारसिंह ने तोपखाने को तुड़वाकर, सामान को जलवाकर और गोंड राजों को बारूद से

(१) अबुल हामिद कृत बादशाहनामा पृ० १०८–१० । मआसिरुल्-उमरा फारसी जि० २, पृ० २१५, २३० और जि० १ पृ० ७२४ । मआसिरुल-उमरा बेवरिज पृ० १०२ ।

उड़वाकर नष्ट भ्रष्ट कर दिया तथा आप दुर्ग को खाली करके दक्षिण की ओर देवगढ़ और चाँदा के गोंड़ राज्यों से होता हुआ भाग रहा है। उसके साथ छः हज़ार सैनिक और आठ हाथी थे और वह सोलह कोस के हिसाब से प्रति दिन चल रहा था। उस विजित प्रांत में शांति-स्थापन करने के लिये और वीरसिंहदेव के गुप्त कोषों का पता लगाने के लिये सैयद खानजहाँ बारहः, बादशाही आज्ञानुसार वहीं ठहर गया। अब्दुल्ला खाँ फ़ीरोज़ जंग और खानदौराँ खाँ दुर्ग से दो कोस पर सेना सहित ठहरे हुए थे और जब भागने का ठीक मार्ग मालूम हुआ कि देवगढ़ के राज्यांतर्गत माँजी होता हुआ जुझारसिंह चाँदा की ओर जा रहा है और चौरागढ़ से भागे हुए उसे १४ दिन हो गए तब तेज़ सेना के साथ ही इन दोनों सेनापतियों ने पीछा करना आरंभ किया। बादशाही सेना ने प्रति दिन चालीस कोस के हिसाब से कूँच करते हुए चाँदा की सीमा पर उसको पा लिया[1] और दूनी तेज़ी से

(१) यह हाल प्रोफेसर सरकार ने अपनी औरंगजेब नामक पुस्तक में बादशाहनामा के आधार पर लिखा है। यदि जुझारसिंह को चौदह दिन का समय मिला तो वह १६ मील के हिसाब से २२४ मील चलकर चाँदा की सीमा पर पहुँच गया था; जब कि बादशाही सेना चौरागढ़ के सामने ही पड़ी हुई थी। इसके बाद दोनों सेनाओं की दौड़ १६ और ४० मील के हिसाब से होने पर २४ मील प्रति दिन बादशाही सेना अंतर कम कर रही थी जो वह नौ दिन से अधिक समय में पूरा कर पाई होगी। इतने दिनों में बादशाही सेना ३६० मील से अधिक दूर पहुँचने पर जुझारसिंह के पास पहुँची होगी पर चाँदा की दूरी चौरागढ़ से २०० मील से कुछ अधिक है। मआसिरुल्-उमरा, बेवरिज, पृ० १० ३ में लिखा है कि, अब्दुल्ला प्रति दिन दस गोंड़ कोस और कभी बीस गोंड़ कोस कूच करता जो मामूली कोस के दूने होते हैं और चाँदा की सीमा पर पहुँच कर उसने उससे युद्ध किया। वहाँ से वह गोलकुंडा भागा। यह ठीक ज्ञात होता है क्योंकि जब सेना ४० और ८० मील के हिसाब से कूच करती थी तब औसत ६० मील लेने से वह २२४ मील के अंतर की पाँच दिनों में पूर्ति कर सकी और ३०० मील चलकर चाँदा की दूसरी अर्थात् दक्षिण सीमा पर शत्रु की सेना के पास पहुँच सकी। दक्षिणी सीमा बानगंगा है जिसके उस पार हैदराबाद और गोलकुंडा की सल्तनतें तथा बीच के जंगल थे। मआसिरुल्-उमरा में जुझारसिंह का गोलकुंडा की ओर

पीछा किया। तब जुझारसिंह क्षुब्ध होकर घूम पड़ा और उसने सामना किया, पर घोर युद्ध के अनंतर पराजित होकर उसे भागना पड़ा। पीछा फिर आरंभ हुआ। वह स्त्री, बाल बच्चों और सामान के साथ होने और घोड़ों की कमी से जल्दी नहीं चल सकता था। रात्रि में ज्यों ही वह खाने पीने को ठहरा कि शत्रु सिर पर पहुँचे। उसे खाना, पीना और सोना दुर्लभ हो गया। खोज मिटाने के उसने बहुत उपाय किए और कोषवाले हाथी शत्रु को लोभ दिलाने के लिए दूसरे रास्ते से भेजे पर शत्रु सेनापति भी बहुत चालाक थे। उन्हें वहाँ के ज़मींदारों से भी पता लगता जाता था और वे जुझारसिंह के मार्ग का ठीक पता दे देते थे। गोंड़ों से बुंदेलों को सहायता मिल ही नहीं सकती थी, इसलिये वे किसी प्रकार भाग न सके।

अंत में जुझारसिंह की सेना कई दलों में बँट गई। उनके परिवार की कुछ स्त्री और बच्चे जो मारे नहीं जा सके थे पकड़ गए। बहुत सा सामान और धन भी मुग़ल सेना के हाथ आया पर जुझारसिंह अपने पुत्र विक्रमाजीत[1] और कुछ सैनिकों के साथ घोर जंगल में निकल गए। यहाँ लुटेरे गोंड़ों ने लूट और मुग़लों से पुरस्कार पाने की आशा पर उनका पीछा किया और रात्रि के समय सोते में इन लोगों को मार डाला[2]। खानदौराँ नसरत जंग यह सुनकर वहाँ गया

भागना लिखा है। इसपर मिस्टर बेवरिज ने बादशाहनामा के आधार पर टिप्पणी की है कि गोंडवाना होना चाहिए। पर गोंडवाना की सीमा का अंत हो चुका था और वह जंगली प्रांत उसे छिपा नहीं सका; इसलिए वह अन्य स्वतंत्र राज्य में रक्षार्थ भाग रहा था। गोलकुंडा चाँदा के ठीक दक्षिण २८० मील के लगभग दूर है।

(१) विक्रमाजीत का जन्म संवत् १६६६ वि० है। देखो ना० प्र० प० सं० १९७७, पृ० ११६।

(२) डो जि० २ पृ० १३२ में लिखते हैं कि 'अभागा राजा अंत में बिलकुल थक गया। वह एक जंगल में पहुँचा और एक रमणीक स्थान देखकर उसने वहीं ठहरने की इच्छा की क्योंकि उस घोर वन में उसने अपने को सुरक्षित समझा। एक जंगली जाति चारों ओर बसती थी। उसने राजा के सैनिकों को नहीं देखा था

और उनके सिर काटकर फ़ीरोज जंग के पास ले आया । वे बादशाह के पास भेज दिए गए जिनकी आज्ञा से वे सैहूर के कंप के फाटक पर लटका दिए गए, जहाँ उस समय बादशाह ठहरे हुए थे ।

क़ैदियों में राजा वीरसिंहदेव की स्त्री रानी पार्वती भी थीं; पर वे घातक घाव के कारण मर कर अप्रतिष्ठा से बच गईं । बादशाहनामा में अब्दुल हमीद लिखता है कि अन्य स्त्रियाँ मुग़ल हरम में भेज दी गईं । इनके लिए इस अप्रतिष्ठा से अपने प्रियतमों के हाथ से मृत्यु सहस्रगुनी अधिक सुखदाई होती क्योंकि वे ऐसे शत्रु के हाथ पड़ी थीं जो कई शताब्दियों तक भारत में रहने पर भी हिंदुओं से घृणा रखते थे और पराजितों पर दया दिखाना और स्त्री जाति के लिये वीरोचित सम्मान करना नहीं जानते थे । जुझारसिंह के दो पुत्र और एक पौत्र मुसलमान बनाए गए[१] । दूसरा पुत्र उदयभानु और उस वंश का प्राचीन और स्वामिभक्त मंत्री श्यामदेव, जो गोलकुंडा भाग गए थे और शाहजहाँ को पकड़कर दे दिए गए थे, धर्म न छोड़ने के कारण मार डाले गए[२] ।

झाँसी के दुर्ग पर तोप और सामान सहित, अक्तूबर के अंत में अधिकार हो गया । वीरसिंहदेव के गुप्त कोषों की खोज होने पर जंगलों में बहुत से कुएँ सोने चाँदी से भरे हुए मिले ।

पर घोड़ों की हिनहिनाहट से कुछ उस ओर चले गए । झाड़ियों में से झाँककर उन्होंने जब उस स्थान को जहाँ वे पड़े हुए थे, देखा तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि बहुत से मनुष्य अच्छे कपड़े पहने हुए ज़मीन पर सो रहे हैं और सोने चाँदी के साज से सजे हुए घोड़े खड़े हैं । उन मनुष्यों के लिये जिन्होंने जीवन पर्यंत इतना धन कभी नहीं देखा था यह लोभ रोकना दुष्कर था । वे उन आगंतुकों पर टूट पड़े और उन्हें सोते ही में मार डाला । वे लूट को बाँट ही रहे थे कि नसरत आ पहुँचा । लुटेरे मारे गए और राजा का सिर सेना में लाया गया ।

(१) ख़फ़ीख़ाँ ने जि० १, पृ० ५११, ५२३, में जुझारसिंह के पुत्र का नाम दुर्गभानु और पौत्र का दुर्जनसाल और नरसिंहदेव लिखा है ।

(२) बादशाहनामा पृ० १३३, १३१ ।

बादशाही कोष में एक करोड़ रुपया सिक्का और अन्य अमूल्य वस्तुएँ भेजी गईं।

जुझारसिंह से शत्रुता करके गोंड़ों ने मुग़लों की जो सहायता की थी, उसके पुरस्कार में जब बादशाही सेना चाँदा राज्य के पूर्वीय और दक्षिणीय सीमा पर प्रणहीत नदी[1] के किनारे पहुँची, तब वहाँ के राजा को, जो सब गोंड़ राजाओं में अधिक ऐश्वर्यशाली था, विजेताओं की सेवा में जाकर छः लाख सिक्का देना पड़ा और वार्षिक २० हाथी या उसके बदले में अस्सी हज़ार रुपया ख़िराज में देना मानना पड़ा। यह मानों लूट का आरंभ था और इसके बाद औरंगज़ेब के समय यह सिलसिला बराबर जारी रहा।

जिस समय बादशाही सेना गोंडवाने की दूसरी सीमा पर पहुँच गई थी, उस समय तक औरंगज़ेब धामुनी पहुँच गए थे। इनकी प्रार्थना पर शाहजहाँ नए विजित प्रांत को देखने के लिए दतिया और ओड़छा तक आए। उन्होंने वीरसिंहदेव के बनवाए हुए उस बड़े मंदिर को जो महलसे सटा हुआ था गिरवा दिया और उसी पर मसजिद बनवाई। देवीसिंह ने इस कृत्य पर चूं तक नहीं की। यदि उनके देवताओं के मंदिर तोड़े फोड़े जाते हैं या वीर स्वजातीय मारे जाते हैं या उन्हीं के वंश की राजरानियाँ मृत्यु से घृणिततर जीवन व्यतीत कर रही हैं या अन्य धर्मावलंबी नवागंतुक उनके हरे भरे देश का नाश कर रहे हैं तो उन्हें इन सब से क्या? उनका स्वार्थ पूर्ण हो गया था। वे ओड़छा की गद्दी पर अधिकार कर सके और बुंदेला जाति के सरदार बन सके थे, यही उनके लिये उस समय बहुत था। स्वार्थ तेरी महत्ता भी अनिर्वचनीय है। मुसलमानों के इस पवित्र कार्य्य में जिन हिंदू जातियों ने गोंड़ों के समान सहायता की थी, उनमें सिसौदिया, राठौड़, कछवाहा और हाड़ा जातियाँ मुख्य हैं।

परंतु उस स्वार्थलोलुप और देशद्रोही की सरदारी को सभी बुं-

---

(१) वार्धा, वाणगंगा, पेनगंगा आदि नदियों की सम्मिलित धारा का नाम है जो गोदावरी में जाकर मिली है।

देलों ने सिर झुकाकर नहीं मान लिया। वे महोबा के प्रसिद्ध चंपतराय के झंडे के नीचे एकत्र हो गए और जुझारसिंह के अल्पवयस्क पुत्र पृथ्वीराज को तिलक करके तथा इस नीति के अनुसार 'सो जीते जो पहले मारे' ओड़छा राज्य पर धावा कर दिया। यद्यपि ये नवाभिषिक्त राजा पकड़े गए और ग्वालियर के राज-कारागार में कैद कर दिए गए तथा ओड़छे में एक के बाद दूसरे पराधीन राजे राज्य करते रहे, पर चंपतराय और उनके प्रसिद्ध पुत्र वीर छत्रसाल बराबर युद्ध करते रहे[1]।

राजा पहाड़सिंह।

सन् १६३५ ई० में जुझारसिंह से ओड़छा विजय कर लेने पर बादशाही सेना ने आज्ञानुसार उसपर राजा देवीसिंह को अधिकार दे दिया जो राजा रामचंद्र के पौत्र भारथसाह के पुत्र थे। जब जुझारसिंह के मारे जाने पर बादशाही सेना लौट गई और बादशाह जो ओड़छे आए हुए थे, दक्षिण जाने के विचार से सिरौंज होते हुए दौलताबाद चले गए, तब देवीसिंह भी ओड़छे का प्रबंध कर बादशाह के पास चले गए। इसी समय महोबा के राजा चंपतराय बुंदेला ने जो जुझारसिंह के भतीजे लगते थे, मुगल सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया और जुझारसिंह के अल्पवयस्क पुत्र पृथ्वीराज को राजा बनाकर वे ओड़छे के पास लूट मचाने लगे[2]।

देवीसिंह के लौट जाने पर बादशाह ने ओड़छा राज्य को एक परगना बनाकर उसका नाम इसलामाबाद रखा जिसमें नौ सौ ग्राम थे और आठ लाख रुपए की वार्षिक आय थी। इस परगने को ख़ालसा कर उन्होंने बाकी खाँ सिलह कलमाक को वहाँ का फ़ौजदार बनाया[3]। बाक़ीखाँ ने फ़ौजदार होने पर चंपतराय और बुंदेलों को

(१) छत्रप्रकाश पृ० २६।

(२) प्रोफे० सरकार कृत औरंगज़ेब जिल्द १ पृ० ३०

(३) ख़ूफ़ी ख़ाँ जि० १ पृ० ४५४।

दमन करने के लिए बहुत प्रयत्न किया[1] पर वह सफल न हो सका। यद्यपि दतिया और चंदेरी को छोड़कर लगभग कुल बुंदेलखंड पर बादशाही अधिकार हो गया था, पर कहीं शांति नहीं थी। जब चंपतराय ओड़छा और झाँसी के आसपास लूट मचाने लगे तब अब्दुल्ला खाँ फीरोज़जंग ओड़छा के फौजदार बनाए गए और भारी सेना के साथ चंपतराय को दमन करने के लिए नियुक्त किए गए। आलस्य के कारण अब्दुल्लाखाँ जागीर पर ठहर गए और अपनी कुल सेना देकर बाक़ीखाँ को चंपतराय पर भेजा। सन १६४० ई० में बाक़ी खाँ ने फुर्ती से कूचकर एकाएक चंपतराय को जा घेरा और घोर युद्ध के अनंतर पृथ्वीराज पकड़ा गया; पर चंपतराय हाथ नहीं आए[2]। पृथ्वीराज ग्वालियर भेजकर कैद किए गए और बादशाह ने यह समाचार पाकर कि अब्दुल्ला खाँ युद्ध में नहीं गया तथा उसीकी कमजोरी के कारण चंपतराय बचकर निकल गया, उससे इस्लामाबाद की फौजदारी ले ली[3]। बाक़ी खाँ भी दरबार में बुला लिए गए[4]।

इसके अनंतर बादशाह ने जुझारसिंह के भाई पहाड़सिंह को ओड़छा में नियुक्त करना निश्चित किया क्योंकि 'जाति का बैरी जाति' की नीति प्रायः सफल होती है। सन १६३५-४१ तक छः वर्ष मुसलमानों के निरंतर प्रयत्न पर भी जब शांति स्थापित न हो सकी तब यह उपाय निकाला गया। जहाँगीर के मृत्यु-समय पहाड़सिंह का मंसब दो हजारी १२०० सवार का था जिसे शाहजहाँ ने बढ़ाकर तीन हज़ारी २००० सवार का कर दिया। जब जुझारसिंह पर चढ़ाई करने के लिए

(१) बादशाहनामा जि० २, पृ० ११६, १८३।

(२) मआसिरुल्-उमरा, बेवरिज पृ० ३८१।

(३) ,, ,, ,, ७०४।

(४) एन० डबल्यू० पी० गजेटिअर जि० १ पृ० २३ और जर्नल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल सन् १९०२ में बाकी खाँ का यहीं मारा जाना लिखा है पर वह अशुद्ध है। वह सन् १६३५ में अपनी जागीर बारी में मरा। देखो मआसिरुल-उमरा बेवरिज पृ० ३८१ और गैरेट जि० २ पृ० १८२।

बादशाही सेना नियुक्त हुई तब यह भी अब्दुल्ला खाँ के साथ नियत किए गए थे। ऐरिछ दुर्ग लेने में इन्होंने भी बहुत प्रयत्न किया था; इसलिये बादशाह ने भ्रातृद्रोह से प्रसन्न होकर इन्हें पुरस्कार में डंका प्रदान किया था। जब जुझारसिंह ने अधीनता स्वीकार कर ली तब इन्हें भी उसी राज्य के कुछ महाल जागीर में दे दिए गए[1]।

सन् १६३० में जब शाहजहाँ खानजहाँ लोदी का पीछा करते हुए खानदेश पहुँचे और उन्होंने तीन सेनाएँ निज़ामुलमुल्क पर भेजीं तब उनमें से एक में जो शायस्ता खाँ के अधीनता में थी, पहाड़सिंह भी नियुक्त किए गए। उसी वर्ष इन्हें राजा की पदवी प्राप्त हुई। वर्षा ऋतु के प्रारंभ हो जाने पर खानजहाँ बीरगाँव में ठहरा हुआ था और वर्षा बीतने पर निज़ामुलमुल्क की सहायक सेना के आने के पहले दक्षिण के सूबेदार आज़म खाँ ने उसपर चढ़ाई कर दी। माँझली गाँव में युद्ध हुआ जिसमें पहाड़सिंह ने बड़ी वीरता दिखलाई और खानजहाँ के भतीजे बहादुर खाँ लोदी को युद्ध में मार डाला। दुर्ग दौलताबाद और परेंदा के घेरों में इन्होंने भी अच्छी वीरता दिखलाई। महाबत खाँ खानखानाँ की मृत्यु पर वे बुरहानपुर के सूबेदार खानदौराँ की अधीनता में नियुक्त हुए। सन् १६३५ में जब बादशाह शाहजी भोंसला को जिन्होंने अहमदनगर में एक अल्पवयस्क बालक को गद्दी पर बैठाकर मुग़ल सम्राट् से युद्ध ठाना था, दमन करने के लिए दक्षिण आए, तब पहाड़सिंह खानजमाँ की सेना के साथ नियत हुए थे। इस प्रकार लगभग दस वर्ष तक दक्षिण में रहने के अनंतर सन् १६४० ई० में वे औरंगज़ेब के साथ राजधानी आए[2]।

सन् १६४१ ई० में शाहजहाँ ने पहाड़सिंह का मंसब बढ़ाकर तीन हज़ारी २००० सवार का कर दिया और उसे ओड़छे का फ़ौजदार या राजा बनाकर चंपतराय आदि बुंदेलों को दमन करने

(१) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० २९६।

(२) पृ० २९७ और जि० १ पृ० ७२३।

के लिए भेजा[1] । चंपतराय का विद्रोह वस्तुतः इसीलिये था कि उनकी जन्मभूमि बुंदेलखंड में मुसलमानों का वास या पूर्ण अधिकार न हो। छः वर्ष तक शाहजहाँ ने ओड़छे पर्गने को इसलामाबाद नाम देकर वहाँ मुसलमान फौजदार रखा। इससे बराबर युद्ध चलता रहा और बादशाही सेना कभी सफल-प्रयत्न नहीं हुई। अंत में, जब जुझार-सिंह के भाई ही वहाँ के राजा हुए, तब इन्हें भी शांति प्राप्त हुई। एक प्रकार से चंपतराय ही पहाड़सिंह के ओड़छा-नरेश होने के कारण थे। जब पहाड़सिंह ओड़छे पहुँचे तब चंपतराय अपने चाचा साहब से मिलने गए और उसने भी उस समय इनका बड़ा आदर, सत्कार किया[2] ।

यद्यपि पहाड़सिंह ने चंपतराय के आतिथ्यसत्कार और बाहरी दिखावट में कुछ नहीं उठा रखा, पर उनके यश-वर्णन को सुनकर उसके हृदय में ईर्ष्या की ज्वाला उठी और वे छल-कपट से उन्हें संसार से उठाकर बादशाह की दृष्टि में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की कुचेष्टा करने का प्रयत्न करने लगा। बुंदेलों की दृष्टि में चंपतराय की बड़ी प्रतिष्ठा थी; इसलिये खुल्लमखुल्ला युद्ध कर उनका नाश करना संभव नहीं था अतएव पहाड़सिंह ने चंपतराय आदि सब भाइयों को निमंत्रण दिया और चंपतिराय के आगे विषपूरित भोजन का पात्र रखा गया। इनके भाई भीमसिंह को कुछ आशंका हुई जिससे उन्होंने उनकी थाली आप ली और अपनी भाई के आगे रख दी। भोजन से निवृत्त होकर डेरे पर आने के बाद भीमसिंह की मृत्यु हो गई जिससे यह घटना सब पर विदित हो गई। इसके बाद पहाड़सिंह ने कुछ डाँकुओं को रात्रि के समय चंपतराय को मारने के लिये भेजा जो पहरेदारों से बचकर महल तक पहुँच गए। पर ईश्वर की कृपा से चंपतराय जागते थे और उन्होंने तीर चलाकर उन्हें भगा दिया। इस प्रकार का बर्ताव देखकर और अपनी माता

(१) मआसिरुल्-उमरा जि० २ पृ० २१७।

(२) छत्रप्रकाश काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित पृ० ३४।

की आज्ञा पाकर चंपतराय सुलतान दारा शिकोह के पास चले गए तथा उन्होंने बादशाह की सेवा स्वीकार कर ली।

सन् १६४४ ई० में शाहजहाँ ने बदख्शाँ पर चढ़ाई करने के लिए अलीमर्दाँखाँ अमीरुल्उमरा के साथ पहाड़सिंह को नियुक्त किया। पर उस वर्ष तैयारी न हो सकी, इसलिए दूसरे वर्ष सुलतान मुरादबख़्श और अलीमर्दाँखाँ की अधीनता में सेना भेजी गई। पहाड़सिंह भी साथ गए थे और उन्होंने उज़बेगों और अलअमानों के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई थी। उसी वर्ष बलख़ और बदख़्शाँ पर अधिकार हो गया। मुरादबख़्श के लौट आने पर प्रधान मंत्री सादुल्लाखाँ और कुछ दिन बाद औरंगज़ेब वहाँ भेजे गए। पर इन सब प्रयत्नों का कुछ फल न निकला और सन् १६४७ ई० में बलख़ छोड़कर लौट आना पड़ा। सन् १६४८ ई० में जब फ़ारस की सेना ने कंधार घेर लिया तब औरंगज़ेब दुर्गवालों की सहायता करने के लिये नियुक्त किए गए। पर उनके पहुँचने के पहले ही दुर्ग टूट चुका था। पहाड़सिंह औरंगज़ेब की सेना में नियुक्त थे और सन् १६४९ में जब औरंगज़ेब कंधार दुर्ग विजय न कर सकने पर लौटे, तब साथ ही ये भी लौटे और उन्हें स्वदेश जाने की छुट्टी मिली[१]।

सन् १६५० ई० में पहाड़सिंह के मंसब में एक हज़ारी १००० सवार और बढ़ाया गया और वे सरदारखाँ के बदले में चौरागढ़ के जागीरदार नियत किए गए। वहाँ पहुँचने पर पहाड़सिंह ने चौरागढ़ के भूम्याधिकारी हृदयराम पर चढ़ाई की। यह भीमनारायण के पुत्र थे जिन्हें जुझारसिंह ने मार डाला था और जो बांधवनरेश अनूपसिंह की शरण में रीवाँ में रहता था। बांधव दुर्ग के खंडहर हो जाने के कारण उससे चालीस कोस पर रीवाँ स्थान में वहाँ के राजा रहने लगे थे। पहाड़सिंह के चढ़ाई करने पर अनूपसिंह ने अपने में लड़ने की शक्ति न देखकर अपने बाल बच्चों और हृदयराम को साथ लेकर नथूनथर के पहाड़ों में शरण ली। पहाड़सिंह ने रीवाँ पहुँच-

(१) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० २९८।

कर उसे लूटा और उसी समय बादशाही आज्ञापत्र के पहुँचने पर सन् १६५२ में दरबार में गए। रीवाँ की लूट से उन्होंने एक हाथी और तीन हथनिआँ भेंट दीं। उसी वर्ष वे सुलतान औरंगजेब की कंधार पर दूसरी चढ़ाई में साथ गए[1]।

सन् १६५३ ई० में कंधार पर शाहजहाँ ने तीसरी सेना दारा-शिकोह की अधीनता में भेजी, पर वह भी सफलता न प्राप्त कर सकी। इस चढ़ाई में पहाड़सिंह भी साथ गए थे और एक मोर्चे के अधि-नायक थे। चंपतराय भी इस चढ़ाई में दारा के साथ गए थे। और उनकी वीरता पर प्रसन्न हो दारा शिकोह ने कांच पर्गना तीन लाख खिराज पर इन्हें देना चाहा, पर पहाड़सिंह का द्वेष कुछ भी नहीं घटा था और वह चंपतराय को बादशाही दरबार से निकालने का अवसर ढूँढ़ रहे थे। उसने दारा को पट्टी पढ़ाई कि यदि कांच मुझे दिया जाय तो मैं नौ लाख खिराज दूँगा। लोभ के कारण दारा ने उनकी बात मान ली, जिस पर चंपतराय से और दारा से दरबार ही में कुछ कहा सुनी हो गई। पर बूँदीनरेश छत्रसाल[2] के बीच में पड़ने से वह मामला नहीं बढ़ा और चंपतराय नौकरी छोड़ महोबा लौट गए। पहाड़सिंह भी छुट्टी लेकर देश चले आए जहाँ सन् १६५४ ई० में उनकी मृत्यु हो गई[3]।

पहाड़सिंह की रानी का नाम हीरादेवी था और उनके दो पुत्र सुजानसिंह और इंद्रमणि थे। औरंगाबाद नगर के बाहर एक महाल पहाड़सिंहपुरा पहाड़सिंह के नाम पर बसा हुआ है।

(१) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० २५८।

(२) तवारीखे-बुंदेलखंड में चंपतराय का पुत्र छत्रसाल लिखा है, पर वह अशुद्ध है। देखो छत्रप्रकाश पृ० ४०।

(३) मआसिरुल्-उमरा जि०२ पृ० २५८। इम्पी० गजेटिअर जि० १६ पृ० २४४ में पहाड़सिंह की मृत्यु सन् १६५३ ई० और जर्नल एशा० सो० सन् १६०२ पृ० ११६ में सन् १६५१ में लिखी है।

सुजानसिंह और इंद्रमणि

इस समय तक बुंदेलों के कई छोटे छोटे स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गए थे जो केवल ओड़छा-नरेश को स्वजातियों का मुखिया मानते थे। दतिया, चँदेरी, समथर आदि स्वतंत्र हो गए थे और चंपतराय तथा उनके पुत्र प्रसिद्ध छत्रसाल नया राज्य स्थापित करने में लगे हुए थे। पहाड़सिंह और उनके अनंतर के कई ओड़छा-नरेश मुग़ल सम्राटों के ख़िराजदार, जागीरदार या स्वामिभक्त सेवक मात्र थे और वे सदा अपने भाइयों की जड़ काटने में मुसलमानों की सहायता करते रहते थे। जिस समय शाहजहाँ ने पहाड़सिंह को ओड़छा का राजा बनाया था, उस समय उन्होंने उनको उस राज्य का केवल उतना ही अंश दिया था जिसकी आय लगभग साठ लाख वार्षिक थी।

सुजानसिंह अपने पिता की जीवित अवस्था ही में शाहजहाँ के कृपापात्र होकर कई छोटे कामों पर नियुक्त हो चुके थे। सन् १६५४ ई० में पिता की मृत्यु पर शाहजहाँ ने इन्हें दोहज़ारी २००० सवार का मंसब देकर ओड़छा के राजा की पदवी दी। सन् १६५५ ई० में यह क़ासिमख़ाँ मीरआतिश के साथ श्रीनगर के राजा पर भेजे गए थे और उसी वर्ष डंका और झंडा पाकर सम्मानित भी हुए थे। सन् १६५६ ई० में सुजानसिंह आज्ञानुसार दक्षिण के सूबेदार सुलतान औरंगज़ेब के पास गए, पर नई आज्ञा मिलने पर उन्हें वहाँ से दरबार में लौट आना पड़ा। इसी समय शाहजहाँ के बीमार हो जाने से उसके चारों पुत्रों में युद्ध होने लगा। दारा शिकोह की आज्ञा से सुजानसिंह महाराज जसवंतसिंह के साथ मालवा गए, पर धर्मतपुर के युद्ध के समय यह वहाँ से स्वदेश चले गए; और जब औरंगज़ेब दारा को परास्त कर दिल्ली पर अधिकृत हो गया, तब अपना दोष क्षमा करा-कर औरंगज़ेब के साथ हो गए[1]।

खजवा युद्ध में सुजानसिंह औरंगज़ेब की सेना के दाहिने भाग पर नियुक्त थे; और जब शुजा युद्ध में पराजित होकर बंगाल की ओर

---

(१) मआसिरुल-उमरा जि० २, पृ० १६१।

भागा तब ये भी शाहज़ादा सुलतान मुहम्मद के साथ उसका पीछा करने पर नियत हुए। इस कार्य में इन्होंने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की। सन् १६६१ ई० में खानखाना मुअज्जमखाँ मीरजुमला ने सुजानसिंह को कुछ सेना सहित कूच-बिहार पर अधिकार करने और वहाँ के राजा को दंड देने को भेजा। पर उतनी सेना के साथ जब वह कुछ न कर सका, तब खानखाना से आ मिला जो आसाम की चढ़ाई को जा रहा था। मीरजुमला ब्रह्मपुत्र नदी के तटस्थ घारगाँव तक गया; पर वर्षा और सामान न मिलने के कारण उसे लौट आना पड़ा[1]। इस चढ़ाई में सुजानसिंह ने अच्छी वीरता दिखलाई[2]।

सुजानसिंह की अनुपस्थिति में ओड़छा राज्य का प्रबंध उनकी माता हीरादेवी के हाथ में था जो चंपतराय और उनके संबंधियों तथा मित्रों से घोर द्वेष और वैमनस्य रखती थीं। जब चंपतराय औरंगजेब से बिगड़कर स्वदेश लौट आए और उन्होंने स्वतंत्रता के लिये युद्ध आरंभ किया, तब बादशाह ने शुभकरण बुंदेला आदि कई सरदारों को इन्हें दमन करने के लिये भेजा। ओड़छा की रानी हीरादेवी ने बादशाही सेना की बराबर सहायता की और चंपतराय के मित्र सुजानराय को परिवार सहित वेदपुर में मरवा डाला। इन्हीं रानी ने झाँसी ज़िले के मऊ पर्गने में रानीपुर नामक ग्राम बसाया था जो अब तक वर्तमान है। अजार का प्रसिद्ध तालाब सुजानसिंह के समय में ही बना था[3]।

सन् १६६४ ई० में सुजानसिंह मिर्ज़ाराजा जयसिंह के साथ, दक्षिण प्रांत में नियुक्त हुए और वहाँ पुरंधर दुर्ग के घेरे में इन्होंने अच्छा कार्य किया। इससे बादशाह ने प्रसन्न होकर इन्हें १६६५ ई० में तीन हज़ारी ३००० सवार का मंसब प्रदान किया। इसके अनं-

(१) इलि० डाउ० जि० ७, पृ० २६४—६६।

(२) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० २६२।

(३) छत्रप्रकाश पृ० ४०-४७, एन डब्लयू पी० गजे० जि० १, पृ० २२७, २७३।

तर आदिलशाहियों की सेना के साथ युद्ध करने में उन्होंने बड़ी वीरता दिखलाई। सन् १६६६ ई० में बरार प्रांत के पास चाँदा नामक गोंड़ों के राज्य पर दिलेर खाँ के साथ अधिकार करने के लिये नियुक्त हुये। मआसिरुल्-उमरा के अनुसार सन् १६६८ ई० में सुजानसिंह की दक्षिण ही में मृत्यु हो गई[1]। पर यह ठीक नहीं जान पड़ता।

छत्रप्रकाश में लिखा है कि जब औरंगजेब के आज्ञानुसार बुंदेलखंड के मंदिरों को गिराने के लिये फिदाई खाँ अठारह सहस्र सेना सहित आया तब धुरमंगदसिंह ने उसे परास्त कर भगा दिया। सुजानसिंह यह सुनकर डरे कि बादशाह यह समाचार पाकर क्रोधित होंगे। इसी समय छत्रसाल ने दक्षिण से लौटकर स्वतंत्रता के लिये बुंदेलखंड में सेना एकत्र करना और बुंदेले सर्दारों को मिलाना आरंभ किया। छत्रसाल ने सुजान सिंह से भेंट की और इन्होंने भी उनका इस शुभ कार्य में बहुत उत्साह बढ़ाया।

सन् १६६९ ई० में राज्य दृढ़ होने और महाराज जयसिंह की मृत्यु होने के अनंतर औरंगज़ेब ने मंदिरों के ढहाने की आज्ञा प्रचारित की थी और महाराज छत्रसाल भी जयसिंह की मृत्यु के बाद शाही मंसब छोड़कर स्वदेश लौटे थे, इससे सुजानसिंह का सन् १६६९ तक जीवित रहना निश्चित ज्ञात होता है।

सुजानसिंह निस्संतान मर गए, इसलिए शाहजहाँ ने उनके भाई इंद्रमणि को राजा की पदवी देकर और मंसब बढ़ाकर उन्हें ओड़छा का राजा बना दिया। यह अपने पिता की मृत्यु पर दरबार में गए और बादशाह ने इन्हें पाँचसदी और ४०० सवार का मंसब दिया। श्रीनगर की चढ़ाई पर सन् १६५५ में ये कासिम खाँ मीर आतिश के साथ गए थे। दूसरे वर्ष भाई के साथ ही दक्षिण के सूबेदार

(१) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० २९३। इम्पी० गजे० जि० १४पृ० २४४ में सुजानसिंह की मृत्यु सन् १६७२ में और जर्नल एशा० सो० सन् १९०२ में सन् १६७१ में होना लिखा है।

सुलतान औरंगजेब के पास भेजे गए थे । सन् १६५८ ई० में शुभकरण बुंदेला के साथ चंपतराय को दमन करने के लिये ये नियुक्त हुए थे । सन् १६६४ ई० में ये मिर्ज़ाराजा जयसिंह के साथ दक्षिण में नियत हुए थे जहाँ से लौटने पर ओड़छा के राजा बनाए गए । उसी समय कुछ दिनों तक खानजहाँ की सूबेदारी में ये गुलशनाबाद[1] के थानेदार थे । सन् १६७६ में इनकी मृत्यु हो गई[2] ।

जसवंतसिंह, भगवंतसिंह और उदितसिंह

इंद्रमणि की मृत्यु के समय उनके पुत्र जसवंतसिंह अपने देश में थे, इसलिये बादशाह ने राजा की पदवी और ओड़छे का राज्य उन्हें दिया । सन् १७७८ ई० में यह छत्रसाल को दमन करने के लिये भेजे गए । सन् १६८५[3] ई० में औरंगजेब ने इन्हें खिलअत और डंका देकर खानजहाँ बहादुर कोकल्ताश के पुत्र हिम्मत खाँ के साथ बीजापुर भेजा । इन्होंने दुर्ग मालखेड़ की चढ़ाई में बड़ी वीरता दिखलाई । सन् १६८६ ई० में इनकी मृत्यु हो गई । तब इनके अल्पवयस्क पुत्र भगवंतसिंह को राज्य मिला और उसकी दादी रानी अमर कुँवर, जो इंद्रमणि की स्त्री थीं, राज्य की प्रबंधकर्त्री नियत हुई । दूसरे ही वर्ष भगवंतसिंह की मृत्यु हो गई । तब रानी अमरकुँवर की प्रार्थना पर ओड़छे का राज्य उदितसिंह को दिया गया ।

उदितसिंह के पिता प्रतापसिंह विजयसाह के पुत्र थे जो राजा मधुकरसाह के वंशधर थे । ये ओड़छा राज्य के अंतर्गत एक छोटे पर्गने में, जिसका नाम बन गाँव था, रहते थे । रानी अमरकुवर ने इन्हें बादशाह की आज्ञा प्राप्त होने पर दत्तक स्वरूप ले लिया

(१) जुनेर के पास बगलाने में है ।

(२) मआसिरुल् उमरा जि० २, पृ० २६२-३ । एन० डब्ल्यू० पी० गजेटि० जि०१ पृ० ४४७ में इंद्रमणि से उदितसिंह तक का नाम ही नहीं दिया है ।

(३) मआसिरुल्-उमरा जि० २ पृ० ४११ के नोट में लिखा है कि अन्य हस्तलिखित प्रति में सन् १६८० है ।

और यह सन् १६८९ में दरबार में हाजिर हुए। सन् १७०२ ई० में इनका मंसब बढ़कर साढ़े तीन हजारी १५०० सवार का हो गया और यह दक्षिण में खेलना के दुर्गाध्यक्ष नियत किए गए। औरंगजेब की मृत्यु पर जब बहादुरशाह बादशाह हुआ और दक्षिण में मराठों का ज़ोर बढ़ने लगा, तब यह उस दुर्ग को मराठों को सौंपकर स्वदेश लौट आए[1]।

बहादुरशाह के समय उदितसिंह[2] सिक्खों की चढ़ाई पर गए जो मुईनुलमुल्क की अधीनता में सन् १७१० ई० में हुई थी। उदितसिंह के समय में मराठों की बुंदेलखंड पर पहली चढ़ाई हुई। सन् १७२५ ई० में मल्हारराव होल्कर आदि मराठा सरदारों ने मालवा के सूबेदार राय गिरिधर को युद्ध में परास्त कर मार डाला जिसपर मुहम्मद खाँ बंगिश भेजे गए। पर जब उनसे भी कुछ न हो सका तब राजा जयसिंह मालवा के सूबेदार हुए और इनके कहने पर अंत में मालवा बाजीराव को सौंप दिया गया। सन् १७३३-३६ तक में मराठों ने दो बार दिल्ली की ओर धावा मारा। पहली बार युद्ध न हो सका और दूसरी बार वज़ीर कमरुद्दीन खाँ और नवाब खान-दौराँ खाँ ने विजय प्राप्त की। इन चढ़ाइयों में उदितसिंह भी सेना के साथ थे। सन् १७३६ ई० में मालवा मराठों को मिल गया जिसके दूसरे वर्ष बाजीराव ने पिल्लाजी गायकवाड़ को सेना सहित दोआब पर चढ़ाई करने के लिये भेजा; पर अवध के नवाब सआदत खाँ बुरहानुल्-मुल्क ने बुंदेलों की सहायता से पराजित किया[3]। इसी वर्ष उदितसिंह की मृत्यु हो गई।

---

(१) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० २८३। बुंदेलखंड पर मराठों के आक्रमण आदि का अधिक विवरण छत्रसाल के जीवन-वृत्तांत में दिया जायगा।

(२) मआसिरुल्-उमरा जि० २, पृ० २८३ में उदयसिंह, जर्नल एशा० सो० में अधोतसिंह, तवारीखे-बुंदेलखंड में उदितसिंह और इम्पीरियल गजेटियर में उद्योतसिंह दिया है।

(३) इलिअट डा३० जि० ८, पृ० २६१-६३।

सन् १७१५ ई० में उदितसिंह ने अपुत्र रहने के कारण सोने का एक मनुष्य बनाकर दान किया जिससे उन्हें एक पुत्र पृथ्वीसिंह हुए जो अपने पिता की मृत्यु पर ओड़छे की गद्दी पर बैठे। इनके समय में ओड़छे के राज्य की ऐसी दुर्दशा हो गई थी कि केवल ओड़छा नगर इनके अधिकार में बच गया था और उनकी सेना में पचास सिपाही मात्र रह गए थे। झाँसी का दुर्गाध्यक्ष रामेंद्रगिरि विद्रोह कर स्वतंत्र हो गया। बालाजी बाजीराव ने सन् १७४२ में नारू शंकर की अधीनता में एक सेना भेजी जिसने ओड़छा राज्य के आधे से अधिक भाग पर अधिकार कर लिया। सन १७५२ ई० में पृथ्वीसिंह की मृत्यु हो गई।

दीवान बहादुर गंधर्वसिंह यौवराज अवस्था ही में मर गए थे; इसलिये इनके पुत्र सावंतसिंह अपने दादा की गद्दी पर बैठे[1]। उसी वर्ष दिल्ली के नाममात्र सम्राट् आलमगीर द्वितीय ने इन्हें महेंद्र की पदवी दी जो अबतक इनके वंश में चली जाती है। यह पदवी इस कारण मिली थी कि बादशाह के पुत्र अलीगौहर अर्थात् शाह आलम जब दरबार के षड्यंत्रों से घबराकर इधर उधर मारे मारे फिरते थे, तब वे बुंदेलखंड में झाँसी तक आए थे। उस समय इन्होंने उनकी कुछ सहायता की थी। सन् १७६१ में शाहआलम बादशाह की आज्ञा से सरकार कालिंजर का पर्गना खुटोला इन्हें मिला। इन्हीं के समय मराठों ने झाँसी के गिरि-संन्यासियों को परास्त कर वहाँ का राज्य स्थापित किया। सन १७६५ ई० में सावंतसिंह की मृत्यु हुई।

सावंतसिंह के निस्संतान मरने पर उनकी माता हरिवंशकुँवरि और उनकी स्त्री महेंद्र रानी ने उदितसिंह के पौत्र हाथीसिंह[2] को दत्तक लिया। पर सन १७६७ ई० में इनसे और महेंद्र रानी से किसी

(१) तवारीखे-बुंदेलखंड भाग ३, जि० १ पृ० ५।

(२) हाथीसिंह, पजनसिंह और मानसिंह नामों का तवारीख-बुंदेलखंड में नाम भी नहीं दिया है। इनका ज़िक्र जर्नल एशा० सो० सन् १९०२ पृ० ११८ में दिया है। मआसिरुल-उमरा में सुजान सिंह का वृतांत समसामुद्दौला के पुत्र अब्दुलहई का लिखा है जिन्होंने सन् १७६८-८० में लिखा है "कि ग्रंथ लिखते समय पंचमसिंह का वहाँ अधिकार था।" यह पजन सिंह हो सकते हैं।

बात पर झगड़ा हो गया । सेना और मंत्रिमंडल के रानी का पक्ष लेने पर हाथीसिंह दतिया भाग गए जहाँ के राजा इंद्रजीत ने इन्हें आश्रय दिया । इसके अनंतर रानी ने टेहरी पर अधिकार कर लक्ष्मणसिंह के पुत्र पजनसिंह को गोद लिया । पर उनसे भी सन् १७७२ ई० में वैमनस्य हो गया जिससे पजनसिंह ने डेढ़ वर्ष तक टेहरी में रहने के बाद संसार से विरक्त होकर चित्रकूट में जाकर दिन व्यतीत किया । तब महेंद्र रानी ने उदितसिंह के पुत्र मोहनगढ़-नरेश अमरेश के पुत्र मानसिंह को गोद लेकर राजा बनाया । राजाओं के इन परिवर्तनों के समय समथर के राजा विष्णुसिंह ने अमरा आदि ग्रामों पर अधिकार कर लिया । महेंद्र रानी की मानसिंह से भी न बनी और वे राजगढ़ को चले गए । सन् १७७५ ई० में रानी ने उदितसिंह के पौत्र जगतराय के बड़े पुत्र भारतीचंद्र को दत्तक लेकर राजा बनाया । पर यह तीन वर्ष बाद निस्संतान ही मर गए । मृत्यु के समय इन्होंने अपने छोटे भाई विक्रमाजीत विजय बहादुर को अपना उत्तराधिकारी बनाया था ।

उस समय ओड़छा राज्य बड़ी दुर्दशा में था । राजवंश के अनेक पुरुष उपद्रव मचा रहे थे और कोष खाली पड़ा हुआ था । सेना वेतन न मिलने से विद्रोह मचाए हुए थी जिसके लिये विक्रमाजीत ने अंत में बरवा सागर पर्गने को झाँसी के सूबेदार के हाथ बेंच डाला और उसके मूल्य से सेना का वेतन चुकाया । इसके अनंतर उन्होंने तरौली, मोहनगढ़, सेमरा, पालेरा और जिरौन पर चढ़ाई कर अधिकार कर लिया । एक बार ग्वालियर की सेना को भी इन्होंने युद्ध में कड़ी पराजय दी । पजनसिंह ने भी इनके समय में विद्रोह किया था, पर वे दबा दिए गए । इन्होंने अपने वकील द्वारा शाहआलम के दरबार में प्रार्थना कर उदितसिंह के नाम मुहम्मदशाह के दिए हुए पर्गने और सावंतसिंह के नाम शाहआलम का दिया हुआ खुटोल परगना फिर से अपने नाम बहाल करा लिया । इन्होंने बहुत से कुँए और तालाब बनवाए[1] ।

(१) जर्नल एशा० सो० वर्ष १९०२ पृ० ११८ ।

पूस बदी ६ स० १२२० फ़सली (१५ दिस० सन् १८१२ ई०) को विक्रमाजीत बहादुर ने अंग्रेज़ों के साथ संधि कर ली और भारत सरकार की ओर से जौन वाकिब साहब तथा राजा साहब की ओर से लाला ढक्कनलाल ने संधि-पत्र उसी दिन लिखा जो सन् १८१३ की ८ जनवरी को कलकत्ते की कौंसिल में मंजूर किया गया। सन् १८१७ ई० में इन्होंने अपने पुत्र धर्मपाल को गद्दी दे दी और आप राज्य से विरक्त हो गए। पर सन १८३४ ई० में उसकी मृत्यु पर उन्होंने फिर से राज्य का प्रबंध अपने हाथों में ले लिया। परंतु उसी वर्ष इनकी भी मृत्यु हो गई[1]।

तवारीखे-बुंदेलखंड में लिखा है कि 'अकबर द्वितीय ने इन्हें सन १८२४ ई० में इस बहुत बड़ी पदवी "उम्द: नोइआँ बुलंदमकाँ, जुब्द: अराकीन आलीशान, सैफ़ मसकूल, बाजु शाहनशाही रमह मसलूल मार्का व दुश्मन गाहे वाक़िफ़ रमूज़ ज़िल्ल इलाही, महरम सरापर्द: खास, सज़ावार बज़्म तक़द्दुस इख़्तसास, एतज़ाद मुमालिक व फ़र्मांरवाए एतमाद खिलाफ़त व किश्वरकुशाएयार वफ़ादार-रिफ़ाक़त किरदार महाराजाधिराज जगजोधा पृथ्वीपति श्रीनारायण अन्नदाता फ़र्ज़ंदे मुअल्ला जाह सवाई राजा विक्रमाजीत महेंद्र बहादुर वकील मुतलक़, अमीने सलतनत, सिपहसर्दार, शुजाअत-किर्दार, रुस्तमे-हिंद," से लिखा था। साथ ही इनके सात हजारी ७००० सवार के मंसब को बढ़ाकर-दसहज़ारी १०००० सवार का कर दिया। कुंवर धर्मपाल ने टेहरी का नाम टीकमगढ़ रखा था और अन्य कई दुर्गों के नाम भी बदले थे।

विक्रमाजीत की मृत्यु पर उनके निस्संतान होने के कारण उनके भाई तेजसिंह राजा हुए, जिन्होंने सुजानसिंह को दत्तक लिया जो उनके भ्रातृष्पुत्र हृदयसाह का पुत्र था। सन १८४१ ई० में तेजसिंह की मृत्यु होने पर सुजानसिंह गद्दी पर बैठे जो सन १८५४ ई० में अपुत्र मर गए। सुजानसिंह के गद्दी पाने के समय धर्मपाल की बड़ी

(१) इम्पीरिअल गज़ेटिअर—जि० १६, पृ० २४४।

रानी ने उसके विरुद्ध षड्यंत्र उठाया था पर ओड़छा राज्य के सरदारों और भारत सर्कार के पहले ही दत्तक मान लेने के कारण कुछ न हो सका। सुजानसिंह के अल्पवयस्क होने के कारण रानी प्रबंधक नियत हुई थीं। सुजानसिंह वय प्राप्त करते ही मर गए तब भारत सर्कार ने बुंदेला राजाओं की सम्मति से रानी को हम्मीर-सिंह को दत्तक लेने की आज्ञा प्रदान की। हम्मीरसिंह भी अल्पवयस्क थे इसलिए प्रबंध रानी ही के हाथ रहा। सन् १८६२ ई० में भारत सर्कार ने इन्हें दत्तक लेने के अधिकार की सनद दी। इनके वय प्राप्त होने और राज्याधिकार पाने के कुछ ही दिन बाद रानी साहब सन् १८६८ ई० में मर गईं।

हम्मीरसिंह के शिक्षार्थ सेंट्रल इंडिया के एजेंट सर रौबर्ट नौर्थ कौर्ली हैमिल्टन ने दिल्लीनिवासी मोतमिदुद्दौला रायबहादुर पंडित प्रेमनारायण को नियुक्त किया था जिनसे उन्होंने कुछ अंग्रेज़ी सीखी थी। हिंदी के शिक्षक लाला रघुनंदन प्रसाद पांडेय थे। महाराज की अल्पावस्था के समय राज्यकर्म्म वज़ीरुद्दौला नत्थेखाँ बहादुर नसरत जंग के हाथ में था जो उस दरबार के पुराने सेवक थे, पर जब वे वय को प्राप्त हुए तब उन्हें हटाकर पंडित प्रेमनारायण की सम्मति से स्वयं कार्य देखने लगे। बलवे के समय अच्छा कार्य करने के कारण पंडितजी को दरबार से रायबहादुर मोतिमिद्दौला की पदवी और तीन हजार वार्षिक का ग्राम जागीर में मिला। सर्कार ने भी गुड़गाँव ज़िले में रेवाड़ी ग्राम जिसकी आय एक हजार वार्षिक थी इन्हें जीवन पर्यंत के लिये दिया। भारत सर्कार तहरौली पर्गना पर राज्य से जो कर लेती थी उसे उसने क्षमा कर दिया।

सन् १८७४ ई० में यौवनावस्था ही में महाराज हम्मीरसिंह की मृत्यु होगई और उस समय तक कोई पुत्र न था, इससे उन्होंने सर्कारी सनद के अनुसार अपने छोटे भाई प्रतापसिंह को गोद लिया। २४ मई सन् १८७४ ई० को महाराज महेंद्र सवाई प्रतापसिंह बहादुर गद्दी पर बैठे। पंडित प्रेमनारायण और नत्थेखाँ बहादुर में वैमनस्य था

इसलिए राजकार्य्य की देखभाल के लिये भारत-सर्कार ने एक अंग्रेज को नियुक्त किया जिनकी राय पर और हम्मीरसिंह की रानी की सम्मति पर नत्थेखाँ प्रधान बनाए गए। उसी वर्ष महाराज प्रतापसिंह के वय प्राप्त हो जाने पर प्रबंध कार्य उनके हाथ में चला आया। तब उन्होंने राय शिवदयाल सिंह को सन् १८७५ ई० में उसी पद पर नियुक्त किया। प्रति वर्ष के घाटे से राज्य पर कर्जा होगया था और रणधीरसिंह विद्रोही ने, जो राज्य के तथा सर्कारी पर्गनों में लूटमार करता था तथा अन्य ठाकुरों ने भी बड़ा उपद्रव मचा रखा था। इन्होंने पहले इन बलवाइयों का दमन किया जिनमें कुछ मारे गए और कुछ कैद हुए। इन्होंने करविभाग का बहुत अच्छा प्रबंध किया जिससे वार्षिक आय पचास हजार से अधिक बढ़ गई। राज्य की सेना का भी यूरोपीय ढंग पर प्रबंध किया गया और शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया गया। राज्य में बहुत से मदरसे खोले गए जहाँ बिना फीस के शिक्षा दी जाती है। एक कन्या-पाठशाला भी खोली गई जो बुँदेलखंड में पहली थी। सड़कें, बाग आदि बनवाए गए और कचहरी आदि के लिये इमारतें तैयार कराई गई

सन् १८९७ ई० के अकाल में राज्य की ओर से लगभग दस-लाख रुपया प्रजा के लिये व्यय किया गया और भूमिकर का बहुत सा अंश छोड़ दिया गया। सन् १९०५ ई० के अकाल में प्रजा को बहुत रुपया पेशगी दिया गया जो कई किश्तों में वसूल किया गया।

२०—रायबरेली ज़िले के कुछ कवि—कृत्ति "औध" कृत 'अवध-सिकार'।

[लेखक—पंडित रामाज्ञा द्विवेदी, बी० ए०, बनारस]

हिंदी के अधिकतर कवि तथा लेखक संयुक्त प्रांत ही के निवासी रहे हैं। तुलसी, सूर, बिहारी, देव, पद्माकर आदि हिंदी के स्तंभों से लेकर भारतेंदु हरिश्चंद्र, राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह, पंडित प्रताप नरायण मिश्र, पंडित बदरीनारायण चौधरी आदि आधुनिक विद्वानों तक के नाम इस सूची में आजायँगे। इन महानुभावों के निवासस्थान प्रायः व्रज के निकट अथवा अवध के इधर उधर ही रहे हैं, और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। अस्तु, गोरखपुर* ज़िला, काशी तथा मथुरा के इर्द गिर्द और अवध के कई ज़िलों में ही ये लोग हुए हैं। आज हम अवध के रायबरेली ज़िले के कुछ कवियों की चर्चा करेंगे और उनकी कविताओं के कुछ नमूने पाठकों के सम्मुख उपस्थित करेंगे।

यों तो कहा जाता है कि घाघ भी रायबरेली के ही रहनेवाले थे—कोई इन्हें वहाँ का ब्राह्मण और कोई लोध बतलाते हैं। हर्ष का विषय है कि इसी जिले के रहनेवाले हिंदी के धुरंधर विद्वान् और मर्मज्ञ कवि पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी भी हैं। बलई मिसिर भी, जिनकी अनेक उक्तियाँ देहातों में प्रसिद्ध हैं, यहीं के निवासी बतलाये जाते हैं। छोटे मोटे संस्कृत तथा हिंदी के और भी कवि यहाँ हुए हैं जिनका पता साहित्यसंसार को है ही नहीं। रायबरेली प्रांत में एक दोहा प्रचलित है जिसमें वहाँ के तीन संस्कृतज्ञों के पांडित्य का परिचय दिया गया है।

---

*देखिए स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी लिखित "गोरखपुर विभाग के कवि" शीर्षक लेख।

नैनचैन की 'चंद्रिका,' निजानंद को 'न्याय'।
दत्तराम की 'कौमुदी,' रही जगत में छाय॥

नैनचैन जी के वंशज अब भी हैं और व्याकरण के पठन पाठन का कार्य करते हैं। इन लोगों को कुछ जागीर भी मिली है। अभी तक इस ज़िले में एक ज्योतिषी हैं जिन्होंने अपने घर में ही एक छोटीसी वेधशाला बना रक्खी है और उसी के अनुसार अपने पंचांग आदि बनाते हैं। तात्पर्य यह है कि पहले से ही इस प्रांत में विद्वान और विद्याप्रेमी रहते आए हैं।

थोड़े ही दिन हुए मुझे मित्रवर पंडित रामनारायणजी मिश्र, बी० एस-सी० के पास एक हस्तलिखित ग्रंथ मिला जिसका नाम है "अवध-सिकार"। इसके लेखक हैं पंडित अयोध्या प्रसाद जी बाजपेयी "औध"। ग्रंथ तो है छोटा ही परंतु बहुत ही ललित है। संपूर्ण ग्रंथ में लगभग ५०० पंक्तियाँ होंगी, परंतु इतने में ही कवि ने मनहरण, मत्तगयंद, त्रिभंगी घनाक्षरी, किरीट, माधवी आदि १४ छंदों का प्रयोग किया है। ग्रंथ में दो "कलाएँ" हैं—द्वितीय कला के अंत में लिखा है—

"इति श्रीमन्महाराज चक्र चिंतामणि दशरथ सरस्वानोद्भूत भवभूषण श्रीरामचंद्र कुमार लीलायां द्वितीया कला समाप्ता।"

दूसरी कला में तो आद्योपांत त्रिभंगी ही छंद है। इसके अंतिम पद में शायद रचना समय भी दिया हुआ है। यह पद यों है—

"दश आठ आठ षट्, कला चरन ठट, राग सहित रट शिवसंगी।
ज्ञानी गुन गेहिक भौतिक जेहिक, दैहिक दैविक तिरभंगी॥"

इस हिसाब से तो रचना-काल "दश आठ आठ षट्" के अनुसार संवत् १८१४ हुआ और ग्रंथ १५० वर्ष से ऊपर का बना हुआ ठहरा। जो कुछ हो अयोध्याप्रसाद जी को मरे हुए लगभग १०० वर्ष हुए। रायबरेली से थोड़ी ही दूर पर इनका स्थान है। लोग कहते हैं कि इनके पिता को लड़के नहीं होते थे तो इनकी माताजी ने अयोध्याजी में जाकर मनौती मानी। तत्पश्चात् "औध" जी का

जन्म हुआ और इनका नाम अयोध्याप्रसाद पड़ा । ये स्वयं अयोध्या धाम के बड़े प्रेमी थे; मरते समय लोग इन्हें गंगा तट पर ले गए तो २० दिन तक इनकी मृत्यु ही नहीं हुई । इस पर ये बहुत क्रुद्ध हुए और गंगाजी की निंदा में कविता सुनाते हुए अयोध्याजी चले गए । वहीं इनका देहांत भी हुआ । ये लखनऊ के बाजपेयी थे, जो बहुत ही कुलीन माने जाते हैं । ये स्वयं इस बात का बड़ा गर्व करते थे और लखनऊ को लक्ष्मणजी का बसाया हुआ समझ कर लक्ष्मणजी के ही विशेष भक्त थे । इस पुस्तक में भी लक्ष्मणजी की यह विनय है—

हे अनंत आनंद-धाम अंगद-उत्पादक ।
वीरव्रती बलवान विदित बध वारिदनादक ॥
हे सौमित्रि सुजान सदय सरनागत-पालक ।
हे उरमिला-अधार अवधपति-आयसु-चालक ॥
हे लषन लाल लखि ललकि कै, लायक लोचन लाड़िले ।
संदेह-पंक पद खसत मोहिं, नाथ भुजा गहि आड़िले ॥
बाजपेय-कुल जन्म, आदि को तव पुरवासी ।
अब लगि करम सँजोग भ्रमो बहु बिधि बसुधा सी ॥
शुभनिवाह की बाँह बहुत निज बल अजमायो ।
बिन रावरी सहाय नाथ सुख कबहुँ न पायो ॥
तव शरण सिधारो समुझि प्रभु लखन लाल अपनाइए ।
आपनो जानि आनँदनिधि अब न औध बिसराइए ॥

इसी प्रकार पुस्तक के आदि में चारों भाइयों की स्तुति है और सर्व प्रथम गणेशजी की निम्नलिखित छोटी सी स्तुति है—

सिद्धि के खंभ अधार अरंभ के दंभ दुरास गलानि को गाड़िले ।
सुंड उदंड सो दंत दुरंत दरेर दबाय तमोगुन ताड़िले ।
हे गणनाह उछाह की बाँह दै आपने आश्रित "औध" को आड़िले
देसबिदेस न लेस कलेस तुम्हारी कृपा सों महेस के लाड़िले ॥

तत्पश्चात् सरस्वतीजी की यह वंदना है—

छमियो अपराध दया करि भारती अंब सौ औध बितीत बताओ।
तव चेटक पेटक हेतक केतक नीचन बीचन नाच नचाओ।
हित हानि गलानि मृही न कही तेहि सोधक बोधक यो गुन गाओ।
सियराम रटो रसनाम सदा सुखधाम कि चंद्रललाम रिझाओ॥

वंदना करते ही करते आपने एक स्थल पर 'क' कार की झड़ी लगाकर कैसा कमाल कर दिया है—

काशीनाथ कृपाल कोशलाधीश कुशल कृत।
कच्छप कलकी कोल कुंभि कश्यप कुमार भृत।
कौशिक कुंतीतात केतु कलि कुधा कंद कुज।
कंबु कुणप केशव कृतांत कर कुलीर-ध्वज।
कमल कलिंदजा कालिका कीरति कुलि करुना कुलित।
कर जोरि अवध-किंकर कहै करहु कृपा कल्पांत नित॥

अब आपके मनहरण छंद के एक दो उदाहरण सुनिए। देखिए कैसे मधुर पद हैं—

निगम उधारे पीठि पर्व्यौ पधारे खल
मारे धारा धारे दँतवारे बलि दोन मैं।
दाम पैज पारे जो दितिज उर फारे छुद्र
छत्रिन सँहारे औरव धारे सरसोन मैं॥
शंभु प्राणप्यारे रघुवंश अवतारे जे
औध दुख टारे नेक कृपा की चितौन मैं।
इंदिरा अधारे विश्वास बिसतारे सो
'अनूप भूपवारे बने सोवै सूप-कोन में॥

इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी का बाल्य-वर्णन करते हुए आपने अनेक ललित छंद लिखे हैं। दो एक नमूने और देखिए—

मनि स्याम सिखंडक चंद्रक खंडक अंग प्रभा अतिसय अमला।
पग नूपुर मंडित खंडित बैननि पंडित प्रेमकला सकला॥
रसना कटि पानि रुची पहुँची कठुला नखकंठ जड़ाउ जला।
बलि "औध" उजागर नागर जे सुखसागर नागर रामलला॥

छाजै छबि छाटै छिन छाँह को अँगोटै,
महि लोटै रज मोटै भीन भँगा में भपटिगे ॥

❀ ❀ ❀ ❀

"औध" बाललीला दुरि देखै कवसीला तन
मन गील गीला पुन्य पूरे ह्वै प्रगटिगे ।
बतिया तूतरी दुधदतियाँ दिखाय हँसि,
धाय हुलसाय मध्य छतिया छपटिगे ॥
चटपटी खेल की, चलनि लटपटी, सुनि
बातें अटपटी श्रवनन सुधा घूटती ।
धूरि भरे प्यारे घुघुवारे गभुवारे बार,
भारे गहि रूसन पसारे जेब जूटती ॥
पंक पोछि अंक लै "अवध" चुचुकारि चूमि,
गावती बकावती खवाय खोलि खूटती ।
चित्रा चंद ते मुख बिचित्रा दुति देखि अन-
खनु अवरेखि कै सुमित्रा सुख लूटती ॥
अंबुजात पायन पै, नुपूर जरायन पै,
सैसव सुभायन पै, चायन पै, चाल पर ।
किंकिनी कलित सुर, कठुला कलित उर,
कानन हलित दुर, बाँहन बिसाल पर ॥
गूँगी बतियान दतियान की दमक "औध"
मेरी मति आनि बसी कौसिला के लाल पर ।
निरखि निहाल, दृग हँसनि रसाल गोल
गाल ओठ लाल औ दिठौनावाले भाल पर ॥

परंतु इन सभी छंदों में से निम्नलिखित पद अत्यंत मधुर है और सुनते सुनते छोटे छोटे छोकरों के खेलने का दृश्य सामने आ जाता है—

आई देखि ग्वैयाँ मैं नरेस अँगनैयाँ आजु
खेलैं चारों भैया रघुरैया सुख पाय पाय ॥

लोनी लरिकैया है झकैया मैं बलैया लेउँ,
बैयाँ बैयाँ चलत चिरैया धरै धाय धाय ॥
पाछे पाछे मैया जैसे लैया हेत गैया हाथ
मेवा औ मिठैया गहि देती मुख नाय नाय ।
वारे लोन रैया औध आनंद देवैया मोरे
निधनी के छैया दुलरावै गुन गाय गाय ॥

"औध" जी पंजाबी, संस्कृत, फारसी आदि में भी कविता करते थे। फ़ारसी की झलक कहीं कहीं इस पुस्तक में भी आ गई है। निम्नांकित 'गजरा' छंद में कैसी शानदार कविता है—

पहने बसंती बसन की, खुश वज़अ हँसते दसन की,
बरबस जसन मन बसन की, जिसकी सदा यह सान है ।
आभरन सरवर सदन के, रदकरन हदबद सदन के,
वह साँवले दर बदन के, चालाकन का निसान है ।
अकसर कै कमला जानकी, जिस पैर परती आन की,
हरदम खुशामद दान की, दरसन वही दरसान है ।
मकसद ये मेरा कहने का, यकदम हिये में रहने का,
इक़रार यह निरबहने का, रघुनंद खुद क़द्रदान है ॥

* * *

कर साद मेरी संद यह, महराज रामपसंद यह,
तैं मेरा बरखुरदार रह, यह सही अवसर सान है ।

और भी दूसरे छंदों में अनेक फ़ारसी के शब्द आए हैं—

ज्यादे कलाम से काम नहीं कुछ खाम नहीं इनसाफ़ इरादे ।
नाम के काज गरीबनेवाज सलामति साहिबि सीफति सादे ।
औध प्रकास सुपास मिलाय दिलाय की मौज जो दाता दिला दे ।
शेष के भैया, महेश अजीज, अजी अवधेश के साहबजादे ॥

प्रथम कला के अंत में अन्य प्रकार के ही छंद हैं। वामछंद में चार पंक्ति का एक पद्य है जिसमें 'चित्रगतागत' अलंकार की बड़ी ही बढ़िया छटा है—

सोवत है महामोहै भला न न लाभ है मोहा महै तव सो ।
सो वस लोभ वयो भर बाल लबार भयो व भलो सव सो ।
सो बकवाद न ठानत रोज जरो तन ठान दल कब सो ।
सोवन है तन राम कहै तौ तौ है कमरा नत है नवसो ॥

अंत में रामचंद्रादि चारों भाइयों का चौगान वर्णन करके पहली कला समाप्त हुई है । चौगान का यह वर्णन, यद्यपि थोड़ाही है, पर केशव के वर्णन से कुछ कम ललित नहीं है—

नीलमणि अंग में, बसन पीत रंग में,
सुबंधु सखा संग में उमंग चउगान की ।
खेल की झमेल, बगमेल ठेलपेल, हेल,
मेल की दलेल दबी प्रभा पंचबान की ।
देखतै बहार महाराज के कुमार औध,
आनँद अधार हँसबंस अंशुमान की ।
जमा जोग ध्यान की, छमा रमानिधान की,
महेसप्रीतिप्रान की, बिशेष विद्यमान की ।
संगति सखान की इखान की न मान की,
उठान की उमिटि केलि कौतुकनिधान की ।
पट्टे फहरान की, दुपट्टे जाफरान की,
गहनि धनुबान की, कहनि बंधु कान की ।
लाली मुख पान की नरेश के ललान की,
प्रभा मै उपमान की, अवध कुरबान की ।
कुंडल की, कान की, कमान भौंह तान की,
मिठान मुसकान की अजब एक आन की ।

वर्णन और रोचक कर देने के लिये छंद बीच में बदल भी दिया है—'किरीट' छंद ने कुछ और ही रंग लादिया है—

कंज करंजक गंज प्रभान कुरंग तुरंग मतंगज मोर के ।
भौंर मरोर चकोर झकोर न और इड़ौर के मंजु मरोर के ।
जोकहैं थोर सबै सिरमौर हैं, "औध" की ओर भरे कृपा कोर के ।

शील दराज बिराजत लाड़िले, लोचन कोसल-राजकिसोर के ॥

पहली कला यहीं समाप्त होती है। दूसरी कला में "सवारी-सिकार-वर्णन" है। इस कला भर में आद्योपांत केवल त्रिभंगी छंद है। चमक खूब ही ज़ोरदार है और भाव इतने ओजपूर्ण हैं कि पढ़ते समय यह जान पड़ता है मानों सामने फौज मार्च कर रही है। प्रातःकाल हो गया है, श्रीरामचंद्रजी जगाए जा रहे हैं—भाव तथा भाषा दोनों ही उपयुक्त हैं—

❀ ❀ ❀ ❀

जागो जगजीवन, सोभासीवन, जननी जीवन-धनवारे।
बंदी गुन गाये, अनुज सखा ये बोलन आये प्रियकारे॥
प्राची दिग लाली बिदित बहाली, कर करमाली झलकारे।
गृह दीपक ही के अंशु शशी के लागत फीके नभतारे॥
तारे तम भारे रजनि सिधारे, कहत पुकारे तम चुरये।
कंजन दुख मोचे कुमुद सकोचे, चक्र रुचि रोचे मन पुरये॥

❀ ❀ ❀ ❀

तदनंतर रामचंद्रादि बंधुओं की सुंदर शोभा का वर्णन है, जिसे पढ़कर गोस्वामी तुलसीदासजी की पंक्तियाँ स्मरण आ जाती हैं—

चिक्कन चिलकारे मृदु घुघुवारे शिररुह झारे सुकुमारे।
पटभूषन सारे, रूप सिहारे, मुकुर निहारे पगधारे॥
कंठीरव हारे ठवनि ठिहारे अजिर विहारे दुख टारे।
अनुजन मुदभारे संग सिधारे जाय जुहारे नृप द्वारे॥

❀ ❀ ❀ ❀

लीला अनुसारी, जन-सुखकारी नरतनधारी अवतारी।
शिक्षा श्रुतिसानै कृत परमानै दिय बहुदानै निधि सारी॥
भोजन करि छरसे मातन कर से, परसे प्रसे सुख दरसे।
अँचये पग ध्वाये बीरा खाये बाहेर आये हरबर से॥
रघुराज बिराजे अनुज सखा जे नौबति बाजे दरवाजे।
पोसाक समाजे कृत द्रुत काजे, किंकर राजे तर ताजे॥

त्रिभुवन सिरताजे सोभासाजे, स्मरपदभाजे लखि लाजे।
प्रियलोग समाजे ध्रुव उपवाजे, मृगया काजे अंदाजे॥

इतने में घोड़े साजे जाते हैं और "सिकार" की तैयारी होती है। "औध" जी अनेक राजाओं के दरबार में भी जाया करते थे। कपूरथला, बलरामपुर, गोंडा, काशमीर आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध रियासतों में यह जाया करते थे। इस पुस्तक में जो इन्होंने घोड़ों, दुशालों आदि के वर्णन दिए हैं उनसे इनके दरबारी जीवन और राजसी ठाट-बाट से घनिष्ठ परिचय का ठीक पता चलता है। ऐसा जान पड़ता है जैसे अश्वशास्त्र के ये पंडित ही थे। देखिए घोड़ों के कितने भेद गिनाए गए हैं;—

अंदाजे घोड़े जोड़े जोड़े, रै छिति छोड़े चहुँ देसी।
कशियानकड़ाड़े बागो जोड़े करमे कोड़े मुकेसी॥
मजबूत महीने गुलि कटकीने, जेबी जीने ज़रबख्ती।
जेवर जग जाहिर, जड़े जवाहिर मन से माहिर लै लख्ती॥
ताजी तिलँगानी अर्ब इरानी, तुरकिस्तानी मुलतानी।
हरिहाने हक्की, वंग बदक्की मगध' मदर्सी फिरँगानी॥
खुरथान खधारी, गौड़ गँधारी, कठियावारी गुजराती।
कश्मीर कोटिया, भुज्ज भोटिया वर बनोटिया जिलवाती॥
मौरंगी मच्छी रूमी कच्छी, बल्की अच्छी गति पाई।
मरहट्ट मरगड़ो, जंगलवाड़ो, पीनपहाड़ो दरियाई॥
पाँचाल बड़ैसा रूम मरैसा करवाटैसा पेशौरी।
अब कही न जाती जिनिस जमाती रुचिर रँगातीए औरी॥

यह तो हुआ उनका भौगोलिक परिचय। उनके भिन्न भिन्न रँग भी गिनाए गए हैं। पढ़ने से ऐसा मालूम होने लगता है जैसे घोड़ों के बाज़ार में ही खड़े हैं—

कुम्मैत, कपूरी, कुल्लहनूरी, अबर अँगूरी, खतग्रासी।
किसमिसी, अबलखी, लीला लक्खी, सब्ज़ सुरुक्खी, इल्मासी॥
सुरमई, सुरंगा, खंजन खिंगा, हरिन पिसंगा संजाफी।

संदली सुनहरे, कुलबुल बहरे, सेल्हीदारे, चपकाफी ॥
सुभ सिर गागर्रा, समुद्र नुकर्रा, कुही कवर्रा, फुलवाई ।
तेलिया तामड़ा, पँचकलानड़ा, गुली घाघड़ा गुल्दाई ॥
बीरता बदामी, नाफरमानी केहरी धानी, ताऊसी ।
सुरखाबी सीनी, चँपा चीनी, मुश्क नवीनी फानूसी ॥
मकसी औ हर्दै जर्दै जर्दै, मनुमहि मर्दै दर, पर्दै ।
कवि कहँ लौं बरनै, श्यामल करनै, आये शरनै रघुवर दै ॥

अभी और सुनिए; घोड़ों के साज शृंगार का वर्णन तो और भी ललित है। क्या कोई घुड़सवार ऐसा वर्णन दे सकेगा ?—

मखमल्ले ठट्टे गौहर जट्टे पूजीपट्टे उमदा हैं ।
मखतूली फव्ये, याल मुहव्ये, नव्ये गव्ये गजगा हैं ।
पुरपूट लगामैं, ललित ललामैं, बागै तामें रेसम की ॥
जेवर्दै जिनकी लरी किरन की, जनु दामिनि की चय चमकी ।
पनपेश बंदवै दुति दुचँदवै, बनत बंदवै मनमथ की ॥
जरबीले गंडे, गरदनि मंडे, प्रभा प्रचंडे बहु गथ की ।
रतनन की कोटी, चमकै चोटी, चपल कनोटी यवजह की ॥
जनु सुखमा खोरे, हेम हिंडोरे, बैठक जोरे नव गृह की ।

इतना ही नहीं—अब उनके ऊपर के जीनपोश चारजामे आदि के वर्णन दिए हैं—

जीनो पै पोसिम, कामति कोसिम मैन मनो सिखवै लीन्हे ।
बालक बहु रंगन तेज तुरंगन, उदित उदंगन थिर कीन्हे ॥
कोचिग कलदंडे, जरी जकंडे, डरत (?) अकंडे अजवाले ।
तसबीर तापदे, वर्क बाफदें, सिरी सपादे अति आले ।
तइ तूल तमामी, पूर पिलामी, दुरुख दुदामी, अंबेरवा ।
ताजे जंजेबी, अबलंदेजी, सरूफंदेजी, नौकिजवा ॥
कमख्वाब मुसज्जर, मक्खन मखमल, तास अतरतर बन्नाती ।
बूँदी हरियाई, काकुललाई, खातिर आई गुजराती ॥
बादले नमूने, चिहुली चूने नयनन सूने, अलवाने ।

पसमीने वारी जोजन कारी तिलस तयारी को जाने ॥
रेसमी रुमाली, सूती छाली, टसर उनाली अरजेते।
झालरैं नवीनैं, कताकरीनैं, सोभित सीनैं कर देते।

* * * *

पोसाक सजीले, छैल छबीले, गुनगरबीले, जरकीले।
मुकुटों की शोभा मो मन लोभा मनिगन गोभा मंदीले।
सिर सोहे समला अद्‌भुत अमला कोमल कमला के थलसे।
कोउ सुंदर कंटे, बाँधे फेंटे, जरी लपंटे झलमल से॥
काहू पै पगरी रंगी सगरी, आभा अगरी सुठि सोही।
एकन के चीरा अजब उजीरा, कलँगी हीरा हियमोही॥

इस प्रकार कुछ दूर तक राजकुमारों के श्रृंगार की शोभा देखने में आती है—

काहू सिर राजै ताजी ताजै दाम दराजै अति अच्छी।
टोपिन पै पट्टे, संफाजट्टे मुदिर यकट्टे गति गच्छी॥
बाँधे कोउ बत्ती, कर में कत्ती, सोसनपत्ती दस्ताने।
कोउ कसे दुपट्टे छोर उलट्टे झारे पट्टे मस्ताने॥
भाई चित चाहेब, मित्र मुसाहेब, पाय सुसाहेब रघुराजैं।
मन की अभिलाखैं, पूजैं लाखैं, जै जै भाखैं सुरराजैं।
महराजकुमारों पै मन वारों सब सरदारों के सद्के॥
जो यह वर पायो गुनगन गायो, अनत न जायो हिय हद के।

राजकुमारों का ही तो ठाट, अभी थोड़ा ही ख़तम होने का है। इसके बाद उनके वस्त्रों और विशेष कर दुशालों का वर्णन है। इनकी फिहरिस्त इतनी लंबी है कि जान पड़ता है "औध" जी दुशाले का ही व्यापार करते थे। सचमुच सच्चे कवि का तो कर्त्तव्य भी यही है। सुनिए—

यक यक से आले, बटे दुसाले सहित रुमाले मय नक्शे।
बहु किम्मतिवाले, नये निराले, दसरथलाले ने बख़्शे।

सादे ही शाल नहीं थे; उन पर नक़्शे भी खिंचे हुए थे। उस समय के कलाकौशल का कैसा परिचय है! और आगे चलिए—

पुरमतन की नाले, कन्नीवाले, निकट निकाले तखते के।
सिर दौंउन टूटें, कुंजो पूटे, चखमल छूटे, लखते के।
सब रहित रिकाबे, किसिम किताबे, हद्द हिसाबे मुलायमी।
सित सुरुख सुनहरे, काही गहरे, रँग के लहरे, जेबजमी।
सँदली सुहाबी, ऊदे आबी, नील गुलाबी, असमानी।
सरबती सुरमई, जर्द जौज़ई अवर अँगरई धुरधानी।
शूहे शफ़तालू, गुले अनालू सौंफी सालू फाखतई।
किरमिजी कासनी, सुरंग सोसनी, बनी बैंजनी, फालसई।
मूँगिया मजीठी, माही रीठी, प्याजी ईठी, अब्बासी।
नाफरोमान के अर्गवान के, जाफरान के गुलबाँसी॥
शिंगरफी कपूरी, तरव अँगूरी, जिगर जहूरी अबीरिया।
किसमिसी कोकई बर्फ बसरई चारु चंपई चुनोटिया॥
कोचकी कंजई, सबुज तोतई फीलसई जिंगाली।
नारँगी बदामी, मिसी निजामी, और बआमी गुल्लाली॥

पढ़नेवाले की आँख तो रंगों की भरमार से थक जाती है परंतु कवि की फिहरिस्त तो बड़ी लंबी है। आगे चलकर तो ऐसे रँगों का वर्णन है कि शायद रंगरेजों को भी उनके नाम का पता न हो। देखिए न—

असरफी पिस्तई सुफी सुरतई, तूस तिल्लई गुलबूटे।
बंदली ताफ़ते, महरमात से, फिरोजात से टक टूटे॥
हाशिये हवेलैं, आड़ो बेलैं, बाल झमेलैं कलावतू।
औरो रँग रोसन, तरख तवोसन, बनै न मोसन बताव तू५।

तदनंतर राजकुमारों को घोड़े पर चढ़ाकर शिकार के लिये भेज देते हैं। रास्ते में उन लोगों का थोड़ा सा वर्णन देकर फिर घोड़ों की अनगिनत चालों के कितने ही नमूने दिये गये हैं। परंतु रँग गिनाने देशों तथा दुशालों के नाम लेने में कवि को रसात्मक बातें भूल नहीं गई हैं।

कानों में मोती, मानो गोती, मसलत होती माह मिले।
घुघुरारी जुल्फें, काली गुल्फें, आली उल्फें खान खिले।
मुख पान चबाते, मृदु मुसकाते, छन दुति राते दाँतों की।
कुरविंदु सिंहासन, ससि मैं आसन, बिबुध सुभासन बातों की।
दुति गोश पेच की, केश मेंचकी, वेश लेंच की कामकला।
रसराज सैल में, सुरति गैल में, घनघमेल में चिर चपला।
दृग बाँकी चितवन, जी की जितवन हिय की हितवन जन जोहैं।
मनिगन की मालैं उर पर हालैं, फिर कन मालैं चित पोहैं।

अब घोड़ों का मार्च हो रहा है; ज़रा चालों का नमूना देखिए। कैसी ओजपूर्ण भाषा में सारे दृश्य का वर्णन किया गया है—

हैहय हुवहारे रामदुलारे, रानइशारे कर पाये।
झझ्झकरें झझ्झक्कें, फफकि फरक्कें लक्कें तक्कें सिर नाये।
खुरधौरन खंदैं जमैं जकंदैं, फरकैं फंदैं सुहकाये।
चमकायें कायें धायें धायें, उड़न उड़ायें मन भायें।

इसके बाद चालों के नाम दिये गये हैं। क्या कोई घुड़सवार इतनी चालें याद रख सकेगा? हरगिज़ नहीं,—

सबकी गति गच्छी सारज पच्छी गर्पी मच्छी, सुरजानी॥
हरवैं दुगामैं करवरगामैं, मह मह गामैं, दुलकानी।
रौहाली अविश्रा उगैं मुहविया, करकरा सविश्रा हिरन हवा।
जरदगवी गोला हंस हिंडोला, सार ममोला लहरलवा।
परवान पतंगी चकी चंगी मल्लुग भृंगी करर कुही।
सागोसी चीता नाहर जीता, वहरी होता तेज तही।
फहराने फोली मीन मजीली, सेन सजीली, लहि लीला॥
आलात कपोती, तीतर तोती, सरित सरोती सम सीला।
ऐसी बहु चालैं गिनैं कहाँलैं, अंग न हालैं असवारे।
लघुलंत लगामैं घन चपला मैं, काह कलामैं चुचकारे।
छल्लै वै छोड़ै सम कंमोड़ै, बदि बदि होड़ै हितकारे।
रघुनाथ चितै कै आनंद दैकै, करुना कै कै करधारे।

इस प्रकार राजकुमार लोग शिकार करने पहुँच जाते हैं और

"चमकाय बछेड़े करत पछेड़े, मृगया खेड़े चित्त गड़ा ।"

तुलसीदास की भाँति "औधजी" की भी रामचंद्र में अनन्य भक्ति जान पड़ती है। जोजो पशु मारे जाते हैं भगवान् रामचंद्र का बाण-स्पर्शही उन्हें मुक्ति-दान दे देता है—

जे शुचि मृग मारे, तिन्हैं उधारे संग सिधारे जय जय कै

धीरे धीरे संध्या समय निकट आता है और कुमार लोग घर की ओर प्रस्थान करते हैं। संध्या का भी वर्णन थोड़े में बहुत अच्छा किया गया है। शिकार की दौड़ धूप तथा घोड़ों की चालों की खटपट में कवि-हृदय का कुछ भी ह्रास नहीं हुआ है। देखिये—

रवि अस्ताचल गे.........

पश्चिम अरुनारी अंबरधारी मानौ नारी गंधरबी ।
तम-तोम सुकेशी मुख शशि वेशी हिय हरखेशी गुरुगरबी ।
तारागन भूखन खगरव रूखन, अमल अदूखन रागन कै ।
रघुराज अहेरी छबि मैं हेरी, बिरदै टेरी गानन कै ।

✻ ✻ ✻

घर पहुँचने पर चारों भाइयों की आरती उतारी जाती है:—

आरती उतारी तनमन वारी राम विहारी बलिहारी ।
मनि रतनन थारी विविध बखारी यथा जोन्हारी फिरि वारी ।

✻ ✻ ✻

राजकुमार लोग तो शिकार से लौटकर थक गये हैं, परंतु कवि उपमाओं के लिये अभी तक शिकार कर रहा है। उसे भला थकावट कहाँ—कपड़ उतारने पर उनकी शोभा का वर्णन किया जा रहा है :—

पोसाक उतरते इमि लखि परते झाई टरते मुकुर सफा ।
पद कंज अंगोछे अंचल पोंछे जनु भरि कोछे सुकृत नफा ।

✻ ✻ ✻

रघुबर मुसुकाने लखन बखाने भरथ सोहाने बचन महा ।
आखेट कथा सब जौन जथा जब भरतानुज सब झारि कहा ।

बस कुछ पंक्तियों तक चलकर ग्रंथ यहीं समाप्त होता है। अंत में फिर भी विनय है और श्री रामचंद्र के अनुग्रह की वांछना की गई है:—

हे करुणासागर रूप उजागर रघुवर नागर कृपा करो।

* * *

पावों बकसीसै धरि निज सीसै, जग जगदीसैं गान करौं।

* * *

कादरता घेरै रुचि फिरि फेरै दरिद दरेरै हेरि हिए।
मनगन बहुतेरे, लघु मति मेरे प्रभु उर प्रेरे ठीक दिये।
जेहि हाथैं परावर सुजस महावर सो करुनाकर कृपा करै।
बुधि पावन हेतू रघुकुलकेतू "औध" कहै तू काहि डरै।

अंतिम पंक्तियों में एकबार फिर से सारी पुस्तक का संक्षिप्त सार देदिया गया है और सारी कथा समाप्त की गई है:—

यक दिन की लीला बंधु सुमीला रँग रँगीला या विधि सों।
नित नेह नवध में गैल अवध में प्रेम प्रबध में फल सिधि सो।
चकडोरी चंगी लट्टू नचंगी फंद फिरंगी गुलगोली।
लखि असुरन पीड़ा, मनसिज ब्रीड़ा, शैशव क्रीड़ा बहुबोली।
को कहै कहाँलै चेष्टा चालै, गुनवरुनालै "अवध" धनी।
गो द्विजसुर स्वारथ प्रभु परमारथ जगत यथारथ प्रेमपनी।

यह तो हुई "अवधसिकार" की संक्षिप्त कथा। अब अयोध्याप्रसादजी के जीवन का कुछ वृत्तांत जानना चाहिये। इनका घर रायबरेली से कोई २० मील दूर महराजगंज तहसील के सातनपुरवा नामक ग्राम में था। बाल्यावस्था में कविता करने के विचार से ये पं० गदाधर द्विवेदी के यहाँ गये। इनका घर सलेथू तहसील के हसनपुर गाँव में था। पहुँचते ही वाजपेयीजी द्विवेदीजी के शौच से आये हुए लोटे को मांजने लगे। उन्हें वाजपेयी जानकर गदाधरजी ने कहा, 'अरे मुझे नर्क में क्यों ले जारहा है?" परंतु लड़के को तो विद्या-

नुराग था, कुलीनता का कहाँ ख्याल था । बस वहीं रह कर इन्होंने काव्य सीखा। कुछ दिनों तक ये सलेथू के जवाहिरमिश्र जी के यहाँ भी पिँगलादि सीखते रहे। ये दोनों गुरु भिन्न भिन्न प्रकृति के थे। गदाधर-जी सीधे सादे भक्त पुरुष थे, जवाहिरजी बड़ेही गर्वीले और शानदार आदमी थे। दिनभर में ये केवल एकबार घर से बाहर निकलते थे, सो भी बड़े अद्भुत रूप में। पीली पगड़ी बाँधते और लंबा चोगा पहनते थे और सदा धनुषबाण साथ रखते थे। जीवन भर में इन्होंने किसी धनी राजा महाराजा की प्रशंसा में कोई कविता नहीं लिखी । जवाहिरजी बड़े शाहखर्च भी थे । एकबार खूब रुपये उड़ाकर जब कष्ट में पड़े तो। उन्होंने यह भजन बनाकर गाया :—

जय जय परसुधर अवतार ।

अवलोकि जासु प्रतापरवि, जरि जात अघ अँधियार ।

कटि लसत तूण सुबेतला कर धनुषबाण कुठार ।

हरहु आन भ्रम भार ।

इसे लिखकर किसी पीपल के पेड़ पर चढ़ाया तो थोड़ीही देरमें उनके पुत्र "सोनीराम" रुपये लेकर आ पहुँचे। ये "सोनीराम"जी, जिनका पूरा नाम सोमदत्तमिश्र था, बंबई फौज (Light Cavalry II) में नौकर थे । खैरख्वाही के लिये इन्हें सरकार की ओर से गदर के बाद एक सोने का तमगा भी मिला है । मैंने स्वयं इसे देखा है, अबतक इनके वंशज मित्रवर रामनारायणजी के पास यह वर्तमान है । इस पर (Order of British India) खुदा हुआ है । "सोनीराम"जी स्वयं भी कवि थे और कुछ अंग्रेजी भी जानते थे। इनका एक "भजन संग्रह" शायद नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित भी हुआ है ।

यों तो जवाहिरजी वैष्णव थे, पर थे बालरूप के उपासक। जब ये मरने लगे तो घरवालों ने इनके कान में जोर जोर से "राम राम" कहना आरंभ किया । इससे इन्हें बड़ा कष्ट हुआ तो इन्होंने एक पट्टी मँगा कर निम्नलिखित भावपूर्ण गीत लिख दिया :—

साँझ भई तब चेती न तू अधिरातिहु लौं नहि सुद्धि लई ।
अब पाछे परी पछितातिहु लौ, तम चूरन की भई बानी नई ॥
समुझे कहा होत 'जवाहिरजू' करि चूक सबै फिर याद भई ।
अब दीपक बारि कहा करिये सजनी रजनी सब बीति गई ॥

यही इनकी अंतिम रचना थी । यह पढ़कर लोग चुप हो गये और जवाहिरजी ने शांति-पूर्वक शरीर-त्याग किया । एक बार किसी राजा ने एक कविता लिखकर शुद्ध करने के लिये इन्हें भेज दी। उसे देखकर ये इतने अप्रसन्न हुए कि उसे एक सिरे से दूसरे सिरे तक काटकर लौटा दी और चिट्ठी में लिख दिया कि यदि एक दो अशुद्धियाँ हों तो ठीक भी करें सब की सब, तो शुद्ध हो नहीं सकती । हाँ कहिए तो एक नई कविता लिखकर भेज दूँ । इसी प्रकार किसी धनी जन के प्रति इन्होंने कहा था—

जो पै न लीन्हों गँवार कहा घटि जाति "जवाहिर" की कहुँ कीमति ?

जवाहिरजी संस्कृत के भी कवि थे । इनका कोई ग्रंथ अभी तक हमारे देखने में नहीं आया है । निम्नलिखित कवित्त भी उनका है जो भगवान् के प्रति बड़ी भक्ति के साथ लिखा गया है—

हरिहौ नियाय में निहरिहौ जो आप ओर,
और पापी तारि ना जवाहिरै उधरिहौ ।
धरिहौ धरा में नाथ दीनबंधु नाम काको,
साँकरे में पापिन के काज ना सपरिहौ ।
परिहौ प्रपंच बीच तब ना विचारयो नाथ,
पापिन उधारिकै उधार कैसे करिहौ ?
करिहौ विरदलाज आपनी ही महाराज,
मेरी पीर हरिहौ तो जानिहौं कि हरि हौ !

वाह वाह ! कैसा छकाया है ! भगवान की प्रभुता को ही फेर में डाल दिया है ।

इसी प्रकार "औध" जी के दूसरे गुरु गदाधरजी भी भक्त थे। देखिये विदुरजी कृष्ण से कैसी भावमयी भाषा में कह रहे हैं। सुनकर चित्त द्रवीभूत हो जाता है—

ना यह नंद को गेह "गदाधर" दूध दही नित ही अनुरागे।
ना दुर्योधन-धाम जहाँ पकवान रहे बहु कंदन पागे।
भागन सो प्रिय पाहुन पाय उपाय थक्यो न मिल्यो कछु माँगे।
जो हतो दीन के दीनदयाल, सो सग अलोन धरयौ प्रभु आगे॥

बेशक, ऐसी अपील न होती तो श्रीकृष्ण महराज "कैसे साग बिदुर घर खायो"?

गोपियों का विरह वर्णन करते समय भी आपने एक ऐसीही भावपूर्ण पंक्ति लिखी है। शृंगार का शृंगार और भाव का भाव। कैसा गंभीर विचार है—

अब कासों "गदाधर" जोग ठनै मन तो मनमोहन-गोहन गो?

इसी को कहते हैं "आम के आम और गुठली के दाम"। कैसी भक्ति और कैसा अनिर्वचनीय भाव है।

इसी तरह का "औध" जी का भी एक पद है। एक गोपी कहती है:—

क्रूर अक्रूर के साथ गये, मथुरा के बने नहिं फूले समाते।
पीछली "औध" सबै बिसराये, जिआये हमारेही दूध औ भाते।
आप प्रमानिक कूबरी कानिक पाय बनै हमैं जोग सिखाते॥
मौन गहो जनि ऊधो कहो अब नाना के आगे ननौर की बातें॥

गदाधरजी का लिखा हुआ एक ग्रंथ "भ्रमर गीत" नाम का मिलता है। यदि हो सका तो कभी फिर पाठकों को उसके नमूने दिखाये जायँगे।

जवाहिरजी के पौत्र पं० शीतलादीनजी मिश्र अब भी जीवित हैं और "द्विजचंद" के नाम से कविता करते हैं। ये पहले असिस्टेंट सर्जन थे और अब पेन्शन पाते हैं। आप कविता के ही नहीं, अनेक

बाजाओं के ज्ञाता है और ताल में बड़े प्रवीण हैं। अंग्रेजी तो जानते ही हैं, बड़े सिद्धहस्त डाक्टर भी हैं। आपकी एक कविता सुनिये। ऊधोजी को फटकार है:—

ऊधोजी सूधो गहो वह मारग ज्ञान की तेरी जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्याँ यक श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है॥
यै ब्रजबाला सबै बिगरीं * * * *
एक जो होय तो ज्ञान सिखाइए, कूपहि मों यहाँ भाँग परी है।

द्विजचंदजी की एक और छोटी सी कविता है। उपमा की छटा खूबही जड़सी दी गई है:—

मनबाल गुड़ी बहु रंगन जोरी।
तापै माझ दियौ द्विजचंद सु लै अपने गुन की रसडोरी।
फेरिकै नैन परैतन पै, बदनामी की तापै लगाई पुछौरी॥
प्रीति को चंग उमंग चढ़ाय कै सो हरि हाथ बढ़ाय कै तोरी।

"द्विजचंद" जी के सुपुत्र पंडित रामप्रतापजी मिश्र भी "प्रताप" उपनाम से कविता करते हैं। आपने दो एक पुस्तकें भी लिखी हैं। "बर्षाबहार" और "रघुवर-बाल-चरित" दो तो प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी भी अधिक कविताएँ भक्तिपूर्ण होती हैं। कमसे कम एक नमूना तो सुनिये—

दास की ओर उठाय कै कोर कृपा करि जानकीनाथ तकीजे।
शोक के सिंधु में बूड़त हौं गहि बाँह उबारि प्रभू मोहि लीजै॥
होय मनोरथ सिद्ध सदा दसरत्थ के लाल यही वर दीजै।
सेवक आपनो जानि "प्रताप" को नाथ दया करि दुःख हरीजै॥

और भी एक नमूना सुनाकर फिर इस कविजनों का वृत्तांत समाप्त किया जाता है। यह भी "प्रताप" जी का ही कवित्त है:—

रामहि राम रटो नितही, बिन राम के नाम न पूरि परैगो।
इक राम के नाम की नाव बिना, भवसागर धार को पार करैगो?
राम सिया भजु राम सिया, बस नाम यही सब दुःख हरैगो।
नित नेम निरंतर ध्यान किये, सब दुःख सरीरै दूरि टरैगो॥

रायबरेली प्रांत के एक और जीवित कवि श्रीयुत पं० शिवरतन शुक्ल हैं। "रामावतार" नाम की कविता का एक छोटा ग्रंथ भी आपने लिखा है। आप बछराना के कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। खेद है कि आपकी कविता के कुछ नमूने न मिल सके। किसी दिन फिर इन कविवरों के नमूने अथवा उनके ग्रंथ विशेष को लेकर हम पाठकों के सम्मुख उपस्थित होंगे। *

---

* इस लेख के लिखने में मित्रवर पं० रामनारायणजी मिश्र, बी० एस-सी०, से बड़ी सहायता मिली है। एतदर्थ उन्हें अनेक धन्यवाद हैं।

—लेखक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा का कार्य्यविवरण।

साधारण सभा

शनिवार २७ श्रावण १९७९ (१२ अगस्त १९२२) संध्या के ६ बजे

स्थान-सभाभवन

उपस्थित

पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०-सभापति, बा० श्यामसुंदर दास बी० ए०, बाबू व्रज रत्न दास, पंडित रामचंद्र शुक्ल, पंडित प्राण नाथ विद्यालंकार, बाबू रामचंद्र वर्म्मा, बाबू गोपाल दास।

(१) पंडित रामनारायण मिश्र जी सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (३१ आषाढ़ १९७९) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबंध समिति का १० आषाढ़ १९७९ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

(४) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुई।

बाबू राम चंद्र वर्म्मा, काशी-वर्तमान एशिया, सूर्यग्रहण

बाबू श्याम सुंदर दास जी बी० ए०, काशी-आलमकोलि

बाबू लक्ष्मी नारायण सिंह सुंदर पुर, पो० शिवहर, जि० मुजफ्फरपुर

कपास की खेती

पंडित पाटेश्वरी प्रसाद त्रिपाठी, जमुनी, पो० शोहरतगंज, जि० बस्ती

कुसुम

पंडित बांके बिहारी, स्टेट इंजीनियर, नागौद-सदाचार शिक्षा ५ मातयाया

बाबू मुन्नीलाल, कतुआ पुरा काशी-चंद्रकांता संतति भाग १३, १४ तथा १७ से २३

स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूट, वाशिंगटन

A New Sauropod Dinosaur from the Ojo Alamo formation of New Mexico.

The melikeron—an approximately black-body pyranometer.

Opinions rendered by the international commission on zological nomenclature.

सुपरिंटेंडेंट, गवर्न्मेंट प्रिंटिंग, बिहार एंड उड़ीसा

Annual progress report of the Archeological Survey of India, Central circle for 1920-21

Annual progress report of the Superintendent, Archeological Survey, Hindu and Budhist monuments, Northern circle for the year ending 31st March 1921

म्युनिसिपल बोर्ड बनारस,

Annual administration report of the Benares Municipality for the year 1921-22

Indian Antiquary for July 1922. Index to Indian Antiquary. Fifty years of the Indian Antiquary.

क्रय की गई—संक्षिप्त सूर सागर, मौलाना हाली और उनका काव्य, प्राण पुंज, पूर्व भारत और इंगलैंड का इतिहास भाग

(५) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबंध समिति।

रविवार १४ श्रावण १९७९ (३० जुलाई १९२२) संध्या के ६ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित।

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए०—सभापति, बाबू गौरी शंकर प्रसाद बी० ए० एल० एल० बी०, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०, बाबू कवींद्र नारायण सिंह, पंडित प्राण नाथ विद्यालंकार, बाबू ब्रज रत्न दास।

सम्मति भेजनेवाले

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, ठाकुर शिवकुमार सिंह, बाबू पूर्णचंद्र नाहर एम० ए० बी० एल०, पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र बी० ए०, राव बहादुर बाबू हीरालाल, पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०।

(१) गत अधिवेशन (१० आषाढ़ १९७९) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) निश्चय हुआ कि संयुक्त प्रांत में हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज के लिये केवल एक ही निरीक्षक नियत किया जाय और तीन वर्षों के लिये बाबू श्याम सुंदर दास जी निरीक्षण का भार अपने ऊपर लें। बाबू श्याम सुंदर दास जी ने इसे इस शर्त पर स्वीकार किया कि पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी उन्हें इस कार्य में पूर्ण रीति से सहायता दें और गुलेरी जी ने भी यह शर्त स्वीकार की।

(३) तुलसी स्मारक सभा, कर्वी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें यह प्रस्ताव था कि "श्री तुलसी स्मारक सभा, कर्वी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से मिलकर बारहो ग्रंथ को दोनों सभाओं की तरफ से छपवावे और यह सभा काशी नागरी प्रचारिणी सभा से कुल खर्च छपाई का ½ हिस्सा खर्च बरदाश्त करे और देवे और जिस कदर खर्च यह सभा देगी उसी हिसाब से नफा व नुकसान में भी शामिल होगी"।

निश्चय हुआ कि तुलसी स्मारक सभा, कर्वी को इसके लिये धन्यवाद दिया जाय और लिखा जाय कि अब तक सभा ने साझे का कोई काम नहीं किया है और न ऐसा करना उचित समझती है। अतः सभा को दुःख है कि वह इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकती। किंतु यदि तुलसी स्मारक सभा चाहे तो तुलसी ग्रंथावली के तीनों भागों की पांच पांच सौ प्रतियां तक लागत के मूल्य में उसे दी जा सकेंगी यदि वे इन पुस्तकों को उसी मूल्य पर बेचना स्वीकार करें जिसे यह सभा नियत कर दे और इनकी बिक्री से जो लाभ हो उसे तुलसी स्मारक के कार्य में व्यय करें। इन प्रतियों का ½ मूल्य सभा को अगस्त मास के अंत तक मिल जाना चाहिए।

यह भी निश्चय हुआ कि इस ग्रंथावली के तीनों भागों का मूल्य ६) रु० रक्खा जाय पर जो सज्जन ३० सितंबर १९२२ तक ग्राहक श्रेणी में अपना नाम लिखवालें और ३१ अक्तूबर १९२२ तक मूल्य भेज दें उन्हें ४॥) रु० में तीनों भाग दिए जांय। डाक व्यय दोनों अवस्था में अलग लगेगा जो १) रु० के लगभग होगा और इसे भी पुस्तकों के मूल्य के साथ भेजना चाहिए। ४॥) रु० के मूल्य पर कोई कमीशन या और किसी प्रकार की रिआयत नहीं की जायगी और ६) रु० मूल्य पर ५ सेट या इससे अधिक लेने पर पुस्तक विक्रेताओं को १५) रु० सैकड़े कमीशन दिया जायगा।

(४) मंत्री ने सूचना दी कि श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर अलवर ने तुलसी ग्रंथावली के प्रकाशनार्थ सभा को ५०००) रु० की सहायता देना स्वीकार किया है।

निश्चय हुआ कि इसके लिये श्रीमान् को सभा का हार्दिक धन्यवाद दिया जाय और उनसे प्रार्थना की जाय कि वे कृपा पूर्वक इस ग्रंथावली को अपने नाम समर्पण स्वीकार करें।

(५) निश्चय हुआ कि जो सज्जन ५०) रु० या इससे अधिक धन से तुलसी ग्रंथावली के प्रकाशन में सभा की सहायता करें उनके नाम इस ग्रंथावली के तीसरे भाग के अंत में प्रकाशित किए जांय।

(६) निश्चय हुआ कि अभी तक ग्रंथावली की ३००० प्रतियां छपवाई जांय पर सितंबर तक यदि ग्राहकों की संख्या अधिक हो जाय तो उसी के अनुसार अधिक प्रतियों के छपवाने का प्रबंध किया जांय।

(७) दो चित्रकारों के बनाए हुए गो० तुलसी दास जी के चित्र उपस्थित किए गए।

निश्चय हुआ कि जो फोटो चित्र आइल कलर में रंगे गए हैं उन्हीं के अनुसार तीन रंग वाले चित्र छपवाए जांय। छोटा चित्र ग्रन्थावली में दिया जाय और बड़ा ८" × १०" के आकार में छपवाया जाय। इन दोनों के ब्लाक बनवा लिए जांय और बड़े चित्र का मूल्य ।) रक्खा जाय। अधिक प्रतियां एक साथ खरीदने वालों से २०) सैकड़े के हिसाब से मूल्य लिया जाय।

(८) पंडित रामचंद्र दुबे का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि गोस्वामी तुलसी दास तथा उनके ग्रंथों पर जो लेख, आलोचनाएं समालोचनाएं समय समय पर सरस्वती, प्रभा, गृहलक्ष्मी, हिंदुस्तान रिव्यू, जमाना, श्रीवेंकटेश्वर आदि पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं उन सब का एक संग्रह भी सभा द्वारा प्रकाशित किया जाय।

निश्चय हुआ कि सम्पादक समिति को लिखा जाय कि इनमें जिन लेखों को वह उचित समझे तीसरे भाग में प्रकाशित करे।

(९) राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने मुंशी देवी प्रसाद द्वारा रचित पुस्तकों का दानपत्र ठीक करके भेजा था।

निश्चय हुआ कि यह दानपत्र बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी के पास सम्मति के लिये भेजा जाय।

(१०) बीस दिन की छुट्टी के लिये बाबू देवनंदन सिंह क्लार्क का प्रार्थनापत्र मंत्री की इस सम्मति के सहित उपस्थित किया गया कि इन्हें दो सप्ताह की छुट्टी बिना वेतन के दी जाय।

निश्चय हुआ कि मंत्री जी की सम्मति के अनुसार दो सप्ताह की छुट्टी स्वीकार की जाय।

(११) मंत्री ने सूचना दी की बनारस म्युनिसिपल बोर्ड से इमारत बनवाने के लिये नवीन नकशों को स्वीकृति आगई है। कलकत्ते के सेठ घनश्याम दास बिडला सभाभवन में पधारे थे और उन्होंने इस कार्य के लिये सहायता देना स्वीकार किया है। सेठ खेमराज जी के पुत्र सेठ रंग नाथ जी भी काशी में आए थे और उन्होंने बंबई जाकर सहायता करने के संबंध में निश्चय करने का वचन दिया है।

निश्चय हुआ कि यदि आवश्यकता हो तो बाबू बालमुकुंद वर्मा से बम्बई जाने के लिये प्रार्थना की जाय।

(१२) हिंदी पुस्तकों की खोज संबंधी प्रकाशित समस्त रिपोर्टों में जिन ग्रंथों और ग्रंथकारों के नाम आए हैं उनकी एक सूची जो बाबू श्यामसुंदर दास जी के द्वारा तयार करवाई गई थी, उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि नागरी प्रचारिणी पत्रिका के आकार में इसकी ५०० प्रतियां प्रकाशित की जांय और इसके अंत में डाक्टर ग्रियर्सन के ग्रंथ में हिंदी के जिन ग्रंथों और कवियों आदि का उल्लेख है उनकी सूची भी परिशिष्ट की भांति दी जाय।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा

शनिवार ३१ भाद्रपद १९७९ (१६ सितंबर १९२२) संध्या के ५½ बजे

स्थान-सभाभवन

उपस्थित

पंडित रामचंद्र नायक कालिया-सभापति, बाबू गौरी शंकर प्रसाद जी बी० ए० एल० एल० बी०, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०, ठाकुर शिवकुमार-सिंह, पंडित राम चंद्र शुक्ल, पंडित केशव प्रसाद मिश्र, बाबू ब्रजरत्न दास बाबू राम चंद्र वर्म्मा, बाबू कवीन्द्र नारायण सिंह, बाबू गोपाल दास।

(१) बाबू श्याम सुंदर दास के प्रस्ताव तथा बाबू गौरीशंकर प्रसाद के अनुमोदन पर पंडित रामचंद्र नायक कालिया सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (२७ श्रावण १९७९) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के आवेदनपत्र उपस्थित किए गए।

१- महता नवल सिंह, हाकिम, छोटा सादरी, वाया नीमच ३)

२- राणावत महेन्द्र सिंह जी, काकरवा, पो० सनवार, मेवाड़ ५)

३- श्री युत मदन सिंह शिशोदिया, प्रतापगढ़ वाले, गवर्मेंट कालेज अजमेर ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय।

(४) बाबू राम प्रसाद अग्रवाल, कासगंज, एटा का त्यागपत्र उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(५) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं :—

व्यवस्थापक महोदय, ज्ञान मंडल कार्यालय, काशी-सारनाथ का इतिहास

बाबू भगवानदास केला, संपादक, प्रेम, वृन्दावन-भारतीय शासन

श्रीयुत रामदास जी दधवाड़िया चारण, कोट-मातु पितु महिमा पच्चीसी

पंडित मोहन लाल महतो, गया-नरक में स्वर्ग

स्वामी केनचिद्भिक्षु गौरीशंकर, ग्राम पुट्ठी देवी मनभरी, पो० अमाल पुर, जि० हिसार-सर्वत्र सिद्धांत पदार्थ लक्षण संग्रह

बाबू नारायण प्रसाद बेताब, चाहरहट, दिल्ली-

पद्य परीक्षा, हिंदी सुभाषित

पंडितनवरत्न गिरिधर शर्मा, झालरापाटन-सरस्वती चंद्र उपन्यास, राई से पर्वत

हिंदी राष्ट्रीय ग्रंथमाला कार्यालय, अजमेर

अहमदाबाद कांग्रेस का संपूर्ण संग्रह, रंगीला चर्खा, आदर्श वीरांगना, पंजाब का भीषण नरहत्या कांड

क्रय की गईं—

रामचरित, कृष्णचरित, कर्मक्षेत्र, सुंदरीडाकू, टापूकीरानी, गांधीगीता, हरिश्चंद्रशर्मा, सती बेहुला, चिता, ओणित तर्पण, गोर मोहन खंड १-२, पद्म पुष्प, मुसलिम महिला, षड्यंत्र, अमीर अली ठग, आनन्द मठ, कादम्बरी, देश भक्त मेजनी के लेख, पद्मावहरण और दलीप सिंह, रूस का षड्यंत्र, भारत और इंगलैंड, सिद्धार्थ कुमार, श्री गौरांग जीवनी, राम की उपासना, ध्रुव, महाकवि नजीर और उनका काव्य, भक्त चंद्र हास, गोलमाल, शिक्षा प्रणाली, गृहधर्म, विधवा, महाकवि अकबर और उनका उर्दू काव्य, सच्ची विभूति, किसानों का अत्याचार, किसानों का अधिकार, देश दीपक, राष्ट्रीय मंत्र, तुलनात्मक धर्म विचार, आज कल की श्रीमती, वर्तमान विद्यार्थी, रहीम, महात्मा अरविंद घोष, स्वराज्य सोपान, कोष की कथा, पद्य कुसुमांजलि, भारत विजय, राजस्थान और देशी राज्य दर्शन, अद्वैतामृत, अद्वैत संग्रह, वीर महिलाओं का संदेश, जातीयता, खरा सोना, भारत प्रेमी, लाला लाजपतराय, व्याकरण चंद्रोदय।

बनारस की म्युनिसिपेलिटी

The Sanitary Survey of the wards of Benares Municipality 1920

संयुक्त प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर

Indian Images Vol. I by B. C. Bhattacharya

पंडित हीरानन्द शास्त्री, आर्केआलाजिकल सुपरेंटेंडेंट, कोटगिरि

Annual Progress Report of the Archeoogical Survey of India, Central circle for 1920-21

बरमा की गवर्नमेंट

Report of the Superintendent, Archeological Survey Burma for the year ending 31st March 1922

बाबू गोविंद दास जी, दुर्गा कुंड, काशी

एशियाटिक सोसायटी के जर्नल के फुटकर नम्बर

" " मेमायर्स के फुटकर नम्बर

Indian Antiquary for August and September 1922

(६) मंत्री ने पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी की मृत्यु की सूचना दी और कहा कि रविवार १ आश्विन १९७९ को शोक प्रकट करने के लिये सभा का विशेष अधिवेशन किया गया है।

निश्चय हुआ कि निम्नलिखित प्रस्ताव विशेष अधिवेशन में उपस्थित किए जांय—

१–इस सभा को अत्यंत शोक है कि इसके २० वर्ष के पुराने सभासद उपसभापति, बोर्ड आफ ट्रस्टीज़ के सदस्य, नागरी प्रचारिणी पत्रिका और सूर्य कुमारी पुस्तक माला के सम्पादक, सभा के परम सहायक तथा हितैषी, हिंदी और संस्कृत के असाधारण विद्वान और पुरातत्त्ववेत्ता, स्वनामधन्य पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी का गत मंगलवार १२ सितंबर को प्रातः काल असमय और अकस्मात् काशीवास हो गया जिसके कारण विद्वानों का एक रत्न खो गया और इस सभा का तो एक दृढ़ स्तम्भ सदा के लिये टूट गया।

२–यह सभा गुलेरी जी के संबंधियों के साथ अपनी आंतरिक समवेदना प्रकट करती है और जगन्नियन्ता जगदीश्वर से प्रार्थना करती है कि वह गुलेरी जी की आत्मा को शान्ति और उनके कुटुम्बियों को धैर्य प्रदान करे।

३–उक्त गुलेरी जी ने इस सभा के जो अनेक उपकार किए हैं उनसे वह कभी उऋण नहीं हो सकती और न इस बात को कभी भूल सकती है कि वे किस प्रकार उसकी सहायता, उन्नति तथा प्रतिष्ठा के लिये सदा सफलता पूर्वक तत्पर रहते थे। उनके स्थान की पूर्ति होना असम्भव है, अतएव यह सभा निश्चय करती है कि उनकी स्मृति में एक तैलचित्र सभाभवन में लगाया जाय और यदि आगे चलकर यह संभव हो तो उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का और कोई विशेष आयोजन भी किया जाय।

७–सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

विशेष अधिवेशन।

रविवार १ आश्विन १९७९ (१७ सितंबर १९२२) संध्या के ५ बजे

स्थान-सभाभवन

(१) ठाकुर शिव कुमार सिंह जी के प्रस्ताव तथा बाबू ब्रजरत्न दास जी के अनुमोदन पर श्रीयुत मिस्टर ए० वी० ध्रुव सभापति चुने गए।

(२) मंत्री ने स्वर्गवासी पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी जी के गुणों

और इस सभा की उन्होंने जो सेवा की थी उसका वर्णन करते हुए निम्न लिखित प्रस्ताव उपस्थित किए :—

१-इस सभा को अत्यंत शोक है कि इसके २० वर्ष के पुराने सभासद, उपसभापति, बोर्ड आफ ट्रस्टीज के सदस्य, नागरी प्रचारिणी पत्रिका और सूर्य कुमारी पुस्तक माला के संपादक, सभा के परम सहायक तथा हितैषी, हिंदी और संस्कृत के असाधारण विद्वान और पुरातत्व वेत्ता, स्वनाम धन्य पंडित चंद्र धर शर्मा गुलेरी का गत मंगलवार १२ सितंबर को प्रातः काल असमय और अकस्मात् काशीवास हो गया जिसके कारण विद्वानों का एक रत्न खो गया और इस सभा का एक दृढ़ स्तम्भ सदा के लिये टूट गया।

२-यह सभा गुलेरी जी के संबंधियों के साथ अपनी आंतरिक समवेदना प्रकट करती है और जगन्नियंता जगदीश्वर से प्रार्थना करती है कि वह गुलेरी जी की आत्मा को शान्ति और उनके कुटुम्बियों को धैर्य प्रदान करे।

३-उक्त गुलेरी जी ने जो इस सभा के अनेक उपकार किए हैं उनसे यह कभी उऋण नहीं हो सकती और न इस बात को कभी भूल सकती है कि वे किस प्रकार उसकी सहायता, उन्नति तथा प्रतिष्ठा के लिये सदा सफलता पूर्वक तत्पर रहते थे। उनके स्थान की पूर्ति होना असम्भव है। अतएव यह सभा निश्चित करती है कि उनकी स्मृति में एक तैलचित्र सभाभवन में लगाया जाय और यदि आगे चल कर यह संभव हो तो उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का और कोई विशेष आयोजन किया जाय।

बाबू वेणी प्रसाद जी ने इन प्रस्तावों का अनुमोदन किया और उपस्थित सज्जनों ने खड़े होकर इन्हें स्वीकार किया।

(३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबंध समिति

शनिवार ७ आश्विन १९७९ (२३ सितंबर १९२२) संध्याके ५½ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित

बाबू कवीन्द्र नारायण सिंह, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०, पं० रामचंद्र शुक्ल और बाबू माधव प्रसाद।

कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका और निश्चय हुआ कि अब शुक्रवार १३ आश्विन १९७९ को संध्या के ५॥ बजे अधिवेशन किया जाय।

प्रबंध समिति

शुक्रवार १३ आश्विन १९७९ (२९ सितंबर १९२२) संध्या के ५ ।।। बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित

बाबू कवींद्र नारायण सिंह—सभापति, पंडित देवी प्रसाद उपाध्याय, पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, ठाकुर शिव कुमार सिंह, बाबू बाल मुकुंद वर्मा, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०।

सम्मति भेजनेवाले

राय बहादुर बाबू हीरालाल

(१) पंडित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव पर बाबू कवींद्र नारायण सिंह सभापति चुने गए।

(२) १४ श्रावण १९७९ के अधिवेशन का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) आषाढ़, श्रावण और भाद्रपद १९७९ के आयव्यय का निम्न लिखित हिसाब सूचनार्थ उपस्थित किया गया—

[पृष्ठ १० में देखिये ।

आषाढ़ १९७९

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मासकी बचत	३६६)२		कार्यकर्ताओं का वेतन	१६७≡)॥।	
सभासदों का चंदा	४१०॥)		छपाई ...	६१३।)॥।	
हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्त प्रदेश)	५००)		हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्त प्रदेश)	१२७=)।	
नागरी प्रचार	१।≈)॥		हिंदी पुस्तकों की खोज (पंजाब)	७)	
फुटकर ...	६॥)		नागरी प्रचार	१०।=)	
पुस्तकालय ...	११॥।)		फुटकर व्यय	२०)	
जोधसिंह पुरस्कार	२७)		पुस्तकालय	२२॥-)	
अमानत ...	७१॥-)॥		डाक व्यय ...	२८५॥।=)।	
रत्नाकर पुरस्कार	३३)		जोधसिंह पुरस्कार	।)	
पुस्तकालय के लिये अमानत	५)		रत्नाकर पुरस्कार	।)	
पुस्तकों की बिक्री		२२८≈)॥	अमानत ...	४३७।=)	
पृथ्वीराज रासो		४५)	तुलसी जयंती		३३)
हिंदी कोश ...		१४०४।≈)॥	विज्ञापन		५०॥≈)
मनोरंजन पुस्तकमाला		२४४।=)॥।	हिंदी कोश		१०३२॥-
भारतेंदु ग्रंथावली		४८॥≡)॥	मनोरंजन पुस्तकमाला		८४४।-)।
देवी प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला		१६≡)	देवी प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला		२१५)
सूर्यकुमारी पुस्तकमाला		२३४०॥)।	सूर्यकुमारी पुस्तकमाला		११४३॥)।
	१९६३॥।)२	४३८३।≈)॥		१७२१।=)	३४३७)॥
				५१५८।≈)॥।	
			बचत	११८७॥≡)११	
	६३४६≈)८			६३४६=)८	

श्रावण १९७९

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मास की बचत	११८५॥=)??		कार्यकर्ताओं का वेतन	१७८॥।)।	
सभासदों का चंदा	८३)		छपाई ...	६॥)	
नागरी प्रचार	)॥		हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्त प्रदेश)	१८३॥=)॥	
फुटकर ...	६)।		हिंदी पुस्तकों की खोज (पंजाब)	२८॥।=)	
पुस्तकालय ...	१०६॥।)		नागरी प्रचार	१०।=)	
अमानत ...	३२-)		फुटकर व्यय	३२।≡)॥।	
पुस्तकालय के लिये अमानत	३०)		पुस्तकालय	३७=)॥	
पुस्तकों की बिक्री		१०३)॥	डाक व्यय	१६६॥।=)।	
पृथ्वीराज रासो		२१॥।)	भवन निर्माण	२००)	
हिन्दी कोश		२५१≡)॥	पुस्तकालय के लिये अमानत	१०)	
पुस्तकों पर रायल्टी		१३।)॥।	अमानत	५११॥।)	
मनोरंजन पुस्तक माला		८८३॥।=)	तुलसी जयंती		६३।)
भारतेन्दु ग्रंथावली		१६)॥।	हिंदी कोश		६१७।)
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		५३०।=)।	मनोरंजन पुस्तक माला		४३०॥=)॥
सूर्यकुमारी पुस्तक माला		२८१॥)॥।	देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		१=)
			सूर्यकुमार पुस्तक माला		३८०)
	१४५५॥-)८	२११२=)॥		१३६६॥।=)।	१४९८=।)॥
				२८६५=)॥।	
			बचत	७०२॥-)५	
	३५६७॥।)२			३५६७॥।)२	

भाद्रपद १९७९

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मास की बचत	७०२॥-)		कार्यकर्ताओं का वेतन	१७०।-)॥।	
सभासदों का चंदा	५३)		छपाई	५०७।=)।	
हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्त प्रदेश)	१०००)		हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्त प्रदेश)	६८॥।-)	
फुटकर आय	११॥-)		हिंदी पुस्तकों की खोज (पंजाब)	७६=)	
पुस्तकालय	२७॥।)		नागरी प्रचार	१०।=)	
विशेष आय	४००)		फुटकर व्यय	३१-)।	
अमानत	२४८॥≡)॥।		पुस्तकालय	२०-)॥।	
पुस्तकालय के लिये अमानत	३०)		पुस्तकालय के लिये अमानत	१०)	
पुस्तकों की बिक्री		१२५।)।	अमानत	१००।)॥।	
पृथ्वीराज रासो		४३)	तुलसी जयंती		७१-)
हिंदी कोश		३८२≡)।	हिंदी कोश		१७४।=)॥
मनोरंजन पुस्तक-माला		७०९॥)॥	मनोरंजन पुस्तक-माला		६९४।=)॥
भारतेंदु ग्रंथावली		१७॥)।	सूर्यकुमारी पुस्तक माला		५८६।)॥
देवी प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक-माला		४६≡)॥			
सूर्य कुमारी पुस्तक माला		२०३-)।			
तुलसी जयंती		५०॥)			
डाक व्यय का फिरता	४१=)॥।				
नागरी प्रचार	)॥				
				१०२४॥)॥।	१५३१=)॥
				२५५५॥≋)।	
			बचत	१५३६॥≡)२	
	२५१४॥।-)५	१५७७॥-)			
	४०९२।=)५			४०९२।=)५	

बचत का ब्योरा

३३)४	रोकड़ सभा
१४९२॥।-)॥।	बनारस बंक, चलता खाता
७॥)७	पोस्टल सेविंग बंक (स्थायी कोश)
३।)॥	बनारस बंक, सेविंग बंक

पंडित हरिनारायण शर्मा पुरोहित के १ तथा १२ सितंबर के पोस्ट कार्ड उपस्थित किए गए जिनमें उन्होंने लिखा था कि बारौठ वाला बक्स जी ने ५००० रु० सभा को इसलिये देने की इच्छा प्रकट की है कि उसके ब्याज से चारणों के ऐतिहासिक ग्रंथ प्रकाशित किए जांय और इसके लिये ५०००) रु० भी पुरोहित हरिनारायण शर्मा के पास उन्होंने जमा कर दिया है। साथ ही मंत्री ने सूचना दी कि उन्होंने दानपत्र का मसौदा करके बाबू रामचन्द्र वर्मा को जयपुर भेज दिया है कि वे इस मसौदे के अनुसार बारौठ जी से दानपत्र लिखवा लें।

निश्चय हुआ कि बारौठ वाला बक्स जी को इसके लिये धन्यवाद दिया जाय, दान पत्र का मसौदा स्वीकार किया जाय और बाबू रामचंद्र वर्मा को अधिकार दिया जाय कि वे इस दानपत्र को सभा की ओर से लिखवा लें।

(५) पंडित रामचंद्र दुबे का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्हों ने लिखा था कि मनोरंजन पुस्तकमाला में जो ऐतिहासिक कहानियां प्रकाशित हुई हैं उनकी कुछ घटनाएं असत्य हैं और उनसे हिंदुओं के हृदय पर आघात पहुँचता है।

निश्चय हुआ कि पंडित रामचंद्र दुबे के पत्र की नकल ग्रंथकार के पास भेजी जाय और उन्हें लिखा जाय कि जिन जिन बातों पर दुबे जी ने आक्षेप किया है उन्हें वे कृपा कर दूसरे संस्करण के लिये ठीक कर दें।

(६) निश्चय हुआ कि नागरी प्रचारिणी पत्रिका के संपादन का भार अब केवल रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा पर ही रहे। इस समय पंडित चंद्रधर शर्मा जी के स्थान पर किसी दूसरे संपादक की नियुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

यह भी निश्चय हुआ कि सूर्यकुमारी पुस्तकमाला के संपादक के चुनाव का विषय आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(७) रायबहादुर बाबू हीरा लाल का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सूर्यकुमारी पुस्तकमाला के संपादन में सहायता करने की इच्छा प्रकट की थी।

निश्चय हुआ कि इसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय और आगामी अधिवेशन में इस पर विचार किया जाय।

(८) मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ ने अपने ग्रंथों का स्वत्व जिन शर्तों पर सभा को देने के लिये लिखा था वे रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीरा चंद ओझा तथा बाबू गौरी शंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी० की सम्मति के सहित उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि ये शर्तें स्वीकार की जांय।

(९) मेरठ के प्रयाग नारायण ट्रस्ट के एक्जिक्यूटर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि गत वर्ष हिंदी में जो सर्वोत्तम शिक्षा-

प्रद पुस्तक प्रकाशित हुई हो उसे भी सभा पुरस्कार के लिये निश्चित कर दे।

निश्चय हुआ कि फाल्गुन १९७७ से माघ १९७८ के बीच में जो सर्वोत्तम शिक्षाप्रद पुस्तक प्रकाशित हुई हो उसका निश्चय करने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की उपसमिति बनाई जाय।

बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०

बाबू राम चंद्र वर्मा

पंडित केदार नाथ पाठक

(१०) बाबू गौरी शंकर प्रसाद जी का ६ सितंबर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि हाई स्कूल और इंटरमीडियट एजुकेशन बोर्ड को सभा की ओर से लिखा जाय कि हाई स्कूल की शिक्षा और परीक्षा का माध्यम देशी भाषा हो और इंटरमीडियट परीक्षा के विषयों में हिंदी भी एक वैकल्पिक विषय रक्खा जाय। मंत्री ने सूचना दी कि इस विषय में उक्त बोर्ड के मंत्री के पास १५ सितंबर तक सब पत्र पहुँच जाने चाहिए अतः उन्होंने बाबू गौरी शंकर प्रसाद के प्रस्ताव के अनुसार सभा की ओर से पत्र भेज दिया है।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय।

(११) बाबू बटुक प्रसाद खत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि किसी अवधि में कोई शिक्षाप्रद मौलिक नाटक या उपन्यास "बटुक प्रसाद पुरस्कार" के योग्य न समझा जाय तो उस अवधि का पुरस्कार किसी अन्य विषय के ग्रंथ के लिये दिया जाय।

निश्चय हुआ कि यह पत्र आगामी अधिवेशन में उपस्थित किया जाय।

(१२) निश्चय हुआ कि बाबू गुलाब राय को उनके लिखे हुए "यूरोपीय दर्शन" के लिये २००) रु० पुरस्कार दिया जाय और इस ग्रंथ का टाइटिल पृष्ठ जैसा उन्होंने बना कर भेजा है वैसा ही रक्खा जाय।

(१३) जयपुर के पुरोहित राम प्रताप जी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे पंडित चंद्र धर शर्मा गुलेरी जी का एक दर्शनीय चित्र तयार करवा कर उसे सभा को प्रदान करना चाहते हैं।

निश्चय हुआ कि यह धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया जाय।

(१४) बाबू श्यामसुंदर दास जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की खोज संबंधी रिपोर्टों में जिन ग्रंथों और ग्रंथकारों के नाम आए हैं उनकी सूची नागरी प्रचारिणी पत्रिका के आकार में प्रकाशित न की जाय वरन् डबल क्राउन अठपेजी आकार में वह प्रकाशित हो।

(१५) बाबू श्याम सुंदर दास जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि तुलसी ग्रंथावली के संपादन के लिये जो उपसमिति बनाई गई है उसमें लाला भगवान दीन भी सम्मिलित किए जांय, संपादकों का नाम ग्रंथावली

भविष्यत् कहीं प्रकाशित किया जाय तो उनके साथ लाला भगवान दीन का नाम भी रहे और उन्हें ग्रंथावली की बीस पचीस प्रतियां मित्रों में वितरण करने के लिये दी जांय।

(१६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा

शनिवार मि० २८ आश्विन १९७९ (१४ अक्तूबर १९२२) संध्या के ५॥ बजे

स्थान-सभाभवन

उपस्थित

बाबू कवींद्र नारायण सिंह—सभापति, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०, बाबू ब्रजरत्न दास, बाबू बेणी प्रसाद, पंडित रामचंद्र शुक्ल, पंडित केदार नाथ पाठक, बाबू गोपाल दास।

(१) बाबू श्याम सुंदर दास जी के प्रस्ताव पर बाबू कवींद्र नारायण सिंह सभापति चुने गए।

(२) मि० ३१ भाद्रपद १९७९ के साधारण अधिवेशन तथा १ आश्विन १९७९ के विशेष अधिवेशन के कार्यविवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(३) सभासद होने के लिये निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए :—

१-बाबू रत्नाम्बर दत्त चंदोला, शांति सदन, लैन्सडौन ३)

२-बाबू महेशानन्द थपल्याल, प्रेम कुटीर जय हरिखाल, लैंसडौन ३)

३-पंडित शिव दत्त शर्म्मा, आडिट आफिस, कोचिङ्ग, अजमेर ३)

४-बाबू मांगीलाल कानूगो, चांदपोल रास्ता कल्यान जी, जयपुर ३)

५-बाबू उमाशंकर मेहता, रामघाट, काशी ३)

६-पं० झाबरमल शर्मा, कलकत्ता समाचार, ८/१ चीनी पट्टी, कलकत्ता ५)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय।

(४) निम्न लिखित सभासदों के त्याग पत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए—

१-बाबू रत्नेश्वरी नन्दन सिंह, शिवहर, जि० मुजफ्फरपुर।

२-पंडित प्रेमशंकर, बालू जी की फर्श, काशी।

(५) मंत्री ने सूचना दी कि निम्नलिखित सभासदों की सेवा में नागरी प्रचारिणी पत्रिका के जो पेकेट भेजे गए थे वे लौट आए हैं और उन पर पोस्ट आफ़िस के नोट से विदित होता है कि इन सज्जनों का देहांत हो गया है:—

१ बाबू महादेव राम, मिर्जा पुर

२ लाला रेमल जी, अध्यापक, कन्या महाविद्यालय, जालन्धर

सभा ने इन सज्जनों की मृत्यु पर शोक प्रकट किया।

(६) निश्चय हुआ कि पंडित चंद्र धर शर्म्मा गुलेरी जी के स्थान पर बाबू गौरी शंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी०, उपसभापति चुने जांय और इस चुनाव से प्रबंध समिति में जो स्थान रिक्त होता है उस पर बाबू बटुक प्रसाद खत्री चुने जांय।

(७) बाबू श्री प्रकाश जी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्हों ने लिखा था कि अवकाश न मिलने के कारण वे इच्छा रहते हुए भी प्रबंध समिति के अधिवेशनों में उपस्थित नहीं हो सकते। अतः उक्त समिति में उनके स्थान पर कोई दूसरे सज्जन नियुक्त किए जांय।

निश्चय हुआ कि बाबू श्री प्रकाश जी के स्थान पर पंडित मदन मोहन शास्त्री प्रबंध समिति के सदस्य चुने जांय।

(८) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:—

बाबू श्याम सुंदर दास जी बी० ए०, काशी-राम चरित मानस सटीक, मानस मुक्तावली

बाबू शारदा प्रसाद गुप्त, अहरौरा, जि० मिर्जापुर-ताजीरात हिंद

Indian Income-tax Act No. VII of 1918. Matriculation English course Poetry 1911. Poems prescribed for Matriculation Examination.

बाबू व्रज रत्न दास, काशी-प्रेम सागर

ठा० कल्याण सिंह सेखावत बी० ए०, खाचरियावास, जयपुर-जातियों को संदेश

बाबू महावीर प्रसाद गहमरी, स्वर्णमाला कार्यालय, काशी-स्वर्ग के रत्न

बाबू भगवान दास केला, संपादक, "प्रेम" वृन्दाबन-देश भक्त दामोदर स्फूर्तियां

पंडित फणि भूषण तर्क वागीश, बंगाली टोला, काशी-न्याय दर्शन द्वितीय खं

हिंदी पुस्तक एजेंसी, हेरिसन रोड, कलकत्ता-देश भक्त मेजिनी के लेख, आनन्द मठ

क्रय की गईं

सन् १८५७ के गदर का इतिहास, कादम्बरी

स्मिथसोनियन इन्स्टिट्यूशन, वाशिंगटन

Explorations and Field-work of the smithsonion Institution 1921.

Indian Antiquary for October 1922.

(९) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा

शनिवार २५ कार्तिक १९७९ (११ नवंबर १९२२) संध्या के ५½ बजे

स्थान—सभा भवन

उपस्थित

बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर बी० ए० सभापति, बाबू कवीन्द्र नारायण सिंह, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०, बाबू ब्रज रत्न दास, पंडित राम चन्द्र शुक्ल, पंडित केदार नाथ पाठक, बाबू गोपाल दास।

(१) बाबू श्यामसुंदर दास के प्रस्ताव तथा बाबू ब्रज रत्न दास के अनुमोदन पर बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर बी० ए० सभापति चुने गए।

(२) मि० २८ आश्विन १९७९ का कार्य विवरण पढ़ा गया, और स्वीकृत हुआ।

(३) प्रबंध समिति का १४ श्रावण १९७९ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

(४) सभासद होने के लिये निम्न लिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए:—

१—बाबू ब्रज मोहन डबराल बी० एस० सी०, १३९ होस्टल नं० १, हिंदू विश्वविद्यालय, काशी ३)

२—बाबू दयानन्द धपलियाल एम० ए०, ७६ चौथा नगवा होस्टल, विश्वविद्यालय, काशी ३)

३—श्रीयुत कुंवर कृष्ण सुखिया एम० ए०, एल० एल० बी०, कमच्छा, काशी ३)

४—बाबू मदनमोहन भाटिया, गोरस स्टूडियो, मीचीबाग, काशी ३)

५—पंडित जीवन शंकर याज्ञिक, विश्व विद्यालय, काशी ३)

६—खवास जोरावर नाथ जी, भटयाणी चौहटा, उदयपुर ३)

७—ठाकुर चंद्र नाथ जी, गनेश घाटी, उदयपुर ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय

(५) पंडित प्रेम शंकर, बालू जी की फर्श, काशी का त्यागपत्र उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

(६) निम्न लिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:—

पंडित मूल राज शर्म्मा, नागर, स्यालकोट
हिंदू धर्म दर्पणम् द्वितीय भाग

सेठ गणपति लाल जी अग्रवाल, सरदारशहर, बीकानेर
अग्रवाल वंश भास्कर

बाबू श्यामसुंदर दास जी बी० ए०, काशी
बाल गंगाधर तिलक स्मारक दैशिक शास्त्र

पंडित हरिनाथ तिवारी, १३२ मध्यमेश्वर, काशी
आल्हपुराण

पंडित झाबर मल शर्म्मा, सम्पादक, "कलकत्ता समाचार" कलकत्ता
सीकर का इतिहास

कुंवर चांद करण शारदा, अजमेर
असहयोग
माडरेटों की पोल
आर्य समाज और असहयोग

क्रयकी गई

अध्यात्म रामायण, कुंडलिया रामायण, बरवै रामायण, छन्दावली रामायण, तुलसी सतसई, गीतावली, विनय पत्रिका, कवितावली रामायण, मायापुरी, शैतानी चक्कर, पाप परिणाम, मोरध्वज नाटक, चन्द्रकला, भक्तियोग, हाजीबाबा, हिन्दी सचित्र रामायण, शिक्षित किसान।

बम्बई की गवर्नमेंट

Progress Report of the Archeological Survey of India, Western Circle.

संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट

District Census Statistics of Muttra
" " " Naini Tal
" " " Aligarh
" " " Agra

Indian Antiquary for November 1922

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबंध समिति

रविवार मि० १० मार्गशीर्ष १६७६ (२६ नवम्बर १९२२)
सन्ध्या के ५½ बजे
स्थान—सभाभवन

उपस्थित

बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल एल बी०—सभापति, बाबू कवीन्द्र नारायण सिंह, बाबू माधव प्रसाद, पंडित मदन मोहन शास्त्री, बाबू बेणीप्रसाद, ठाकुर शिवकुमार सिंह, बाबू श्यामसुंदर दास बी० ए०, बाबू ब्रजरत्न दास।

सम्मति भेजनेवाले

पं० शुकदेव बिहारी मिश्र बी० ए० और रायबहादुर बाबू हीरालाल

(१) गत अधिवेशन (१३ आश्विन १६७६) का कार्य विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) मंत्री ने सूचना दी कि जयपुर के पुरोहित रामप्रतापजी ने कृपा पूर्वक गोस्वामी तुलसीदासजी तथा कविवर बिहारीलालजी के तैल चित्रोंको सभा के लिये अपने व्यय से बनवा देना स्वीकार किया है।

निश्चय हुआ कि इसके लिये पुरोहित रामप्रताप जी को विशेष धन्यवाद दिया जाय।

(३) आश्विन और कार्तिक १६७६ के आयव्यय का निम्नलिखित हिसाब सूचनार्थ उपस्थित किया गया : —

आश्विन १९७९

आय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गतमास की बचत	१५३६॥≡)२	
सभासदों का चंदा	६६॥)	
नागरी प्रचार	१॥≈)	
फुटकर आय	५॥≡)	
पुस्तकालय	७३॥=)	
अमानत	१३।≡)।।।	
भवन निर्माण (स्थायी कोश)	४॥=)५	
पुस्तकालय के लिये अमानत	१०)	
पुस्तकों की बिक्री		१४८॥।-)
पृथ्वीराज रासो		९२)
हिन्दी कोश		१८०)
मनोरंजन पुस्तक माला		२५०॥≡)
भारतेन्दु ग्रंथावली		१०)।।।
देवी प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		२०॥।-)
सूर्य्यकुमारी पुस्तक माला		२८६।=)
तुलसी जयन्ती		१३१)
	१७१३)४	११२३॥≡)॥
	२८३७)१	

व्यय का ब्योरा	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
कार्य कर्त्ताओं का वेतन	१५३॥≡)।।	
छपाई	६१८॥≡)।	
हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्त प्रदेश)	१३३।=)।	
,, ,, (पंजाब)	४३।-)	
नागरी प्रचार	१०॥≡)॥	
फुटकर व्यय	२६॥।≡)	
पुस्तकालय	५९=)।	
डाक व्यय	४२=)।	
पुस्तकालय के लिये अमानत	१०)	
अमानत	२२१॥)॥	
तुलसी जयन्ती		७९)
हिन्दी कोश		१५३-)
मनोरंजन पुस्तक माला		५००)
देवी प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		१००॥)॥
सूर्यकुमारी पुस्तक माला		१५०)
	१३३४।=)	९८२॥।-)॥
जोड़	२३१७≡)॥	
बचत	५१९॥।)७	
	२८३७)१	

कार्त्तिक १९७१.

गतमास की बचत	५१९|||)७		कार्यकर्त्ताओं का वेतन	१९४॥)॥	
सभासदों का चंदा	१२५।-)		छपाई	१०३५॥।-)॥	
हिन्दी पुस्तकों की खोज (पंजाब)	५००)		हिन्दी पुस्तकों की खोज (संयुक्त प्रदेश)	१३८॥≈)।	
नागरी प्रचार	।॥≈)॥		,, ,, (पंजाब)	४५॥)	
फुटकर आय	१८॥)।॥		नागरी प्रचार	१०।=)	
पुस्तकालय	२≈)		फुटकर व्यय	३३॥)॥।	
अमानत	४५७॥)।		पुस्तकालय	१२६)॥	
पुस्तकालयके लिये अमानत	२०)		डाकव्यय	३०।-)।॥	
पुस्तकों की बिक्री		१६८)	पारितोषिक	४२)	
पृथ्वी राजरासो		४१॥≡)	पुस्तकालयकेलये अमानत	५)	
हिन्दी कोश		३२८≡)	अमानत	२६८॥-)	
मनोरंजन पुस्तक-माला		३१२॥=)।	तुलसी जयन्ती		२७५=)॥
भारतेन्दुग्रंथावली		३८॥)।	हिन्दी कोश		१३४॥-)।
देवी प्रसाद ऐति-हासिक पुस्तक माला		१८-)	मनोरंजन पुस्तक माला		१५५॥≡)॥
सूर्यकुमारी पुस्तक माला		९८॥=)॥	देवी प्रसाद ऐति-हासिक पुस्तक माला		९३।)।
तुलसी जयन्ती		३२५९॥।)	सूर्यकुमारी पुस्तक माला		२६५॥=)
				१९३०।≡)	३४०७॥।-)।॥
				५३३८।-)	
	१६४४।)१	४२६५॥)	बचत	५७१।≡)१	
	५९०९॥।)१			५९०९॥।)१	

बचत का ब्योरा
१२=)४ रोकड़ सभा
५२६।≡)। बनारस बंक, चलता खाता
३२॥।-)॥ बनारस बंक, सेविंग बंक
५७१।≡)१

(४) हिन्दी साहित्य सभा, गया का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें लिखा था कि गोस्वामी तुलसीदास जी की जयंती पर वे अच्छे अच्छे लेख

लिखवावेंगे और सर्वोत्तम लेख के लिये स्वर्ण तथा रौप्य पदक प्रदान करेंगे। अतः सभा इन लेखों में से सर्वोत्तम लेखों का निश्चय कर दे।

निश्चय हुआ कि लेखों के आने पर सभा उनमें से सर्वोत्तम लेखों का निश्चय कर देगी।

(५) मंत्री की यह सूचना उपस्थित की गई कि स्वामी विवेकानन्द के (१) राजयोग (२) कर्मयोग, भक्तियोग, पराभक्ति, भक्ति पर व्याख्यान और (३) अमेरिका की धार्मिक सभा में व्याख्यान, इन तीनों भागों की असली छपी प्रति और इनका अनुवाद पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरीजी के यहां से अनेक उद्योग करने पर भी प्राप्त नहीं हो सका, और न अशोक की धर्म लिपियों के निम्नलिखित खंडों की हस्तलिखित प्रति ही उनके यहां से मिल सकी (१) गौण शिलाभिलेख (२) प्रधान स्तंभाभिलेख (३) गौण स्तंभाभिलेख और (४) गुहाभिलेख।

समिति ने पंडित मदन मोहन शास्त्री से प्रार्थना की कि वे इन सब वस्तुओं को पंडित चंद्रधर जी के यहां से प्राप्त करने का उद्योग करें और इस संबंध में अपनी रिपोर्ट समिति के आगामी अधिवेशन में उपस्थित करें। शास्त्री जी ने इसे स्वीकार किया।

यह भी निश्चय हुआ कि स्वामी विवेकानन्दजी के उपरोक्त ग्रंथों के अनुवादकों से पूछा जाय कि उनके खोए हुए अनुवादों का वे क्या पुरस्कार लेंगे।

(६) पंडित रूपोश्वरनाथ भट्ट प्रश्नें का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्हों ने पूछा था कि क्या सभा सूर्यकुमारी पुस्तकमाला में बाणभट्ट के हर्षचरित का अनुवाद प्रकाशित करेगी और यदि करे तो प्रति पृष्ठ उन्हें क्या पुरस्कार देगी।

निश्चय हुआ कि पं० रूपोश्वर नाथ को लिखा जाय कि वे कृपाकर अपने अनुवाद का कुछ नमूना समिति के अवलोकनार्थ भेज दें और लिखें कि वे क्या पुरस्कार लेंगे।

(७) चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने ऐतिहासिक कहानियों में, लिखी हुई उन घटनाओं का जिन पर पंडित रामचन्द्र दुबे ने आक्षेप किया था, समर्थन किया था और अगले संस्करण के लिये इन घटनाओं के सम्बन्ध में टिप्पणियां लिख दी थीं।

निश्चय हुआ कि शिवा जी के संबंध में मर्यादा के दो अंकों में जो लेख छपा है वह चतुर्वेदी जी के पास भेज दिया जाय और उनके पत्र की प्रतिलिपि पंडित रामचन्द्र दुबे के पास सूचनार्थ भेज दी जाय।

(८) पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र लिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट उपस्थित की गई जिसे उन्होंने फिर से ठीक कर के भेजा था।

निश्चय हुआ कि यह रिपोर्ट रायबहादुर बाबू हीरालाल के पास

सम्मति के लिये भेजी जाय।

(९) बाबू बटुक प्रसाद खत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिस में उन्हों ने लिखा था कि यदि किसी अवधि में कोई उपन्यास या नाटक बटुक प्रसाद पुरस्कार के योग्य न समझा जाय तो उस अवधि का पुरस्कार अन्य किसी विषय के लिये दिया जाय।

निश्चय हुआ कि ऐसी अवस्था में किसी विषय की गद्य में लिखी हुई पुस्तक के लिये यह पुरस्कार दिया जाय।

(१०) बारौठ बालाबक्स जी का ५०००) रु० का निम्न लिखित दान पत्र उपस्थित किया गया :—

श्रीरामजी।

"मैं बारहट बालाबक्स पिता का नाम नृसिंह दास जी जाति चारण रहने वाला ग्राम हणोतिया राज जयपुर का हूं। आगे बहुत दिनों से मेरी इच्छा है कि राजपूतों और चारणों की रची हुई ऐतिहासिक और कविता की (डिंगल तथा पिंगल) पुस्तकें प्रकाशित की जाँय जिस से हिन्दी साहित्य के भंडार की पूर्ति हो और ये ग्रंथ सदा के लिये रक्षित हो जाँय। इस लिये मैं नीचे लिखे हुए महाशयों को ट्रस्टी बनाता हूँ और उनको नीचे लिखे हुए अधिकार देता हूँ। इस कार्य्य के लिये मैं ५०००) रु० (पांच हजार रुपये) नगद देता हूँ, और समय समय पर मुझ से जहां तक होगा मैं इस कार्य के लिये और धन स्वयं दूंगा या दूसरों से दिलाऊंगा।

"(१) इस ट्रस्ट का नाम 'बालाबक्सराजपूत-चारण-पुस्तकमाला ट्रस्ट' होगा और यह धन चाहे जिस रूप में रहे काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अधिकार में रहेगा और उसका हिसाब किताब आदि भी उक्त सभा के कार्यालय में अलग खाता डाल कर रक्खा जायगा।

"(२) काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की प्रबंध समिति को अधिकार होगा कि ट्रस्टियों की अनुमति से तथा इंडियन ट्रस्ट एक्ट की धाराओं के अनुसार इस धन को किसी बंक में जमा कर दें या सरकारी ऋण आदि के नोट इससे खरीद लें अथवा किसी और उपयुक्त रूप में लगावें या अवश्यकतानुसार एक रूप से दूसरे रूप में करें। किन्तु इस बात पर ध्यान अवश्य रखना होगा कि आय में कमी न हो और मूलधन में क्षति न हो।

"(३) काशी नागरी प्रचारिणी सभा को मूलधन के व्यय करने का अधिकार न होगा किन्तु उससे जो आय होगी वह इस ट्रस्ट के नीचे लिखे हुए कार्य में लगाई जायगी।

"(४) इस समय नीचे लिखे हुए पांच महाशयों को मैं ट्रस्टी नियत करता हूँ और उक्त महानुभावों ने इस ट्रस्ट के कार्य को सम्पादन करने का भार लेना स्वीकार किया है।

(१) राय बहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, क्यूरेटर, म्यूजियम अजमेर।

(२) मुंशी देवी प्रसाद जी, मुंसिफ, जोधपुर।

(३) राज्य श्री ठाकुर कल्याण सिंह जी शेखावत बी० ए०, खाचरियावास, जयपुर

(४) कविया चारण मुरारिदान जी, साड़ियों का टीबा, जयपुर।

(५) पुरोहित हरिनारायण जी बी० ए० सीरसी के जयपुर।

(५) इन ट्रस्टी महाशयों में यदि किसी का स्थान किसी कारण से खाली हो जावे अथवा इंडियन ट्रस्ट एक्ट की धाराओं के अनुसार खाली समझा जाय तो उस स्थान की पूर्ति जब तक मैं जीवित रहूँगा स्वयं करूंगा और मेरे न जीवित रहने अथवा अयोग्य होने की अवस्था में यदि किसी ट्रस्टी का स्थान खाली हुआ तो उसकी पूर्ति काशी नागरी प्रचारिणी सभा अपने वार्षिक अधिवेशन में बाकी ट्रस्टियों की सम्मति से करेगी, पर यदि वार्षिक अधिवेशन को तीन मास से अधिक विलंब हो तो उस अवस्था में उक्त सभा की प्रबन्ध समिति को अधिकार होगा कि यदि वह आवश्यक समझे तो वार्षिक अधिवेशन द्वारा नियुक्त होने तक उस स्थान की पूर्ति कर दे परन्तु हर अवस्था में इस बात का पूरा ध्यान रखना होगा कि एक वंश या संबंध के एक से अधिक व्यक्ति एक साथ ट्रस्टी न रह सकेंगे।

(६) जो पुस्तकें इस ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित होंगी उनका नाम "बालाबक्स राजपूत-चारण-पुस्तक माला" होगा जिसमें पहले राजपूतों और चारणों के रचित प्राचीन ऐतिहासिक या काव्य ग्रंथ प्रकाशित किये जायंगे, उनके छप जाने पर अथवा उनके अभाव में किसी जातीय संप्रदाय के किसी व्यक्ति के लिखे हुए प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ, ख्यात आदि छप सकेंगे जिनका सम्बन्ध राजपूतों अथवा चारणों से होगा।

"(७)इस पुस्तकमाला की प्रत्येक पुस्तक के आदि में दाता (बारहट बाला बक्स जी) का चित्र रहेगा।"

"(८) इस पुस्तक माला की बिक्री से जो आय होगी वह भी इसी पुस्तकमाला के प्रकाशित करने में व्यय की जायगी परन्तु प्रबंध के व्यय के लिये इसमें से १२॥) सैकड़े साम के साधारण कोश में जमा किया जायगा।"

"(९) हर वर्ष यथासंभव कम से कम एक पुस्तक प्रकाशित की जायगी और उसका मूल्य जो कुछ उसके संबंध में व्यय होगा उससे दुगने से अधिक न रक्खा जायगा।"

"(१०) यदि किसी समय मूलधन के अतिरिक्त इस पुस्तकमाला के हिसाब में १०००) वा इससे अधिक बच रहेगा और वह एक वर्ष से अधिक समय तक इस कार्य में व्यय न हो सकेगा तो उसमें एक सहस्त्र वा उससे अधिक जितना जितना काशी नागरी प्रचारिणी सभा की प्रबंध समिति उचित समझे

मूलधन में सम्मिलित कर दिया जायगा और इसी प्रकार से समय समय पर जब जब ऐसी अवस्था उपस्थित होती रहेगी तब तब ऐसाही किया जायगा और सम्मिलित धन की कुल आय इस कार्य में लगाई जायगी तथा मैं या अन्य कोई जो कुछ दान इस कार्य के लिये देगा वह भी मूलधन में सम्मिलित किया जायगा।

(११) काशीनागरी प्रचारिणी सभा की प्रबंध समिति को पूर्ण अधिकार होगा कि इस पुस्तकमाला की पुस्तकों को लिखवाने छपवाने तथा बेचने आदि का सब प्रबंध करे किन्तु यह आवश्यक होगा कि पुस्तक के विषय के संबंध में ट्रस्टियों की सम्मति ले ले। यदि एक मास तक ट्रस्टी महाशयों अथवा उनमें से किसी एक की संमति प्राप्त न हो तो उस अवस्था में सभा के निश्चय की ही प्रधानता रहेगी और यदि ट्रस्टी महाशय सम्मतिमें एकमत न हों तो जिस ओर अधिक सम्मति होगी वही मानी जायगी और उसही के अनुसार कार्य होगा।

(१२) इस ट्रस्ट का वार्षिक चिट्ठा ट्रस्टियों के पास सभा का वर्ष समाप्त होने के पश्चात् एक मास के भीतर भेज दिया जायगा और उसका विवरण उनकी सम्मति के साथ सभा के वार्षिक विवरण में प्रकाशित हुआ करेगा।

(१३) यदि कभी इंडियन ट्रस्ट एक्ट की धाराओं के अनुसार न्यायाधीश की सम्मति लेने की आवश्यकता होगी तो वह सम्मति काशी के जज महोदय से ली जावेगी।

(१४) यदि किसी समय काशी नागरी प्रचारिणी सभा टूट जावे तो ट्रस्टियों को अधिकार होगा कि वे इस ट्रस्ट की समस्त संपत्ति को किसी दूसरी उपयुक्त संस्था को इस ट्रस्ट के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये इन्हीं नियमों पर दे दें। यदि काशी नागरी प्रचारिणी सभा इस ट्रस्ट के नियमों के अनुसार कोई ग्रंथ निरंतर तीन वर्ष तक प्रकाशित न करे और इसका संतोष जनक कारण न बता सके तो मेरी जीवित अवस्था में मुझे और मेरे पीछे ट्रस्टियों को अधिकार होगा कि इस कार्य के लिये कोई दूसरा उपयुक्त प्रबंध करें जिसमें इस ट्रस्ट का उद्देश्य सफल हो।

(१५) इस ट्रस्ट के इन ऊपर लिखे नियमों के साथ प्रबंध करने का भार काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपनी प्रबन्धकारिणी समिति को तारीख २९ सितंबर सन् १९२२ ई० के अधिवेशन में लेना स्वीकार किया है।

हस्ताक्षर बारहट बालाबक्स गांव हणूतिया का

हस्ताक्षर नरेन्द्रसिंह खंगारोत जोबनेर

हस्ताक्षर अमर सिंह, कारणोता

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय, इस दानपात्र में जिन ट्रस्टियों के नाम लिखे हैं उनके पास दानपत्र की प्रतिलिपि भेजकर उनकी स्वीकृति ले ली जाय और ५०००) के आ जाने पर उनके साढ़े तीन रुपिया प्रामिसरी नोट खरीद लिए जायं।

(१२) प्रयाग नारायण ट्रस्ट के एकजिक्यूटर ने हिंदी की सर्वोत्तम शिक्षाप्रद पुस्तक के ग्रंथकार को जो ५०) रु० का स्वर्णपदक देना निश्चित किया है उसके संबंध में उपसमिति की यह सम्मति उपस्थित की गई कि संवत् १९७८ में छपी हुई पुस्तकों में से (१) लाहोर के साहित्य सदन कार्यालय द्वारा प्रकाशित "बालक" और (२) हिन्दी भांडार, काशी द्वारा प्रकाशित "समय दर्शन" नामक पुस्तकें इस पदक के योग्य हैं।

निश्चय हुआ कि उपसमिति की सम्मति स्वीकार की जाय और प्रयाग नारायण ट्रस्ट के एकजिक्यूटर को इसकी सूचना दी जाय।

(१३) कैप्टेन कालीचरन दूबे का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उन्हें सभा के पुस्तकालय से अंग्रेजी पुस्तकों के लेने की आज्ञा प्रदान की जाय।

निश्चय हुआ कि दूबे जी से पूछा जाय कि उन्हें किन किन पुस्तकों की आवश्यकता है।

(१४) मुंशी बटुक प्रसाद का यह प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया कि वे श्रावण और भाद्रपद १९७९ में २८ दिन बीमार थे। उनको इतने दिनों की छुट्टी वेतन सहित स्वीकार की जाय।

निश्चय हुआ कि छुट्टी वेतन सहित स्वीकार की जाय।

(१५) बनारस बंक के पंडित ब्रजकिशोर भार्गव का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे सभा का हिसाब उचित पुरस्कार लेकर अथवा बिना पुरस्कार के भी जांच सकते हैं।

निश्चय हुआ कि बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी से प्रार्थना की जाय कि वे इस संबंध में अपनी सम्मति प्रदान करें।

(१६) काशी के टी० एन० स्कूल के स्काउट मास्टर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने १ दिसम्बर से २० दिसम्बर १९२२ तक स्काउटिंग संबंधी व्याख्यानों के लिये सभा का मेजिक लालटैन मांगा था।

निश्चय हुआ कि उनके पास मेजिक लालटैन संबंधी नियमावली भेज दी जाय और लिखा जाय कि इन नियमों के अनुसार हेडमास्टर के लिखने पर यह लालटैन उन्हें मंगनी दिया जा सकता है।

(१७) हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने आगामी सम्मेलन के सभापति के आसन के लिये पाँच सज्जनों की सूची माँगी थी।

निश्चय हुआ कि सभा निम्नलिखित सज्जनों को निर्वाचित करती है:—

१—रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा

२—मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ

३—पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय

४—बाबू अमृत लाल चक्रवर्ती और

५—पंडित राधाचरण गोस्वामी

(१८) बाबू देवनन्दन सिंह का यह प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया कि भाद्रपद तथा आश्विन १६७८ में वे २५ दिन बीमार थे। इतने दिनों की बीमारी की छुट्टी वेतन सहित उन्हें दी जाय।

निश्चय हुआ कि वेतन सहित छुट्टी स्वीकार की जाय।

(१९) सर जी० ए० ग्रियर्सन का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पंडित चंद्रधर शर्मा की मृत्यु पर इस प्रकार लिखा थाः—

"I had not the privilege of his (Pandit Chandradhar Sharma Guleri's) personal acquaintance but I have been a warm admirer of his excellent works on Hindi language and literature. I have learnt much from them and have never let go an opportunity of drawing the attention of friends in England to them. India and, especially, the Nagari Pracharini Sabha, have through his lamented death lost a ripe and deeply read scholar whose place it will be difficult to fill."

निश्चय हुआ कि इस पत्र की नकल पंडित जगद्धर गुलेरी जी के पास भेज दी जाय।

(२०) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा

शनिवार २८ पौष १६७८ (१३ जनवरी १६२३)-संध्या के ५ बजे

स्थान सभाभवन

उपस्थित

बाबू कवीन्द्र नारायण सिंह-सभापति, पंडित मदनमोहन शास्त्री, बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०, बाबू ब्रजरत्न दास, पंडित प्राणनाथ विद्यालंकार, पंडित भागीरथ प्रसाद दीक्षित बाबू गोपाल दास।

(१) बाबू श्यामसुन्दर दास जी के प्रस्ताव पर बाबू कवीन्द्र नारायण सिंह सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (२३ मार्गशीर्ष १६७८) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के पत्र उपस्थित किए गएः—

१—बाबू राम सिंह, गुनीर, पो० कल्यानपुर, जि० फतहपुर ३)
२—पंडित देवी शंकर नागर, डिप्टी कलेक्टर, फतहपुर ३)
३—बाबू चन्द्रपाल सिंह, मुख्तार, फतहपुर ३)
४—बाबू दीन दयाल गुप्त, महादेवन टोला, फतह पुर ३)
५—बाबू शंकर लाल वकील, फतहपुर ३)
६—पंडित तिलकाधार बाजपेयी, वकील, फतहपुर ३)
७—बाबू बद्री प्रसाद कक्कड़, फतहपुर ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय।

(४) पंडित देवी प्रसाद उपाध्याय का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रबंध समिति से इस्तीफा दिया था।

निश्चय हुआ कि त्यागपत्र स्वीकार किया जाय और पंडित देवी प्रसाद जी के स्थान पर पंडित बटुक नाथ शर्मा प्रबंध समिति के सदस्य चुने जांय।

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईः—

बाबू शारदा प्रसाद गुप्त, अहरौरा, जि० मिर्जापुर

टाड राजस्थान (पं० रामगरीब चौबे कृत) खंड १-२

पंडित शिवशंकर लाल व्यास, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आफिस, बाराबंकी

रामायण सुंदर कांड सटीक

बाबू जयशंकर प्रसाद, सराय गोवर्द्धन, काशी

अजात शत्रु नाटक (राज संस्करण)

बाबू अम्बिका प्रसाद गुप्त, हिन्दी ग्रंथ भंडार, काशी

अजात शत्रु (साधारण संस्करण)

निकुंज

पंडित श्याम बिहारी मिश्र एम० ए०, लखनऊ

भारतवर्ष का इतिहास

पूर्व भारत नाटक

बाबू अनुग्रह नारायण सिंह स्वदेश ट्रेडिंग कम्पनी, मुरादपुर, पटना

चम्पारन में महात्मा गांधी

पंडित प्राणनाथ जी विद्यालंकार, हौज कटोरा, काशी

राजनीति शास्त्र

राष्ट्रीय आयव्यय शास्त्र

पंडित वासुदेव पांडेय, वृद्धकाल, काशी

श्री काशी विश्वनाथ

बाबू रामचन्द्र वर्म्मा, साहित्य रत्न माला, काशी

वैज्ञानिक साम्यवाद

पंडित पन्ना लाल शर्म्मा, जतनबड़, काशी

किशोरावस्था

पंडित हनुमान शर्म्मा, जयपुर

पेशोल सार रामायण

सच्ची देवी

श्रीयुत हीरालाल मनोहर दास पटेल, सेवक कार्यालय अहमदाबाद

मोहन गांठ (गुजराती)

ऋषि मंगल कार्यालय, अमरावती

स्वरविज्ञान प्रवेशिका

ठाकुर शिवकुमार सिंह जी, काशी

युद्ध गोहार

बाबू मुन्नो लाल साहु, कतुआपुरा, काशी

मोतीमहल भाग १

भारत की गवर्न्मेंट

Linguistic Survey of India Vol XI

स्मिथसोनियन इन्स्टिट्यूशन, वाशिंगटन, अमेरिका

New tirnaline birds from the East Indies

History of the Greek Indians and their neighbours (Bulletin 73)

Northern ute music Densmore (Bulletin 75)

Smithsonian Miscellaneous Collections Vol 72

मद्रास की गवर्नमेण्ट

Triennial Catalogue of Manuscripts (1916-17 to 1918-19) of the Govt. Oriental Mss Library, Madras Vol III Part I A. B. & C.

एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता

Journal & Proceedings of the Society Vol XV 1919 No.7

रिसेपशन कमेटी, ३६वीं इंडियन नेशनल कांग्रेस, अहमदाबाद

Report of the 36th Indian National Congress, Ahmedabad

पंजाब के शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर

Circular No 20

Indian Antiquary for December 1922.

खरीदी गई

महाराज नन्दन कुमार को फांसी, वैदिक जीवन, महात्मा ईसा नाटक, नीली छतरी, उपन्यास, विवाह पद्धति, बच्चों की रक्षा, संगीत सार संग्रह भाग १, भारतीय नवयुवकों को राष्ट्रीय संदेश, कृष्णकुमारी, बागबानी, उन्नति का मूल मंत्र, कविता विनोद, योगीगुरु, अनुचरी या सहचरी, स्वतंत्रता का अधिकार, बाल शिक्षा शैली, मनोहर कहानियां, उर्वशी नाटक, पद्य संग्रह, नानी की कहानी, सती प्रताप, अंजना देवी, माता के लाला, राष्ट्र भाषा, प्रथमालंकार निरूपण, रचना प्रबोध, उपदेश मंजरी, तृतीय साहित्य सम्मेलन के सभापति का अभिभाषण, दमयंती चरित्र, खद्दर की आत्म कथा, भारतीय जेल, इङ्गलैंड का इतिहास, राष्ट्रीय कविता विनोद, चम्पाकुल, पद्य पारिजात, प्रयाग दर्पण, भारत की ऋतु-चर्या, स्वास्थ्य साधन, जूजूत्सू या जापानी कुश्ती, तन्दुरुस्ती और ताकत, पुष्पावली, सिनफिनर, दुःखिनी, गंगोत्री, पशुबलिदान, भाग-वन्ती, खादी का इतिहास, शुद्धरामायण, त्रिशूल तरंग, कायापलट, गिरजसार, आदर्श महिला, परशुराम, किन्नरी, भारतवर्ष का वर्णन, मनो-मंदिर, रत्नों की खान, ग्रामीण आरोग्य दिग्दर्शन, एशिया निवासियों के प्रति यूरोपियनों का बर्ताव, गीता की भूमिका, सम्राट अशोक, भक्ति का मार्ग, स्वदेश गीतांजलि, व्यापार शिक्षा, शाहीपति परायण, अगतिन

विलेश, सत्याग्रही प्रह्लाद, चिकित्सा सिंधु, फरंसी, चीन की राज्यक्रांति, रामकोश, जातीयता, अपूर्व रत्न, पुत्री शिक्षक, सूत्र शिल्प शिक्षक, गल्पांजलि, कल्याणी ईशोपनिषद्, आनन्दमठ, मोहिनी, कविता कुसुमांजलि, लंका का इतिहास, उन्नति, वीरांगना, आत्म विजय, भारत गौरव, मोतीलाल नेहरू, सम्राट परीक्षित, गीतामृत, रूस की राज्य-क्रांति, सुखी सन्तान, सच्ची देवियाँ, हमारी भीषण भूल और उसका प्रायश्चित्त, साधारण धर्म्म, पद्मावती, सीता बनवास, अनाथ सरला, भारत माता का संदेश, संसार की क्रांतियां, लाला हरदयाल जी के स्वाधीन विचार, भारत और अंग्रेज, लवकुश, देशबन्धु चित्तरंजन दास, आनन्द संग्रह, सत्य उपदेश माला, वैदिक प्रार्थना पुस्तक, दयानन्द दिग्दर्शन, भिखारिणी, स्त्रियों की स्वाधीनता, अन्योक्ति तरंगिणी, स्वदेश सेवक स्वामी दयानन्द सरस्वती, सन् ५७ का गदर, सुन्दरी, शाहीजादी गरनी, जादू का महल भाग १-२ जन्म, पुष्पवाटिका, परशुराम संवाद, दशरथ का प्रतिज्ञापालन, कौशल्या माता से बिदाई, बनयात्रा, सूनी अयोध्या, चित्रकूट में भरत मिलाप, पंचवटी, सीताहरण, राम सुग्रीव की मित्रता, सीता की खोज, अशोक वाटिका, लंका दहन, विभीषण की शरणागति, अंगद रावण का संवाद, मेघनाद का शक्ति प्रयोग, कुंभकर्ण बध, सती सुलोचना, अहिरावण बध, रावण बध, राजतिलक, राष्ट्रीय तरंग भाग १, चरखा स्तोत्र।

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबन्ध समिति

रविवार १५ माघ १६७६ (ता० २८ जनवरी १६२३)-संध्या के ४॥ बजे

स्थान-सभाभवन

उपस्थित

बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल एल बी० सभापति, पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, ठाकुर शिवकुमार सिंह, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०, बाबू ब्रज रत्न दास, बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा, बाबू माधव प्रसाद, बाबू बेणी प्रसाद, बाबू दुर्गा प्रसाद।

सम्मतिदाता

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी और
राय बहादुर बाबू हीरालाल

(१) बाबू श्याम सुन्दर दास जी के प्रस्ताव पर पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० सभापति चुने गए। पीछे से सभा के उपसभापति बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी भी आ गए।

(२) प्रबंध समिति का १० मार्गशीर्ष १६७६ का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) मार्गशीर्ष और पौष १६७६ के आयव्यय का निम्नलिखित हिसाब सूचनार्थ उपस्थित किया गया:—

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मास की बचत	५७१।≡)१		कार्यकर्ताओं का वेतन	१७१।।-)।।।	
सभासदों का चन्दा	४३।।।)		छपाई	७१५।।।)	
नागरी प्रचार	५-)।।।		हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्त प्रदेश)	३३-)	
फुटकर आय	३=)।		„ „ (पंजाब	६७)	
पुस्तकालय	७।।।)		नागरी प्रचार	११।।≤)	
अमानत	१८४।।=)।।		फुटकर व्यय	१६।।-)७	
पुस्तकालय के लिये अमानत	५)		पुस्तकालय	३१।।≡)	
पुस्तकों की बिक्री		१७४=)।।।	डाक व्यय	८६=)।।	
पृथ्वीराज रासो		४६।।)	भवन निर्माण	५४।≡)	
हिन्दी कोश		१२१।-)	पुस्तकालय के लिये अमानत	१।।)	
मनोरंजन पुस्तक माला		६७१।)	अमानत	४१२।)।।	
भारतेन्दु ग्रन्थावली		१३।।)।।	तुलसी जयन्ती		७।=)
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		२३।≡)।।	हिन्दी कोश		१८०।।)।।
सूर्यकुमारी पुस्तक माला		२६०६-)।।	मनोरंजन पुस्तक माला		६५७।।।-)
तुलसी जयन्ती		२६३)	सूर्यकुमारी पुस्तक माला		१९)
बाला बख्श राजपूत चारण पुस्तक माला		५०००)	रेकल	२)	
	८२०।।-)७	९५२२।।-)।।	जोड़	१६६१।)७	८६४।।≡)।।
			बचत	२५२६)१	७८१७।=)।।।
	१०३४३।=)१०			१०३४३।=)१०	

पौष १९७९

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गतमास की बचत	७८१७।=)।।।		कार्यकर्त्ताओं का वेतन	१९७॥)	
सभासदों का चंदा	३३)		छपाई	२८॥=)	
फुटकर आय	२८≡)।		हिन्दी पुस्तक की खोज (संयुक्त प्रदेश)	२४३॥-)	
पुस्तकालय	७८)		" (पंजाब)	५३॥)	
विशेष आय	१॥)		नागरी प्रचार	१०।=)	
जोधसिंह पुरस्कार	३३)		फुटकर व्यय	१३।।।=)॥	
अमानत	५२०॥=)		पुस्तकालय	९३≡)	
पुस्तकालय के लिये अमानत	१०)		डाक व्यय	६।-)	
पुस्तकों की बिक्री		९४।=)	जोधसिंह पुरस्कार	।)	
पृथ्वीराज रासो		३९)	पुस्तकालय के लिये अमानत	१०)	
हिन्दी कोश		१३५≡)।	अमानत	४३७॥)॥	
मनोरंजन पुस्तक माला		२८२-)	तुलसी जयन्ती		३६१॥)
भारतेन्दु ग्रन्थावली		९।-)॥	विज्ञापन		७२।=)
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		१० -)	हिन्दी कोश		२४२।≡)॥
सूर्यकुमारी पुस्तक माला		९४॥-)॥	मनोरंजन पुस्तक माला		५१४॥=)।
तुलसी जयन्ती		४॥)	देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तक माला		॥-)।
			सूर्यकुमारी पुस्तक माला		१३५॥)
			बटुकप्रसाद पुरस्कार के लिये प्रामिसरी नोट	५९८)॥।	
			बालाबक्स राजपूत चारण पुस्तक माला के लिये प्रामिसरी नोट	४७८४।≡)	
	८५३२)	६६९।=)॥		६४७७।≡)॥	१३२७॥-)।

बचत का ब्योरा

५०।≈)। रोकड़ सभा

१२८०।-)॥ बनारस बंक, चलता खाता

६५॥-)॥ बनारस बंक, सेविंग बंक (प्राइज फंड)

१३९६-)॥

(४) निश्चय हुआ कि जोधसिंह पुरस्कार, रत्नाकर पुरस्कार, बटुक प्रसाद पुरस्कार और बालाबक्स ट्रस्ट के जो प्रामिसरी नोट और यू० पी० बोंड सभा के पास उसके नाम से हैं वे स्टाक सर्टिफिकेट के रूप में परिवर्तित कर लिए जांय और इन चारों मदों के चार जुदे जुदे स्टाक सार्टिफिकेट रहें।

(५) बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी की सम्मति के सहित पंडित ब्रजकिशोर भार्गव का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सभा का आडिटर नियत किए जाने के संबंध में प्रार्थना की थी।

निश्चय हुआ कि सभा द्वारा आडिटर की वार्षिक फीस ५०) रु० नियत है। यदि वे इस फीस को स्वीकार कर सकें तो उनका पत्र बोर्ड आफ ट्रस्टीज के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(६) राय बहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा का ३०-११-२२ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सूचना दी थी कि विवेकानन्द ग्रन्थावली तथा अशोक की धर्मलिपियों की हस्तलिखित प्रतियां जो स्वर्गवासी पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी के पास रह गई थीं उन्हें मिल गई हैं और मंत्री ने सूचना दी कि ओझा जी ने ये प्रतियां सभा को भेज दी हैं।

निश्चय हुआ कि इसके लिये रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा को धन्यवाद दिया जाय।

(७) मंत्री ने सूचना दी कि बारहट बालाबक्स ट्रस्ट का ५०००) रु० सभा को प्राप्त हो गया है और उसके लिये ८८००) के ३॥ टकिया प्रामिसरी नोट खरीद लिए गए हैं।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और इस पुस्तकमाला में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों तथा सम्पादकों के चुनाव का विषय आगामी अधिवेशन में विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(८) मुंशी देवीप्रसाद का पत्र सूचनार्थ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी के स्थान पर पंडित रामकर्ण जी को देवी प्रसाद ऐतिहासिक ट्रस्ट का ट्रस्टी चुना था।

(९) निश्चय हुआ कि जोधसिंह पुरस्कार के उपयुक्त पुस्तक चुनने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की उपसमिति बनाई जायः—

१. रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

२. रायबहादुर बाबू हीरालाल

३. बाबू काशीप्रसाद जायसवाल

यह भी निश्चय हुआ कि इन महाशयों से प्रार्थना की जाय कि मार्च के मध्य तक वे अपनी सम्मति देने की कृपा करें।

(१०) पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र लिखित हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज की त्रैवार्षिक रिपोर्ट उपस्थित की गई जिसे उन्होंने फिर से ठीक करके भेजा था।

निश्चय हुआ कि मंत्री को अधिकार दिया जाय कि वे आवश्यक परिवर्तन के साथ इस रिपोर्ट की स्वच्छ प्रतिलिपि करा कर उसे गवर्नमेण्ट की सेवा में भेज दें।

(११) बाबू बटुक प्रसाद खत्री का ७ सितम्बर १६२२ का पत्र सूचनार्थ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि प्रबंध समिति ने १० मार्ग शीर्ष १६७६ के अधिवेशन में "बटुकप्रसाद पुरस्कार" के लिये जो निश्चय किया है वह उन्हें स्वीकार है।

(१२) मंत्री ने निवेदन किया कि दर्खास्ती कागज का मूल्य अब एक पैसे से दो पैसा हो गया है अतः इन कागजों पर जो फार्म सभा द्वारा प्रकाशित किए गए हैं उनका मूल्य बढ़ाया जाय या नहीं।

निश्चय हुआ कि मूल्य बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। जो फार्म दर्खास्ती कागज पर छपे हैं वे प्रचार की दृष्टि से सुलभ मूल्य पर बिना घाटा उठाए बेचे जांय और आगे से साधारण मोटे कागज पर ये फार्म छप-वाये जांय।

(१३) निश्चय हुआ कि कार्यकर्ताओं की छुट्टियों का हिसाब अब जनवरी से दिसम्बर तक न रखकर बैशाख से चैत्र तक रक्खा जाय और सोमवती अमावास्या के स्थान पर अब मौनी अमावास्या की छुट्टी दी जाया करे।

(१४) निश्चय हुआ कि सूर्यकुमारी पुस्तकमाला में (1) Psychology (2) Child development (3) Manual training (4) Scouting. (5) Montesorian system (6) Physiology. (७) ईजिप्ट (८) दरबारे अकबरी और (९) स्वास्थ्य रक्षा पर पुस्तकें प्रकाशित की जांय।

(१५) मंत्री ने सूचना दी कि कुछ सज्जनों ने भवन निर्माण के लिये सभा को सहायता देने का वचन दिया है और आशा है कि उनकी सहायता सभा को शीघ्र प्राप्त हो जायगी। साथही उन्होंने यह भी सूचना दी कि अब सभाभवन में न तो बिक्री की और न पुस्तकालय की पुस्तकों के रखने का स्थान है।

निश्चय हुआ कि बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी को अधिकार दिया जाय कि भवन के लिये जितनी सहायता मिलती जाय भवन का उतना भाग वे बनवाते जांय और जिन सज्जनों से भवन के जिस भाग के बनवाने के लिये सहायता मिले उस भाग में उनके नाम का पत्थर लगवा दिया जाय।

(१६) प्रबंध समिति के १३ आश्विन १६७६ के निश्चय नं० ८ के अनुसार पुस्तकों के स्वत्व के संबंध में मुंशी देवी प्रसाद जी का लिखा हुआ प्रतिज्ञापत्र सूचनार्थ उपस्थित किया गया।

(१७) सभा पति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

श्याम सुन्दर दास
मंत्री

सभा का कार्यविवरण।

साधारण सभा

शनिवार २ वैशाख १९७९ (१५ अप्रैल १९२२)
संध्या के ६ बजे। स्थान—सभाभवन।

उपस्थित

पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०—सभापति। बाबू श्यामसुंदर दास बी० ए०। बाबू व्रजरत्न दास। पंडित रामचंद्र शुक्ल। पंडित प्राणनाथ विद्यालंकार। पंडित केदारनाथ पाठक। बाबू गोपालदास।

(१) बाबू श्यामसुंदर दास के प्रस्ताव तथा बाबू व्रजरत्न दास के अनुमोदन पर पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी सभापति चुने गए।

(२) मि० २७ फाल्गुन १९७८ तथा २५ चैत्र १९७८ के कार्य विवरण उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए।

(३) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के फार्म उपस्थित किए गए:—

१ बाबू मयाशंकर याज्ञिक, सुपरिंटेंडेंट कस्टम्स, भरतपुर ३)
२ पंडित रमाकांत मालवीय, चीफ मिनिस्टर, सिरोही ३)
३ पंडित मोहनलाल महतो कविरत्न, स० सम्पादक, शारदा सदन, गया ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जाँय।

(४) निम्नलिखित सभासद का त्यागपत्र उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ:—

बाबू रघुनंदन प्रसाद, रिटायर्ड हेड असिस्टेंट मिशन्स, लखनऊ।

(५) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवाद पूर्वक स्वीकृत हुईं:—

श्रीयुत व्यवस्थापक, सस्ती पुस्तकमाला, कानपुर—सेनापती
लाला भगवान दीन जी, काशी—ब्रह्मचर्य वैज्ञानिक व्याख्या
स्वामी चन्द्रशेखरानंद जी, गाडरवारा, नरसिंहपुर—
भारत की दशा (गुजराती) २ प्रतियां
रा० रा० डाह्या भाई मनोहर दास पटेल, सेवक कार्यालय, अहमदाबाद
महात्मा गांधी जी ना पत्रो (गुजराती)
रेवरेंड ई० ग्रीव्ज़, इंग्लैंड—Hindi Grammar

भारत की गवर्नमेंट,
Memoirs of the Archeological Survey of India
Nos. 6 and 11.

बाबू सूर्य नारायण सिंह, सीखड़, मिर्जापुर — सरोजबाला

रा० ब० मुंशी गजपत राय, ग्वालियर—स्त्रीदर्पण

बाबू गंगा प्रसाद सिंह वर्मा, मध्यमेश्वर, काशी—संगीत सत्यहरिश्चंद्र

पंडित गोविंद दयाल मिश्र, सुइथा, पो० सरपतहा, जि० जौनपुर
(१) भंग में रंग (२) चर्खा

खरीदी गई :—

विश्वकोश चतुर्थ खंड, इंदुमती, मेवाड़ पतन, बनदेवी, शाही डांकू, शाही लकड़हारा, हिंदी कवियों की अनोखी सूझ, गेरीबाल्डी, प्रेम पूर्णिमा, बड़े घर की बड़ी बात, कुल कमला, देवी द्रौपदी, तिलस्माती मुंदरी, कृष्ण कुमारी नाटक, अपना सुधार, महादेव गोविंद रानाडे (तरुण भारत ग्रंथावली सीरिज़), The Hindi literature.

बाबू शारदा प्रसाद गुप्त, अहरौरा, जि० मिर्जापुर:—
The Indian Mercantile Directory 1918.
Indian Antiquary for March 1922.

(६) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

प्रबंध समिति

सोमवार मि० ४ वैशाख १९७९ (१७ अप्रैल १९२२)
संध्या के ६ बजे। स्थान-सभाभवन

उपस्थित

बाबू गौरी शंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी०-सभापति। बाबू श्यामसुंदर दास बी० ए०। पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०। बाबू माधव प्रसाद। बाबू ब्रज रत्न दास। पंडित रामचंद्र शुक्ल।

(१) गत दो अधिवेशनों (१३ तथा १५ फाल्गुन १९७८) के कार्य-विवरण पढ़े गए और स्वीकृत हुए।

(२) नियम ४३ के अनुसार ट्रस्टियों की पंचमांश संख्या का स्थान रिक्त करने के लिये गोटी डाली गई जिससे बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी०, माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय तथा सर आसुतोष मुकर्जी के स्थान रिक्त हुए।

निश्चय हुआ कि ये सज्जन पुनः बोर्ड आफ ट्रस्टीज़ के सदस्य चुने जांय।

संवत् १६७६ के लिये निम्नलिखित बजट तैयार किया गया:—

आय का ब्योरा	संवत् १६७८ का बजट	संवत् १६७८ की वास्तविक आय	संवत् १६७६ का बजट
गत वर्ष की बचत	७१०॥)२	५८६॥≡)४	५२७॥)२
सभासदों का चंदा	२०००)	१४३४।-)।	१८००)
हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्तप्रदेश)	१०००)	१०००)	२०००)
हिंदी पुस्तकों की खोज (पंजाब)	५००)	५००)	५००)
नागरी प्रचार	२०)	१२=)।	१५)
फुटकर आय	६०)	४१७≡	३००)
पुस्तकालय	७००)	६२३।।।-)।।	६००)
विशेष आय	१६५६)	२००२।।≡)।।	२५००)
जोध सिंह पुरस्कार	६०)	५०।।।)१	६६)
अमानत	७८०-)।।।	६३०≡)।।।	१५०)
भवन निर्माण (स्थायी कोश)	१००)	३२५।-)५	२५०००)
रत्नाकर पुरस्कार	×	१०२७।-)४	५६।।)
पुस्तकालय के लिये अमानत	×	२६५)	×
पुस्तकों की बिक्री	२०००)	२०४५।।।-)	३०००)
पृथ्वीराज रासो	७००)	७०३।।।)	७००)
हिंदी कोश	७३००)	३६६६)७	६०००)
पुस्तकों पर रायलटी	५०)	६८।।=)।	१००)
मनोरंजन पुस्तकमाला	७५००)	३४८०)।	१०३००)
भारतेंदु ग्रंथावली	१०००)	३५==)।।	५००)
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला	१८००)	४४८८।।≡)।।।	१२००)
सूर्यकुमारी पुस्तकमाला	८०००)	८१४०।।=)।	६५००)
		४०८६४≡)।।।	६३८[illegible]

व्यय का ब्योरा	संवत् १९७८ का बजट	संवत् १९७८ का वास्तविक व्यय	संवत् १९७९ का बजट
कार्यकर्ताओं का वेतन	२६१०)	२२१२॥-)	२४००)
छपाई	५१००)	५३३४।≡)१	५००)
हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्तप्रदेश)	१०००)	९९२॥।=)।॥	१०००)
हिंदी पुस्तकों की खोज (पंजाब)	५००)	१२९॥-)५	८७५)
नागरी प्रचार	१००)	१००॥)	१२५)
फुटकर व्यय	२००)	१०९४।-)१०३	३००)
पुस्तकालय	५००)	८४७।-)॥।	००)
डाकव्यय	५००)	८५१॥≡)॥।	१०००)
जोधसिंह पुरस्कार	१३२॥।)	११५६-)	२००)
पारितोषिक	६४)	४२)	६४)
भवन निर्माण	×	३९२।)	२६६००)
रत्नाकर पुरस्कार	×	१०४५-)१०	४०)
मरम्मत	५०)	१२७॥)॥।	×
सभाभवन पर टिकस	२१२॥)	१७३=)	१२०)
वार्षिकोत्सव	२००)	×	×
स्थायी कोश के लिये	६३।)	×	×
हिंदी व्याकरण	×	५७)	×
विज्ञापन	२००)	११६॥।)	३००)
हिंदी कोश	७३००)	५६७०-)११३	१००००)
पुस्तकों पर रायल्टी	×	१६-)।	२५)
मनोरंजन पुस्तकमाला	६५००)	६७४७॥≡)॥।	८०००)
भारतेंदु ग्रंथावली	१०००)	४९२।)॥।	×
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला	११७८॥।=)॥।	४४००॥≡)॥	६५०)
सूर्यकुमारी पुस्तकमाला	७६८२-)	८०६२-)२	७२००)
		४०३३६।=)७	६३७९९)
बचत		५२७॥।)२	
		४०८६४=)।॥	

बचत का ब्योरा

२५-)१० रोकड़ सभा

४९१॥।-)। बनारस बंक, चलता खाता

७॥)७ पोस्टल सेविंग बंक (स्थायी कोश)

३।)॥ बनारस बंक (भवन निर्माण)

५२७॥।)२

(४) निश्चय हुआ कि इस वर्ष से मनोरंजन पुस्तकमाला तथा हिंदी शब्द सागर की बिक्री में से १२॥) सैकड़े विशेष आय में जमा किया जाया करे।

(५) निश्चय हुआ कि भौतिकविज्ञान, महादेव गोविंद रानाडे, बुद्धदेव तथा हम्मीरहठ के नए संस्करण प्रकाशित किए जांय और हिंदी शब्द-सागर के प्रथम खंड (सं० १-६) की ५०० प्रतियां भी छपवा ली जांय।

(६) जिन सज्जनों के यहां पुस्तकों का मूल्य बहुत दिनों से बाकी चला आ रहा है उनकी सूची उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि अभ्युदय प्रेस, भार्गव बुक डिपो, गोंडा के डिपटी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स, मुजफ्फरपुर के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, पंडित तुलाराम चतुर्वेदी तथा नवनीत कार्यालय के यहां जो रुपया बाकी है उसके लिये उन्हें वकील द्वारा नोटिस दी जाय और कानून के अनुसार रुपया वसूल करने का उचित प्रबंध किया जाय।

(७) निश्चय हुआ कि सुलेमान सौदागर के अनुवाद के लिये अनुवादक को १) रु० पृष्ठ के हिसाब से पुरस्कार दिया जाय पर भूमिका और परिशिष्ट के लिये उन्हें ॥) पेज के हिसाब से दिया जाय।

(८) पंडित ब्रजवल्लभ मिश्र का ता० २७ फरवरी का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे अपने कस्तूरी कोश का दूसरा संस्करण छपवा रहे हैं और प्रार्थना की थी कि छपने के पहले सभा एक बार फार्मों के मैटर को शुद्ध कर दिया करे।

निश्चय हुआ कि सभा योग्य विद्वान् द्वारा इस ग्रंथ के संशोधन का प्रबंध करा सकती है। पंडित ब्रजवल्लभ मिश्र से पूछा जाय कि वे इस कार्य के लिये कहां तक व्यय कर सकते हैं।

(९) पंडित रामजीलाल शर्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रार्थना की थी कि सभा [illegible] वाचनालय के लिये अपनी पुस्तकें, विशेषतः मनोरंजन पुस्तकमाला की सब संख्याएं, बिना मूल्य दे।

निश्चय हुआ कि पुस्तकालयों आदि को कम मूल्य पर पुस्तकें देने के संबंध में प्रबंध समिति जो निश्चय कर चुकी है उसी के अनुसार मंत्री इस संबंध में उचित कार्रवाई करें।

(१०) संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट का शिक्षा विभाग का ८ अप्रैल १९२२ का पत्र नं० १०४१-१५-२६६ सूचनार्थ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि धनाभाव के कारण अशोक की प्रशस्तियों के प्रकाशित करने के लिये वह सभा की सहायता न कर सकेगी।

(११) पेरिस की सोसायटी एशियाटीक का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अपने शतवार्षिकोत्सव के लिये सभा को निमंत्रित किया था।

निश्चय हुआ कि सभा की ओर से उनके उत्सव में सम्मिलित होने के लिये सर जी० ए० ग्रियर्सन तथा रेवरेंड ई० ग्रीव्स प्रतिनिधि चुने जांय।

(१२) हिंदी पुस्तकों की खोज की सन् १९१७-१९ की त्रैवार्षिक रिपोर्ट उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि यह पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए० के पास सम्मति के लिए भेजी जाय और उनकी सम्मति के सहित वह आगामी अधिवेशन में उपस्थित की जाय।

(१३) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा

शनिवार ३० वैशाख १९७९ (१३ मई १९२२ संध्या के ६ बजे

स्थान-सभा भवन

उपस्थित

बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी०। पंडित रामचंद्र नायक कालिया। बाबू ब्रज रत्न दास। बाबू गोपाल दास।

कोरम पूरा न होने के कारण अधिवेशन न हो सका।

प्रबंध समिति

शनिवार ६ ज्येष्ठ १९७९ (२० मई १९२२) संध्या के ६ बजे

स्थान-सभा भवन

उपस्थित

पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०-सभापति। बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी०। बाबू श्यामसुंदर दास बी० ए०। बाबू माधो प्रसाद। ठाकुर शिव कुमार सिंह। बाबू दुर्गा प्रसाद खत्री। बाबू कवींद्र नारायण सिंह। बाबू ब्रज रत्न दास।

सम्मति भेजनेवाले

राय बहादुर बाबू हीरालाल बी० ए०। बाबू पूरणचंद्र नाहर एम० ए०, बी० एल। पंडित चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०।

(१) गत अधिवेशन (४ वैशाख १९७९) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) वैशाख १९७९ के आयव्यय का निम्नलिखित हिसाब सूचनार्थ उपस्थित किया गया।

[३] संवत १९७८ का वार्षिक विवरण उपस्थित किया गया और आवश्यक संशोधन के उपरांत स्वीकृत हुआ।

[४] निश्चय हुआ कि इस वर्ष वार्षिक विवरण नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रथम अंक के साथ प्रकाशित कर दिया जाय और उसमें सभासदों की नामावली न छापी जाय। अगले वर्ष यह नामावली छापी जाय और इसी समय यह निश्चित किया जाय कि कितने समय के अनंतर वह वार्षिक विवरण में छापी जाय।

[५] हिंदी हस्तलिपि परीक्षा के पर्चों के संबंध में उपसमिति की रिपोर्ट उपस्थित की गई जिसमें उसने सम्मति दी थी कि निम्नलिखित बालकों को पारितोषिक और प्रशंसापत्र दिए जायँ:—

संयुक्त प्रदेश

हाई और मिडिल विभाग

१ रामबहादुर [illegible], कक्षा ८, गवर्नमेंट हाई स्कूल, इटावा १०)
२ लोकाधर [illegible], कक्षा ७, माडल स्कूल, तहसील, अल्मोड़ा ८)
३ शिवकुमारलाल, कक्षा ५, [illegible] स्कूल, तहसील, बलिया ६)

प्रशंसा पत्र:

४ ब्रजनंदनप्रसाद मिश्र, स्पेशल क्लास बी, गवर्नमेंट हाई स्कूल, बांदा
५ शिवप्रसाद मिश्र, कक्षा १०, गवर्नमेंट हाई स्कूल, फर्रुखाबाद
६ [illegible] प्रसाद शुक्ल, कक्षा ८, गवर्नमेंट हाई स्कूल, कानपुर
७ [illegible], कक्षा [illegible], [illegible] हाई स्कूल, हाथरस
८ [illegible] मिश्र, [illegible], गवर्नमेंट हाई स्कूल, हरदोई
९ [illegible] त्रिपाठी, कक्षा ७, हिंदी मिडिल स्कूल, तहसील [illegible]

प्राइमरी विभाग

१ [illegible], कक्षा ४, स्कूल पोखरी नागपुर (जि० गढ़वाल ८)
२ [illegible], कक्षा ४, स्कूल पोखरी नागपुर, (जि० गढ़वाल ६)
३ सुरेंद्र दत्त, कक्षा ४, स्कूल [illegible], तहसील पौड़ी, गढ़वाल ४)

प्रशंसा पत्र:

४ [illegible], कक्षा ४, [illegible], तहसील अकबरपुर, जि० कानपुर
५ [illegible] प्रसाद, कक्षा ३, प्रैक्टिसिंग स्कूल, बांदा
६ [illegible], कक्षा ३, स्कूल [illegible], जि० बलिया
७ [illegible], कक्षा ४, पाठशाला [illegible], जि० बलिया
८ [illegible], कक्षा ४, पाठशाला [illegible], जि० बलिया

प्रिपरेटरी विभाग में कोई बालक पारितोषिक वा प्रशंसापत्र के योग्य नहीं समझा गया और न ग्वालियर से आए हुए पत्रों में किसी विभाग में कोई बालक पारितोषिक वा प्रशंसापत्र के योग्य ठहरा।

(६) Bible in India नामक पुस्तक का लाला संतराम बी. ए. कृत हिंदी अनुवाद तथा पंडित गंगा प्रसाद अग्निहोत्री लिखित डाक्टर जानसन की जीवनी जो प्रकाशित होने के लिये आई थी, उपस्थित की गई।

निश्चय हुआ कि सभा इन पुस्तकों को इस समय प्रकाशित नहीं कर सकेगी।

(७) द्वादश हिंदी साहित्य सम्मेलन की प्रदर्शनी-समिति का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने प्रदर्शनी के लिये सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें मांगी थीं।

निश्चय हुआ कि मंत्री जी कुछ पुस्तकें चुन कर भेज दें।

(८) बाबू अयोध्या दास का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने मेजिक लालटैन के ६५ स्लाइड दो वा तीन मास के लिये मांगे थे और इनका किराया ३२) रु० देने के लिये लिखा था।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और स्लाइड बाबू अयोध्या दास को दिए जांय।

(९) बाबू वेणी प्रसाद का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि प्रबंध समिति को यह अधिकार रहे कि वह आर्यभाषा पुस्तकालय के किसी सहायक को ५) रु० अमानत जमा करने के नियम से बरी कर दे।

निश्चय हुआ कि इसके लिये नियम बनाने की आवश्यकता नहीं है। यदि कोई विशेष अवस्था आजाय जिस पर किसी सज्जन को अमानत से बरी करने की कोई आवश्यकता हो तो सभा उस पर विचार करेगी।

(१०) पंडित केदारनाथ पाठक का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि स्वर्गीय बाबू बालमुकुंद गुप्त का एक तैलचित्र सभाभवन में लगाया जाय।

निश्चय हुआ कि यह स्वीकार किया जाय और पंडित केदारनाथ पाठक से प्रार्थना की जाय कि वे बाबू बालमुकुंद गुप्त जी का एक अच्छा तैलचित्र सभा को दिलवाने का प्रबंध कर दें।

(११) समय अधिक हो जाने के कारण निश्चय हुआ कि सभा विसर्जित की जाय और शेष कार्यों के लिये सोमवार ८ ज्येष्ठ १९७९ को संध्या के ६॥ बजे सभाभवन में पुनः अधिवेशन हो।

सोमवार ८ ज्येष्ठ १९७९ (२२ मई १९२२) संध्या के ६॥ बजे।

स्थान—सभाभवन।

उपस्थित।

पंडित राम नारायण मिश्र बी० ए०—सभापति। बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए०, एल० एल० बी०। बाबू श्यामसुंदर दास बी० ए०। बाबू वेणी

प्रसाद । ठाकुर शिवकुमार सिंह । बाबू ब्रजरत्नदास । बाबू दुर्गा प्रसाद खत्री । बाबू कवींद्र नारायण सिंह । पंडित प्राणनाथ विद्यालंकार ।

सम्मति भेजनेवाले ।

राय बहादुर बाबू हीरालाल बी०ए० । बाबू पूरण चंद्र नाहर । पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी । पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ।

(१) ६ ज्येष्ठ १६७६ का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ ।

(२) रायबहादुर बाबू हीरालाल का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि सभा में एशियाटिक सोसायटी के Information Bueau की भांति एक समाधान समिति खोली जाय ।

(क) निश्चय हुआ कि यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय और निम्न लिखित सज्जनों की समाधान समिति बनाई जाय जो लोगों की साहित्य संबंधिनी शंकाओं का समय समय पर समाधान करे तथा आवश्यकता पड़ने पर लेखों द्वारा विवादग्रस्त अथवा संदेहात्मक विषयों पर अपने विचार प्रगट करे । रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू काशी प्रसाद जायसवाल, पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी०ए०, राय बहादुर बाबू हीरा लाल बी०ए०, बाबू श्याम सुंदर दास बी०ए०, मुंशी देवी प्रसाद, बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर बी०ए०, पंडित रामचंद्र शुक्ल, पंडित शुकदेव विहारी मिश्र बी०ए० और पंडित केदार नाथ पाठक ।

(ख) यह भी निश्चय हुआ कि इस संबंध का सब पत्रव्यवहार सभा के मंत्री द्वारा किया जाय ।

(३) हिंदी पुस्तकों की खोज की सन् १६१७-१६ की रिपोर्ट के संबंध में पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी०ए० की सम्मति उपस्थित की गई । साथ ही इस संबंध में पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र का उत्तर तथा उनके निम्न लिखित प्रश्न उपस्थित किए गए (१) आगे से खोज की रिपोर्ट में मिश्र बंधुविनोद के हवाले दिए जांय अथवा खोज की पूर्व रिपोर्टों के ही (२) अंगरेजी में कवियों के विषय में जो नोट लिखे जाते हैं उनके मुख्य कथन त्रैवार्षिक कार्य के हों या जो प्राचीन बातें उनके विषय में ज्ञात हों उनका भी पूर्ण कथन हो (३) इन नोटों में कवि के ग्रंथों की समालोचना भी लिखी जाय वा नहीं (४) हिंदी के नोट का सारांश मात्र अंगरेजी में हो वा कुछ विस्तार भी रहे (५) किस समय के उपरांत के ग्रंथों की नोटिसें न की जांय ।

निश्चय हुआ कि पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी तथा बाबू श्याम सुंदर दास जी से प्रार्थना की जाय कि पंडित चंद्रधर जी ने सन् १६१७-१६ की रिपोर्ट में जिस प्रकार की त्रुटियां दिखलाई हैं उन्हें दूर कर के वे इस रिपोर्ट को पुनः संपादित तथा संशोधित करदें । यह भी निश्चय हुआ कि (१) खोज की रिपोर्ट में मुख्यतः पूर्व रिपोर्टों का ही हवाला होना चाहिए । पर जहां आवश्यकता हो वहां विनोद का हवाला भी दिया जा सकता है (२) रिपोर्ट में जो बातें

आ चुकी हैं उनके पुनः उल्लेख की आवश्यकता नहीं है जब तक कि किसी विषय के प्रतिपादन या खंडन के लिये वह आवश्यक न हो (३) जहां कहीं आवश्यकता हो वहां ग्रंथों की समालोचना भी होनी चाहिए (४) सन् १८५० के उपरांत के ग्रंथकारों की नोटिसें न की जांय (५) पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र जी को सूचना दी जाय कि खोज का वर्ष दिसंबर में समाप्त होता है, अप्रैल में नहीं। अतः पांचवीं त्रैवार्षिक रिपोर्ट ३१ दिसम्बर १९२२ तक के कार्यों की होनी चाहिए।

(४) संयुक्त प्रदेश की गवर्न्मेंट का १ मई १९२२ का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें सूचना थी कि सन् १९२२-२३ से अभी तीन वर्ष के लिये सभा को हिंदी पुस्तकों की खोज के लिये वह २०००) रु० की वार्षिक सहायता देगी।

निश्चय हुआ कि गवर्न्मेंट को इसके लिये धन्यवाद दिया जाय।

(५) निश्चय हुआ कि संयुक्त प्रांत में अब एक निरीक्षक नियत किए जांय अथवा दो निरीक्षक, यह प्रश्न आगामी श्रावण मास में विचारार्थ उपस्थित किया जाय। इस बीच में एक एजेंट और नियत करके दो एजेंटों द्वारा पुस्तकों की खोज का कार्य निश्चित सिद्धांतों के अनुसार कराया जाय और आगामी श्रावण मास तक इन एजेंटों के निरीक्षण का भार सभा के मंत्री को सौंपा जाय।

(६) बाबू ब्रजरत्न दास जी का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि श्रावण शु० ७ संवत् १९८० (शनिवार ता० १८ अगस्त १९२३) को गोस्वामी तुलसीदास जी के लिये सभा की ओर से एक विशेष उत्सव किया जाय और ऐसा प्रबंध किया जाय जिस में उक्त तिथि को समस्त भारतवर्ष में यह उत्सव मनाया जाय। गोस्वामी जी की संपूर्ण ग्रंथावली दो भागों में उक्त तिथि तक प्रकाशित की जाय और तीसरे भाग में बड़े बड़े विद्वानों से तुलसी दास जी के संबंध में लेख लिखवा कर प्रकाशित किए जांय, गोस्वामी जी का एक चित्र बिक्रयार्थ प्रकाशित किया जाय और उनकी एक अच्छी मूर्ति भी स्थापित की जाय।

निश्चय हुआ कि (१) यह प्रस्ताव स्वीकार किया जाय (२) भारत वर्ष में सर्वत्र यह उत्सव मनाया जाय और इस संबंध में आवश्यक आंदोलन करने के लिये निम्न लिखित सज्जनों की उपसमिति बनाई जाय:—बाबू ब्रज रत्न दास, ठाकुर शिवकुमार सिंह और बाबू दुर्गा प्रसाद खत्री। सभा में इस उत्सव के होने के सब प्रबंध भी उक्त सज्जन ही करें (३) ग्रंथावली के संपादन का भार निम्न लिखित सज्जनों को दिया जायः—पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०, पंडित रामचंद्र शुक्ल, बाबू ब्रज रत्न दास (४) इंडियन प्रेस से पूछा जाय कि क्या वे इस ग्रंथावली को प्रकाशित करने के लिये तयार हैं और यदि हैं तो किन शर्तों पर (५) गोस्वामी जी के रंगीन चित्र सुपररायल चौपेजी आकार में छपवाए जांय और वे सस्ते से सस्ते मूल्य पर बेचे जांय, कुम्हारों से खिलौनों के रूप में भी गोस्वामी जी की

मूर्तियां बनवाई जांय और सभा म्हात्रे महोदय से गोस्वामी जी की एक सुंदर मूर्ति बनवाने के संबंध में पत्र व्यवहार करे।

(७) बाबू श्याम सुंदर दास जी के प्रस्ताव पर निश्चय हुआ कि प्रवेशिका पद्यावली नाम का संग्रह सभा द्वारा प्रकाशित किया जाय।

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

वार्षिक अधिवेशन।

रविवार १४ ज्येष्ठ १९७९ (२८ मई १९२२) संध्या के ६ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित।

पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० सभापति, बाबू रामप्रसाद चौधरी, बाबू बटुक प्रसाद खत्री, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०, बाबू माधव प्रसाद, बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री, बाबू ब्रजरत्न दास, बाबू बालमुकुंद वर्मा, पंडित भागीरथ प्रसाद दीक्षित, बाबू रामचंद्र वर्मा। पंडित सांवल जी नागर, पंडित विश्वनाथ मिश्र ज्योतिषी, पंडित रामनाथ त्रिपाठी, पंडित गोविंद राव जोगलेकर बी० ए०, एल० एल० बी०, बाबू गोपालदास।

ठाकुर शिवकुमार सिंह, काशी—प्रतिनिधि पं० रामनारायण मिश्र द्वारा।

रायबहादुर बाबू हीरालाल, अमरावती }
बाबू गंगा सहाय, लुधियाना } प्रतिनिधि बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा।

बाबू महावीर सिंह वर्मा, जि० उन्नाव—प्रतिनिधि बाबू गोपालदास द्वारा

(१) कार्याधिकारियों तथा प्रबंध समिति और बोर्ड आफ ट्रस्टीज़ के सभासदों के चुनाव के लिये उपस्थित सभासदों में निर्वाचनपत्र बांटे गए तथा बाहर से आए हुए बंद निर्वाचनपत्र खोले गए।

(२) सभा का उन्तीसवाँ वार्षिक विवरण पढ़ा गया और सभापति महोदय ने इस बीच में निर्वाचनपत्रों का परिणाम जांचने के लिये बाबू माधव प्रसाद, पंडित सांवल जी नागर तथा बाबू बालमुकुंद वर्मा को नियत किया।

बाबू रामचंद्र वर्मा ने प्रस्ताव किया कि मेहता जोधसिंह पुरस्कार का जहां उल्लेख किया गया है वहां "१ जनवरी १९२० से ३१ दिसंबर १९२२ तक" न रखकर इसके बदले में हिंदी संवत् और तिथि रक्खी जाय। बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। मंत्री ने इस बात पर ध्यान दिलाया कि यह पुरस्कार ३१ दिसंबर १९१९ तक के लिये दिया जा चुका है और प्रबंध समिति के निश्चय के अनुसार गत दो वर्षों की रिपोर्ट में "१ जनवरी १९२० से ३१ दिसंबर १९२२ तक" का ही उल्लेख किया गया है। अतः

इस विवरण में हिंदी संवत् और तिथि का देना ठीक न होगा। पर आगे से इस पुरस्कार के संबंध में भी हिंदी तिथि और संवत् ही रहेगा। इस पर बाबू रामचंद्र ने अपना प्रस्ताव लौटा लिया।

बाबू रामचंद्र ने प्रस्ताव किया कि पृष्ठ २३ में हिंदी समाचारपत्रों के संबंध में जो लिखा गया है कि "हिंदी के प्रायः सभी समाचारपत्र असहयोग के समर्थक हैं और उसके विपरीत मत को योग्यता पूर्वक प्रतिपादन करने का कोई प्रभावशाली साधन नहीं है" ये शब्द राजनीति से संबंध रखते हैं और इनसे यह ध्वनि निकलती है कि सभा की सम्मति में विपरीत मत के प्रभाव शाली पत्र का होना वांछनीय है। अतः यातो ये शब्द निकाल दिए जांय अथवा इनमें आवश्यक परिवर्तन किया जाय। पंडित सांवल जी नागर ने इसका अनुमोदन किया। बाबू श्यामसुंदर दास ने इसका विरोध करते हुए कहा कि इन शब्दों में सभा की कोई सम्मति नहीं है वरन वास्तविक अवस्था जैसी है उसका केवल उल्लेख मात्र किया गया है। यह विषय हिंदी भाषा के इतिहास से संबंध रखता है अतः इसका उल्लेख होना आवश्यक है। सभा का कोई नियम इसमें बाधक नहीं है। अधिक सम्मति से बाबू राम चंद्र वर्म्मा का प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

बाबू राम चंद्र वर्मा ने प्रस्ताव किया कि पृष्ठ २० में 'बहुत कम साहित्य ऐसा उत्पन्न होरहा है जो स्थायी हो और जिस पर आधुनिक स्थिति का पुट न हो अथवा जो स्थिति के बदलते ही विलीन न हो जाय' ये शब्द यातो निकाल दिए जांय अथवा इन में परिवर्तन किया जाय। किसी सज्जन ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं किया, अतः यह अस्वीकृत हुआ।

बाबू बालमुकुंद वर्मा के प्रस्ताव तथा बाबू बटुक प्रसाद खत्री के अनुमोदन पर सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि सभा का उंतीसवां वार्षिक विवरण स्वीकार किया जाय।

(२) निर्वाचन पत्रों का निम्नलिखित परिणाम सूचनार्थ उपस्थित किया गया:-

सभापति—पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी

उप सभापति—पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी बी०ए०

" पंडित शुक देव विहारी मिश्र बी०ए०

मंत्री—बाबू श्याम सुंदर दास बी०ए०

उपमंत्री—बाबू व्रज रत्न दास

प्रबंध समिति के सदस्य:

- बाबू गौरी शंकर प्रसाद बी०ए०, एल०एल०बी०
- बाबू बाल मुकुंद वर्मा
- ठाकुर शिव कुमार सिंह
- पंडित राम चंद्र नायक कालिया
- राय पूर्ण चंद्र नाहर
- राय साहब बाबू राम गोपाल सिंह चौधरी
- पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

बाबूगौरीशंकर प्रसाद बी०ए,०एल०एल०बी०
माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय बी०ए०, एल०एल०बी०
आनरेब्ल जस्टिस सर आसुतोष मुकर्जी

(४) संवत् १९७८ के आयव्यय का हिसाब तथा संवत् १९७९ का बजेट उपस्थित किया गया।

बाबू श्याम सुंदर दास जी ने प्रस्ताव किया कि संयुक्त प्रदेश की गवर्मेंट ने इस वर्ष से हिंदी पुस्तकों की खोज के लिये अपनी सहायता २०००) रु० वार्षिक कर दी है। इस कारण बजट में इस मद में आय और व्यय दोनों ही में १०००) रु० के बदले २०००) रु० कर दिया जाय और इस परिवर्तन के साथ यह बजट तथा हिसाब स्वीकार किया जाय। बाबू दुर्गा प्रसाद खत्री ने इसका अनुमोदन किया और यह सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

(५) मंत्री ने सूचना दी कि बाबू बटुक प्रसाद खत्री ने सभा को १०००) रु० इस लिये दान दिया है कि वह उसके ब्याज से सर्वोत्तम नाटक वा उपन्यास के लिये पदक वा पुरस्कार दिया करे। मंत्री ने यह भी सूचना दी कि एक महोदय ने जो अपना नाम नहीं प्रगट करना चाहते २०००) रु० सभाभवन के लिये देना स्वीकार किया है।

सभा ने इस पर हर्ष प्रगट किया और दोनों महाशयों को धन्यवाद दिया गया।

(६) सभापति महोदय ने प्रस्ताव किया कि बाबू श्यामसुंदर दास जी ने सदा से इस सभा की सेवा जिस भांति की है वह सब पर भली भांति प्रगट है। इस वर्ष मंत्री रह कर उन्होंने सभा की छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी बातों पर विशेष ध्यान देकर सभा के कार्यों में बड़े सुधार किए और इसी का यह परिणाम है कि सभा अपने कार्यों में इतनी सफलता प्राप्त कर सकी है। अतः इसके लिये बाबू श्यामसुंदर दास जी को सभा की ओर से विशेष धन्यवाद दिया जाय। साथ ही बाबू ब्रजरत्न दास जी ने जिस परिश्रम और उत्साह से कार्य किया है उसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय। बाबू बटुक प्रसाद ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और वह सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

बाबू श्यामसुंदर दास जी ने इस धन्यवाद के लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि सभा की सफलता और उत्तमता का बहुत कुछ श्रेय सभा के सहायक मंत्री बाबू गोपाल दास को है जिनका मूल्य वे भली भांति जानते हैं जिन्हें सभा के अधिकारी होकर कार्य करने का अवसर मिला है।

(७) बाबू राम चंद्र वर्मा ने प्रस्ताव किया कि सभा के पदाधिकारियों और प्रबंध समिति के सदस्यों के चुनाव के लिये इस समय जो नियम हैं वे

संतोषजनक नहीं है। उनके अनुसार प्रबंध समिति की प्रस्तावित नामावली ही ज्यों की त्यों स्वीकृत हो जाती है। अतः इन नियमों पर विचार करने के लिये एक उपसमिति बना दी जाय जिसके प्रस्ताव आगामी वार्षिक अधिवेशन में विचारार्थ उपस्थित किये जांय। बाबू दुर्गा प्रसाद खत्री ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

बाबू ब्रजरत्नदासजी ने यह सुधार उपस्थित किया कि इन नियमों में क्या क्या परिवर्तन होना चाहिए इस संबंध में बाबू रामचंद्र वर्मा निश्चित रूप से अपने प्रस्ताव उपस्थित करें। तब उन पर नियमानुसार विचार किया जाय और वे आगामी वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित किए जायँ। बाबू श्याम-सुंदर दास जी ने इसका अनुमोदन किया।

अधिक सम्मति से बाबू ब्रजरत्न दास जी का सुधार स्वीकृत हुआ।

[८] सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

साधारण सभा।

शनिवार सं० २७ ज्येष्ठ १९७९ [१० जून १९२२] संध्या के ६ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित

पंडित चंद्रधर शर्म्मा गुलेरी बी० ए०—सभापति। बाबू श्यामसुंदर दास बी० ए०। पंडित भागीरथ प्रसाद दीक्षित। बाबू ब्रजरत्न दास। बाबू बालमुकुंद वर्मा। बाबू रामचंद्र वर्मा। बाबू गोपाल दास।

[१] २ वैशाख १९७९ तथा ३० वैशाख १९७९ के साधारण अधिवेशनों तथा १४ ज्येष्ठ १९७९ के वार्षिक अधिवेशन के कार्यविवरण पढ़े गए तथा स्वीकृत हुए।

[२] प्रबंध समिति का ४ वैशाख १९७९ का कार्यविवरण सूचनार्थ पढ़ा गया।

[३] सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के आवेदनपत्र उपस्थित किए गए।

१ सांवलिया बिहारी लाल वर्मा एम० ए०, बी० एल०, प्रोफेसर, पटना कालेज, मुरादपुर, पटना। ३)

२ पंडित रुद्रदेव शुक्ल वेदशिरोमणि, महा महोपाध्याय, वैदिक साहित्ये तिहास, गुरुकुल, वृंदावन। ३)

३ पंडित महता जैमिनी जी बी० ए०, एल० एल० बी०, गुरुकुल वृंदावन।

४ बाबू लक्ष्मीनारायण वर्मन, लक्खी चौतरा, काशी

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जायँ।

[४] निम्नलिखित सभासदों के त्यागपत्र उपस्थित किए गए और स्वीकृत हुए:—

१ बाबू बालगोविंद राम, गया।

२ बाबू बांके बिहारी लाल, बरना का पुल, काशी।

३ पंडित श्रीरामाज्ञा द्विवेदी, काशी।

(५) पंडित शिवनंदन पांडे का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें इन्होंने अपने पिता पं० रामावतार पांडे, रिटायर्ड जज, मिर्जापुर की मृत्यु की सूचना दी थी। सभा ने उक्त सभासद की मृत्यु पर शोक प्रकट किया।

(६) मंत्री ने सूचना दी कि गत वर्ष प्रबंधसमिति के अधिवेशनों में उपस्थित होने अथवा उनके कार्यों के संबंध में अपनी सम्मति न भेजने के कारण उक्त समिति में निम्नलिखित स्थान रिक्त हुए हैं (१) रायसाहब डाक्टर सर्यूप्रसाद त्रिपाठी (२) पंडित आत्माराम हरी खंडोलकर (३) डाक्टर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर। इनके अतिरिक्त इस वर्ष पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी, पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए० तथा पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र के सभापति और उपसभापति चुने जाने के कारण इन सज्जनों के स्थान भी उक्त समिति में रिक्त हो गए।

निश्चय हुआ कि इन सज्जनों के स्थान पर क्रमात् निम्नलिखित सज्जन प्रबंध समिति के सदस्य चुने जायँ। (१) रायबहादुर बाबू लालबिहारी लाल (२) बाबू श्री प्रकाश जी (३) पंडित नाथूराम प्रेमी (४) बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर बी. ए. (५) रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा और [६] पंडित रामनारायण मिश्र बी. ए.

(७) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं।

ज्ञानमंडल कार्यालय, काशी

जापान की राजनीतिक प्रगति, रोम साम्राज्य, रूस का पुनर्जन्म, खाद का उपयोग, गृह शिल्प, बनारस के व्यवसायी, स्वराज का मसविदा भाग १, विक्रमांक देवचरित (संस्कृत) और ज्ञानमंडल सौर पंचांग।

आलीजाह दरबार प्रेस, ग्वालियर।

प्रोसीडिंग मजलिसे आम—सेशन अव्वल।

बाबू रुद्रप्रसाद जी श्रीवास्तव, ब्रह्मनाल, काशी।

प्रमोदमाला, आनन्दशाला, विनोद बाला, ईश्वरचरित्र पत्रिका, रुद्र, कौतुक विचित्र, कुचाल सुधार, व्यर्थ व्यर्थ निवारण।

बाबू माधवप्रसाद खत्री, धर्मकूप, काशी।

बंग विजेता।

हिंदी पुस्तक एजेंसी, १२६ हेरिसन रोड, कलकत्ता।

प्रेमाश्रम, जेवनार, जमशेदजी नसरवानजी ताता, सिक्खों की तीर्थ

यात्रा, महात्माजी और वस्त्र व्यवसायी, कांग्रेस जन्म और विकास, अछूतों पर महात्माजी, राजविद्रोह का अभियोग, खादी पर विज्ञानाचार्य, भगवद्गीता [मूल]

बाबू मुन्नीलाल, काशी।

भूतनाथ भाग १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १० और, ११

पंडित शिवदुलारे त्रिपाठी, साहित्य भवन, मौरावां, उन्नाव

छात्र शिक्षा—नूतन विलास

ठाकुर चंदन सिंह, हरिश्चन्द्र हाई स्कूल, काशी

महाराणा राजसिंह

पं० रामाज्ञा द्विवेदी, दामोदर पुस्तकमाला कार्यालय, कप्तान गंज, बस्ती

सोना रानी

पं० कृष्णानंद जोषी, लक्ष्मी नारायण प्रेस, मुरादाबाद

कर्मवीर विश्वामित्र

पं० केदारनाथ पाठक, काशी

भाषा कुमुद बांधव

पं० जयदेव विद्यालंकार, ज्ञान मंडल कार्यालय, काशी

भगवद्गीता (मूल गुटका)

पं० उमाशंकर नागर, रामघाट, काशी

आलम केलि

बोम्बे ह्युमेनिटेरियन फंड, ३०८ सराफ बाजार, बम्बई

Vegetarian Diet.

स्मिथसोनियन इन्स्टीट्यूशन, वाशिंगटन, अमेरिका

35th Annual Report of the Bureau of American ethnology 1913-14 part 2. Annual Report of the Smithsonian Institution 1919. Buletin 74—Excavation at Santiago Ahuitzotla D. F. Mexico. A study of the body temperature of birds. Cambrian Geology and Paleontology IV, No 7- Notes on structure of Neolenus

एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता

Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, New Series Vol xvii, 1921, No 3. Memoirs of the Asiatic Society of Bengal vol vii No 4 pp 257-319.

क्रय की गई तथा परिवर्तन में प्राप्त— .

प्रेम पुष्पांजलि, सेवाधर्म, प्रेम कली, असहमत संगम, भारतीय नवयुवकों को राष्ट्र संदेश, स्वाधीन भारत, संसारव्यापी असहयोग, असहयोग पर भारत के नेता, गल्पलहरी, कलंक, जर्मन कोयल,

दप्तरिरहस्य, नीतिशतक, भारत इतिहास संशोधक मंडल अहवाल १८३२ शके, १८३३ शके, १८३४ शके, १८३५ शके, १८३६ शके, १८३७ शके, १८३८ शके, भारत इतिहास संशोधक मंडल वृत्त १८३५, १८३६, १८३७, १८३८, १८३९ और १८४०, मराठों ची इतिहासों ची साधने १ खंड १७५०-१७६१ पर्यंत, ५ खंड, १० खंड, ११ खंड, १२ खंड, महाराष्ट्र सारस्वत द्वितीय आवृत्ति, महाराष्ट्रीय सारस्वत ग्रंथ प्रथम, मुकुंद महाभाष्य, महाराष्ट्रीय सारस्वत तीसरा ग्रंथ, चौथा ग्रंथ, तुकाराम बोवांचा अस्सल गाथा भाग १, चंद्रचूड़ दफ्तर रूमाल १, अधिकार योग, संत कवि काव्य सूची, राजवाड़े खंडस्थल सूची। थोरले बाजीराव का चित्र, छोटी जंत्री, मराठी दफ्तर रूमाल पहिला लेखांक १, प्रदर्शन परिचय, भारत इतिहास संशोधक मंडल त्रैमासिक पत्रिका अंक १—४

गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदाबाद—

शिक्षित आर्य संतानों नूं आरोग्य, इंग्रेजी राज्य बंधारण, सहकार प्रवृत्ति, पद्य संग्रह, सुवावड़ अने बाल सँभाल, महिला मित्र।

Indian Antiquary

(८) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

—:o:—

प्रबंध समिति।

शनिवार मि० १० आषाढ़ १९७९ [२४ जून १९२२] संध्या के ६ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित

बाबू गौरी शंकर प्रसाद बी० ए० एल० एल० बी०—सभापति। बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०। पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० बाबू माधव प्रसाद। बाबू बालमुकुंद वर्मा। पंडित रामचंद्र शुक्ल बाबू ब्रज रत्न दास। बाबू दुर्गाप्रसाद।

सम्मति भेजनेवाले

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी। रायबहादुर बाबू हीरालाल

(१) पंडित रामनारायण मिश्र के प्रस्ताव तथा बाबू बाल मुकुंद वर्मा के अनुमोदन पर बाबू गौरीशंकर प्रसाद जी सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन [८ ज्येष्ठ १९७९] का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) ज्येष्ठ १९७९ के आयव्यय का निम्नलिखित हिसाब उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ:—

आय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग	व्यय	साधारण विभाग	पुस्तक विभाग
गत मास की बचत	२२१॥-)११		कार्यकर्ताओं का वेतन	१७७।)॥	
सभासदों का चंदा	९०)		हिंदी पुस्तकों की खोज (संयुक्त प्रदेश)	१५५॥।≋)॥	
नागरी प्रचार	।=)		नागरी प्रचार	१०।=)	
फुटकर आय	१२)		फुटकर व्यय	६७।=)॥	
पुस्तकालय	६४)		पुस्तकालय	५५।)	
डाकव्यय का फिरता	७०-)।		हिंदी पुस्तकों की खोज (पंजाब)	६=)	
अमानत	१८९।=)।		अमानत	४६८)	
पुस्तकालय के लिये अमानत	१०)		पुस्तकालय के लिये अमानत	१०)	
बटुकप्रसाद पुरस्कार	१०००)		छपाई	६३०॥)	
मनोरंजन पुस्तकमाला		१३३॥=)।	मनोरंजन पुस्तकमाला		५८)।
देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला		९=)।	देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला		९२।≋)।
सूर्यकुमारी पुस्तकमाला		४३-)॥।	सूर्यकुमारी पुस्तकमाला		३३२≡)॥
हिंदी कोश		४७७।≋)॥	हिंदी कोश		११४॥।)।
पुस्तकों की बिक्री		१६८=)		१५८०॥=॥	५९७।)
भारतेंदु ग्रंथावली		२४॥≋)॥।	बचत	२१७८=)॥।	
पृथ्वीराज रासो		६०)		३९)२	
	१६५७॥≡)५	९१६।≋)॥			
	२५७४=)११			२५७४=)११	

बचत का ब्योरा

३७९॥-)४ रोकड़ सभा

६॥-)॥। बनारस बंक, चलता खाता।

७॥)७ पोस्टल सेविंग बंक (स्थायी कोश)

३।)॥ बनारस बंक, सेविंग बंक

[illegible]

(४) बाबू बटुक प्रसाद खत्री का पत्र उपस्थित किया गया जिसके साथ उन्होंने २०००) रु० सभा को इसलिये दान दिया था कि वह उसके व्याज से सर्वोत्तम नाटक वा उपन्यास के लिये पदक वा पुरस्कार नियत कर, दिया करे।

निश्चय हुआ कि यह धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया जाय, इस रुपए से १८००) के ३॥ टकिया नोट खरीद लिये जाय और इस पुरस्कार के लिये निम्नलिखित निमय बनाए जायः—

(क) प्रति तीसरे वर्ष २००) रु० का पुरस्कार जिसका नाम "बटुकप्रसाद पुरस्कार" होगा उस व्यक्ति को दिया जाय जिसने उन तीन वर्षों में सर्वोत्तम शिक्षाप्रद मौलिक नाटक या उपन्यास हिंदी भाषा में लिखा हो।

(ख) पहला पुरस्कार १ माघ १९७९ से ३१ पौष १९८२ तक के बीच में आए हुए नवीन उपन्यासों और नाटकों के लिये दिया जायगा।

(ग) प्रति तीसरे वर्ष सभा ३ वा ५ विद्वानों की एक उपसमिति बनावेगी जो आए हुए नाटकों और उपन्यासों पर विचार कर सभा को यह सम्मति देगी कि उन में से कौन पुरस्कार के योग्य है।

(घ) यदि किसी अवधि में कोई ग्रंथ पुरस्कार के योग्य न समझा जायगा तो उस अवधि के व्याज की रकम मूल निधि में सम्मिलित की जायगी।

(५) रायबहादुर बाबू हीरालाल का यह प्रस्ताव उपस्थित किया गया कि देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला में इंडेक्स (Index) भी छपा करे।

निश्चय हुआ कि इंडेक्स अवश्य छपना चाहिए।

(६) मेरट के प्रयाग नारायण ट्रस्ट के एक्जिक्यूटर का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे प्रति वर्ष इस सभा द्वारा सर्वोत्तम शिक्षाप्रद पुस्तक के लिये ५०) रु० का स्वर्णपदक देना चाहते हैं। इसके लिये सभा उपयुक्त प्रबंध कर दे।

निश्चय हुआ कि (क) यह स्वीकार किया जाय (ख) इस संबंध में प्रति वर्ष विचार करने के लिये निम्नलिखित पदाधिकारियों की उपसमिति बनाई जायः—सभा के सभापति, नगरस्थ उपसभापति और मंत्री (ग) १ फाल्गुन से ३० माघ तक की प्रकाशित पुस्तकों पर विचार किया जाय और (घ) उपसमिति की सम्मिति प्रबंधसमिति में प्रतिवर्ष चैत्र के अधिवेशन में उपस्थित की जाय।

(७) पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने अवकाश न रहने के कारण हिंदी पुस्तकों की खोज के निरीक्षक पद से इस्तीफा दिया था।

निश्चय हुआ कि उनका इस्तीफा स्वीकार किया जाय और अब तक उन्होंने पुस्तकों की खोज का जो कार्य किया है उसके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय।

(८) पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि (क) उन्हें यह स्वीकार नहीं है कि खोज के संबंध में उनकी रिपोर्ट को कोई अन्य सज्जन संकलित वा संपादित करे। यदि सभा तीन महीने और ठहर सके तो रिपोर्ट उनके पास लौटा दे और वे उसे ठीक कर देंगे। (ख) मिश्रबंधुविनोद का एक मात्र आधार सर्च रिपोर्ट नहीं है, अतः पंचम रिपोर्ट में उन्होंने विनोद तथा सर्च रिपोर्ट दोनों ही के हवाले दिए हैं (ग) सन् १८५० के पीछे की बनी पुस्तकों को रिपोर्ट में न सम्मिलित करने के संबंध में सभा से उनका पूर्ण मतभेद है।

निश्चय हुआ कि (क) सभा की सम्मति में सन् १८५० के पीछे की बनी पुस्तकों का रिपोर्ट में सम्मिलित करना ठीक नहीं है जैसा कि पहले निश्चय हो चुका है (ख) यदि पंडित शुकदेव बिहारी मिश्र तो कृपापूर्वक सभा के निश्चित सिद्धांतों के अनुसार इस रिपोर्ट को तीन मास में संशोधित कर दें तो रिपोर्ट उनके पास भेज दी जाय।

(९) सर आशुतोष मुकर्जी का १ जून का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने लिखा था कि लाला सीता राम ने जो अपील कलकत्ता युनिवर्सिटी के लिये छपवाई है उसकी उन्हें कोई सूचना नहीं थी और न वह उनकी अनुमति वा आज्ञा से प्रकाशित हुई है। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा था कि वे सभा पर किसी प्रकार के आक्षेप का समर्थन नहीं करते क्योंकि उसने अनुत्साह मूलक अवस्था में हिंदी की बड़ी सेवा की है।

निश्चय हुआ कि इस समिति को दुःख है कि लाला सीता राम ने उक्त अपील में सभा पर व्यर्थ आक्षेप किया है।

(१०) इंडियन प्रेस का २ जून का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें मेनेजर ने लिखा था कि वे इस समय तुलसी ग्रंथावली प्रकाशित नहीं कर सकते।

निश्चय हुआ कि यह विषय आगामी अधिवेशन में विचारार्थ उपस्थित किया जाय।

(११) पंडित कामता प्रसाद गुरु का संक्षिप्त "प्रथम हिंदी व्याकरण" उपस्थित किया गया। निश्चय हुआ कि इसके छपवाने का प्रबंध किया जाय और प्रथम संस्करण में १००० प्रतियां छपवाई जांय।

(१२) पंडित मुक्तिनारायण शुक्ल का "अर्थ विज्ञान की भूमिका" नामक ग्रंथ जो मनोरंजन पुस्तकमाला में प्रकाशित होने के लिये आया था विचारार्थ उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि यह पंडित प्राण नाथ विद्यालंकार के पास सम्मति के लिये भेजा जाय।

(१३) मिस्टर अर्नेस्ट एच० हाल का पत्र सूचनार्थ उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने सर ग्रियर्सन के आदेशानुसार लिखा था कि सर ग्रियर्सन अपनी कड़ी बीमारी के कारण सोसायटी एशियाटीक डी पेरिस के अधिवेशन में सम्मिलित न हो सकेंगे।

(१४) बाबू शंकर सिंह का प्रार्थनापत्र उपस्थित किया गया जिसमें सम्मेलन परीक्षा की तयारी के लिये उन्होंने दो मास की छुट्टी मांगी थी। निश्चय हुआ कि उन्हें नियमानुसार छुट्टी दी जाय।

(१५) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

——:o:——

साधारण सभा।

शनिवार ३१ आषाढ़ १९७९ (१५ जुलाई १९२२)

संध्या के ६ बजे

स्थान—सभाभवन

उपस्थित।

बाबू गौरीशंकर प्रसाद बी० ए० एल एल बी-सभापति, पंडित राम नारायण मिश्र बी० ए०, बाबू श्याम सुंदर दास बी० ए०, बाबू ब्रजरत्न दास, बाबू रामचंद्र वर्मा, बाबू माधव प्रसाद, पंडित केदार नाथ पाठक, पंडित भागीरथ प्रसाद दीक्षित, बाबू बासुदेव सहाय और बाबू गोपाल दास।

(१) बाबू गौरी शंकर प्रसाद जी सभापति चुने गए।

(२) गत अधिवेशन (२७ ज्येष्ठ १९७९) का कार्यविवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(३) बाबू माधव प्रसाद के प्रस्ताव तथा बाबू रामचंद्र वर्मा के अनुमोदन पर निश्चय हुआ कि प्रबंध समिति के केवल उन्हीं अधिवेशनों के कार्यविवरण साधारण सभा में सूचनार्थ उपस्थित किए जाया करें जो प्रबंध समिति द्वारा स्वीकृत हो चुके हों।

(४) सभासद होने के लिये निम्नलिखित सज्जनों के आवेदनपत्र उपस्थित किए गए:—

१ पंडित मुक्ति नारायण सुकुल, मेस्टन रोड, कानपुर ३)

२ बाबू पीतांबर दत्त बड़थ्वाल, सौम्य सदन, पाली लैंसडाउन, गढ़वाल ३)

३ बाबू शिवदयाल, दूकान आबकारी, पत्थरगली, इलाहाबाद ३)

निश्चय हुआ कि ये सज्जन सभासद चुने जांय।

(५) पंडित कृष्ण वल्लभ शर्मा का पत्र उपस्थित किया गया जिसमें उन्होंने संघवी कृष्णसिंह जी के देहांत की सूचना दी थी।

सभा ने इस पर शोक प्रकट किया।

(६) निम्नलिखित पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकृत हुईं:—

श्रीयुत मानशंकर पीतांबर दास मेहता, भावनगर

नागरोत्पत्ति

श्री आत्मानंद, जैन पुस्तक प्रचारक मंडल, रोशन महल्ला, आगरा

पातंजलि योगदर्शन तथा योग विंशिका

बाबू श्यामसुंदर दास जी बी० ए०, काशी

तपस्वी तिलक

बाबू महावीर प्रसाद गहमरी, स्वर्णमाला कार्यालय, काशी

स्वर्ग की सीढ़ी

बाबू रामचंद्र वर्मा, काशी

अग्नि परीक्षा

पंडित कृष्णदत्त पाठक एल० सी० पी० एस०, काशी

स्वातंत्र्य साधन या व्यापार के मूल मंत्र

हिंदी ग्रंथ भंडार कार्यालय, काशी

पतितोद्धार, बात की चोट, जंगली रानी, मेरी जासूसी, सुरेंद्र

बाबू मुन्नीलाल, धनुआपुरा, काशी

चंद्रकांता संतति भाग १-११

श्रीयुत तनसुखराम शर्मा त्रिपाठी, गिरगांव, बंबई

नागर सर्वस्वम्

बाबू ब्रजधारी लाल अग्रवाल, उलाउं, मुंगेर

कंस विध्वंस नाटक

स्मिथ सोनियन इंस्टीट्यूशन, वाशिंगटन, अमेरिका

Thirty sixth annual report for 1914-15

भारतकी गवर्न्मेंट

Annual Report of the Archeological Survey of In Eastern circle for 1920-21

मदरास की गवर्न्मेंट

The Padyachudamani

मध्यप्रदेश की गवर्न्मेंट

A grammar of the Chhattisgarhi Dialect of Hindi

क्रय की गई

अदृष्ट, ज्ञानकोश खंड २, अज्ञातवास नाटक, समाज दर्शन, हम असहयोग क्यों करें, प्रेम मंदिर

(७) सभापति को धन्यवाद दे सभा विसर्जित हुई।

श्यामसुंदर दास,

मंत्री।